हुकमचन्द
अभिनन्दन
ग्रंथ

णमो अरिहंताणम्
णमो सिद्धाणम्
णमो आइरीयाणम्
णमो उवज्झायाणम्
णमो लोए सव्वसाहूणम्

आत्मरत सेट साहब

दानवीर, तीर्थभक्तशिरोमणि, जैनधर्मभूषण, जैनदिवाकर,
जैनसम्राट, रायबहादुर, राज्यभूषण, रावराजा,
श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी के० टी० आई०

अभिनन्दन ग्रन्थ

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा
द्वारा
सादर समर्पित

वीर सम्वत् २४७७
वैशाख सुदी सप्तमी
विक्रम सम्वत् २००८
ईस्वी सन् १९५१
रविवार १३ मई

—–o—–

प्रकाशक
जैनजातिभूषण
लाला परसादीलालजी पाटनी
महामन्त्री अ० भा० दिगम्बर जैन महासभा
नई सड़क, देहली,

मुद्रक—
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्सरोड, दिल्ली।

सम्पादक समिति

श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार

स्याद्वादवारिधि पं० खूबचन्द्रजी शास्त्री

पं० सुमेरचन्द्रजी दिवाकर न्यायतीर्थ, बी० ए० एल० एल० बी०

पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री

पं० इन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालङ्कार

पं० नाथूलालजी न्यायतीर्थ

न्यायालङ्कार पं० मक्खनलालजी शास्त्री

पं० अजितकुमारजी शास्त्री

अर्थ समिति

१. सर सेठ भागचन्दजी सोनी	अजमेर	१४. ला० हजारीलालजी मित्तल	इंदौर
२. रा० ब० सेठ लालचन्दजी	उज्जैन	१५. सेठ गुलाबचन्दजी टोंग्या	इंदौर
३. सेठ भाईचन्दजी रूपचन्दजी	बम्बई	१६. ,, लक्ष्मीचन्दजी	भेलसा
४. सेठ कल्याणमलजी गोधा	उज्जैन	१७. ,, गजराजजी गंगवाल	कलकत्ता
५. रा० सा० सेठ मोतीलालजी	ब्यावर	१८. ,, हीरालालजी पाटनी	किशनगढ़
६. सेठ गोविन्दरावजी दोषी	रावलगांव	१९. साहू शांतिप्रसादजी	कलकत्ता
७. सेठ अमरचन्दजी पहाड्या	पलासबाड़ी	२०. सेठ हरकचन्दजी पांड्या	रांची
८. बा० हुकुमचन्दजी पाटनी	इंदौर	२१. बा० मानमलजी काशलीवाल	इंदौर
९. रा० बा० राजकुमारसिंहजी सा०	इंदौर	२२. ला० सिद्धोमलजी कागजी	दिल्ली
१०. ला० परसादीलाल भगवानदासजी	दिल्ली	२३. सेठ हजारीलालजी	सुसारी
११. ला० कपूरचंदजी जौहरी	दिल्ली	२४. सेठ हजारीलालजी	मंदसौर
१२. सेठ गोपीचन्दजी ठोल्या	जयपुर	२५. रा० बा० सेठ हीरालालजी	इंदौर
१३. सेठ बैजनाथजी सरावगी	कलकत्ता	२६. सेठ रतनचन्द हीराचंदजी	बम्बई

समर्पण

अनेक पदविभूषित महासम्मानित श्रीमन्त सर सेठ हुकमचंदजी साहब की सेवा में यह विनीत भेंट जैन समाज की ओर से हम अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के प्रतिनिधि के रूप में अत्यन्त विनय तथा श्रद्धा के साथ उपस्थित कर रहे हैं। सेठ साहब की महान सेवाओं तथा उपकारों के प्रति शब्दों में कृतज्ञता प्रगट करना प्रायः असम्भव ही है। आपके ऋण से उऋण होना भी सम्भव नहीं है। फिर भी समस्त समाज के कृतज्ञता-स्वरूप यह ग्रंथ आपके कर-कमलों में आदर, सम्मान तथा श्रद्धा के साथ अत्यंत विनीत भाव के साथ समर्पित है।

आपके कृतज्ञ

सम्पादक समिति की ओर से

अपने बड़ों का सम्मान वंश-परम्परा का आवश्यक अंग बन गया है। कुल, परिवार, जाति तथा समाज में यह बड़प्पन प्रायः जन्म की परम्परा से ही प्राप्त होता है; किन्तु समाजव्यापी, देशव्यापी और राष्ट्रव्यापी सम्मान तो अपने त्याग, तपस्या, सेवा तथा परिश्रम से ही उपार्जित किया जाता है। अनेक पदविभूषित सेठ साहब ने यह व्यापक सम्मान अपनी उस सेवा, त्याग तथा बलिदान से उपार्जित किया है, जो आपके जीवन की छाया बन गये हैं। यही कारण है कि आपको राज्य और समाज दोनों ही से भरपूर मान्यता एवं सम्मान मिला है और आज जीवन की चतुर्थ अवस्था में प्रायः सर्वस्व का परित्याग कर आपने जिस साधनामय विरक्त भावना को अंगीकार किया है, उससे उस मान्यता व सम्मान को श्रद्धा का रूप मिल गया है।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा पर आपकी जो कृपा रही है, उससे उऋण हो सकना सम्भव नहीं है। उस कृपा के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने का प्रयत्न महासभा यदा कदा अवश्य करती रही है। बहुत पहले महासभा ने मथुरा में आपको 'दानवीर' की उपाधि से सम्मानित किया था। फिर, १६३५ में इन्दौर में आपका हीरक-जयन्ती महोत्सव होने पर महासभा का भी वहां वार्षिक अधिवेशन हुआ। तब आपको मान-पत्र भेंट करने के साथ साथ "जैन दिवाकर" की पदवी से विभूषित किया गया था। उसी परम्परा के अनुसार यह 'अभिनन्दन ग्रन्थ' भी कृतज्ञताभरी श्रद्धांजलि के रूप में समर्पित है।

हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि यह जैसा चाहिये, वैसा बन नहीं सका। इसमें जो अनेक त्रुटियां रह गई हैं, उनसे हम पूरी तरह अवगत हैं। इसका छोटा आकार-प्रकार सेठ साहब के महान व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं है। परन्तु जिस सम्मान, आदर, श्रद्धा तथा कृतज्ञता का यह प्रतीक है, वह न छोटी है और न उसमें कुछ कमी है। अपनी समस्त श्रद्धा, आदर तथा सम्मान एवं कृतज्ञता को साकार करके ही इस ग्रन्थ का संकलन एवं सम्पादन किया गया है। जितने कम समय में यह ग्रन्थ तैयार किया गया है, उतने में इससे पहिले शायद ही ऐसा कोई ग्रन्थ तय्यार किया गया होगा। मार्च के मध्य में उसकी तय्यारी शुरू की गई। १५ मार्च १६५१ को अजमेर में महासभा की प्रबन्धकारिणी में सम्पादक समिति का गठन किया गया। केवल दो ही बैठकें उसकी इस बीच हो सकीं। सम्पादक समिति के सब सदस्य सम्मिलित होकर पूरी तरह विचार-विनिमय भी कर नहीं सके। फिर भी जितना कुछ किया जा सका, उसमें कुछ भी कोर-कसर नहीं रखी गई। इतने कम समय में जिन महानुभावों ने अपनी श्रद्धांजलि, संस्मरण तथा लेख भेजने की अनुकम्पा की है, उन सबके हम हृदय से आभारी हैं। उनके इस कृपापूर्ण सहयोग के बिना इस महान श्रमसाध्य कार्य में ऐसी सफलता प्राप्त होना संभव न थी। महासभा के सुयोग्य प्रधान सर सेठ भागचन्दजी सोनी ने प्रायः प्रति दिन ही फोन से सन्देश आदेश देते रहकर जो प्रेरणा प्रदान की और दिल्ली भी पधारे, उसके लिये उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट करनी आवश्यक है। महासभा के अथक महामन्त्री जैनजातिभूषण लाला परसादीलालजी पाटनी ने तो दो माह न स्वयं आराम किया और न किसी साथी को ही आराम लेने दिया। उनकी इस लगन और परिश्रम का यह ग्रंथ सत्परिणाम है। सामग्री

जुटाने और दौड़धूप करने में "जैन गजट" के प्रकाशक पण्डित बाबूलालजी शास्त्री का सहयोग अत्यन्त सराहनीय रहा।

अधिकतर सामग्री का संकलन तो इन्दौर से ही हुआ है। उसको जुटाने में भैयासाहब श्री राजकुमारसिंहजी, सेठ हीरालालजी साहब, स्वर्ण जयन्ती समारोह के स्वागताध्यक्ष सेठ भंवरलालजी सेठी, संस्थाओं के मन्त्री लाला हजारीलालजी, सेक्रेटरी बाबू बसन्तीलालजी कोरिया, श्री हुकुमचन्दजी पाटनी, श्री रतनलालजी सोनी और वयोवृद्ध वैद्यवर पण्डित ख्यालीरामजी द्विवेदी के नामों का उल्लेख कृतज्ञता के साथ किया जाना चाहिये। पूज्य गांधीजी और महामना मालवीयजी के साथ के पुराने चित्र द्विवेदीजी से ही प्राप्त हुये हैं। आप भी इन्दौर के सार्वजनिक धार्मिक जीवन के प्राण हैं। इन्दौर के श्री हरेन्द्रनाथ शर्मा और ग्वालियर के श्री ओमप्रकाश शास्त्री की सहायता का उल्लेख करना आवश्यक है। जिन चित्रों से इस ग्रंथ में जीवन डल सका है, उनको नया रूप देकर ग्रंथ के योग्य बनाने का श्रेय है इन्दौर के स्टडी स्टुडियो के मालिक श्री पाण्ड्या की मेहनत को। उनके हम हृदय से आभारी हैं। इन चित्रों में सेठ साहब के व्यापक जीवन की छाया देने का और संस्मरणों तथा श्रद्धांजलियों में आपके चरित्र को अंकित करने का जो प्रयत्न किया गया है, वह इस ग्रंथ की अपनी ही विशेषता है। अन्य ऐसे ग्रंथों में ऐसा नहीं किया गया है।

दिल्ली में ब्लाक बनाने में पंजाबी प्रेस, टाइम्स आफ इण्डिया प्रेस और सबसे बढ़कर दिगम्बर आर्ट काटेज का सराहनीय सहयोग रहा। मुद्रण में हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, जयन्ती प्रेस और न्यू इण्डिया प्रेस का सहयोग प्राप्त हुआ। इन सबका भी आभार मानना आवश्यक है। जिल्द बंधाई का श्रेय श्री सुरेश एण्ड कम्पनी को है, जिन्होंने सप्ताह से भी कम समय में जिल्द बंधाई करके चमत्कार कर दिखाया है। प्रूफ पढ़ने में दी गई सहायता के लिये हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस के श्री राममूर्ति अग्रवाल और न्यू इण्डिया प्रेस के पण्डित शान्तिस्वरूप वेदालंकार के भी हम आभारी हैं।

क्षमायाचना उन महानुभावों से है, जिनकी सामग्री का उपयोग हम कर नहीं सके। कुछ लेख तो अत्यधिक लम्बे, अस्पष्ट, पेन्सिल से लिखे होने के कारण काम में नहीं आ सके। समय की कमी के कारण पृष्ठ-संख्या बढ़ाकर भी बची हुई सामग्री का उपयोग कर सकना संभव नहीं हुआ। कुछ सामग्री तो ५-६ मई तक प्राप्त हुई है। ऐसे सब महानुभावों से एक बार फिर विनीत भाव से क्षमा-याचना है।

—सम्पादक समिति।

महासभा कार्यालय,
नई सड़क, दिल्ली
मंगलवार ८ मई १९५१

प्रकाशक की ओर से

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का गत पचास वर्ष का इतिहास अनेक पद्विभूषित महा-सम्मानित सर सेठ हुकमचंदजी साहब की महान् जातीय सेवाओं के साथ ऐसा जुड़ गया है कि दोनों में अन्तर कर सकना संभव नहीं रहा है। सेठ साहब ने जाति, समाज, धर्म और तीर्थों की सेवा का छोटा-बड़ा जो भी कार्य किया, वह इतने निःस्वार्थभाव से किया कि उसका सारा श्रेय आप सदा एकमात्र महासभा को ही देते रहे हैं। अपने व्यापक सार्वजनिक जीवन के कारण स्वयंमें एक सार्वजनिक संस्था होते हुए भी आप अपनी जातीय संस्था महासभा को सुदृढ़, सुसंगठित, प्रभावशाली और व्यापक बनाने में ही निरन्तर लगे रहे हैं। अपने पन्द्रह वर्षों के महामन्त्री काल में मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि आपकी महासभा के प्रति कैसी भावना, लगन और धुन है। मैं वर्षों में धर्म समाज की जो कुछ भी सेवा कर सका हूं, वह सब आपकी ही प्रेरणा और प्रोत्साहन का परिणाम है। इसलिए महासभा भी आपके प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिये समय-समय पर आपका सम्मान करती रही है। आपके हीरक जयन्ति महोत्सव पर महासभा ने आपको "जैनदिवाकर" की पदवी से सम्मानित कर अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया था। यह आवश्यक था कि इस अवसर पर भी, जब कि महासभा का इन्दौर में ही सुवर्ण-जयंति-महोत्सव हो रहा है सर सेठ साहब की विनीत सेवा में उसकी ओर से श्रद्धा तथा सम्मान की एक और अंजलि अर्पित की जाती।

प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ तय्यार करने के लिये समय बहुत ही थोड़ा था। परन्तु महासभा के सुवर्ण-जयंति-महोत्सव से अधिक उपयुक्त अवसर दूसरा हो नहीं सकता था। समाज के विशिष्ट नेताओं और महा-सभा की प्रबन्धकारिणी के अधिकांश सदस्यों का भी यही मत था। कम समय, अपर्याप्त साधन और सारी सामग्री जुटा सकना संभव न होते हुये भी डेढ़ मास में जो कुछ भी किया जा सकता था; किया गया। १४ मार्च को तो अजमेर में प्रबन्धकारिणी की बैठक में सम्पादक समिति गठित की गई। अर्थ समिति का गठन भी बहुत जल्दी में ही किया गया। सम्पादक समिति की केवल दो बैठकें हुईं। सम्पादक-समिति के सारे सदस्य उनमें पधार भी न सके। फिर भी हिंदी के यशस्वी लेखक और सुप्रसिद्ध पत्रकार 'अमर भारत' सम्पादक श्री सत्यदेवजी विद्यालंकार ने ग्रन्थ को तय्यार करने व सर्वांग सुन्दर बनाने में जो परिश्रम किया है, उसकी जितनी सराहना की जाय, कम है। आपने गत डेढ़ मास में कई दिनों तक अठारह-बीस घण्टे काम किया है। आपके श्रम का ही यह परिणाम है कि इतने कम समय में इतना बड़ा काम सम्भव हो सका है। इसी प्रकार 'श्रीयुत पं० सुमेरचन्दजी दिवाकर न्यायतीर्थ बी० ए० एल० एल० बी० ने सिवनी बैठे हुए भी चारों ओर से सामग्री जुटाने का विशेष श्रम किया है। स्याद्वादवारिधि विद्यावाचस्पति पण्डित खूबचन्द्रजी शास्त्री और पण्डित नाथूलालजी न्यायतीर्थ ने इन्दौर से, पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री ने बनारस से और 'जैन गजट' के सम्पादक पं० इन्द्रलालजी शास्त्री ने जयपुर से पधार कर अपने समय, परामर्श और श्रम से विशेष लाभ पहुंचाया। दिल्ली के पं० अजितकुमारजी शास्त्री भी समय-समय पर उचित सहयोग और परामर्श बराबर देते रहे हैं।

मैं आप सभी के सहयोग के लिये आभारी हूं। अर्थ समिति के सदस्यों और अन्य सामग्री भेजने वालों का भी कृतज्ञ हूं। महासभा के आदरणीय सभापति महोदय सर सेठ भागचन्दजी सोनी निरन्तर अपने परामर्श से प्रोत्साहन देते रहे हैं और आपने दिल्ली पधारने का भी कष्ट उठाया। आपका भी मैं अत्यन्त आभारी हूं।

महासभा की यह विनीत भेंट सर सेठ साहब को स्वीकार हो। साथ ही श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि आपका संरक्षण उसको चिरकाल तक इसी प्रकार प्राप्त रहे।

—परसादीलाल पाटनी, महामन्त्री-महासभा

विषय-क्रम

परम पूज्य जगद्वंद्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य
शांतिसागरजी महाराज का शुभाशीर्वाद

हमें मालूम हुआ कि अखिल भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासभा अपने स्वर्ण जयन्ति महोत्सव समारम्भ पर श्रेष्ठिवर्य हुकमचन्द का विशेष सम्मान कर उन्हें अभिनंदन ग्रन्थ भेंट कर रही है, श्रेष्ठिवर्य हुकमचन्द ने जैन धर्म प्रभावना के लिये चातुर्थिक दान, मुनिसेवा और सद्धर्मबन्धु सेवा यथाविधि पूर्वक की है। ऐसे प्रभावना करने वाले सेठ सरीखे श्रीमान क्वचित ही मिलते हैं अतः उन्हें शुभाशीर्वाद देकर भावना करते हैं कि श्रेष्ठिवर्य हुकमचन्द की आत्मा स्वसंवेद्य गोचर पूर्ण होकर पुनीत होवे।

श्री १०८ नमिसागर जी महाराज और श्री १०८ धर्मसागर जी
महाराज के शुभाशीर्वाद

परमपूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागरजी महाराज का आशीर्वाद

समाज की सबसे प्राचीन और प्रख्यात संस्था अपनी 'स्वर्णजयन्ति' के अवसर पर आपको अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण कर रही है, यह जानकर सन्तोष हुआ। आपने अब तक अनेक प्रकार से धर्म की सेवा की है। धर्मात्मा प्राणियों का गौरव बढ़े। यह बात स्वाभाविक है। 'न धर्मो धार्मिकैः बिना' अर्थात धर्मात्माओं के बिना धर्म नहीं रह सकता। इसलिये धार्मिक सज्जनों के गौरव से ही धर्म का भी गौरव बढ़ता है। आप भी धर्मपालन से अपनी आत्मा को निरन्तर उन्नत बनाते जाओ, यही सब कर्तव्य का सार है। धर्म कार्य करने वाले धर्मात्माओं के लिये हमारा आशीर्वाद सदैव है।

परमपूज्य आचार्य श्री १०८ नमिसागरजी महाराज का आशीर्वाद

"सांसारिक भोग-सामग्री जीव ने पुण्य से प्राप्त की है। परन्तु भोग ने उसको भोग किया यह भोग को भोग सका नहीं।" वैसे अनेक सांसारिक पदवी से जीवों ने आपको विभूषित किया है। परन्तु वह सब आत्म कल्याण रूप नहीं है। मैं तो आपको अत्यरूप भाव-मुनि बन कर अजर-अमर पदवी प्राप्त करके सादि-अनंत काल तक अबाधित सुख भोगो—ऐसा आशीर्वाद भेजता हूँ।"

सन् १९२५ में श्रवणबेलगोला में महमास्तकाभिषेक के अवसर पर दर्शन करते हुए श्रीमंत मैसूर नरेश, युवराज और सर सेठ भागचंद जी सोनी के साथ श्रीमंत सर सेठ साहब।

सन् १९४० में श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक के शुभ अवसर पर सेठ साहब और भैया साहब राजकुमारसिंहजी के साथ श्रीमंत मैसूर नरेश।

सीकर बिम्बप्रतिष्ठा पर सीकर समाज की ओर से दिए गए मान पत्र के उत्तर में सर सेठ साहब भाषण देते हुए ।

जयपुर शास्त्र भंडार के सचित्र यशोधर चरित्र का एक दृश्य।

श्री विधीचंद जी गंगवाल के मंदिर का संगमरमर का एक कलापूर्ण स्तम्भ ।

११ वीं शताब्दि में जिज्जा जैन का बनवाया हुआ चित्तौड़गढ़ का कीर्तिस्तम्भ ।

१
जीवन परिचय

विशिष्ट पुरुषों के जीवन और व्यक्तित्व का अध्ययन दूर से नहीं, समीप से ही किया जा सकता है। मेरी यह इच्छा थी कि सेठ साहब का यह 'जीवन- परिचय' भी उनके समीप बैठ कर उनके व्यक्तित्व का अध्ययन करके ही लिखा जाय। वैसा अवसर हाथ न लग सका। जून १६५० में इन्दौर जाने पर समाजसेवी भाई हुकमचन्दजी पाटनी ने मुझे पहिली बार इसके लिए प्रेरित किया था। उनकी ओर से फिर कोई कदम उठाया न जा सका। बाद में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा के महामन्त्री जैनजातिभूषण लाला परसादीलालजी पाटनी ने भी चर्चा की। महासभा के सुवर्ण-जयन्ती महोत्सव पर उसको प्रकाशित करने का आग्रह हुआ। मेरा कहना यही रहा कि सेठ साहब के समीप बैठ कर ही यह लिखा जाना चाहिये। बहुत कठिनाई से केवल पांच-छ: दिन का समय निकाला जा सका और वह भी मार्च के अन्तिम सप्ताह में। लेकिन, तब 'जीवनी' को अभिनन्दन ग्रन्थ का रूप दिया जा चुका था। इसलिए इन थोड़े से दिनों का भी अधिक समय अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए सामग्री जुटाने में निकल गया। सेठ साहब के व्यक्तित्व का अध्ययन तो क्या ही किया जा सकता था। फिर भी उसके लिए प्रयत्न किया गया। रात के बारह और एक बजे तक आपके पास बैठ कर चर्चा की गई। पर, उसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इसीलिए यह परिचय भी पूर्ण नहीं है।

सेठ साहब शतायु हों आप के सार्वजनिक अभिनन्दन का ऐसा ही अवसर हमें आपके शतायु होने पर भी प्राप्त हो। तब यदि इस कमी की पूर्ति की जा सके, तो बहुत अधिक उपयोगी होगा। राकफैलर, कार्नेगी और हेनरी फोर्ड के समान सेठ साहब के व्यापारीय जगत में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त व्यक्तित्व के अध्ययन पर भी ऐसे अनेक ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं, जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य में भी स्थायी स्थान मिल सकता है। अपने देशवासियों के लिए तो वे 'माइल स्टोन्स' की तरह अनन्त काल तक पथप्रदर्शक का काम दे सकते हैं। इसीलिये सेठ साहब के विशिष्ट व्यक्तित्व का सजीव चित्र हमारे साहित्य में अङ्कित किया ही जाना चाहिए। 'जीवन-परिचय' का यह प्रयास तो उसकी केवल भूमिका ही समझा जाना चाहिये।

सत्यदेव विद्यालंकार
लेखक – 'जीवन परिचय'

अनेक पद विभूषित श्रीमंत सर सेठ हुकमचंदजी साहब

: १ :

कायाकल्प

"मैं तीनों भाइयों में रत्न बनूँगा।"

इस पवित्र भावना से जो दृढ़ संकल्प सोलह वर्ष के युवक ने किया और उस पर वह जिस दृढ़ता के साथ अंगद की तरह स्थिर होगया, उसी का परिणाम अनेक पदविभूषित रावराजा श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी का वह विशिष्ट व्यक्तित्व है, जिसकी लोकोत्तर सफलतायें देशवासियों के लिये गूढ़ पहेली बनी हुई हैं और उस दिन तो वे महान् सफलतायें विश्वभर के व्यापारियों के लिये गूढ़ पहेली बनी हुई थीं, जब कि संसार के सारे बाजार उसके हाथों में खेला करते थे। भारतीय सभ्यता और भारतीय जीवन में व्यक्तिगत चरित्र-निर्माण को समस्त सफलताओं का आधार माना गया है। हमारे चरित्रनायक की जीवन-कहानी भी इसी सचाई की प्रबल और प्रत्यक्ष साक्षी है। उसका सूत्रपात सारे ही जीवन का कायाकल्प कर देनेवाली जिस अद्भुत घटना के साथ हुआ, वह कितनी शिक्षा-प्रद, कितनी मनोरंजक और कितनी स्फूर्तिदायक है ?

संसारी जीवों के लिये महापुरुषों के जीवन को अद्भुत बना देनेवाली ऐसी घटनायें प्रायः सभी के जीवन में घटती रहती हैं। अन्तर की जो पैनी दृष्टि उनको देख पाती है, वह जीवन का कायाकल्प कर जाती है। गौतम बुद्ध के जीवन का कायाकल्प करने वाले दृश्य हममें से कौन नहीं देखता ? कितने ही वृद्ध, रोगी और मृत व्यक्ति हम प्रायः देखते रहते हैं। परन्तु अपने अन्तर की पैनी दृष्टि से उन्हें देखनेवाला कौन है ? अन्यथा, हम सभी बुद्ध क्यों न बन जायं ? सोलहवर्षीय युवक हुकमचंद के हृदय में एक भावना और संकल्प तब पैदा हुआ था, जब उसने अपने अन्तर की पैनी दृष्टि से अपने अन्तर का सहसा ही अवलोकन कर लिया था। उसी दिन उसने ऊपर की ओर जो कदम उठाया था, वह उसके उस अलौकिक उत्कर्ष का कारण बन गया, जो सभी को स्तंभित किये हुये है। इन्दौर और ग्वालियर अथवा मालवा या मध्यभारत ही नहीं, किन्तु बाहर भी जहाँ भी कहीं सर सेठ साहब को जानने वाले किसी भी व्यक्ति से चर्चा कीजिये, वह सहसा ही यह कह उठेगा कि "इसमें संदेह नहीं कि सेठ साहब का जीवन महान और व्यक्तित्व अद्भुत है।" इन्दौर सरीखे एक छोटे से शहर में रहने-वाले सेठ साहब इतना नाम पैदा कर लेंगे, यह सोलह वर्ष की आयु में उनके जीवन के क्रम को देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। 'हावल्या कावल्या' कभी उनके परिवार का नाम पड़ गया था और इन्दौर का शहर भी कभी इसी नाम से "हावल्या कावल्या सेठ का इन्दौर" कहा जाने लग गया था। इन्दौर निवासियों की आज की पीढ़ी में कितनों ही ने अपनी यात्रा में यह अनुभव प्राप्त किया होगा कि उनके साथ के अपरिचित लोगों से उनका परिचय 'हावल्या कावल्या सेठ के इन्दौर' से अथवा 'उस इन्दौर' से ही हुआ है, जिसमें 'हावल्या कावल्या सेठ' रहते हैं।" उनकी स्वयं उपार्जित धन-संपत्ति और वैभव की उपेक्षा आज के साम्यवाद के युग में 'पूंजीवाद' के नाम से भले ही की जा सकती हो; किन्तु अपनी अंतर्दृष्टि जगाकर, अपने को आत्म-तत्त्व की साधना में लगा-

कर, मोक्ष की प्राप्ति करने का जो अटूट विश्वास उन्होंने अपने अंतर में पैदा किया है और जीवन के चतुर्थ भाग में पहुंचते ही साधनामय विरक्त जीवन को स्वेच्छा से अंगीकार करके उन्होंने जिस महान् आत्मिक सम्पदा का सम्पादन किया है, उसकी उपेक्षा भला कौन क्या कह कर कर सकता है ? पूंजीवाद को कोसने वाले भी इस तथ्य की उपेक्षा तो कदापि कर ही नहीं सकते कि उन्होंने अपनी अस्सी वर्ष से भी कुछ कम आयु में अस्सी लाख का वह सात्विक दान किया है, जिसका लाभ देश के सार्वजनिक जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों और सभी प्रदेशों को अनायास ही मिला है । "स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्" की कसौटी पर यदि इस महान जीवन की सफल कहानी की परख की जाय, तो कहना होगा कि अपने जन्म से सेठ साहब ने न केवल अपने वंश को समुन्नत किया है; किन्तु अपने धर्म, समाज, जाति तथा अपने नगर, राज्य और राष्ट्र का नाम भी समुज्वल किया है । इस महान और सफल जीवन का प्रारम्भ किस अद्भुत घटना के साथ हुआ ?

बहुत सम्भव सम्वत् १६४७ के दसहरे की बात है । अपने कुछ मित्रों सेठ फतेहचन्दजी और उनियारा के दीवान मांगीलालजी के लड़के श्री भंवरलालजी के साथ मेले से युवा हुकमचन्द लौट रहे थे । रास्ते में उनके यहां रुक गये । त्यौहार को मिठाई सामने लाकर रखी गई । भांग की कतली, चक्की या बरफी, जिसे माजूम कहते हैं, कोई आधा सेर सामने रखी गई होगी । उस सारी को अकेले ही हुकमचन्द उड़ा गये । साथी देखकर दंग रह गये । वे उनको घर तक पहुंचाने गये केवल इसलिये कि कहीं नशे का इतना जोर न हो जाय कि उनका वहां पहुंचना भी कठिन हो जाय । वे घर पहुँचे और मकान के ऊपर भी बिना किसी के सहारे ही पहुँच गये । रात्रि का सोने का समय था । एकाएक एक विचार पैदा हुआ । पत्नी को बुलाया गया । उसको साक्षी रखकर उसी नशे में सभी प्रकार के नशे के परित्याग का संकल्प किया गया, जीवन का नया कार्यक्रम बनाया गया और उसको पूरी दृढ़ता के साथ निभाया गया । उसका शुभ परिणाम आज सबके सामने है ।

जीवन का वह नया कार्यक्रम क्या था ? जीवन का आमूलचूल क्रान्तिकारी परिवर्तन था । इन दिनों में सेठ साहब का हृदय उस बालक के समान सर्वथा निर्दोष है, जो अपने दूषण को भी भूषण मानकर अपने माता-पिता के सम्मुख बिना किसी संकोच के सहज स्वभाव से स्वीकार कर लेता है और जिसकी मानसिक वृत्तियां इतनी शुद्ध और पवित्र हो जाती हैं कि वह हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के समान अपनी हिमालय की-सी भूलें भी स्वीकार करने में संकोच नहीं करता । यही आत्म-निरीक्षण उत्कर्ष की पहिली सीढ़ी है । इस अद्भुत घटना का वर्णन भी सेठ साहब ने स्वयं ही किया । आपने स्वयं ही बताया कि उन दिनों में आप प्रतिदिन आध सेर भांग छानते और उस पर भी एक तोला अफीम की गोली गले के नीचे उतार जाते थे । आहार, निद्रा और भोग-विलास के सिवाय जीवन का कोई प्रयोजन जान ही न पड़ता था । धन और यौवन की अटूट सम्पत्ति के साथ प्रभुत्व की मात्रा भी कुछ कम न थी, किन्तु 'अविवेक' अभी अपना साम्राज्य कायम न कर पाया था कि अन्तर की दृष्टि सहसा ही खुल गई । दिनभर मस्त होकर सोना ही सारे दिन का मुख्य काम था । सारी रात भी यों ही बीत जाती थी । सवेरे आठ से पहिले उठना न होता था । रात को १० बजे सेर भर दूध और उसमें पावभर घी, १२ बजे सेर डेढ़ सेर मिठाई, २ बजे फिर मिठाई का दूसरा दौर और ४ बजे कुछ और हाथ न लगता, तो दही की हंडिया पर ही हाथ साफ किया जाता । दिन में भी भोजन का यही क्रम रहता था । इस प्रकार आमोद-प्रमोद और भोगविलास में स्वच्छन्द बहने वाला युवक अतसुर्खीपतन की खाई के किनारे ही खड़ा था कि एकाएक संभल गया । उस घोर नशेके घोर अन्धकार में भी उसको दिव्य प्रकाश की एक किरण दीख गई और उसने उसको सहसा ही ऐसा पकड़ लिया कि जीवनभर आंखों से ओझल न होने दिया । उस नशे में ही उसके अन्तर्हृदय में एक ध्वनि पैदा हुई । उसने उससे कहा कि इस नशे

का परिणाम क्या होगा ? इस भांग के बाद सुरा और सुरबाला का क्रम शुरू हो सकता है। तब इस जीवन की क्या दुर्दशा होगी ? बस, इस अन्तर्ध्वनि की प्रेरणा हुई कि सारा जीवन ही बदल गया। अपनी पत्नी के सामने नशे का परित्याग करके जीवन का नया कार्यक्रम भी उपस्थित कर दिया गया। सबेरे पांच बजे उठना, स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर मन्दिरजी में जाकर शास्त्रजी पढ़ना, सेठजी के भोजन करने के बाद भोजन करके उनके साथ दूकान जाना, दूकान का बहीखाता स्वयं लिखना, शाम को सेठजी के बाद दूकान से उठना और उनके बाद भोजन करना, फिर दूकान का काम और रात को सबके बाद दूकान से उठना और स्वयं दूकान के बहीखाते संभाल कर दूकान बन्द करना। उसका पालन अक्षरशः किया गया। पिताजी और दोनों भाई इस परिवर्तन पर चकित रह गये। प्रारम्भ में उन्होंने समझा कि यह युवावस्था का दो दिन का उफान है। उनको भी क्या पता था कि यह सुषुप्तावस्था का स्वप्न नहीं किन्तु जागृत अवस्था का क्रान्तिकारी संकल्प है। दिनों के बाद सप्ताह और सप्ताहों के बाद मास बीतते गये,—युवक अपने व्रत को और भी अधिक दृढ़ता के साथ निबाहता चला गया। यह नया क्रम उसके जीवन का साधारण अंग बन गया। घर के बड़े लोग कभी कुछ पूछते, तो एक ही उत्तर होता कि "मुझे तीनों भाइयों में घर का रत्न बनना है।" सवेरे मन्दिरजी में शास्त्रजी पढ़ने की धूम-सी मच गई। जैसा स्वस्थ चेहरा-मोहरा और तन-बदन था, आवाज़ में वैसा ही माधुर्य एवं आकर्षण और हृदय में वैसी ही आस्तिकता एवं श्रद्धा थी। जनता खिचती चली गई और श्रोताओं की संख्या भी बढ़ने लगी। पांच-सात सौ स्त्री-पुरुष मन्दिरजी में प्रतिदिन एकत्रित होने लगे। सब ओर चर्चा होने लगी और बिना किसी आन्दोलन तथा विज्ञापन के ही चारों ओर प्रचार हो गया। इसी प्रकार दूकान के सारे बहीखाते तथा रोकड़ आदि का सारा काम भी स्वयं संभाल लिया। मुनीम और रोकड़िये ही नहीं, कभी कभी दुकान के जमादार भी खाली बैठे रह जाते। दुकान की झाड़-पोंछ भी स्वतः ही की जाने लगी। जीवन बदल गया। उत्कर्ष की ओर अग्रसर युवक का प्रत्येक पग प्रगति और उन्नति के मार्ग पर ही बढ़ता चला गया।

सेठ साहब का स्वयं यह कहना है कि उसी रात्रि में, उसी नशे में, उन्होंने नैतिकता का व्रत भी अंगीकार कर लिया और उसको सारे ही जीवन में इस दृढ़ता के साथ निभाया कि वे कभी किसी स्त्री का चित्र तक देख कर भी विचलित नहीं हुये। चरित्र की इस उत्कृष्टता का प्रमाण और क्या चाहिये कि सारे इन्दौर में उनके सम्बन्ध में चरित्र-सम्बन्धी एक भी अपवाद सुनने को नहीं मिलता है। अपितु हर किसी के मुंह पर उनके उत्कृष्ट एवं पवित्र जीवन की प्रशंसा है। गुलाब के फूल के साथ कांटे और चन्द्रमा में लगी कालिमा की तरह किस मानव-जीवन में कोई कमी, कमजोरी या निर्बलता नहीं है ? यह न हो, तो सभी मुनि या देवता न बन जांय और यह पृथ्वी ही स्वर्ग या इन्द्रपुरी न बन जाय। सेठ साहब के जीवन की अन्य कमजोरियों की चर्चा करने वाले भी उनके नैतिक जीवन में चरित्रसम्बन्धी किसी दोष की ओर अंगुली तक उठाने का साहस नहीं कर सकते। वे भी इसके लिये उनकी प्रशंसा ही करते सुने गये हैं।

चरित्र की इस पवित्रता और इच्छाशक्ति की इस दृढ़ता से सेठ साहब के जीवन में जो चमत्कार पैदा हुआ है, उसका वर्णन यथास्थान किया ही जायगा। फिर भी यहां उनके जीवन की एक विशेषता का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। सेठ साहब का मुख्य व्यापार कभी सट्टा ही था। वर्षों वे उसी में रमे रहे हैं और अनेक बार उन्होंने सट्टे के मैदान में एकाकी रह कर भी सबका सफलता के साथ मुकाबिला किया है। यह आशंका हर किसी को हो सकती है कि जो व्यक्ति सट्टे-फाटके में इतना अधिक रमा रहता था, वह धर्म-ध्यान के लिये कैसे कुछ समय निकाल सकता होगा। सटोरियों की धर्म-ध्यान में प्रवृत्ति होना यदि असम्भव नहीं, तो कठिन तो निश्चय ही है। एक बार सेठ साहब से भी यह प्रश्न पूछा गया। सेठ साहब ने सहज स्वभाव में हंसते हुए

उत्तर दिया कि बहुत छोटी अवस्था से ही मेरा यह स्वभाव रहा है कि जब भी कभी मैं किसी काम में लग गया, तब उसी में रम गया। प्रारम्भ से ही मुझे अपने पर और अपनी मानसिक वृत्तियों पर भी इतना अधिक नियन्त्रण रहा है कि मैंने जब चाहा, तब अपने को किसी भी काम में लगा लिया। जब मैं राग-रंग तथा शृङ्गार में लगता था, तब मुझे सट्टे-फाटके और धर्म-कर्म का कुछ भी ध्यान न रहता था और जब मैं सट्टे फाटके में लगता था, तब मैं धर्म-ध्यान और राग-रंग सभी कुछ भूल जाता था। इसी प्रकार जब मैं धर्म ध्यान में निमग्न होता था, तब मुझे सट्टे-फाटके या राग-रंग का कुछ भी पता न रहता था। "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" सूत्र में चित्त की वृत्तियों के जिस निरोध को योग कहा गया है, उसका खूब अच्छा अभ्यास जान पड़ता है कि सेठ साहब ने अपने व्यावहारिक जीवन में किया है। तभी तो उन्होंने जिस ओर से एक बार मुंह मोड़ लिया, उस ओर फिर कभी देखा भी नहीं। नशे का परित्याग कर जीवन को सर्वथा नवीन क्रम के ढांचे में ढालना साधारण काम नहीं था। सट्टा जब छोड़ा, तब उसके भाव तक मंगाने बंद कर दिये गये। चित्त की वृत्तियों और इन्द्रियों की वासना पर इतना कठोर नियन्त्रण कर सकना साधारण तो क्या, असाधारण मानव के लिये भी इतना सुगम नहीं है। आत्म साधना की यही पहिली सीढ़ी है, जिस पर सेठ साहब ने उस युवावस्था में पूरी दृढ़ता के साथ पग रखा था, जिसमें विचलित या पथभ्रष्ट होकर मानव शतमुखी पतन का शिकार प्रायः हो जाता है। चरित्र की इस पवित्रता और इच्छाशक्ति की इस दृढ़ता में ही सेठ साहब के सफल और महान जीवन का रहस्य छिपा हुआ है। इस पवित्रता और दृढ़ता का क्रमशः उत्तरोत्तर विकास निरन्तर ही होता गया है। इसीलिये सेठ साहब ने यह घोषणा अनेक बार की है कि "मैं कुत्ते की मौत मरना नहीं चाहता।" सन् १९४३ में इन्दौर में अष्टान्हिका पर्व के अवसर पर, जो प्रधानतः आप की दीर्घायु कामना के लिये ही किया गया था, आपने यहां तक कहा था कि "मैं अन्त समय पूरी सावधानी से बिताऊंगा और पण्डितमरण करूंगा!" मानो, सेठ साहब ने मृत्यु को भी अपने हुक्म में बाँध लिया हो। ऐसे महान कायाकल्प का परिणाम मृत्युंजय-पद की प्राप्ति होना ही चाहिये।

अपनी इस साधना से अपने महान जीवन का स्वयं सफल निर्माण कर चौथी ही पीढ़ी में अपने घर, नगर और देश की कीर्ति में चार चांद लगा देने का अपूर्व यश सम्पादन करने वाले दानवीर, जैन सम्राट्, तीर्थ-भक्त शिरोमणि, रायबहादुर, राज्यभूषण, रावराजा श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी साहब का जन्म संवत १९३१ की आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा को अत्यन्त शुभ घड़ी में हुआ। फलित ज्योतिष के अनुसार इस शुभ घड़ी में जन्म लेना जितना कल्याणकारी और मंगलकारी हो सकता है, उसकी सचाई का प्रतिपादक हमारे चरित्रनायक का महान सफल जीवन है। आपके जन्म के साथ ही घर की श्रीसमृद्धि अकल्पित और अप्रत्याशित ढंग से बढ़ने लगी। सम्वत १९३७ में छः वर्ष की छोटी-सी अबोध आयु में ही आपका नाम दूकान के नाम में सम्मिलित करके आपके पूज्य पिता सेठ सरूपचन्दजी ने अपने दोनों भाइयों सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचन्दजी की सम्मति और सहयोग से तीनों भाइयों का कारबार सेठ तिलोकचन्दजी हुकमचन्दजी के नाम से शुरु कर दिया। शुभ नाम का प्रभाव जन्म से भी कई गुना अधिक हुआ और शुक्ल पक्ष में होने वाले चांद की कलाओं के निरन्तर विकास की तरह दूकान का कारबार भी दिन दूना रात चौगुना बढ़ता चला गया। प्रगति का यह वेग तब चरम सीमा पर पहुंच गया, जब सेठ साहब ने सारा कारबार अपने हाथों में संभाला। इन्दौर का जो यह फर्म संवत १९३७ में १०-१२ लाख के आसामियों में गिना जाता था, सम्वत् १९५६ में उसकी प्रतिष्ठा २५-३० लाख पर पहुंच गई थी। सम्वत् १९४८ में तीनों भाइयों में पहिला बटवारा होने पर तीनों की पांती में पांच-पांच लाख रुपया आया था, तो १९५७ में दूसरा बटवारा होने पर फिर दस-दस लाख तीनों के हिस्से में आया और दस लाख की सेठ साहब की दूकान की साख के दस करोड़ की बनने में अधिक समय नहीं लगा। तब

कलकत्ता व बम्बई ही क्यों, लन्दन और वाशिंगटन के भाव भी आपके हाथों में खेला करते थे। विश्व के समस्त बाजारों में आपके नाम की धूम थी। आपकी 'लेवा बेची' पर बाजार उठता और गिरता था। यह कहावत चल पड़ी थी कि "आज का भाव तो ये है, कल का जाने हुकमचन्द।" मानो, बाजारों में भाव का उतार-चढ़ाव स्वतन्त्र गति से न होकर आपके ही हुक्म में बंधा हुआ था।

इन्दौर का महत्त्व

इन्दौर का उन दिनों में आपके ही कारण विशेष महत्त्व हो गया था। भौगोलिक दृष्टि से इन्दौर की स्थिति भारत के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण केन्द्रीय स्थान में है। अंग्रेजी काल में यदि इन्दौर, रतलाम, नागदा तथा उज्जैन देशी राज्यों के आधीन न होकर अंग्रेजी राज के अन्तर्गत होते, तो आश्चर्य नहीं कि इस प्रदेश का विकास एक प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र के रूप में हो गया होता और यह सारा भूभाग भी बम्बई, अहमदाबाद तथा कलकत्ता की तरह विकास पाकर अत्यन्त समृद्धिशाली बन गया होता। प्रकृति ने इस प्रदेश को अपनी प्राकृतिक सम्पदा से भरपूर किया है। प्राकृतिक निधि के इस अटूट खजाने को यदि आधुनिक विज्ञान का सहारा मिला होता, तो यह मालवा आधुनिक दृष्टि से भी मालामाल होगया होता। आज इस घोर अन्न-संकटमें भी महामालवका यह भाग्यशाली प्रदेश आत्मनिर्भर है और देश के अन्य भागों को भी वह बहुत बड़ी मात्रा में अनाज देने की क्षमता रखता है। इस प्रदेश की भूमि की उपजाऊ शक्ति अत्यन्त श्रेष्ठ मानी गई है। वह सोना उगलती है। बंकिम बाबू ने भारत माता के शस्यश्यामला स्वरूप का जो गुदगुदा देने वाला और गौरवमय वर्णन अपने क्रान्तिकारी गीत वन्देमातरम् में किया है, वह शब्द प्रति शब्द इस पर घटता है। प्रकृति के लाड़ले इस प्रदेश को यदि कहीं विज्ञान का भी लाड़ मिला होता, तब सोने में सुहागे की कहावत चरितार्थ हो गई होती। फिर भी इन्दौर नगरी पर यह कहावत आज भी चरितार्थ होती है। इन्दौर को बम्बई का एक छोटा सा प्रतिरूप या माडल कहा जा सकता है। उसका सराफा उसका कपड़े का बाजार उसकी विशाल सड़कें और उन पर बनी हुई सुन्दर दूकानें सहसा ही दर्शक को बम्बई की याद दिला देती हैं। उसके बाहरी क्षेत्रों में बनी हुई मिलों की ऊंची चिमनियों को जब शुभ्र आकाश में धुंआ फेंकते हुये नवागन्तुक दर्शक या यात्री देखता है, तब भी सहसा ही उसको कहीं बम्बई के आस-पास में पहुँचने की प्रतीति होने लगती है। तुकोगंज, संयोगितागंज आदि के शानदार बंगले मलाबार हिल के आस-पास की बस्ती का एकाएक अनुभव करा देते हैं।

इन्दौर का विकास

प्राय: बम्बई के ही पदचिन्हों पर इन्दौर का विकास होने का भी एक बड़ा इतिहास है। उसमें उन लोगों के साहस, धैर्य, एवं अध्यवसाय और भा ना, कल्पना तथा कठोर श्रम की वह स्फूर्तिदायक कहानी भी निहित है, जिन्होंने सारे देश के कोने-कोने में फैल कर न मालूम बम्बई जैसे कितने ही इन्दौर आबाद किये हैं। अपने देश के सुदूरपूर्व में हिमालय की चोटी पार करके दार्जिलिंग, उसकी तराई में कुरसियांग, सिलिगुड़ी तथा जलपाईगुड़ी सरीखे नगर, ब्रह्मपुत्रा को पार कर आसाम के घनघोर जंगलों में गोहाटी, शिलांग, मनीपुर, तिनसुखिया तथा डिब्रूगढ़ सरीखी बस्तियां, महानदी के उस पार पहुँच कर सर्वथा निर्जन उड़ीसा में छोटे-छोटे राज्य तथा बड़े-बड़े शहर ही नहीं, किन्तु जगत्विख्यात पुरीजी का मन्दिर और मध्यप्रदेश, खानदेश, महाराष्ट्र, हैदराबाद तथा उससे भी नीचे पहुंचकर दूर दक्षिण तक में छोटे-बड़े अनेक नगर जिन लोगों ने आबाद और समृद्ध किये हैं, उनकी साहसिकतापूर्ण जीवन कहानी न मालूम कब और कौन लिखेगा? इन्दौर भी उनकी ही निर्माण कला की एक अद्भुत रचना है। राजस्थान की वीर भूमि के रेगिस्तान में अपने विकास का उपयुक्त अवसर और अनुकूल स्थिति न पाकर उन्होंने देश के विभिन्न स्थानों में फैलना शुरू किया। तब न तो रेल थी,

न मोटरें और न यातायात के कोई अन्य ही साधन थे। ऊंटों पर जैसलमेर और मारवाड़ की मरुभूमि से उन्होंने निकलना शुरू किया। इसी के साथ लगे हुये शेखावाटी और बीकानेर से भी प्रवास का वह क्रम शुरू हुआ। निस्सन्देह, उनके पथ-प्रदर्शक वे राजपूत थे, जिन्होंने अर्थ के लिये नहीं, किन्तु राज्य के लिये और बाद में 'सेना' के लिये नैपाल, उड़ीसा, बर्मा तथा काबुल तक प्रवास किया था। इस प्रवास के साक्षी रूप चिन्ह आज भी यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलते हैं। जैन श्रमण संस्कृति का जिस समय यौवन काल था और जिस समय वह भारतीय संस्कृति के रूप में सारे देश मे व्यापक थी, उस समय के उसके भग्नावशेष ही तो आज भी उसकी व्यापकता की सबल साक्षी दे रहे हैं। सुदूर दक्षिण के मैसूर राज्य में गोमटेश्वर, उड़ीसा में भुवनेश्वर में खण्डगिरी-उदयगिरि, बिहारमें सम्मेदशिखर-पारसनाथ पर्वत, उत्तर प्रदेश में देवगढ़-खजराहा, राजस्थान में आबू के देलवाड़ा के जगत्प्रसिद्ध मन्दिर, मध्यभारत में बड़वानी तथा ग्वालियर के किले की ऐतिहासिक प्रतिमायें और सौराष्ट्र में गिरनारजी तथा शत्रुंजय पर्वत आदि उस सुवर्ण काल की छाया ही तो हैं, जब कि सारे देश को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने वाली श्रमण संस्कृति उस के कोने-कोने में छाई हुई थी। इसी प्रकार वैदिक काल, बौद्ध काल, मुगल काल, राजपूत काल तथा मराठा काल के भग्नावशेष भी उस काल के साक्षी रूप चिन्ह हैं। ऐसे ही चिन्ह कुछ दूसरे रूप में उन लोगों के भी उपलब्ध हैं, जिन्होंने अंग्रेजी काल से पहिले राजस्थान से प्रवास किया था। सारे देश में फैले हुये राजपूत राजपूताना से ही तो सर्वत्र गये हैं और वे यहाँ के सूर्यवंश और चन्द्रवंश की ही तो शाखा-उपशाखा हैं। मुर्शिदाबाद के जगत सेठ अमीचंद और उनके वंशधर भी तो मारवाड़ से ही प्रवास करके उधर जा बसे थे। निस्सन्देह, अंग्रेजी राज के अमन-चैन के दिनों में प्रवास की इस प्रवृत्ति को विशेष प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। राजस्थान मे से होकर जाने वाली रेल की लाइनें तब नहीं बनी थीं। उधर अहमदाबाद की ओर इधर खण्डवा की रेलवे लाइन जब बन चुकी थी, तब इन्दौर प्रवासियों के लिये स्वतः ही एक बड़ा पड़ाव या केन्द्र बन गया। आने-जाने वालों के लिये विश्राम लेने का यह एक बड़ा और प्रमुख स्थान था, जो मध्य-प्रान्त, बरार, खानदेश, महाराष्ट्र, हैदराबाद, दक्षिण तथा बम्बई को भी राजस्थान से मिलाता था। उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा-आसाम तथा बर्मा की ओर जाने वाले भी प्रायः इन्दौर होकर ही आया-जाया करते थे। इससे इन्दौर को जो महत्त्व मिला, उसीसे उसका आज का-सा निर्माण होकर उसको इतना अधिक गौरव भी प्राप्त हो गया। राजस्थानियों की व्यापार-व्यवसाय तथा उद्योग-धंधों में जो सहज प्रवृत्ति हुई, उससे देशवासी भलीभांति परिचित हैं। लेकिन, उनमें प्रवास करने, नयी बस्तियां बसाने और उनको समृद्ध बनाने की भी असाधारण प्रवृत्ति है। सारे देश को उनकी इस वृत्ति और प्रवृत्ति का समान रूप से असाधारण लाभ मिला है। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद तथा कानपुर आदि आधुनिक उद्योग-धंधों के केन्द्रों तथा व्यापार-व्यवसाय की मण्डियों को आबाद तथा समृद्ध करने का अधिकांश श्रेय राजस्थान के उन सुपूतों को ही है। देशव्यापी निर्माण के इस इतिहास का एक शानदार अध्याय इन्दौर में लिखा गया है।

चरित्रनायक के पूर्वज

इन्दौर के इस शानदार इतिहास का निर्माण करने में हमारे चरित्रनायक के पूर्वजों ने भी अपना हिस्सा पूरी शान के साथ अदा किया है। इस दृष्टि से अपने चरित्रनायक को तो हम वर्तमान इन्दौर ही नहीं, अपितु वर्तमान मालवा का भी निर्माता कह सकते हैं। उनके पूर्वज चार ही पीढ़ी पहले यहां आये थे। सम्वत् १८४४ (सन् १७८७) में मारवाड़ के लाडनूं प्रदेश के मेंडसिल गांव से सेठ पूसाजी ने अपने दोनों पुत्रों श्री श्यामाजी तथा श्री कुशलाजी के साथ प्रवास किया और धनधान्य से पूरित मालवा के समृद्ध कस्बे में आकर वे बस गये। मारवाड़ में आपका प्रधानतः लेनदेन का ही काम था। इस वर्ष वर्षा न होने से यह काम भी चलना कठिन होगया।

भयंकर अकाल के कारण आपको भी प्रवास करना पड़ गया। लगभग पौने दो सौ वर्ष पहले के इन्दौर को आज की तुलना में कस्बा ही कहना चाहिये। होलकर राज्य की राजधानी तब महेश्वर थी। उस समय उस कस्बे की आबादी पांच-सात हजार से अधिक न होगी। ये बाजार, सड़कें, दूकानें और कोठियां तो होती ही कहां थीं? जिसे आज की राजधानी में 'जूनी इन्दौर' कहा जाता है, तब उतना ही उसका आबाद हिस्सा था। होलकर राज्य के जन्म की कहानी भी साढ़े तीन सौ वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। मध्य भारत में होलकर, सिंधिया, धार, देवास आदि मराठा राज्यों का जन्म मराठों के उस उत्कर्ष काल में हुआ है, जब कि वे उत्तर में पानीपत तक जा पहुँचे थे। होलकर राज्य के संस्थापक वीर प्रतापी श्री मल्हार-राव होलकर का जन्म सन् १६६४ में हुआ था। पुण्यभागा महारानी अहिल्याबाई ने अपने शासन काल (सन् १७२६–१७६०) में इस राज्य को सुख वैभव तथा ऐश्वर्य की चरम सीमा पर पहुँचा दिया था। इन्दौर के विकास का श्रीगणेश नगर के रूप में इन्हीं के काल में हुआ। सन् १७६६ के अगस्त मास में ७० वर्ष की आयु में महेश्वर में अहिल्या महारानी देवलोक को सिधार गईं। उनके स्वर्गवास के बाईस वर्ष बाद सम्वत १६७२ (सन् १८१८) में महेश्वर से राजधानी इन्दौर लाई गई और उसका भाग्य चमक उठा। सेठ पूसाजी को इन्दौर आये तब इकतालीस वर्ष हो चुके थे। कहना न होगा कि इन्दौर के भाग्यों के साथ सेठ पूसाजी का भाग्य भी चमक उठा। इसे भाग्य का खेल कहें या सेठ पूसाजी की दूर दृष्टि, जो भी हो, अत्यन्त शुभ घड़ी में वे इन्दौर आ बसे थे। इन्दौर की आबादी पांच गुना बढ़कर २०-२५ हजार पर पहुँच गयी थी। सर्राफे का काम अच्छे पैमाने पर शुरू हो गया था। इन्दौर का अपना हाली रुपया चलता था और सर्राफे में तोड़ा मोहर चलती थी। मुख्य दूकानें १५-२० से अधिक नहीं थीं। इन्दौर की विशेष प्रगति महाराज तुकोजीराव द्वितीय के शासनकाल में हुई। आबादी साढ़े पांच लाख पर पहुँच गई। शिक्षा का विशेष रूप से विस्तार हुआ। उद्योग-धन्धों तथा व्यापार-व्यवसाय की भी उन्नति हुई। व्यापारियों को निजी कारबार के लिये भी आर्थिक सहायता दी जाती थी। किसी भी साहूकार का दिवाला पिटना राज्य की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझा जाता था। ग्यारह पंच नाम की व्यापारिक संस्था की स्थापना उन्हीं दिनों में हुई थी और उसको अनेक अधिकार भी प्रदान किये गये थे। १८६७ में महाराजा साहब की ही प्रेरणा से पन्द्रह लाख की पूंजी से स्टेट मिल चालू की गई थी। इसी का नाम इस समय "रायबहादुर मिल" है। १८६४ से राज्य में रेलवे का निर्माण आपकी प्रेरणा से किया गया। राज्य में पंचायतों का जाल बिछा कर मुखियाओं को न्याय करने के अधिकार दिये गये। इन्दौर नगर और राज्य की इस प्रगतिशील और उन्नतिशील पृष्ठभूमि में हमें सेठ पूसाजी के होनहार परिवार के महान उत्कर्ष की उज्ज्वल कहानी पढ़नी चाहिये।

पूसाजी का परिवार

सेठ पूसाजी का परिवार धन-धान्य से ही नहीं, किन्तु पुत्र-कलत्र आदि से भी खूब समृद्ध और सम्पन्न हुआ। उनको किसी भी बात की कमी न रही। उनके पुत्र कुशलाजी के घर में गुलजीशा गम्भीरमलजी, नन्द-रामजी, लखमीचन्दजी आदि ने जन्म लिया। दूसरे पुत्र श्यामाजी के परिवार में हमारे चरित्रनायक का जन्म हुआ। इसलिये उसी का परिचय यहां विशेष रूप से दिया जा रहा है। सेठ श्यामाजी के सेठ मानिकचन्दजी, सेठ लेखरामजी और सेठ नाथूरामजी नाम के तीन पुत्र हुये। इनमें पिछले दो के कोई सन्तान न हुई, किन्तु पहिले के पांच पुत्ररत्न हुये, जिनके नाम थे सेठ मगनीरामजी, सेठ सरूपचन्दजी, सेठ मन्नालालजी, सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचन्दजी। दो लड़कियां भी उनके हुईं। तीसरे पुत्र मन्नालालजी का छोटी आयु में ही देहान्त हो गया। सेठ मगनीरामजी के कोई सन्तान न हुई। फिर भी उन्होंने साहूकारे का काम १६०७ में शुरू किया और उसके लिये पिताजी की अनुमति से "सेठ मानिकचन्द मगनीराम" नाम से दूकान कायम की।

उस समय मालवा में अफीम के व्यापार का जोर था। अन्य सारे व्यापार उसके सामने सर्वथा गौण माने जाते थे। हाजिर अफीम का सौदा होता था। किसान कच्ची अफीम लाते और व्यापारी उसको तयार करवा कर उनकी गोठियां बनवाते थे। मजदूरों को भी खूब काम मिल जाता था और वे कमाते भी खूब थे। गोठियों से ही पक्की पेटियां बांधी जाती थीं, पक्के पौने दो मन की एक पेटी होती थी। यहां से ये पेटियां बम्बई भेजी जाती थीं और बम्बई से इनको जहाजों पर लाद कर चीन भेजा जाता था। बम्बई और चीन में भाव कई गुना अधिक होते थे। इसीलिये इन्दौर के व्यापारी सहज में मालामाल होने लगे। चीन में ही भारत की अफीम की अधिकतर खपत थी। चीनियों को अफीम का जो व्यसन था, वह जगत् प्रसिद्ध था। अंग्रेजों पर यह दोषारोपण किया जाता था कि उन्होंने अपने स्वार्थ के लिये चीन को अफीमची बनाया। सेठ माणिकचन्द मगनीराम की दूकान पर साहूकारे के साथ-साथ अफीम का भी काम शुरू किया गया। व्यापार में दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती चली गई। दूकान का नाम बाहर देसावरों में भी मशहूर हो गया। उसकी साख जमती चली गई। सचाई का भी सिक्का जम गया। पुण्य का उदय हुआ। भाग्य तो अनुकूल था ही। तेरह वर्षों में १९२० सम्वत् में दूकान की गणना लखपतियों में की जाने लगी। १९२२ में व्यापार की इस चढ़ती कला में सेठ माणिकचन्दजी का स्वर्गवास हो गया और उनके सात वर्ष बाद संवत १९२९ में सेठ मगनीरामजी भी परलोक सिधार गये। दूकान का काम सेठ गंभीरमलजी पीपल्यावालों की पांती में व्यवस्थित रूप से चलता रहा। परन्तु दूकान का नाम बदल कर सेठ गम्भीरमल तिलोकचन्द कर दिया गया। तीनों भाई सेठ सरूपचन्दजी, सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचन्दजी इसी दूकान पर काम करते रहे और व्यापार व्यवसाय का अनुभव प्राप्त करते हुये उसमें दक्ष होते रहे।

पिताजी

सेठ सरूपचन्दजी तीक्ष्ण बुद्धि वाले थे। व्यापार-व्यवसाय में आपका दिमाग खूब चलता था। अपनी प्रखर बुद्धि के कारण व्यापार के रुख की परख करने में आप पारखी माने जाते थे। स्वभाव से बहुत अच्छे, उदार मना, धर्मात्मा, स्वाध्यायशील और नित्य नेम नियमपूर्वक निभाने वाले थे। स्वास्थ्य भी आपका बहुत अच्छा था। शरीर विशाल, उन्नत ललाट और मुख पर कान्ति चमकती थी। धर्म-पुण्य अपनी हैसियत के अनुसार करने में कभी भी संकोच नहीं करते थे। धर्म में अटल श्रद्धा थी। इसीलिये जात-बिरादरी में सम्मान व प्रतिष्ठा भी खूब थी। तीनों भाइयों में आपस में आदर्श प्रेम था। तीनों भाई एक दूसरे के परामर्श से सारा कामकाज संभालते थे। दोनों भाई सेठ सरूपचन्दजी का विशेष सम्मान करते थे। उनकी प्रखर बुद्धि व्यापार की खूब ही चमक उठी। परिश्रम, लगन, तत्परता और सत्य निष्ठा के कारण आपने सहसा ही अच्छा नाम पैदा कर लिया। पंचों में आप मुखिया माने जाने लगे। उस समय जैन पंचायत की चार तड़ें थीं और चारों ही अपने स्वाभिमान की रक्षा में तत्पर थीं।

हमारे चरित्रनायक को अपने पूज्य पिता के अनुरूप ही सब कुछ प्राप्त हुआ। अपितु सत पात्र को पा कर ये सब दिव्य गुण पूर्णता की चरम सीमा को पहुँच गये। वैसे ही विशाल तन, उदार मन और विपुल धन-सम्पदा की प्राप्ति पितृजन्य संस्कारों का ही तो परिणाम है। उन्नत भाल, कान्तिमय चेहरा, राजसी स्वरूप, धार्मिक वृत्ति, उदार चित्त, धर्म-पुण्य में श्रद्धा और नित्य नेम वा अनुष्ठान तथा जात-बिरादरी में ही क्यों, राजपद एवं जनपद में भी एक सी प्रतिष्ठा के जो अंकुर पितृजन्य संस्कारों के कारण हमारे चरित्र-नायक के सफल और महान जीवन में प्रस्फुटित हुये, वे कालान्तर में वट बीज से उगने वाले विशाल वृक्ष की तरह स्वत: ही सब ओर फैलते चले गये।

सेठ सरूपचन्दजी का शुभ विवाह सोनकच्छ में सेठ सरूपचन्दजी शिवलालजी के यहां हुआ था।

धर्मपरायणा धर्मपत्नी का नाम था जबरीबाई। आप भी पति के ही समान नित्य नेम पालने वाली, धार्मिक वृत्ति की सुशीला महिला थीं। उनका जीवन सादा और विचार ऊंचे थे। उस समय की परिस्थिति में परम सन्तोष मान कर वे घर का सारा कामकाज स्वयं ही करती थीं। उसी में वे महान आनन्द अनुभव करती थीं। वन को भी राजमहल बना देने वाली गृह कार्य में दक्ष पतिपरायणा पत्नी को पाकर सेठ सरूपचन्दजी अपने को कृतार्थ मानते थे। पितृजन्य संस्कारों का अंकुर अनुरूप माता को पाकर वैसे ही खिल उठा, जैसे कि उर्वरा भूमि में पड़ा हुआ बीज सहसा ही दृढ़ जड़ पकड़ लेता है और फल-फूल से लदे हुये पेड़ को जन्म देने का निमित्त बन जाता है। अनेक विद्वानों का यह अभिमत है कि माता के स्वभाव का परिणाम पुत्र में प्रस्फुटित होता है। माता पुत्र को जैसा बना देती है, वैसा ही वह बन जाता है। बच्चे की पहिली शिक्षक माता की मानी गई है। उसकी कोख और गोद के ढांचों में ही तो उसका चरित्र ढाला जाता है। इसीलिये पूर्ण पुरुष बनने के लिये माता, पिता और आचार्य के रूप में तीन गुरु उसको मिलने ही चाहिये। वह बड़ा ही भाग्यवान होता है, जिसको ये तीन शिक्षक मिल जाते हैं। संसार के महान पराक्रमी नेपोलियन और इस युग के जगद्वन्द्य महात्मा गान्धी इसी कारण माता की प्रशंसा करते अघाते न थे। धर्मशास्त्रों में सौ आचार्यों को एक पिता के समान और सौ पिताओं को एक माता के समान माना गया है। एक माता एक हजार आचार्यों के समान समझी जानी चाहिये। हमारे चरित्रनायक इस दृष्टि से विशेष भाग्यवान समझे जाने चाहियें। उनके महान और सफल जीवन का अंकुर जिस माता की गोद में प्रस्फुटित हुआ, वह भी धन्य थीं। माता ऐसे पुत्र को पाकर सचमुच ही धन्य हो जाती है, जो अकेला चन्द्रमा के समान सारी रजनी का अन्धकार हर लेता है। उस अंधकार को हरने में सर्वदा असमर्थ ताराओं के-से अनेक पुत्रों को जन्म देने पर भी उसको सन्तोष नहीं मिल सकता। सर सेठ साहब के चरित्र और जीवन को सहज में ही चन्द्रमा से उपमा दी जा सकती है।

चरित्रनायक का जन्म

भाग्यशीला सौभाग्यशालिनी माता जबरीबाई दौलतबारिया बाजार की हवेली मे संवत् १९३१ की आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा को चन्द्रसमान पुत्ररत्न को जन्म देकर धन्यभाग होगई। ईस्वी सन् के अनुसार १८७४ के जुलाई मास की १४ तारीख का मंगलवार का वह दिन है। तीनों भाइयों के बड़े परिवार में पहिले पुत्र की प्राप्ति पर जो अपार हर्ष मनाया गया, उसकी कल्पना सहज में की जा सकती है। वह उनके लिये सचमुच ही अनमोल रत्न था। उसकी प्राप्ति पर घरकी निराशा का सारा अन्धकार दूर हो गया। माता-पिता की चिर अभिलाषा पूर्ण हुई। शुभ वश सम्पन्न पुत्र की प्राप्ति के लिये भगवत प्रीत्यर्थ किया जाने वाला दान पुण्य सफल हो गया। घर में ही नहीं, पास-पड़ौस के घरों में भी आनन्द मनाया गया। चारों ओर बधाइयाँ बांटी गई। याचकों को दान दिया गया। पूत के लक्षण पालने में दीख पड़ने वाली कहावत उस पर चरितार्थ होती देखकर हर कोई उसकी सराहना करता। ज्योतिषियों ने भी बालक की जन्म कुण्डली देखकर अनुकूल ग्रहों के जबरदस्त योग बताये। चन्द्र और बुध को लाभ में, शुक्र को पराक्रम में, शनि को पंचम भवन में और गुरु को लग्न में देख-कर वे भी चकित रह गये। उन्होंने यह भविष्यवाणी की कि यह बालक बड़ा ही प्रतापी, पराक्रमी, यशस्वी, दानी, नीरोग, स्वस्थ, सबका हित चाहनेवाला और अटूट धन-वैभव का स्वामी होगा।
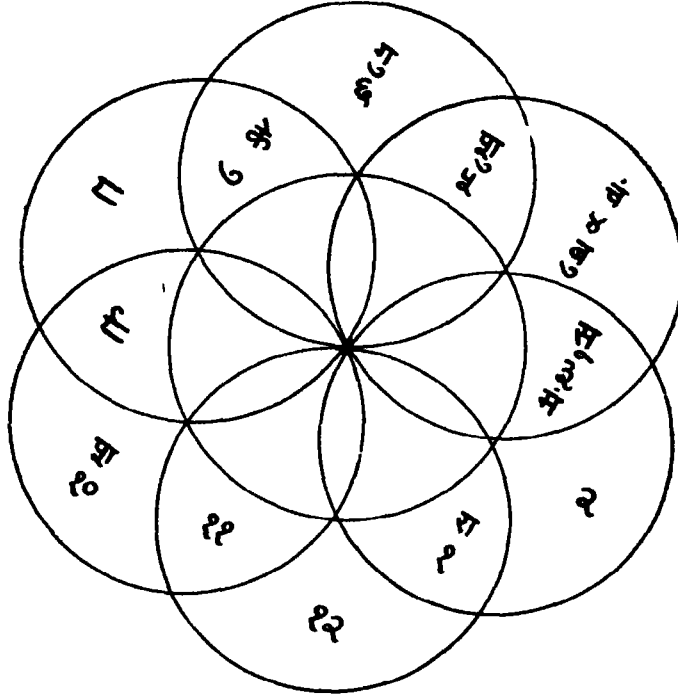
ज्योतिष विद्या के प्रकाण्ड पण्डित भारतविख्यात ज्योतिषी श्री सुधाकरजी की बनाई हुई यह जन्म कुण्डली है। अपना अभिमत प्रकट करते हुये उन्होंने लिखा था कि "स्वस्ति श्रीविक्रमसंवत्सरे चन्द्रलोकनवनिशाकरसंमिते १९३१ शालिवाहनशाके रसनिधिनगभूमिते १७९६ द्वितीयाषाढशुक्लप्रतिपदिभौमे सौरसिद्धान्तानुसारेण तत्स्फुटघट्यादिमानम् २७।२८ पुष्यभे ६०।० हर्षणायोगे १७।१६ तात्कालिके बवनामकरणे मार्तण्डमण्डलार्धोदयाद्दिनावनात्मकस्फुटेष्टघटिकासु सार्ष्टत्रिंशद्विपलसप्तदशपलाधिकषोडशघटिकासु १६।१७।३८ इन्दौरनगरे (यत्र यमद्विकाः पलभागाः २२।४४ स्फुटपलभा ५।२ पलकर्णः १३।१ मध्यरेखातः स्फुटा देशान्तरनाडिकाः ०।३ पश्चिमः। वराणसीतो देशान्तरनाडिकाः १।१२ पश्चिमः। चरखण्डानि ५१।४१।१७ मेषादिषण्णां राशिनामुदयमानानि २२७ मे० । २५८ वृ० । ३०६ मि० । ३४० क० । ३४० सिं० । ३२१ क० ॥) श्रीमत्स्वरूपचन्द्रमहाशयानां पाणिगृहीती जायोभयकुलानन्ददायि पुत्ररत्नमजीजनज्जन्मदिने इन्दौरनगरे स्फुटं दिनमानम् ३२।५८ । रात्रिमानम् २७।२ जन्मसमये सूर्यसिद्धान्तानुसारेण पुष्यभस्य व्यतीतं घटिकादि १७।२८ तस्य सर्वघटीमानं च ६३।४६ सौरा अयनभागाः २०।३७।३४ ग्रहलाघवीया अयनभागाश्च २२।३२।१५ घट्यादिपूर्वं तत्कालमानम् ०।११।२२ वेधोपलब्धा अयनभागाः २१।५५।१९ स्पष्टलग्नम् ५।२७।१२।७ दशमलग्नम् २।२९।२७।१३ जन्मसमये शनेर्दशाया भोग्यमानम् १३।९।१६।२५।९ वर्ष्यादिकम् धान्यादशाया भोग्य मानम् वर्षादिकम् २।२।४।१०।१८ ।

अथ सौरोक्त स्पष्टग्रहाः—

	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा	के
२	३	२	३	५	४	९	०	६
२९	६	२६	९	४	५	१८	११	११
२३	५९	३९	११	३२	५६	२५	३०	३०
३४	९	५४	३९	५०	२३	५४	२०	२०
५६	७५२	४०	३२	८	७०	४	३	३
५२	४४	००	४२ व	८	३०	५१ व	११	११

सेठ सरूपचन्दजी के घर में जन्म लेने वाले भाग्यशाली बालक के पदार्पण के साथ ही घर का भाग्य भी पलट गया। उस समय उस घर की जो स्थिति हुई, उसको देखकर सहसा ही धन्यकुमार के पवित्र जीवन की पुण्यमयी कहानी याद आ जाती है। धन्यकुमार के जन्म से जैसे उसके पिता धनपाल का नाम सार्थक हो गया था, वैसे ही बालक हुकमचन्द के जन्म से सेठ सरूपचन्दजी का घराना वास्तव में ही सेठों का घराना बन गया। धनपाल के सात पुत्र होने पर भी जब आठवें पुत्र धन्यकुमार का जन्म हुआ, तो माता-पिता के हर्ष का पारावार न रहा। उनको विशेष पुण्यदान करते देखकर उसके अन्य भाइयों को ईर्ष्या हुई। पर, वे यह देखकर स्तम्भित रह गये कि जहां भी कहीं बालक धन्यकुमार की नाल गाड़ने के लिये जमीन खोदी जाती थी, वहां ही धनदौलत का खजाना प्रगट हो जाता था। मानो, शिशु के पुण्य प्रताप से सारी ही भूमि धनमय हो गई थी। धनपाल ने उस धनसंपदा का मालिक राजा को मान कर वह खजाना उज्जैन लेजाकर उसको सौंप दिया। राजा ने उसको उनके पुत्र का पुण्य मान कर उनको ही लौटा दिया। भाइयों की ईर्ष्या शान्त न होकर और भी बढ़ने लगी। भाइयों ने पिता से सबके पुण्य की परीक्षा करने के लिये आग्रह किया और कसौटी यह रखी गई कि अपना-अपना व्यापार करके कौन अधिक धन कमा कर लाता है। सबको सात-सात दीनारें दे दी गईं। पर, धन्यकुमार व्यापार करना नहीं जानता था। पिता से व्यापार करने का तरीका पूछ कर वह भी क्रय-विक्रय करने में लग गया। सरलता, सत्यता, सादगी तथा निष्कपट व्यवहार ने भाग्य का साथ दिया। अन्त में जले हुये पलंग के पाये भी प्रभूत धनराशि देने वाले सिद्ध हुये। कहना न होगा कि सेठ सरूपचन्द के घर में भी भाग्य और पुण्य का

उदय इसी प्रकार बालक हुकमचन्द के जन्म से हुआ। सारी उपमायें सर्वांश में नहीं घटाई जातीं। सेठ सरूपचन्द का घर कभी भी ईर्ष्या-द्वेष का अखाड़ा तो नहीं बना, परन्तु बालक हुकमचन्द ने बड़े होकर जब व्यापार-व्यवसाय में हाथ डाला, तब लक्ष्मी की चारों ही ओर से वर्षा होने लग गई। मानो धन्यकुमार का भाग्य तथा पुण्य लेकर ही बालक हुकमचन्द ने जन्म लिया।

बचपन और शिक्षा

शिक्षा का प्रसार और प्रबन्ध यद्यपि उस समय आधुनिक ढंग का नहीं था; फिर भी बालक हुकमचन्द की शिक्षा की चिन्ता तीनों ही भाइयों को थी। तीनों की अकेली संतान होने से सबकी आशाओं का वह केन्द्र था। इसी लिये उस होनहार बालक को सुशिक्षित बनाना सभी अपना कर्तव्य मानते थे। बालक तीव्र बुद्धि था। स्मरण शक्ति भी अच्छी थी। प्रतिभा भी प्रखर थी। दीतवारिया बाजार में गुरु चिम्मनलालजी की एक पाठशाला थी। वे बच्चों को बड़े प्यार से पढ़ाते थे। इन्हीं को बालक का पहिला गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बालक ने सहसा ही अक्षराभ्यास का पहिला पाठ पूरा कर लिया। गुरुजी बहुत प्रसन्न हुये। इस प्रारम्भिक शाला की पढ़ाई पूरी करने के बाद बालक को गुरु मोहनलाल की पाठशाला में भेजा गया। उस समय उसकी आयु थी केवल पांच वर्ष। गुरु मोहनलाल सात्विक वृत्ति के अधेड़ आयु के ब्राह्मण थे। आयु थी लगभग ४०-४५ वर्ष। बच्चों का अक्षराभ्यास करा कर व्यापारी हिसाब-किताब सिखा देना उनके विद्यालय का काम था। पचास के लगभग बालक उस समय उस विद्यालय में पढ़ते थे। उस समय की फीस आज उपहासास्पद प्रतीत होती है। एक से दस तक पहाड़े याद करा देने की फीस थी केवल चार आना और एक सीधा। लगभग आठ दिन में बालक उनको याद कर लेता था और फीस लाकर घर से दे दिया करता था। पूनम और अमावस को भी सीधा दिया जाता था। जीवन-निर्वाह के योग्य शिक्षा दी जाती थी और जीवन-निर्वाह के योग्य ही फीस ली जाती थी। कितना सरल ब्राह्मणोचित व्यवहार था? आज सब उलटा ही व्यवहार है। न तो शिक्षा जीवनोपयोगी है और न फीस व खर्च की ही कोई सीमा है। आधुनिक शिक्षा का जीवन के साथ प्रायः कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। पहिले चौदह मास में बालक दूकानदारी सँभालने के योग्य बना दिया जाता था। परन्तु अब चौदह वर्ष में भी वह क्या कुछ सीख सकता है? हमारे चरित्रनायक ने एक बार ठीक ही कहा था कि "एक ओर बी०ए० एम०ए० शिक्षितों की पंक्ति खड़ी कर दो और उन सबको मिला कर एक हुकमचन्द तो बना दो।" आज की शिक्षा हुकमचन्द बनाने वाली है ही नहीं। न वह सर्वसुलभ है और न सर्वोपयोगी ही। अत्यन्त प्राचीन ढंग पर बालक हुकमचन्द की पढ़ाई गुरु मोहनलालजी के यहां होती रही। खाताबही लिखना और व्यावहारिक हिसाब-किताब में कुशलता सम्पादन कर के मानो हुकमचन्द गुरुजी की चटशाला के स्नातक बन गये। उस समय यही उच्च शिक्षा उपलब्ध थी और उस समय की दुकानदारी के लिये इससे अधिक की आवश्यकता अनुभव भी नहीं की जाती थी।

स्नातकोत्तर शिक्षा उस समय की थी महाजनी का अभ्यास, जो कि दूकान में ही कराया जाने लगा। बुद्धि आपकी अत्यन्त कुशाग्र थी। किसी भी बात को बात की बात में सीख लेना आपके लिये अत्यन्त आसान था। आपके सहपाठी स्वर्गीय हीरालालजी कहा करते थे कि सेठ साहब पढ़ने में बहुत ही तेज थे और सबसे पहिले पहाड़ा याद करके गुरुजी को सुना दिया करते थे। अन्य लड़कों को बहुत समय लगता था। इसीलिये जहां अन्य बालकों को फटकार पड़ती थी, गुरुजी का स्वभाविक वात्सल्य आपको सहज में ही प्राप्त हो जाता था। होनहार बालक ने कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभासम्पन्न होने से व्यावहारिक के साथ साथ व्यापारिक, सामाजिक तथा धार्मिक शिक्षा भी अनायास ही प्राप्त कर ली।

तीनों भाइयों ने १९३७ में "श्री त्रिलोकचन्द हुकमचन्द" के नाम से अपनी स्वतन्त्र दूकान शुरु की। छः ही वर्ष की छोटी सी आयु में घर की अपनी दूकान के साथ सर सेठ साहब के भाग्यशाली नाम का सुयोग होने का जो चमत्कार प्रगट हुआ, उसका वर्णन यथास्थान किया जायगा। यहां इतना ही दिखाना अभीष्ट है कि शिक्षा-काल में ही इस प्रकार सेठ साहब का नाम दूकान के नाम में जुड़ जाने से बचपन में ही व्यापार-व्यवसाय के सम्बन्ध में जो संस्कार बालक के हृदय में पैदा हुये, वे ही कालान्तर में फल-फूल कर कितने उपयोगी और आकर्षक बन गये? उसकी चर्चा करने से पहिले गृहस्थ-जीवन का अवलोकन कर लेना उचित होगा।

: २ :

गृहस्थ जीवन

सेठ पूसाजी की चौथी पीढ़ी में हमारे चरित्रनायक सर सेठ हुकमचन्दजी साहब का जन्म हुआ। तीनों भाइयों में अकेले पुत्र थे। पुत्ररत्न की प्राप्ति को अनन्त पुण्यों का फल माना जाता है और जीवन की सारी सार्थकता का उसको निमित्त भी समझा जाता है। कुल परम्परा की रक्षा करने वाला होने से पुत्र की महिमा और भी अधिक है। फिर, जो पुत्र तीन घरों में अकेला हो, उसकी महिमा कम से कम तीन गुनी तो बढ़ ही जानी चाहिये थी। इस लाड़-प्यार में निश्चिन्त जीवन बिताने वाले युवा हुकमचन्द पर १६ वर्ष की ही आयु में सम्वत् १९५० में घोर वज्रपात हुआ, जब आपके पूज्य पिता सेठ सरूपचन्दजी इस असार संसार को छोड़ कर चल बसे। अब घर का सारा दायित्व, दूकान का सारा भार, कारबार की सारी जिम्मेवारी, जात-बिरादरी का सारा सामाजिक व्यवहार आपके कन्धे पर आ पड़ा। सम्भवत: दैव को यही स्वीकार था कि इस अधपकी युवावस्था में ही आप पर यह सारा दायित्व आ पड़े, जिससे कि अनुभव और अध्यवसाय से परिपक्व होकर सेठ साहब दिग्दिगन्तव्यापी कीर्ति को पाकर उसको संभालने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकें। यदि कहीं महासागर अपनी महानता को अपने में संभाल न सके, यदि कहीं हिमालय अपनी गगनचुम्बी चोटियों का असह्य भार संभालने में असमर्थ हो जाय और यह चारों ओर फैला हुआ दिव्य आकाश भी कहीं विचलित हो जाय, तो सृष्टि में सहसा ही प्रलय मचा देने वाला प्रचण्ड भूकम्प आजाय। इसी प्रकार मानव की यह प्रकृति भी यदि अपनी महानता को अपने में समा न सके, तो उसका निश्चय ही पतन हो जाय। लेकिन, अनुभव और अध्यवसाय से मानव में जो क्षमता पैदा होती है, वह इस पतन से उसकी निश्चय ही रक्षा करती है। अपरिपक्व युवावस्था में पिता के स्नेहमय संरक्षण से वंचित करके दैव मानो सेठ साहब में स्वावलम्बन, आत्मनिर्भरता और आत्म पौरुष की वह अदम्य भावना भरना चाहता था, जिसने उनके जीवन में अद्‌भुत कमाल कर दिखाया। पूज्य पिता का यह असह्य वियोग भी प्रकारान्तर से आपके लिये वरदान ही सिद्ध हुआ। जीवन-निर्माण की इस कठोर प्रक्रिया में पड़ कर आप तपे हुये सोने की तरह निखर गये। इस परिपक्व पृष्ठभूमि के साथ जब आप कार्यक्षेत्र में उतरे, तब जिधर भी हाथ डाला, उधर ही सफलता मानो वरमाला लिये सामने उपस्थित दीख पड़ी।

अपने समस्त कर्तव्यों का पालन आपने बड़े धैर्य, तत्परता और साहस के साथ किया। पिताजी के वियोग की असह्य वेदना धैर्य के साथ सहन की। माता की सेवा का अक्षय पुण्य लाभ सम्पादन किया। व्यापार-व्यवसाय में आशातीत उन्नति की। जाति-बिरादरी में प्रथम श्रेणी का सम्मान प्राप्त किया। राज-दरबार में भी शान के साथ अलभ्य प्रतिष्ठा लाभ की। नेपोलियन के शब्दकोष में जैसे 'असम्भव' शब्द नहीं था, वैसे ही आपके शब्दकोष में 'असफलता' नाम का शब्द न हीं रहा।

सेठ देवकुमारसिंहजी

सेठ सरूपचन्दजी, सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचन्दजी तीन भाई सम्मिलित व्यापार तथा कारबार करते

सौभाग्यवती दानशीला सेठानी कंचनबाईजी धर्मपत्नी सर सेठ हुकमचंदजी साहब।

थे। संयुक्त परिवार 'हावल्या कावल्या' के नाम से पुकारा जाने लगा। तीनों भाइयों में सेठ सरूपचन्दके सिवाय दोनों भाइयों के कोई सन्तान न थी। सेठ ने ओंकारजी ने सम्वत् १६५० (सन् १८६३) में मारवाड़ के जेतारण परगने से सेठ कस्तूरचन्दजी काशलीवाल को गोद लिया। आपका जन्म मारवाड़ में कालू नामक गांव में सम्वत् १६४१ (सन् १८८४) में हुआ था। आपके पिता हंसराजजी साधारण स्थिति के व्यक्ति थे और माता नेत्र-विहीना थीं। आपको गोद लाने के सात वर्ष बाद सम्वत् १६५७ (सन् १६००) में सेठ ओंकारजी का स्वर्गवास हो गया। सेठ कस्तूरचन्दजी ने सारा काम पूरी तत्परता के साथ संभाल लिया। साहूकारा और अफीम दो ही काम मुख्य थे। सन् १६११ तक इसी प्रकार नफे-नुकसान में काम चलता रहा। सम्वत् १६७० (सन् १६१३) में बम्बई की श्री तिलोकचन्द हुकमचन्द नाम की दूकान उठाकर तीनों भाइयों की दूकान तीनों के नाम से अलग-अलग कर दी गई। सम्वत् १६८७ में सेठ कस्तूरचन्दजी भी निःसन्तान ही स्वर्ग सिधार गये। तीन विवाह करने पर भी उनको सन्तान-सुख का लाभ न मिल सका। आपके भी दत्तक पुत्र लाने का निश्चय किया गया और कुचामन से श्री देवकुमारसिंहजी को गोद लाया गया। आप अपने पिता श्री धन्नालालजी की सबसे छोटी सन्तान हैं। आपकी शिक्षा कुचामन और कलकत्ता में हुई थी। चौदह वर्ष की आयु में दत्तक आने पर आप तिलोकचन्द जैन हाईस्कूल में भरती हुये। मैट्रिक पास करके होलकर कालेज में उच्च शिक्षा प्राप्त की और एम० ए० एल० एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभा सम्पन्न होने से आप सदा ही पहिली श्रेणी में उत्तीर्ण होते और विशेष पुरस्कार प्राप्त करते थे। इन्दौर में ही सम्वत् १६६३ में सेठ नाथूराम चुन्नीलालजी के यहां सेठ चुन्नीलाल जी की कन्या सौभाग्यवती कुसुमप्रभादेवीजी के साथ आपका शुभ विवाह हुआ। दो सन्तान हैं एक पुत्र और एक पुत्री। आपकी नाबालिगी की स्थिति में घर और दूकान का सारा काम सर सेठ साहब ने अपने काम की तरह ही संभाला और कभी नुकसान नहीं होने दिया।

सेठ हीरालालजी काशलीवाल

सेठ ओंकारजी के समान सेठ तिलोकचन्दजी के घर में भी कोई सन्तान नहीं थी। सम्वत १६४८में आपके यहां भी मारवाड़ गंगराने से सेठ कल्याणमलजी को गोद लाया गया। आपने सेठ तिलोकचन्द कल्याणमल के नाम से काम शुरू किया। आप सार्वजनिक भावना वाले सेठ थे। आपने कल्याण औषधालय और कन्या पाठशाला भी कायम की। बाद में कल्याणमल मिल भी स्थापित की। सम्वत् १६८३ में आपको रुधिर की कमी की शिकायत हुई। सर्वोत्तम औषधोपचार किया गया। बम्बई से भी डाक्टर बुलाये गये। फिर भी वर्ष के अन्त में आपका स्वर्गवास होगया।

सेठ तिलोकचन्दजी और सेठ कल्याणमलजी की विधवा पत्नियों ने बड़े ही धैर्य और शान्ति के साथ वैधव्य का सन्ताप सहन किया। सहज धार्मिक वृत्ति के कारण वे विदुषी नारियों के सत्संग, धर्म ध्यान, स्वाध्याय और दान-पुण्य में समय बिताने लगीं। श्रीमती भूरीबाईजी उदासीना की संगति का आपको विशेष लाभ मिला। सेठ साहब को भी दोनों भाइयों के स्वर्गवास की कुछ कम चोट न लगी थी। फैले हुये कारबार को संभालने और परिवार की परम्परा को आगे चढ़ाने के लिये दत्तक लाने का निश्चय किया गया। योग्य दत्तक लाने का भार सेठ साहब पर ही पड़ा। सब परिस्थितियों पर सम्यक् प्रकार से विचार करके कुल की मर्यादा के सर्वथा अनुकूल समझ कर सेठ साहब ने अपनी गोद लाये हुये भैयासाहब कुंवर हीरालालजी साहब काशलीवाल को सम्वत् १८६४ में स्वर्गीय भाई कल्याणमलजी के गोद दे दिया। भैय्या साहब को ४-४॥ वर्ष की ही आयु में सम्वत १६५८ में अजमेर से सेठ साहब अपने लिये गोद लाये थे। आपके पूज्य पिताजी का नाम परमेष्ठीदासजी था। भैय्या साहब की शिक्षा-दीक्षा सेठ साहब की देख-रेख में ही हुई। आपको सब प्रकार से दक्ष, चतुर और

होशियार बनाने का विशेष प्रयत्न किया गया था। सत्रह वर्ष की आयु में ही आपने अपना सारा कारबार संभालना शुरू कर दिया था। इसी आयु में आपका शुभ विवाह इन्दौर में ही फर्म सेठ परसराम दुलीचन्द के मालिक सेठ फत्तेलालजी की सुपुत्री श्रीमती विनोदकुमारीबाई के साथ हुआ। विवाह इतने समारोह और धूमधाम के साथ हुआ कि सेठ साहब ने उसमें सवा लाख रुपया खर्च किया।

सेठ हीरालालजी काशलीवाल ने स्वतन्त्र रूप से अपने व्यक्तित्व का जो विकास किया है, सार्वजनिक जीवन में अपना जो स्थान बनाया है और चहुँमुखी प्रवृत्तियों के कारण जनता तथा शासन दोनों में जो सम्मान प्राप्त किया है, उससे आपकी गणना भी इन्दौर तथा मध्यभारत के भी पहिली श्रेणी के लोगों में की जाती है। इन्दौर राज्य, भारत सरकार और सामाजिक संस्थाओं ने भी आपको अनेक सम्मानास्पद पदवियों से विभूषित किया है। रायबहादुर, राज्यभूषण, दानवीर, जैनरत्न आदि पदवियों से आपका नाम सुशोभित है। व्यापारिक क्षेत्र में भी आपने अपने ढंग से विशेष काम किया है। प्रगट में इन्दौर राज्य प्रजामण्डल की रीति-नीति से सहमत न होते हुए भी उसकी सार्वजनिक प्रवृत्तियों और लोकोपकारी कार्यों में आपने उदारतापूर्वक सदा ही सहयोग दिया है। वही प्रजामण्डल इस समय स्थानीय कांग्रेस में परिणत कर दिया गया है। आप पहिले इन्दौर की धारासभा के सदस्य थे और अब मध्यभारत की धारासभा के भी सदस्य हैं। अनेक प्रान्तीय तथा अखिल भारतीय सामाजिक एवं व्यापारिक संस्थाओं का आपने सफलता पूर्वक सभापतित्व किया है। इन्दौर के विशाल श्री गान्धी भवन के निर्माण में, जो कि इस समय इन्दौर नगर में राष्ट्रपिता का अनन्य स्मारक है, आपका मुख्य हाथ रहा है। आप उसके ट्रस्टी भी हैं।

रायबहादुर राज्यभूषण सेठ त्रिलोकचन्द कल्याणमल फर्म तथा मिल का कार्य सफलता पूर्वक संचालन करते हुए आपने समाज-सेवा का भी सराहनीय काम किया है। पलासिया में एक लाख की कीमत का नरसिंह होम बनवाया है। वहां धर्मशाला भी बनवाई गई है। रायबहादुर फर्नीचर मार्ट, टेंट फैक्टरी और नरेन्द्र फैक्टरी के नाम से भी आपने अपना कारबार बढ़ाया है। आपके कुंवर नरेन्द्रकुमार और राजेन्द्रकुमार दो पुत्र हैं। कन्या का नाम है श्रीमती कमलकुमारीजी। बड़े पुत्र नरेन्द्रकुमारजी का शुभ विवाह कलकत्ता में श्री चैनसुखजी के यहां और कन्या का परतवाड़ा में श्री चम्पालालजी हीरालालजी के यहां हुआ है। दो पौत्ररत्न श्री नरेन्द्रकुमारजी से और एक श्रीमती कमलकुमारीजी से है। इस प्रकार आपको धन्यधान्य व पुत्रपौत्र आदि से सम्पन्न वह वैभव प्राप्त हुआ, जो हर किसी के लिये सुलभ नहीं है।

सेठ साहब का प्रथम विवाह

हमारे चरित्रनायक सेठ साहब को भी पुत्र-पौत्र आदि से सब सांसारिक दृष्टियों से सम्पन्न, विशाल और समृद्ध परिवार का स्वामी होने का पुण्य प्राप्त है। जिस देश में आयु की औसत इक्कीस-बाईस वर्ष भी कठिनाई से है, जिसमें लाखों बालक आँख खोलते ही उसको सदा के लिये मूँद लेते हैं और जिसमें अच्छे-अच्छे सम्पन्न घर भी पुत्र दर्शन की लालसा में तरसते रह जाते हैं, उसमें सेठ साहब के-से विशाल परिवार का फलना-फूलना किसी संचित पुण्य का ही परिणाम है। सेठ साहब का प्रथम शुभ विवाह सम्वत् १९४३ के वैशाख मास में मंदसौर के श्री भोपजी शंभुरामजी के पुराने और धनाढ्य घराने में सेठ जोधराज की सुपुत्री सौभाग्यवती कंचनबाई के साथ हुआ। इस अवसर पर पूज्य पिता सरूपचन्दजी साहब ने दिल खोलकर उत्सव मनाया। उनके हर्षातिरेक की कल्पना सहज में की जा सकती है। विवाह के बारह वर्ष बाद सम्वत् १९५५ में सुपुत्री रतनबाईजी का जन्म हुआ। परन्तु कन्यारत्न के जन्म देने के सात दिन बाद ही सेठानीजी का स्वर्गवास हो गया। निस्सन्देह, यह बहुत बड़ी चोट थी। उसको धैर्य व सन्तोष के साथ सहन किया गया। मातेश्वरी जवरीबाईजी ने कन्या का लालन-पालन किया और उसमें अच्छे सस्कारों

का बीजारोपण किया। इसी कन्यारत्न का शुभ विवाह उज्जैन के मिलमालिक, वाणिज्यभूषण, साहित्य मनीषि, विद्याविनोदी, रायबहादुर सेठ लालचन्दजी सेठी के साथ सम्पन्न हुआ। झालरापाटन में आपका घराना सेठ विनोदीराम बालचन्द अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त है। जात-बिरादरी और राजदरबार दोनों में उसका समानरूप से सम्मान है। आप दयालु, सहृदय, मिलनसार, उदार, गुणग्राही और गुणी सज्जन हैं, जो व्यापार व्यवसाय में निपुण और विद्याव्यसनी भी हैं। झालावाड़ और ग्वालियर दोनों ही राज्यों में आपको विशेष प्रतिष्ठा है। विवाह बहुत धूम-धाम से किया गया। सेठ साहब ने एक लाख रुपया खर्च किया। बरात भी खूब धूमधाम से आई। दो बड़े घरानों के सम्मिलन से संगम का-सा दृश्य उपस्थित हो गया। सेठ लालचन्दजी साहब के मिल-व्यवसाय को समुन्नत करने में सेठ साहब ने जो योग दिया, उसकी चर्चा यथास्थान की जायगी। यहां इतना ही लिखना उपयुक्त होगा कि सौभाग्यवती रत्नप्रभाजी के पतिपरायणा धर्मपत्नी के अनुरूप अपने पतिधर्म के यथावत पालन करने से सेठीजी का गृहस्थ-जीवन बड़ा ही सुखी और सम्पन्न बन गया। पतिदेव की सामयिक बीमारी के दिनों में आप उनकी सेवा-सुश्रुषा में दिन-रात एक कर देती थीं और अपने सुख-विश्राम का यत्किंचित् भी ध्यान न रखती थीं। अपने सुख-स्वास्थ्य, शरीरारोग्य, भोजन-छादन तथा सुन्दर वस्त्राभूषण तक का आप पतिदेव के स्वास्थ्य के लिये परित्याग कर देती थीं। इसी प्रकार अपनी सासुजी की सेवा में भी आप निरन्तर तत्पर रहती थीं। उनका भी आपने सहज ही स्नेह सम्पादन कर लिया था। सम्वत् १६८० में जब वे बहुत बीमार हुईं, तब उनकी सेवा-सुश्रूषा करने में आपने कुछ भी उठा न रखा। एक लाख का दान उन्होंने अन्तिम समय में किया और स्वर्ग सिधार गईं। आपके पहिली सन्तान पुत्ररत्न के रूप में सम्वत् १६७० में बाबू विमलचन्दजी सेठी हुये, जिनका शुभ विवाह सम्वत् १६८३ में अजमेर के ख्यातनामा सेठ सर भागचन्दजी सोनी की बहिन श्री सौभाग्यवती श्रीमती तेजकुमारीबाई के साथ हुआ। १८ वर्ष में ही विमल बाबू का स्वर्गवास हो गया। आपके दो पुत्र हैं—कुंवर भूपेन्द्रकुमारजी सेठी—जन्म सम्वत् १६८६ और बाबू तेजकुमारजी सेठी—जन्म सम्वत् १६८८।

सौभाग्यवती रत्नप्रभादेवीजी को दूसरी सन्तान कन्या राजकुमारीबाई का जन्म १६७२ में हुआ। आपका शुभ विवाह जयपुर के सुप्रसिद्ध जौहरी स्वर्गीय बनजीलालजी ठोलया के यहां कुंवर रूपचन्दजी के साथ हुआ, जिनसे एक पुत्र हुआ। कुंवर रूपचन्दजी का स्वर्गवास भी छोटी ही अवस्था में उज्जैन में हो गया।

तीसरी सन्तान मनोराजाबाई का जन्म सम्वत १६७४ में हुआ। इनका शुभ विवाह हाट पीपल्या के सेठ तिलोकचन्द पन्नालाल के यहाँ सेठ तिलोकचन्दजी के सुपुत्र बाबू कस्तूरचन्दजी टोंग्या के साथ हुआ। इनके दो पुत्र और एक कन्या है।

सर सेठ साहब इन सभी विवाहों मे ऊँचे दरजे के मौसाले मायरे लेकर गये थे। दिलखोलकर आपने खर्च किया। झालरापाटन-वालों की शान में दो चांद और लगा दिये। जाति-बिरादरी के अवसरों पर ऊँचे से ऊँचा व्यवहार करना आपका स्वभाव-सा हो गया है, जो कि आपकी महानता के अनुरूप ही होता है। इससे जाति-पंचायत में आपका गौरव खूब बढ़ गया है।

दूसरा विवाह

सर सेठ साहब का दूसरा शुभ विवाह सम्वत् १६२६ में चित्तौड़गढ़ के सेठ समर्थलालजी साहब की सुपुत्री के साथ हुआ। इनका साथ छः ही वर्ष का रह सका। १६६२ में इनको एकाएक पेट की बीमारी हुई। सब प्रकार का औषधोपचार किया गया। बीमारी ने पीछा न छोड़ा। आपके कोई सन्तान न हुई और आप स्वर्ग सिधार गईं।

तीसरा विवाह

आयु केवल ३२ वर्ष की थी और कोई पुत्र भी न था। इसलिये आपका तीसरा विवाह सम्वत् १६६३

में वैशाख मास में भोपाल के सेठ फौजमल साहब की सुपुत्री के साथ किया गया। आपका नाम भी विवाह के बाद श्रीमती कंचनबाई ही रखा गया। आपका पदार्पण बहुत ही शुभ हुआ। मानो, आप लक्ष्मी को ही साथ लेकर आई थीं। विवाह के समय आपकी आयु केवल तेरह वर्ष थी। परन्तु थीं आप सद्भाग्यशीला, सद्गुणा और लक्ष्मी रूपा। आपकी कुण्डली शुभ लक्षणों से युक्त थी।
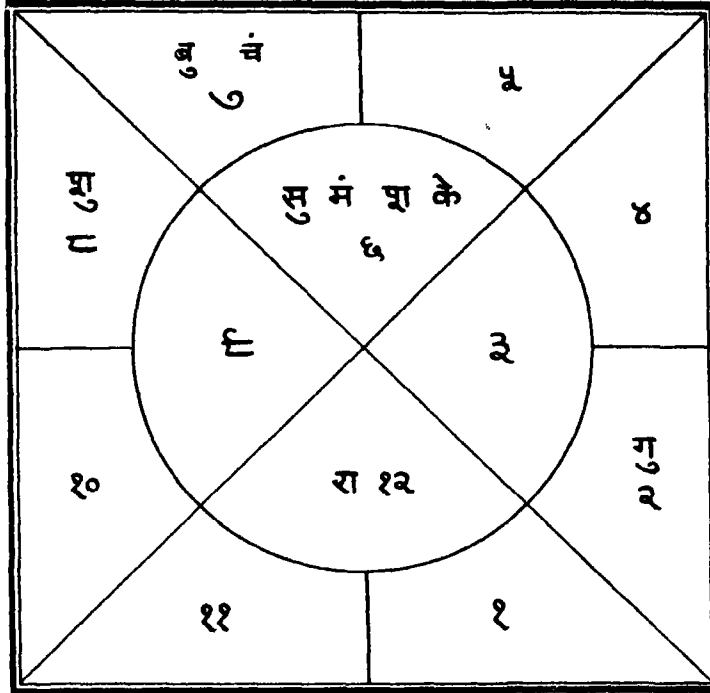
पतिपरायणा होने से पति का स्नेह और सम्मान आपने सहज में ही सम्पादन कर लिया। पठन-पाठन एवं स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी आपमें जागृत हुई और आपने प्राचीन साहित्य में से अनेक पतिपरायणा सन्नारियों के धार्मिक चरित्र पढ़ डाले। इससे आपका झुकाव धर्म-कर्म की ओर भी हुआ। राजुलदेवी, सीता, चेलनादेवी, मैनासुन्दरी, द्रौपदी, अंजनासुन्दरी, मनोरमादेवी तथा रयनमंजूषा आदि के चरित्रों का आप पर अच्छा प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि आपके जीवन तथा चरित्र का विकास भी सेठ साहब के महान जीवन के अनुरूप ही हुआ और आपके हाथों से भी धर्म, समाज, देश और सबसे बढ़कर नारी जाति की महान सेवा हुई। सेठ साहब के साथ तो आपने यश का सम्पादन तो करना ही था; किन्तु योग्य पति की सुयोग्य पत्नी बनकर आपने स्वतः भी उसका सम्पादन कर उसको कई गुना बढ़ा दिया। सेठ साहब भी ऐसी पत्नी पाकर धन्य हो गये। यह ठीक ही कहा गया है कि—

"अनुकूलां विमलांगीं कुलजां कुशलां सुशीलसंपन्नाम्।
पंचमकारां भार्यां पुरुषः पुण्योदयाल्लभते॥"

निस्सन्देह पुण्योदय से ही अपने स्वभाव के अनुकूल, कोमल अङ्ग की अर्थात् पवित्र चरित्र वाली, श्रेष्ठ कुल की, सब गृहस्थ कार्य में कुशल किंवा दक्ष और सुशील स्वभाव से सम्पन्न पत्नी पुरुष को पुण्योदय से ही प्राप्त होती है। अच्छा पति मिलना यदि पत्नी का सौभाग्य है, तो शास्त्रकार अच्छी पत्नी का मिलना पुरुष का भी सौभाग्य मानते हैं। विशाल घर की सारी व्यवस्था बड़ी उत्तमता के साथ सेठानीजी ने संभाल ली और घर-गृहस्थी की समस्त चिन्ताओं से सेठ साहब को सर्वथा मुक्त कर दिया। भगवत्-पूजा, स्वाध्याय, पठन-पाठन आदि का नित्य नियम भी यथावत् शुरू हो गया। अनेक गहन धार्मिक ग्रन्थों का भी आपने अभ्यास कर लिया। पराई पीड़ को जानने और उसको हरने के लिये यथासाध्य सहायता करने के लिये आपने ऐसी सहृदयता कुछ स्वभाव से ही प्राप्त की है कि किसी का भी दुःख देखकर आप सहसा ही बेचैन हो जाती हैं। स्त्री-पुरुष-बालक-वृद्ध हर एक के कष्ट में सहायक होने में आपको गर्व और सन्तोष अनुभव होता है। यह नहीं कि आपकी सेवा में उपस्थित होने वाले की ही आप सहायता करें;—दूर शहर से किसी के कष्ट का कोई समाचार आजाय, तो उसकी सहायता करने में भी पीछे नहीं रहतीं। कानोंकान किसी को पता भी नहीं चलता और दुखिया का दुःख दूर हो जाता है। इसीलिये किसी को भी आपकी सहायता के अंगीकार करने में संकोच नहीं होता। सर सेठ साहब ने नारी जाति की सेवा के लिये जो सार्वजनिक कार्य किये हैं, उनके लिये उनके हृदय में सत्प्रेरणा और सत्प्रवृत्ति पैदा करने का श्रेय भी सेठानीजी साहिबा को है। पालिताना में सेठ साहब ने जब चार लाख के दान की घोषणा की, तो सेठानी साहिबा के प्रस्ताव पर उसी समय एक लाख रुपया स्त्री-शिक्षा के लिये नियत कर दिया गया। इसी एक लाख रुपये से इन्दौर में सम्वत् १६७२ में श्री कंचनबाई दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम की स्थापना की गई। असहाय दिगम्बर जैन विधवाओं की सहायता के लिये सम्वत् १६७५ में एक फण्ड कायम किया गया, जिसके आधीन "श्री कंचनबाई दिगम्बर जैन आश्रम" की स्थापना की गई। इसकी स्थापना का इतिहास बड़ा ही मनोरंजक है। बाद में सम्वत् १६८१ में "दानशीला कंचनबाई प्रसूतिगृह और शिशु स्वास्थ्य रक्षा संस्था" की भी स्थापना हुई। पारमार्थिक संस्थाओं में इन संस्थाओं की चर्चा भी कुछ विस्तार के साथ की जायगी। यहां तो सेठानीजी के उदार, सहृदय, सुशील और लोकोपकारी स्वभाव का परिचय देने के लिये केवल प्रसंगवश उनका उल्लेख कर दिया गया है। आपके इस स्वभाव पर मुग्ध होकर इन्दौर के महिला समाज ने आपको 'दानशीला' की उपाधि से विभूषित किया और सर सेठ साहब की हरेक जयन्ती के अवसर पर आपको भी विशेष मानपत्र देकर सम्मानित किया था।

चौथा विवाह

ऐसा परम सौभाग्य और महान पुण्योदय होने पर भी चन्द्रमा की कालिमा की तरह उसमें भी कुछ कमी रह गई थी और वह कमी थी सेठानी साहिबा का अस्वस्थ रहना। १६७५ में तो सेठानीजी बीमार भी बहुत रहने लगगई थीं। हिस्टीरिया और आंव की शिकायत रहने लगी। एक-एक हजार रुपया प्रतिदिन की फीस देकर मशहूर डाक्टर औषधोपचार के लिये बुलाये गये। चिकित्सा में यथासम्भव कुछ भी कमी न रखी गई। मन्दिरजी की वेदी-प्रतिष्ठा के समय सेठजी ने यह संकल्प किया था कि "सेठानीजी के लिये यह वर्ष अत्यन्त कष्ट का है। यदि १६७६ में वे स्वस्थ रह गईं, तो मैं एक लाख रुपये की चांदी की प्रतिमा का निर्माण कराऊंगा।" इस चिन्ता में आप निमग्न हो ही रहे थे कि एक घटना और घट गई। आपने किसी अमेरिकन ज्योतिषी से अपनी जन्मपत्री बनवाई, तो उसमें लिखा था कि "इस वर्ष ईस्वी सन् १६१६ में सेठजी के भावों में नवीन अंकुर का उदय होगा और उनको नया विवाह करवाना होगा।" मनोवैज्ञानिक प्रभाव इसका विवाह के पक्ष में ही पड़ा। पतिपरायणा पत्नी ने भी

अनुरोध किया और अपने सामने हां करने का आग्रह किया। इसलिये विवश होकर सेठ सुवालालजी पन्नालालजी की सुपुत्री के साथ इसी वर्ष इन्दौर में लावरिया भैरों पर आपने चौथा विवाह कर लिया। परन्तु भावी प्रबल थी। सेठानी कञ्चनबाई का स्वास्थ्य सुधरने लगा और वे धीरे-धीरे पूर्ण आरोग्य को प्राप्त हो गईं। इस हर्ष में सेठ साहब ने ढाई लाख का दान किया। चांदी की प्रतिमा के लिये घोषित किया गया एक लाख रुपया भी सेठानीजी के आग्रह का पालन करने के लिये दिगम्बर जैन असहाय विधवा सहायता फण्ड और भोजनशाला की स्थापना में लगा दिया गया। इसी में से डेढ़ लाख रुपया से बियाबानी में यशवन्तराव आयुर्वेदीय जैन औषधालय स्थापित किया गया।

चौथी सेठानी साहिबा एक वर्ष बाद मद्रास में विषम ज्वर से कुछ ऐसी पीड़ित हुईं कि हजार प्रयत्न और सर्वोत्तम औषधोपचार करने पर भी बच न सकीं। काल की गति को कौन रोक सकता है?

सेठानी कंचनबाईजी का स्वास्थ आशातीत रूप में सुधरा और सुधरता चला गया। सेठ साहब की चिन्ता भी सहसा दूर हो गई। पुण्योदय से सन्तान भी ऐसी प्राप्त हुई थी, जो "कुल का दीपक पुत्र है" की कहावत को चरितार्थ करने वाली सिद्ध हुई।

पहिली सन्तान कन्यारत्न के रूप में सम्वत १९६९ में हुई थी। इसका नाम रखा गया था तारामतीबाई। आप माता-पिता के संयुक्त संस्कार लेकर–धर्मशील, विनयशील और सहनशील स्वभाव लेकर प्रगट हुईं। विद्याभिरुचि स्वाभाविक ही थी। आप हस्तलिखित मासिक पत्रिका निकाला करती थीं। अजमेर के सुप्रसिद्ध सेठ स्वर्गीय टीकमचन्दजी सोनी के सुयोग्य और ख्यातनामा पुत्र रायबहादुर कुंवर भागचन्दजी सोनी (भूतपूर्व सदस्य केन्द्रीय असेम्बली) के साथ शुभविवाह सम्वत १९७० में हुआ। विवाह अभूतपूर्व राजसी ठाठबाट से हुआ था। इन्दौर के अलावा, धार, देवास तथा जावरा आदि से भी खास लवाजमा विवाह के लिये भेजा गया था। बरात के साथ भी जोधपुर, भरतपुर तथा धौलपुर आदि राज्यों का लवाजमा आया था। महू छावनी का इम्पीरियल बैंड और भरतपुर कवेल्टरी का भी बैण्ड आया था। बरात के लिये एक लाख खर्च करके मोती महल बनाया गया था। विवाह मण्डप भी बड़ा विशाल और दर्शनीय था। बिजली की अनुपम छटा देखते ही बनती थी। महाराज साहब इन्दौर महारानी साहिबा के साथ विवाह की शोभा बढ़ाने पधारे थे। धार के महाराज तथा ए० जी० जी० साहब सेण्ट्रल इण्डिया भी पधारे थे। पर, काल की कराल गति से श्रीमती तारामतीबाई एक बालक और एक बालिका को स्मृति रूप में छोड़कर इस लोक को त्याग गईं। तब सेठ साहब ने छः हजार का दान-पुण्य किया। बालिका सौभाग्यवती चांदबाई ने पंजाब से हिन्दी और मैट्रिक की परीक्षायें प्रथम श्रेणी में पास कीं। जयपुर के प्रसिद्ध जौहरी सेठ बनजीलालजी ठोलिया के सुपुत्र सेठ ताराचन्दजी के साथ आपका शुभ विवाह हुआ।

भैय्यासाहब राजकुमारसिंहजी

"कुल का दीपक पुत्र है" की कहावत को सत्य सिद्ध करने वाले भैय्यासाहब राजकुमारसिंहजी साहब का शुभ जन्म सम्वत् १९७० के जेठ बदी ९ गुरुवार २९ मई सन् १९१३ को जब हुआ, तब सारे कुटुम्ब, इष्टमित्रों और नगर में भी अपार हर्ष की लहर दौड़ गई। सेठ साहब ने भी दिल खोल कर दान किया। आप भी पूज्य पिताजी के समान कुशाग्र बुद्धि, होनहार और तेजस्वी हैं। राजपुत्रों के साथ डेली कालेज में आपकी शिक्षा हुई। सदा ही आप प्रतिष्ठा के साथ उत्तीर्ण होते रहे। एम०ए०, एल०एल०बी० तक आपने अध्ययन किया। आप साहसी, स्पष्टवादी, विनयशील और मृदुभाषी युवक हैं। आप सुयोग्य और सुशिक्षित भी हैं। सज्जनता और सहृदयता आप में असाधारण है। आप सरल और मिलनसार हैं। सभा-सम्मेलनों और परिषदों में आपका विशेष प्रभाव पड़ता है। आपके व्यक्तित्व में आपके सुडौल तन, स्वस्थ मन और

सेठ साहब के इन्द्र भवन का अखाड़ा।

सेठ साहब अजमेर के रायबहादुर सेठ टीकमचंदजी और कुंवर भागचंदजी व कुंवर दुलीचंदजी

सेठ साहब भैयासाहब हीरालालजी और सुपुत्री ताराबाई के साथ।

भैयासाहब राजकुमारसिंहजी का बाल्यावस्था का चित्र।

उदार हृदय की स्पष्ट छाया देखी जा सकती है। आपने अपना कारबार बहुत अच्छी तरह संभाल लिया है। आपका शुभ विवाह सिवनी के सेठ फूलचन्दजी साहब की परम विदुषी पुत्री श्रीमती प्रेमकुमारीबाई के साथ सम्वत १६८४ में हुआ। आपके छः सन्तानें हैं। कुंवर राजबहादुरसिंह जी सबसे बड़े हैं। आपका जन्म सम्वत् १६८२ में हुआ। पौत्र प्राप्ति की प्रसन्नता में सेठ साहब ने पचास हजार खर्च किया। दूसरे पौत्र बाबू महाराज बहादुरसिंह का सम्वत् १८८६ में, तीसरे पौत्र बा० जंबूकुमारसिंहजी का १६६३ में, चौथे चन्द्रकुमारसिंह का २००२ में और पांचवें चिरंजीव यशकुमारसिंह का सम्वत् २००४ में जन्म हुआ। कन्या पद्माकुमारी बाई १६६७ में जन्मीं। पुत्र-पौत्र आदि से इतना सम्पन्न घराना निश्चय ही धर्म, दान और पुण्य का प्रसाद है।

भैयासाहब राजकुमारसिंहजी ने भी राजा और प्रजा दोनों में सर सेठ साहब के समान ही सम्मान और प्रतिष्ठा सम्पन्न की है। भारत सरकार से आपको २००१ सम्वत में "रायबहादुर" और इन्दौर राज्य से "मशीरे बहादुर" की पदवी दी गई है। जैन समाज ने भी आपको अनेक पदवियों से विभूषित किया है। मालवा प्रांतिक दिगम्बर जैन सभा ने आपको 'जैनरत्न' और 'दानवीर' की उपाधियां प्रदान की हैं। रायल इकानामिक सोसाइटी के आप फैलो हैं। पूज्य पिताजी के पदचिन्हों पर चलते हुये आप अपने जीवन को सफल बनाने में लगे हुये हैं। सामाजिक सम्मेलनों तथा सार्वजनिक समारोहों में सर सेठ साहब ने आना जाना प्रायः छोड़ दिया है। त्यागमय विरक्त जीवन की साधना में अपने को लगा देने से सर सेठ साहब उनमें सम्मिलित नहीं होते। भैय्या साहब ने योग्यता पूर्वक सामाजिक और सार्वजनिक क्षेत्र में भी उनके दायित्व को निभाना शुरु कर दिया है। सेठ साहब ने भैय्यासाहब के नाम से 'राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक कालेज' आदि जो सार्वजनिक संस्थायें स्थापित की हैं, उनकी चर्चा भी यथास्थान की जायगी।

सर सेठ साहब के दो कन्यायें और हुई हैं। सम्वत १६७१ में श्रीमती चन्द्रप्रभाबाई और १६७४ में श्रीमती स्नेहराजाबाई का जन्म हुआ। श्रीमती चन्द्रप्रभाबाई कवियित्री हैं। अत्यन्त रोचक और प्रसादगुणयुक्त कवितायें आप करती हैं। इन्दौर के श्री नानकरामजी रिखबदासजी मोदी के सुपुत्र कुंवर रतनलालजी के साथ आपका शुभ विवाह हुआ। आपके एक पुत्र और एक पुत्री है। सबसे छोटी कन्या का शुभ विवाह श्रीमान सेठ परसराम दुलीचन्दजी के सुपुत्र कुंवर लालचन्दजी के साथ हुआ। आपके एक पुत्र और दो पुत्रियां हैं।

इस प्रकरण को समाप्त करने से पहिले सेठ साहब की सन्तानों के विवाह की चर्चा कर देना भी कुछ अप्रासंगिक न होगा। सुपुत्र भैय्या साहब और दोनों कन्याओं का शुभ विवाह १६८४ में एक साथ ही किया गया। इन विवाहों की धूमधाम और ठाठबाट के कारण इन्दौर नगरी में उत्सवों की धूम सी मच गई। विवाह-सम्बन्धी जलूस अनुपम शोभा से निकलते थे। इन्दौर से सेठ साहब को स्पेशल फर्स्ट क्लास का लवाजमा मिला था। धार, देवास और जावरा आदि रियासतों से भी बैण्ड तथा लवाजमे आदि आये थे। ७ हाथी, ५० सवार, १०० सिपाही, ५ बैण्ड, १०० मोटर-बग्गियाँ और ४०० गैसों का जब बाना निकलता था, तब शहर में धूम मच जाती थी। जलूसों और मंडप की अद्भुत शोभा भी दर्शनीय बन गई थी। हजारों की सदा ही भीड़ लगी रहती थी। पांच-पांच, सात-सात हजार की कोई १८ रसोइयां दी गईं थीं। एक बड़ी रसोई तो २५ हजार स्त्री-पुरुषों की साढ़े बारह न्यात चौरासी की दी गई थी। दीतवारिया बाजार में एक कृत्रिम बगीचा बनाया गया था। इसी में एक विशाल गार्डन पार्टी की योजना की गई थी। इसमें राज्य के और सेन्ट्रल एजेंसी के तमाम अफसर सम्मिलित हुये थे। मध्यभारत के ए०जी०जी०, देवास सीनियर, देवास जूनियर, सैलाना, रतलाम, खिलचीपुर तथा झाबुआ के महाराजाओं ने भी सेठ साहब का निमंत्रण सहर्ष स्वीकार किया था। बूंदी, झालावाड़, ग्वालियर, सीतामऊ, बड़वानी

तथा दतिया आदि के प्रतिनिधि इन विवाहों में सम्मिलित हुये थे । प्रधान प्रधान अतिथियों की संख्या लगभग एक हजार पर पहुँच गई थी ।

सर सेठ साहब ने इन विवाहों में लगभग पांच लाख पच्चीस हजार व्यय किया था और पचास हजार के लगभग दान- दिया था । इन्दौर में इन शुभ विवाहों के समारोह अपने ही ढंग के हुये थे । बड़े बूढ़े भी यह कहते सुने जाते थे कि अपने जीवन-काल में उन्होंने विवाहों का ऐसा समारोह नहीं देखा ।

: ३ :

व्यापार-व्यवसाय

छः वर्ष की छोटी-सी आयु में ही सेठ साहब का नाम व्यापार के साथ जुड़ गया था। महाजनी का अभ्यास आपको दुकान पर ही बिठाकर कराया गया था। १९३७ में आपके पूज्य पिताजी ने अपने दोनों भाइयों के साथ मिलकर जब अपनी स्वतन्त्र दुकान कायम की थी, तब उसमें बालक हुकमचन्द का नाम भी शामिल कर लिया गया था और दूकान का नाम "त्रिलोकचन्द हुकमचन्द" रखा गया था। कहना न होगा कि बचपन के ये संस्कार बालक के हृदय पर ऐसे गहरे बैठ गये कि अनुकूल समय पाकर उन्हीं का यह चमत्कार था कि सर सेठ साहब "मर्चेण्ट किंग" और "पाओनियर इन स्वदेशी इण्डस्ट्री" कहलाये। "व्यापारियों के बादशाह" और "स्वदेशी उद्योगधंधों का अग्रणी" कहलाने का गौरव प्राप्त करना साधारण नहीं था। पन्द्रह वर्ष की आयु होते-न-होते युवा हुकमचन्द दूकान का बहुत-सा काम सीख गये और उसमें अच्छी गति प्राप्त करने में फिर आपको अधिक समय न लगा। बालक का जन्म, दूकान में नाम का समावेश और व्यापार में प्रत्यक्ष प्रवेश—उत्तरोत्तर इतने बड़े भाग्य के सूचक हुये कि सम्भवतः ज्योतिषी और भविष्यवक्ता भी उसकी कल्पना नहीं कर सके थे। भाग्य और पुण्य दोनों ने साथ दिया। अनोखी कार्यकुशलता, प्रखर बुद्धि, सूझ-बूझ की अनूठी प्रतिभा और समयानुकूल स्पष्ट कल्पना तथा भावना से सोने में सुगन्ध पैदा हो गया। अटल उद्योग, अनुपम आत्मविश्वास और अतुल साहस के तो आप धनी थे ही। मानो, ये सब सद्गुण आपको घुट्टी के साथ ही पिला दिये गये थे। व्यापार के उतार-चढ़ाव और बारीकियों को अपनी प्रखर बुद्धि से कुछ ऐसा परखते थे कि बाजार का रुख आपके साथ-साथ ही चलने लग गया था। संसार में बिखरे हुये सोने को बटोरने की कला में आपने जो विचक्षणता प्राप्त की, उसमें धन-सम्पत्ति के अम्बार आपके यहां लगते चले गये। "धन से धन बढ़ता है" की कहावत को आपने सोलह आना सत्य सिद्ध कर दिखाया। यह ठीक ही कहा गया है कि —

"दौलत सूं दौलत वधे, दौलत आवे दोर।
जस होवे जगत में, जोबन आवे जोर॥"

यह कथन सेठ साहब पर बिल्कुल ठीक उतरा। जो धन आया, वह सेठ साहब व्यापार में लगाते चले गये। श्री-सम्पत्ति आवर्त होती गई। सम्वत् १९३७ में दूकान में आपका नाम जोड़ने पर जो दूकान १०-१२ लाख की समझी जाती थी, सम्वत १९५६ में आपकी २५ वर्ष की आयु में २५-३० लाख की मानी जाने लग गई। बाद में तो आप करोड़ों के स्वामी बन गये।

उस समय की आर्थिक स्थिति और व्यापारिक गतिविधि की पृष्ठभूमि में सेठ साहब के व्यापारिक उत्कर्ष का सिंहावलोकन करना कुछ अधिक रुचिकर होगा। आज के स्वतन्त्र भारतीय शासन में प्रजातन्त्र के नाम पर व्यापारियों और सरकार में समदृष्टि, राष्ट्रीय भावना और देशोन्नति के लिये जो अपीलें की जाती हैं, तब उनके

बिना भी देशी राज्यों में राज्य और व्यापारी वर्ग में परस्पर आदर्श सहयोग पाया जाता था। देशोन्नति और राष्ट्रीय भावना के लिये समदृष्टि भी दोनों में कमाल की थी। राज्य की ओर से उन्नति के जो साधन काम में लाये जाते थे, उनसे व्यापारियों को लाभ उठाने का पूरा अवसर दिया जाता था और किसी भी व्यापारी को व्यापार में कुछ थोड़ी-सी भी हानि होना राज्य की हानि समझा जाता था। महाराज शिवाजीराव होलकर के पूज्य पिता महाराज तुकोजीराव द्वितीय ने शहर में व्यापार-व्यवसाय को समुन्नत करने की जो दृढ़ नींव डाली थी, उसी पर उन्होंने विशाल दीवारें खड़ी करने का उपक्रम किया और इन्दौर उन्नति के मार्ग पर सरपट बढ़ता चला गया। महाराज तुकोजीराव तृतीय के शासन-काल में यह गति और भी तेज हो गई। इन्दौर का मुख्य व्यापार व्यवसाय तब अफीम का ही था। उसी का सट्टा जोरों पर था। बाद में रुई और सोने-चांदी का भी सट्टा शुरू हुआ। सर्राफा उसका केन्द्र था। उसमें मुख्यतः हाली का शुद्ध चांदी का रुपया चलता था। राज्य की अपनी टकसाल थी। उसमें सूरज छाप का रुपया और नादिया की छाप के तांबे के पैसे, अधन्ने, आने आदि भी ढाले जाते थे। अंग्रेजी सरकार का रुपया भी चलता था। हाली पर यह रुपया १८ सैकड़ा अधिक मिलता था। लेन-देन या भुगतान दोनों में ही होता था।

हाजर माल की लेवाली बम्बई की होती थी। बम्बई से ही रुई और अफीम खरीदी जाती थी। बम्बई की लेवाबेची पर तेजी मंदी चलती थी। रुई की खपत यहाँ अधिक थी। अफीम पेटियों में बन्द होकर बम्बई भेज दी जाती थी। बाजार में सभी चीजों के भाव इतने सस्ते थे कि वे आज शेखचिल्ली के किस्से जान पड़ते हैं।

कपड़े की भी इन्दौर अच्छी मंडी थी। बम्बई से खूब कपड़ा आता था और आस पास के दिसावर में यहीं से पहुँचता था। तब कपड़ों की किस्में इतनी न थीं। जब मिलें यहां खुलीं, तब महाराज तुकोजीराव तृतीय के समय कपड़े का नया मार्केट बना और यहां से कपड़े का निर्यात भी होने लगा। आगरे की दरियों का भी कभी यहां अच्छा चलन था। थोक माल के क्रय-विक्रय की इन्दौर मध्यभारत में सबसे बड़ी मंडी थी। कपड़े की छपाई भी अच्छी और बहुत बड़े पैमाने पर होती थी।

आपस में बटवारा

सेठ साहब के यहां पितृ-परम्परा से साहूकारा और अफीम का ही काम होता था। अफीम के काम में विशेष प्रगति की गई और बाद में आपने मुख्यत: उसी को संभाल लिया। आपके दोनों भाई गोद आये थे। सेठ ओंकारजी के यहां सेठ कस्तूरचन्दजी, बाद में सेठ देवकुमारसिंहजी और सेठ तिलोकचन्दजी के यहां सेठ कल्याणमलजी, बाद में सेठ हीरालालजी। तीनों भाइयों की हरी-भरी गोद को सुखी, सम्पन्न और समृद्ध बनाये रखने के लिये बटवारा करना आवश्यक समझा गया। लेकिन, बटवारा भी इस शान्ति, सन्तोष, स्नेह और सहृदयता के साथ किया गया कि किसी को कानोकान उसका पता भी नहीं चला। घर का प्रेमपूर्ण वातावरण में कुछ थोड़ा-सा भी विघ्न उपस्थित न हुआ। किसी को बीच में डालने की भी आवश्यकता न हुई। सम्वत १९४८ (ईस्वी सन् १८९१) में जब यह बटवारा हुआ, तो तीनों भाइयों के नाम का जमा-खर्च बहियों में अलग अलग डाला गया। तब प्रत्येक भाई के नाम पांच-पांच लाख रुपये लिखे गये। तीनों भाइयों के अध्यवसाय से यह सम्पदा उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गई। उन्नति के मार्ग में दो साल कोई भी विघ्न बाधा उपस्थित न हुई। लेकिन, १९५० में सेठ सरूपचन्दजी के स्वर्गवास से एक बड़ी बाधा अवश्य उपस्थित हुई। पर, तीनों भाइयों ने श्रम, लगन और धुन से उनके अभाव की पूर्ति कर ली और कमी अनुभव न होने दी। छः वर्षबाद सम्वत् १९५६ में यद्यपि घराना २५-३० लाख का गिना जाने लग गया था, किन्तु यह वर्ष देश के लिये अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ। देश के बड़े भाग में घोर दुर्भिक्ष छा गया था। फिर भी तीनों भाई विचलित नहीं हुये। धीर-वीर

"काटन प्रिंस आफ इण्डिया" सेठ हुकमचंदजी साहब ।

सर सेठ साहब की सट्टे से उपराम वृत्ति।

इन्दौर बैंक के डायरेक्टरों का ग्रुप. जिसमें सेठ साहब भी हैं ।

सेठ साहब की इन्द्रभवन की निजी गोशाला की गाय, भैंस तथा अन्य पशु ।

गति से अपने व्यापार-व्यवसाय को समुन्नत करने में लगे रहे।

सम्वत् १६५७ में तीनों भाइयों ने काल की गति-मति को देखते हुये अपना-अपना व्यापार अलग करना उचित समझा। पहिले बटवारे के नौ वर्ष बाद हुये इस दूसरे बटवारे का भी किसी को पता न होने दिया गया। तीनों ने आपस में बैठ कर चुपचाप बटवारा कर लिया। किसी को मध्यस्थ बनाना तो दूर रहा, इसकी सूचना तक न दी गई। मानो, तीनों भाइयों ने सुमति और कुमति का पाठ खूब भली प्रकार हृदयंगम किया हुआ था। वे सुमति का सुफल और कुमति का कुफल भली प्रकार समझते थे। जिस बटवारे पर बड़े-बड़े घर उजड़ कर बरबाद हो जाते हैं, वंश परम्परा का पुराना स्नेह बिखर कर नष्ट हो जाता है और सगे भाई एक दूसरे के जानी दुश्मन बन जाते हैं, उसका इस घराने में इतनी शान्ति, स्नेह और सहृदयता के साथ हो जाना कोई साधारण बात नहीं थी। "जहां सुमति तहां सम्पति नाना" की कहावत मानो इस युग में इसी घराने के लिये लिखी गई थी। तीनों भाइयों के हिस्से में १६४८ से दुगना अर्थात् दस-दस लाख रुपया आया। तीन दूकानें अलग-अलग कर ली गईं। उनके नाम क्रमशः ये रखे गये—सेठ सरूपचन्दजी हुकमचन्दजी, सेठ ओंकारजी कस्तूरचन्दजी और सेठ तिलोकचन्दजी कल्याणमलजी। बम्बई की दूकान तीनों में सम्मिलित रही।

साहस का खेल

सेठ साहब का उस समय जो व्यापार व्यवसाय था, उसमें अविचल साहस का ही सारा खेल था। जोखम उठाने वाला वीर साहसी ही उस पार पहुंच सकता था। सेठ साहब अपार साहस के धनी थे और जोखम उठाने में आपका साहस इतना साथ देता था कि बड़ी से बड़ी जोखम उठाने में भी आप संकोच नहीं करते थे। अब अकेले अपने भाग्य के साथ खेल खेलने में आपको क्या संकोच हो सकता था? दिल खोल कर मैदान में उतर पड़े। अदम्य उत्साह, संशयहीन साहस, आशाभरी उमंगों से भरा हुआ हृदय और चढ़ती हुई वह युवावस्था, जिसने हारना कभी सीखा ही नहीं। बस, सफलता के लिये और क्या चाहिये था? बुद्धि कौशल और व्यापार-पटुता ने भी खूब साथ दिया। स्पष्ट विचार करने वाली मानसिक भूमि और दूर की स्पष्ट कल्पना करने वाली सम्यक् दृष्टि तो स्वभाव से ही आपको प्राप्त है। जिस हृदय में आनन्द, उत्साह और सफलता की भावना तथा कल्पना समाई रहती है, वह हारना और पराजित होना जानता ही नहीं। निराशा और निरुत्साह तो आपके पास जा ही नहीं सकते। परम आशामय और उत्साहमय हृदय आपको सदा सफलता की ओर ही प्रेरित करता रहा है। सेठ साहब की सफलता का रहस्य इस बात में भी छिपा हुआ है कि आप संसार के सारे बाजारों का मनन बड़े ही ध्यान से किया करते थे। आज सारे देशों की एक-दूसरे से दूरी नहीं के बराबर हो गई है। संसार के एक कोने में घटने वाली एक छोटी-सी घटना का भी असर सहज में ही सारे संसार पर हुये बिना नहीं रहता। इसीलिये सफलता प्राप्त करने के लिये सब ओर समान दृष्टि रखनी और व्यापारिक गतिविधि की सार्वभौम जानकारी रखनी नितान्त आवश्यक है। ताने-बाने की तरह संसार का सारा व्यापार और सारे बाजार एक दूसरे के साथ गुथ-से गये हैं। इसीलिये सेठ साहब ने संसारभर के बाजारों की गति-विधि का गहरा अध्ययन करना शुरू किया। चारों ओर से तार, समाचारपत्र और व्यापारिक रिपोर्टें आप मंगाने लगे। सबका तौल-ताल लगा कर आप व्यापार का रुख बिठाते और सारे संसार में बिछी हुई व्यापार की बसात पर अपने मोहरे ऐसे चलाते कि कभी किसी से मात नहीं खाते। व्यापार-व्यवसाय में सेठ साहब ने कभी हठधर्मी से काम नहीं लिया। लकीर के फकीर आप कभी भी बने नहीं रहे। तभी तो व्यापारिक क्षेत्र में आपने प्रगति की और औद्योगिक क्षेत्र में भी चमत्कार कर दिखाया। एक तो बाजार के रुख के साथ रुख बदलना और दूसरे नये व्यापार को अपनाना दोनों में ही सेठ साहब ने कमाल कर दिखाया। तभी तो अफीम, अलसी, रुई, चांदी, सोना, गेहूँ, गल्ला और नमक तक

में भी आपने प्रवेश किया और सारे बाजार अपने हाथ में करते चले गये। १९१० में कभी सारे बाजार आपके हाथों में खेला करते थे और देशी ही नहीं, किन्तु विदेशी व्यापारी भी आपसे डाह करने लग गये थे। कभी-कभी सारे आपके विरोध में एक होकर षड्यन्त्र भी रचा करते थे। आपकी धाक सारे भारत मे ही नहीं, किन्तु विदेशों में भी जम गई थी।

अनोखी सूझ-बूझ

अफीम के बाजार की एक मनोरंजक घटना यहां देनी आवश्यक है। उससे आप की सूझ-बूझ और दूर दृष्टि का भी सम्यक् परिचय मिलता है। तब इन्दौर का मुख्य व्यापार यही था और सट्टा भी इसी का होता था। इसी में सेठ साहब भी रमे हुये थे। लेकिन, अफीम नशे की चीज है। वह मानवता के लिये अभिशाप है। चीन में जब नवजीवन और नव चैतन्य की लहर पैदा हुई, तब अफीम के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन शुरू हुआ। चीन के नवयुवकों ने उसके विरुद्ध आवाज उठाई। यूरोप के सुधारप्रेमियों ने चीनी युवकों का जोरदार समर्थन किया। यूरोप और अमेरिका के समाचारपत्रों ने भी इस आन्दोलन को उठा लिया। अंग्रेज सरकार पर यह दोषारोपण किया जाने लगा कि वह चीन को अफीमची बनाने में लगी हुई है। इसी आन्दोलन के सिलसिले में यूरोप में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो कर अफीम की खेती और व्यापार पर रोक लगाने की मांग की गई। ब्रिटिश सरकार को भी इसे स्वीकार करना पड़ गया। यहीं से अफीम की खेती और व्यापार की घटती कला शुरू हुई और मालवा का एक मुख्य धंधा चौपट हो गया। यह सर्वथा स्वाभाविक ही होना चाहिये था कि सेठ साहब अफीम के व्यापार से हाथ खींच लेते। लेकिन, इस रोकथाम के कारण एक बार तो बाजार का चढ़ना निश्चित था। सेठ साहब ने इस परिस्थिति से लाभ उठाने का निश्चय किया। १९०९-१० में भारत सरकार ने अफीम की निकासी पर नियन्त्रण रखने के लिये एक्सपोर्ट लाइसैंस की प्रथा का श्रीगणेश कर दिया। सेठ साहब ने बीस-पच्चीस लाख की हुण्डियां अफीम खरीदने में लगा दीं। जगह जगह मुनीम गुमाश्ते खरीदने को भेजे गये। सब चकित थे कि सेठ साहब क्या कर रहे हैं? पर, भाव चढ़ना शुरू हुआ और अफीम की जिस पेटी की कीमत १२-१४ सौ रुपया थी, उसकी कीमत १०-१२ हजार तक पहुँच गई। बस, क्या था? दो-तीन करोड़ पैदा कर लिया। सारे देशवासी चकित रह गये। बड़े-बड़े व्यापारियों ने भी दांतों तले अंगुली दबा ली। इसी पर १३ मार्च १९१० को बम्बई के 'टाइम्स आफ इण्डिया' ने आपको "मर्चेण्ट प्रिंस आफ मालवा" लिखा था। मालवा के निवासी होने से आपको मालवा का व्यापारी बादशाह कहा गया था। सिकन्दर और नैपोलियन की तरह आपने अपनी धीरता, वीरता तथा साहस का परिचय दिया। सेठ साहब के अभ्युदय का प्रभात यहीं से उदय होता है। इस सफलता से सेठ साहब का साहस और उत्साह कई गुना बढ़ गया। व्यापार की गति-विधि की गहरी जानकारी प्राप्त करके निश्चित किये गये धैर्य, साहस और सामर्थ्य में पुरुष जो सफलता प्राप्त कर सकता है, उसका एक समुज्ज्वल उदाहरण सेठ साहब ने उपस्थित कर दिखाया। आपने यह बता दिया कि संसार की गतिविधि से परिचित होना कितना आवश्यक है? इसी के अनुसार अपने व्यापार का रुख रखा जाना चाहिये, साहस व उत्साह का संबल हाथ में रखना चाहिये, जोखिम उठाने में आत्म-विश्वास तथा दृढ़ता से काम लेना चाहिये और अविचल भाव से लक्ष्य पर दृष्टि रखते हुए अग्रसर होना चाहिये।

फिर भी यह निश्चित था कि अफीम के व्यापार को सर्वथा तिलांजलि देनी ही होगी। वह वैसी ही अबाध गति से चल नहीं सकता था। इसीलिये सेठ साहब ने सम्वत १९६८ (सन् १९१०-११) में रुई, अलसी, चांदी और सोने का हाजर-वायदे का सौदा करना शुरू कर दिया। उसमें भी आप जल्दी ही छा गये। सम्वत् १९७० में आपका यह व्यापार उन्नति के शिखर पर पहुंचा हुआ था। १९७१-७२ में तो यह स्थिति आ गई कि

१०-२० लाख की हर रोज हार जीत कर लेना साधारण बात हो गई। कोई भी सौदा कर लेना आपके लिये खेल हो गया। आपकी लेवा-बेची पर बाजार चढ़ने-उतरने लगे। १०-१५ रुपये बाजार को नीचे-ऊपर कर देना आपके लिए कुछ भी मुश्किल न था। आपका दलाल बन कर काम करना भी सेठ बन जाने के लिए बहुत था। आपके दलाल भी आपकी दलाली से लाखों पैदा कर लेते थे। इतनी आय किसी दूसरे धन्धे में सम्भव न थी। इसी लिये लोग आपकी दलाली को भी अपने लिये परम भाग्यशाली मानते थे।

पहले विश्वव्यापी महायुद्ध से पैदा हुई स्थितियों से भी आपने पूरा लाभ उठाया। अनेक बाजारों में तेजी आई। शेयरों के भाव बहुत बढ़ गए। उनसे भी आपने अच्छा धन कमाया। कहते हैं कि भगवान जब देता है, तब छप्पर फाड़ कर देता है। सचमुच ही आपने इसी प्रकार धन कमाया। चारों ओर सफलता ही सफलता दीख पड़ती थी। समुद्र में जाकर समाने वाली नदियों की तरह न मालूम लक्ष्मी की कितनी नदियां आप में आकर समा जाती थीं?

व्यापार-व्यवसाय में समय-सूचकता का विशेष महत्व है। लकीर के फकीर बने रहने से काम नहीं चलता। सेठ साहब ने अपने व्यापार को बदलने और फैलाने दोनों ही में समयसूचकता और सूझ-बूझ से काम लिया। इन्दौर का बम्बई के साथ तो पुराना सम्बन्ध था। इसीलिये वहां तो सेठ साहब की दूकान थी और जोर-शोर से काम भी चलता था। सम्वत् १९७२ में कार्तिक मास में कलकत्ता में भी दूकान खोल दी गई। इसकी कहानी बहुत ही मनोरंजक है।

कलकत्ता में दूकान

आपके कुछ मित्रों ने कलकत्ता में यह विचार किया कि वायसराय पर जोर डालकर आपको 'राजा' का खिताब दिलाया जाना चाहिए। सेठ भजनलालजी लोहिया ने आपको इसी काम के लिये कलकत्ता बुलाया। आप वहां पहुंचे, तो आपके सामने यह प्रस्ताव रखा गया। आपने यह कहकर इनकार कर दिया कि मैं "रावराजा" की पदवी से ही सन्तुष्ट हूं। आपने यह भी कहा कि एक राज्य में दो राजाओं का रहना ठीक न होगा। पर, मित्र सारी भूमि तय्यार कर चुके थे। इसलिये आपका वायसराय के मिलिटरी सेक्रेटरी से मिलना आवश्यक हो गया। उसने बातचीत के सिलसिले में कहा कि इसके लिये कलकत्ता में आपकी दूकान होनी आवश्यक है। अन्यथा, इन्दौर के एजेण्ट और राजा की इसके लिये सलाह लेनी होगी। आपने कहा कि दूकान तो कल ही खोली जा सकती है। वहां से लौटे और दूकान खोलने की चिन्ता में लग गये। पारख कोठी में अजमेर के स्वर्गीय सेठ टीकमचन्दजी सोनी (सर सेठ भागचंदजी सोनी के पिताश्री) की दूकान थी। उसके मुनीम थे रायबहादुर श्रीहरकिशनदासजी भट्टड़। उनके पास आप गये और उनकी चार आना की पत्ती में दूकान खोलने का निश्चय किया। उन्होंने कहा कि कल का दिन तो शुभ नहीं है। इस दिन मुहूर्त्त करना ठीक न होगा। आपने कहा कि मेरे लिये यही ठीक है। उसी कोठी में कुछ हिस्सा खाली था। मुनीमजी ने कहा कि पिछले २०-२५ वर्षों में इस स्थान में कइयों का दिवाला पिट चुका है। आपने कहा कि बस, अपने लिये यही स्थान ठीक है। इन्दौर से ४० लाख रुपया तुरन्त मंगा लिया गया। मुहूर्त्त करने के निमन्त्रण दे दिये गये। दूसरे ही दिन १२ बजे बड़ी धूमधाम से मुहूर्त्त हो गया और दूकान का काम शुरू कर दिया गया। पचास लाख का सौदा पहिले ही दिन हो गया। जब भुगतान का समय आया, तो मुनीमजी ने कुछ पार्टियों को भुगतान करने में आपत्ति की। उनकी साख बिगड़ चुकी थी और दस लाख रकम के डूब जाने का डर था। उस समय के प्रमुख सेठ हरदत्तरामजी चमड़िया ने सबकी जमानत देते हुये कहा कि पहिले ही भुगतान में ऐसा नहीं होना चाहिये। सेठ साहब का एक भी पैसा डूबा नहीं। अफीम की पेटी, कपड़ा, शक्कर, अलसी और जूट के काम में दूकान ने जल्दी ही नाम पैदा कर लिया। जूट की स्वतन्त्र रूप से दलाली करनेवाली

आपकी पहिली भारतीय दूकान थी। नहीं तो यह सारा काम यूरोपियन फर्मों के हाथ में था। भारतीय उनके मातहत काम करते थे। जूट की खेती ९० फी सदी बंगाल और आसाम में ही होती है। किसान अपनी फसल व्यापारी को, व्यापारी कलकत्ता के आढ़तिये को और वह किसी मिल या निर्यात करने वाली फर्म को बेच देता है। आढ़तों का सारा काम अंग्रेजों के हाथ में था। सेठ साहब उसमें प्रवेश करने वाले पहिले भारतीय थे। कलकत्ता में उद्योग व्यवसाय को जमाने की चर्चा तो अगले प्रकरण में की जायगी। यहां इतना ही उल्लेख करना आवश्यक है कि 'राजा' का खिताब लेना तो आपने स्वीकार न किया; किन्तु आपके इस साहस की सराहना चारों ही ओर की गई और कलकत्ता के बाजार में भी आपको राजा की सी प्रतिष्ठा कायम होने में अधिक समय नहीं लगा। जब भी कभी आप कलकत्ता जाते थे, तो हजारों की भीड़ आपके दर्शनों के लिये जमा हो जाया करती थी।

अवसर से लाभ

महायुद्ध में पैदा हुई परिस्थितियों में भी सेठ साहब ने बड़ा लाभ उठाया। उपस्थित अवसर से लाभ उठाना ही तो व्यापारी का काम है। आपने अवसर से लाभ उठाने में कभी चूक नहीं की। अवसर पैदा करना और पैदा हुये अवसर से लाभ उठाना ही कुशल व्यापार है। सेठ साहब कुशल व्यापारी हैं। तभी तो लक्ष्मी की आप पर अपार कृपा हुई। अवसर से लाभ उठाने में आपने समुद्र में से मोती निकालने वाले गोताखोरों को भी मात कर दिया। जहां आप गहरी डुबकी लगाते, वहीं से मोती आपके हाथ लग जाते। जिधर भी आप हाथ पसारते, उधर से ही लक्ष्मी का वरद हस्त बढ़ता हुआ दीख पड़ता। आपकी यह महान सफलता सट्टे के बाजार में ईर्ष्या व डाह का कारण बन गई। अनेक सटोरिये आपके विरुद्ध गुट्ट बना कर एक हो गये। रुई, चांदी, गेहूँ और अलसी सभी के भाव तेजी पर थे। बाजार ने भीषण रूप धारण कर लिया। रुई की खंडी का भाव ७०० पर पहुँच गया था। आपने दिल खोलकर व्यापार किया और आपको निरन्तर लाभ ही होता चला गया। आपने इस वर्ष में एक करोड़ पैदा किया। भारत से बाहर यूरोप और अमेरिका के व्यापारिक क्षेत्रों में भी आपका नाम चमक उठा। आपका यश और कीर्ति चारों ओर फैल गई। सट्टे के बाजार में आपका सिक्का माना जाने लग गया। जिधर भी आपका रुख होता, उधर ही तहलका मच जाता।

सरकार का अनुरोध

यूरोपीय महायुद्ध के कारण रुई, अलसी और चांदी के समान गेहूं के बाजार में भी बहुत तेजी आगई। भाव इतने ऊँचे चढ़ गये कि लोगों में हाहाकार मच गया। सेठ साहब तेजी से खूब खेलते थे। गेहूं के बाजार में भी आप उतर पड़े। सरकार के पास शिकायतें पहुंचाई जाने लगीं कि इस मंहगाई के कारण सेठ हुकमचन्द हैं। उनको रोके बिना यह मंहगाई नहीं रुकेगी। भारत सरकार के गृह सदस्य स्वयं बम्बई आये। सेठ साहब को भी बुलाया गया। बम्बई के गवर्नर के सामने चर्चा हुई। आपसे कहा गया कि "गेहूं तो मनुष्य का खाद्य पदार्थ है। इसके मंहगा हो जाने से उसके लिए घोर संकट उपस्थित हो जायगा। इसका व्यापार आपको इस रूप में नहीं करना चाहिये कि वह इतना मंहगा हो जाय। आपने जो व्यापार किया है, वह लोकहित की दृष्टि से उचित नहीं है।' सेठ साहब ने सहृदयता का परिचय दिया। गवर्नर और गृहमन्त्री का परामर्श आपने स्वीकार कर लिया। अपना गेहूं का सौदा आपने बराबर कर दिया। जो भाव पौने दस का था, वह उतर कर सवा आठ रह गया। डेढ़ रुपया मन उतरने से जनता ने सन्तोष की सांस ली और जानने वालों ने सेठ साहब को धन्यवाद दिया। सेठ साहब ने दिखा दिया कि आप केवल पैसे के लोभी हृदयहीन व्यापारी नहीं हैं।

चांदी और नमक के सम्बन्ध में भी ऐसी ही घटनायें घटीं। गेहूँ की तरह जब चांदी पर आपका ध्यान गया

तब आपने चांदी के पाट भी चारों ओर से खरीदने शुरू कर दिये। चांदी का भाव इतना तेज हो गया कि सरकार भी उसके प्रभाव से अछूती न रह सकी। भारत सरकार के गृह सदस्य ने फिर आपसे अनुरोध किया कि आप चांदी का व्यापार इस बुरी तरह न करें और आपने चांदी के जो बीस हजार पाट खरीद किये हैं, वे सरकार को उचित कीमत पर दे दें। सरकार का अनुरोध स्वीकार करके आपने चांदी का सट्टा भी छोड़ दिया और बीस हजार पाट भी सरकार को बेच दिये। चांदी की तेजी रुक गई। जनता और सरकार दोनों ने सेठ साहब का आभार माना।

व्यापारी की गति राजा की तरह होनी चाहिये। सफल व्यापारी महत्वाकांक्षी सम्राट की तरह दिग्विजय अपना लक्ष्य बना कर मैदान में निकलता है। सेठ साहब का इस समय यही लक्ष्य प्रतीत होता था। ब्राह्मण का भूषण तो सन्तोष हो सकता है, किन्तु राजा और व्यापारी के लिये सन्तोष दूषण है। इसके लिये यह बिलकुल ठीक ही कहा गया है कि "असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः, सन्तुष्टाश्च महीभुजाः।" असन्तोष से तात्पर्य यहां महत्वाकांक्षा से है। जिस महत्वाकांक्षा से सेठ साहब इन दिनों में प्रेरित हो रहे थे, वह जल की धारा की तरह अपना रास्ता बनाये बिना नहीं रह सकती थी। गेहूं और चांदी से तो हाथ खींच लिया गया, किन्तु आपका ध्यान सहसा ही सांभर के नमक की ओर गया? एक दम दस हजार वैगन का आर्डर दे दिया गया और उसके खत्ते भर दिये गये। नमक के बाजार में भारी उथल-पुथल मच गई। उसका भाव एक दम तेज हो गया। जनता में बेचैनी फैल गई। सरकार क्षुब्ध हो गई। युक्तप्रान्त के गवर्नर के सेक्रेटरी और साल्ट कमिश्नर सेठ साहब के पास भेजे गये। सेठ साहब से फिर निवेदन किया गया कि नमक तो मनुष्य और पशुओं का भी आवश्यक खाद्य पदार्थ है। इसका आपको इतने बड़े पैमाने पर व्यापार नहीं करना चाहिये कि यह आवश्यक पदार्थ भी सबको सुलभ कीमत पर प्राप्त न हो सके। इसीलिये आपने जितना रुपया भरा है, वह लौटा लीजिये।" सेठ साहब ने अनुरोध स्वीकार कर लिया। नमक का भाव उतर गया। महत्वाकांक्षी यदि रुद्र रूप धारण कर लेता है, तो नादिरशाह और औरंगजेब की तरह इतिहास में अपने को बदनाम कर लेता है; नहीं तो महत्वाकांक्षा पर सहृदयता का अंकुश रखने वाला वीर प्रतापी और पराक्रमी सम्राट् अकबर और शाहजहां की तरह नाम पैदा कर जाता है। सेठ साहब ने भी यह बता दिया कि आपकी महत्वाकांक्षा भी सहृदयता से शून्य नहीं थी। मानवता का उत्पीड़न करके धन पैदा करना आपने अपने जीवन का लक्ष्य नहीं बनाया था।

नमक के बाद सेठ साहब का ध्यान भड़ौंच जीन की ओर गया। संवत् १९७४ में आपने इसका व्यापार किया और लगभग पौन करोड़ का नफा पैदा किया। इससे आपका यश भी खूब बढ़ा। लोग यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि गेहूँ, चांदी और नमक के बाद सेठ साहब किसी और क्षेत्र में कुछ कर सकेंगे। जब आपने भड़ौंच जीन में पौन करोड़ की आय कर दिखाई, तब विरोधी भी आपका लोहा मान गये। लाख-लाख गांठ का साथे पोने का व्यापार कर लेना आपके लिये बांये हाथ का खेल हो गया। दलालों और व्यापारियों में आपके व्यापार की धूम रहती थी। बाजार का भाव जानने के लिये आपके व्यापार का रुख देखा जाता था।

संवत् १९७७ में आपका भाग्य व पुण्य और अधिक चमक उठा। इस वर्ष आपने रुई का सट्टा खूब दिल खोल कर किया। शुरू-शुरू में सेठ साहब को ५० लाख का घाटा दीख पड़ने लगा। बम्बई के व्यापारी भी आपके विरोधी बन गये। पर, आपने साहस, धैर्य और विश्वास नहीं खोया। बाजार ने रुख पलटा और तेजी पर जाना शुरू हो गया। परिणाम उलटा ही हुआ। पचास लाख का नुकसान दीखते-दीखते नब्बे लाख का मुनाफा हो गया। विरोधी भी चकित रह गये।

कुछ प्रसंग

इन्हीं प्रसंगों में एक बार ऐसा भी हुआ कि बम्बई के व्यापारियों की शिकायत पर सेठ साठब से यह भी कहा गया कि यदि आप बाजारों में उथल-पुथल करना नहीं छोड़ेंगे, तो सरकार को आपके लिये विशेष कानून बनाना पड़ेगा और सट्टे के भावों का नियन्त्रण करना पड़ेगा। आपने वाइसराय के प्रतिनिधि से साफ ही कह दिया कि अकेले मेरे लिये कानून बनाया जाना संभव नहीं है। आपने और भी दिल खोल कर सट्टा किया और बाजार आपके हाथ ही रहा। उस समय के सुप्रसिद्ध सटोरिये मैसर्स मथुरादास माधवदास, ऊमर सोभानी, शापुरजी भारुचा आदि बीस-तीस फर्में कई बार आपके विरोध में एक हो गईं। परन्तु आपने उनसे एक बार भी मार नहीं खाई। अफीम, रुई, चांदी, शेयर, अलसी, गेहूं आदि सभी का सट्टा आपने किया। खोने की चिन्ता आपने कभी की ही नहीं। दो-चार महीने में, नहीं तो दूसरे वर्ष में खोये हुये से भी कहीं अधिक आप कमा लेते थे। आपका स्वयं यह कहना है कि आपको १३ वर्ष की आयु से ही सफलता मिलनी शुरू हो गई थी। अनुभव से भी अधिक आपका विश्वास प्रकृति, कर्म, भाग्य और बुद्धि पर है। पच्चीस वर्ष की आयु के बाद विशेष सफलता प्राप्त की। सम्वत् १९६० से २००० तक के वर्ष आपके लिये विशेष भाग्यशाली सिद्ध हुये। बुद्धि ने विशेष साथ दिया। जो कुछ भी सूझता था, वह अनुकूल ही पड़ता था।

एक बार की बात है कि आप बनारस में थे। आपको स्वप्न में जान पड़ा कि आपको शीघ्र ही विशेष लाभ होने वाला है। आप कलकत्ता पहुँचे और वहां से बम्बई। बाजार नीचे गिर रहा था। ३०० पर बाजार आ गया था। आपने ७०० से खरीदी शुरू की थी। सब ओर यही चर्चा थी कि इस बार आप बचेंगे नहीं। पर, आपको भी क्या सूझा? आपने जापान और अमेरिका में लेवावेची शुरू करदी। अमेरिका में खरीदी और जापान में बेची का परिणाम यह हुआ कि अमेरिका में भाव चढ़ने शुरू हुये। यहां भी उसका असर पड़ा। बढ़ते-बढ़ते भाव १००० से भी ऊपर पहुँच गया। सब दंग रह गये। आपने हिसाब किया, तो आपको चालीस लाख देना था और १०-१२ करोड़ लेना था। मुनीम की राय यह हुई कि चालीस लाख भी क्यों दिया जाय, जब कि सामने वाले दिवाला निकाल कर देने से मुकर जाने वाले हैं। आपकी सम्मति यह हुई कि अपने को तो देना ही चाहिये और बाद में लेने का तकाजा करना चाहिये। ४० लाख चुका कर आपने १०-१२ करोड़ की मांग की और आधे पौने में सबसे निपटारा कर लिया। कई करोड़ का लाभ हुआ। बम्बई के बाजार में तूफान-सा आ गया। ऐसा कई बार हुआ। एक बार तो प्रायः सभी प्रतिस्पर्धी फर्मों का काम फेल हो जाने से बम्बई के दलाल अपना धन्धा डूब जाने के भय से आपकी दूकान पर टूट पड़े। कोई १२०० दलालों को आपने ४-५ लाख बांट कर सन्तुष्ट किया। बम्बई से इन्दौर लौट कर यहां के भी सब कर्मचारियों को तीन-तीन मास का वेतन इनाम में दिया गया। साहस के साथ उदारता भी आप में कूट-कूट कर भरी हुई है।

कलकत्ता में भी आप इसी प्रकार बाजार को अपने हाथों में नचाया करते थे।

सट्टे से घृणा

इस प्रकार लाखों का वारा-न्यारा करने वाले सेठ साहब के हृदय में धार्मिक भाव भी अंकुरित हो रहे थे। व्यापार में इतना अधिक रम जाने पर भी वह आपके स्वभाव का अङ्ग नहीं बन सका। उसमें आप डूबे नहीं, अपितु उसको आपने अपने हाथों में रखा। यही कारण है कि जब सट्टे के प्रति उपराम वृत्ति पैदा हुई, तो उससे पीछा छुड़ाना आपको कठिन नहीं हुआ। फिर भी यह कुछ कम आश्चर्य की बात न थी कि जो सफल व्यापारी सभी बाजारों पर छाया हुआ था, जो सट्टे के बाजार का बेताज का बादशाह था और जिसके तेज से व्यापार में समुद्र के ज्वार-भाटे के समान उतार-चढ़ाव होता था, वह एक दम सट्टे से हाथ खींच ले। बात यह थी कि सेठ

साहब किसी लहर में पड़ कर सट्टे के शिकार न हुये थे। अपने विवेक को जागृत रखते हुये ही आप सट्टे-फाटके का खेल खेलते थे। उसकी बुराइयों की भी आपको स्पष्ट कल्पना थी। आप जानते थे कि यह कोई श्रेष्ठ-व्यापार नहीं है। इन दबी हुई भावनाओं को जागृत होने का समय तब मिला, जब इन्दौर में सम्वत् १९७१ में अखिल भारतवर्षीय अग्रवाल महासभा का चौथा वार्षिक अधिवेशन अमलनेर के यशस्वी उद्योगपति श्रीयुत प्रतापजी सेठ के सभापतित्व में हुआ। उसमें सट्टे के विरोध में भी एक प्रस्ताव रखा गया था। स्वागत समिति के मन्त्री श्री हजारीलालजी जैन ने यह प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये कहा था कि "मेरी समझ से अग्रवाल जाति के तीन-चौथाई लोग इस फाटके के धन्धे में फंसे हुये हैं। मारवाड़ी अग्रवालों में इसका अधिक जोर है। कलकत्ता और बम्बई में तो यही मुख्य व्यापार है। लोग कह सकते हैं कि महासभा तो हमारा व्यापार ही चौपट करना चाहती है। परन्तु सच्चे व्यापार को कौन रोकता है? प्रस्ताव में भी तो उसका निर्देश किया गया है। फाटके की बदौलत एक आदमी तो करोड़पति अवश्य बन जाता है, किन्तु कितने ही करोड़ों से हाथ धोकर माथे पर हाथ धरे कर रह जाते हैं। सम्भव है कि किसी समय रेल आदि न होने से इसको चालू किया गया हो। इसीलिये एक मास की नियत मुद्दत पर माल खरीदा बेचा जाता था; जिससे कि ठीक अवधि में उसको यथास्थान पहुँचा दिया जा सके। यही प्रथा बिगड़ कर अब किस भयानक रूप में जा पहुँची है। घर में तो रुई की एक गांठ भी नहीं है और बेची जाती हैं हजारों। कपड़े आदि का सट्टा भी इसी प्रकार किया जाता है। सट्टे को फाटके का रूप मिल कर वह एक जुआ बन गया है और उसको रोकना आवश्यक हो गया है। जुये से पाण्डवों की जो दुर्दशा हुई, उसको कौन नहीं जानता। कोरा प्रस्ताव पास कर लेने से तो उसका अन्त न होगा। यदि यहां पधारे हुये एक सौ भाई भी उसको छोड़ने की प्रतिज्ञा कर सकें, तो उसका थोड़े ही दिनों में सहज में अन्त हो सकता है।"

सेठ साहब भी सभामण्डप में उपस्थित थे। आपसे प्रस्ताव पर कुछ बोलने के लिये कहा गया। आपने अग्रवाल न होते हुये भी उसका समर्थन अत्यन्त जोरदार शब्दों में किया। आपने कहा कि "आप लोगों को यह बड़े ताज्जुब की बात मालूम होती होगी कि जिस काम को मैं स्वयं करता हूँ और जिसमें मैं स्वयं रंगा हुआ हूँ, उसीका खण्डन करने के लिये मैं यहां खड़ा हूँ। इस प्राणी के लिये संसार में चार पदार्थों धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को सिद्ध करने के लिये धर्मग्रन्थों में कहा गया है। हमारे जैन धर्मशास्त्रों में इस भूगोल में दो सूर्य और दो चांद माने गये हैं। दो सूर्य-चाँद ही नहीं हैं, अपितु चारों दिशाओं में चार दीपक रख दिये गये हैं, जिनसे इनके प्रकाश में मनुष्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों का सम्पादन कर सके। कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि मैं तो अग्रवाल नहीं हूँ। मैं अग्रवालों की सभा में क्यों बोल रहा हूँ। पर, भाइयो! यह अकेले अग्रवालों की ही नहीं, मेरी भी सभा है। मैं तो सब भाइयों का चाकर हूं। मेरी योग्यता नहीं और न मेरा चरित्र ही इतना ऊंचा है कि मैं आप विद्वानों को उपदेश दे सकूं। थोड़ा-बहुत अनुभव मैंने अवश्य ही प्राप्त किया है। उसे ही आप सबके सामने उपस्थित करना चाहता हूँ। मेरा यह अनुभव है कि सट्टा या फाटका न केवल हमारे इस देश हिन्दुस्तान में, किन्तु यूरोप और अमेरिका में भी जोरों पर है। पर, हमें तो अपने पैरों के सामने देखना है, दूसरों की ओर नहीं। उनमें एकता बहुत है। वे बड़ी-बड़ी कम्पनियां बना कर दुनिया में फायदे से काम करते हैं। मै इसी काम में रंगा हूँ। इसी से मैंने सारी सम्पत्ति पैदा की है। पर, दिल से मैं इससे घृणा करता हूं और भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सद्बुद्धि दें कि इससे मेरा जल्दी ही पिण्ड छूट जाय। अपने लिये तो मैं भगवान से प्रार्थना करता ही हूं, किन्तु अपनी सन्तानों को भी इसे एक दम छोड़ जाने को कह जाऊंगा। हमारे देश के कितने ही युवक इस अनर्थ में फंस कर इज्जत-आबरू सब कुछ खो देते हैं। घर वालों से वे चोरी तक करते हैं। नौकर गुमाश्ते आदि भी चोरी के चक्कर में इसी के कारण पड़ जाते हैं। मैं इसे निहायत घृणा की दृष्टि से देखता हूँ।

धन पैदा करना जितना कठिन है, उससे भी कहीं अधिक कठिन है उसकी रक्षा करना। इसलिये सच्चे व्यापार में ही सन्तोष मानना चाहिये। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मुझे ऐसी बुद्धि दें कि मैं जल्दी ही इस बुरे व्यापार से छुट्टी प्राप्त कर लूं।" सट्टे-फाटके में रंगे होने पर भी इस भाषण से सेठ साहब के मनोगत भावों का पूरा पूरा पता मिल जाता है। सुनने वाले चकित रह गये कि आप इस व्यापार को छोड़ना चाहते हैं, जब कि करोड़ों धन आपने इसी से पैदा किया है।

इस भाषण के बाद भी सट्टे का रंग आप से जल्दी उतरा नहीं। चार-पांच वर्ष और उसी में बीत गये। उसकी बुराई को स्वीकार करते हुये भी आपने उसको छोड़ने की न तो घोषणा की थी और न उसके लिये शपथ ही ली थी। सम्बत् १६८२ तक सट्टे में काफी उथल-पुथल रही। विलायत और अमेरिका के वायदे के व्यापार में विशेष घटा-बढ़ी हुई। सेठजी भी घाटे के चक्कर में आगये और आपको भी बहुत कुछ खो देना पड़ा। अग्रवाल महासभा में प्रगट किये गये विचारों को इससे फिर बल मिला। सम्बत् १६८२ में आप किसी काम से बम्बई गये हुये थे। वहां ही आपको सट्टे से हाथ खींच लेने की आत्मप्रेरणा हुई। फिर भी आपने केवल पांच वर्ष के लिये ही उसको छोड़ने का संकल्प किया। इस संकल्प पर भी सुनने वाले आश्चर्यचकित रह गये। अनेकों को तो सुनने पर विश्वास भी न हुआ। पर, संस्कारी पुरुष के लिये कोई संकल्प कर लेना और उसको दृढ़ता के साथ निभा लेना कठिन नहीं है। सेठ साहब ने सट्टा-फाटका यहां तक छोड़ा कि भावों के तार मंगाने भी बन्द कर दिये। तब तो और अधिक आश्चर्य प्रगट किया जाने लगा। साहस के समान संयम के भी आप महाधनी सिद्ध हुये। पांच वर्ष तक संकल्प पूरी तत्परता के साथ निभाया गया।

सट्टे का परित्याग

पांच वर्ष पूरे हुये नहीं कि सेठ साहब फिर मैदान में उतर आये। पर, टूटी हुई शृंखला फिर जुड़ न सकी। अच्छा होता कि उसको जोड़ने का प्रयत्न किया ही न जाता। समय और परिस्थितियों ने आपका साथ न दिया। वे भी मानो आन्तरिक प्रेरणा के ही अनुकूल बन गईं। लाभ न होकर सेठ साहब को हानि ही उठानी पड़ी। अनुकूलता न देख कर आपके हृदय में फिर उपराम वृत्ति पैदा हुई। आपके हितैषियों ने भी आपको उससे अलग हो जाने की ही सलाह दी। परिणाम यह हुआ कि आपने १६६० में आयुभर के लिये सट्टे का परित्याग कर दिया। उसका विचार तक करना आपने छोड़ दिया। वर्षों की बीमारी इस बार ऐसी छूटी कि फिर आक्रमण न कर सकी। 'बीमारी' इसलिये कि सट्टे का व्यसन वस्तुतः रोग ही है, जो खाते-पीते, सोते-जागते चौबीसों घण्टे घेरे रहता है। उसी के संकल्प-विकल्प में आदमी डूबा रहता है। चोट खाकर भी आदमी संभलता नहीं। यह असाध्य-सी बीमारी व्यसन ही तो है। कितने ही करोड़पति इसी के कारण कंगाल बन गये। सेठ साहब ठीक समय पर संभल गये। वह आन्तरिक प्रेरणा थी। अग्रवाल महासभा में प्रगट किये गये विचारों को मूर्त रूप धारण करने में ग्यारह वर्ष लग गये। इसी से इस रोग के असाध्यरूप का परिचय मिलता है। मृगतृष्णा के पीछे भागनेवाले हरिण की तरह मनुष्य भी सट्टे की मृगतृष्णा में फंसा रहता है। पर, आपने अपने पर संयम से नियन्त्रण पा लिया और सट्टे की मोहमाया से बाहर निकल ही तो आये।

दिग्विजय

सेठ साहब का व्यापारिक जीवन अविचल साहस, अटूट धैर्य, अंगद की-सी दृढ़ता, स्पष्ट दूरदर्शिता, अनोखी सूझ-बूझ, अक्षय-निधि पैदा करने की तीव्र महत्वाकांक्षा और उसको पूरा करने के अथक उद्योग की दृष्टि से आदर्श और अनुकरणीय है। सफलता आपने जो प्राप्त की, उसे क्षत्रियों की भाषा में 'दिग्विजय' कहा जा सकता है। सिकन्दर और नैपोलियन भी अन्त में पराजित हो गये, किन्तु आपने पराजय स्वीकार नहीं की। मुंह मोड़ना

आपने सीखा नहीं। वैश्य के लिये कहा गया है कि वह सैकड़ों हाथों से पैदा करे। परन्तु आप तो सहस्रबाहु हो कर व्यापार के क्षेत्र में उतरे और अतिरथी के समान आपने विजय-प्राप्त की। कमाने से अधिक व्यापारी की खोने के समय परीक्षा होती है। वह उसके लिये वही काल होता है, जो रामचन्द्र के लिये राजसूय यज्ञ की पूर्ण तय्यारी हो जाने के बाद बनवास के लिये था। सेठ साहब के व्यापारिक जीवन में भी ऐसे अवसर आये और उनको धैर्य, साहस व शान्ति के साथ पार करने में ही तो आपकी सफलता का रहस्य छिपा हुआ है। 'जोखिम' उठाना इसी का तो नाम है। जो व्यापारी जोखिम नहीं उठा सकता, वह सफल भी नहीं हो सकता। खोने के समय ही जोखिम उठाया जाता है। यह वह फिसलन है, जहां से पैर रपटने के बाद संभलना प्रायः असम्भव हो जाता है। पैर रपटा कि हर गंगा की सी स्थिति उस व्यापारी की हो जाती है, जो इस नाजुक अवसर पर धैर्य व साहस खो बैठता है। सेठ साहब ने ऐसे अवसरों पर ऐसे धैर्य व साहस से काम लिया है कि किसी ने कभी आपके चेहरे पर विषाद की रेखा तक नहीं देखी। चिन्ता ने कभी आपको सताया नहीं। हृदय आपने छोटा किया नहीं। आत्मविश्वास की मूर्ति बन कर आप अत्यन्त विपरीत और सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितियों में से पार निकल गये। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो यह उपदेश दिया है कि—

"सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।"

पाप का तात्पर्य यहां निराशा, निरुत्साह तथा असफलता समझना चाहिये। व्यापार में इसी भावना से आपने पदार्पण किया था। इसीलिये करोड़ों की सम्पत्ति घर में आने पर भी आप 'विगतस्पृह' और खोने का अवसर उपस्थित होने पर भी 'अनुद्विग्न' बन कर धीर-वीर बने रहते थे। 'दुःखेष्वनुद्विग्नमनः सुखेषु विगतस्पृहः' के ढांचे में ही मानो आपने अपना जीवन ढाला हुआ है। आपके व्यापारिक जीवन की सफलता का यही रहस्य है।

मालवा के व्यापारी जगत में आप पहिले करोड़पति हैं। इसीलिये बोलचाल की भाषा में आपको 'धनकुबेर' नाम दे दिया गया।

: ४ :

उद्योग-धंधे

"सर सरूपचन्दजी हुकमचन्दजी, जिनकी अध्यक्षता में इस प्रदर्शनी की आयोजना हुई है, भारतीय उद्योग-धन्धों का श्रीगणेश करने वालों के पथप्रदर्शक या अगुआ हैं। हुगली के तट पर बनी हुई सबसे बड़ी जूट मिल के वे व्यवस्थापक, संचालक और मालिक हैं। कलकत्ता के उपनगर में बिजली से चलने वाला उनका फौलाद का जो कारखाना है, उसको देख कर मुझ जैसा वैज्ञानिक भी हैरान हो जाता है। जिस समय हम लोगों ने स्वदेशी उद्योग-धन्धों के महत्व को ठीक-ठीक समझा भी न था, उससे भी बहुत पहिले सर हुकमचन्दजी ने अपनी दूरदर्शिता से कपड़े की मिलों का महत्व जान लिया था और उनका श्रीगणेश भी कर दिया था। उनकी औद्योगिक हलचलों का क्षेत्र सिर्फ महाराज होलकर के राज्य तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सारे देश में फैला हुआ है। यही कारण है कि आज कलकत्ता और बम्बई भी उनके अदम्य उत्साह तथा कार्यकुशलता का वैसा ही परिचय दे रहे हैं, जैसा कि उनका यह इन्दौर नगर।"

ये शब्द सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक, स्वदेशी-आन्दोलन के अगुआ और महान देशभक्त आचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र राय ने १९३३ के जनवरी मास में इन्दौर में आयोजित स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये कहे थे। इसी प्रकार १९३० में मद्रास में भी स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये आचार्य महोदय ने कहा था कि "सर हुकमचन्दजी ने यद्यपि कालेज की शिक्षा प्राप्त नहीं की है, तो भी अपने साहस और बुद्धिबल से आपने कलकत्ता के पास बिजली से चलने वाला स्टील बेल्डिंग कारखाना खोल दिया है। हिन्दुस्तान में सफलतापूर्वक चलने वाला इस देश का यह एक ही कारखाना है।' आचार्य राय अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक थे। कलकत्ता का सुप्रसिद्ध दवाइयों का बड़ा कारखाना "बंगाल केमिकल्स एण्ड फार्मास्युटिकल वर्क्स" आपका ही स्थापित किया हुआ है। स्वदेशी उद्योग-धन्धों में हाथ डालने वाले हर व्यक्ति को आप प्रोत्साहन दिया करते थे। वैज्ञानिक अत्यन्त रूखी प्रकृति का व्यक्ति होता है। सहज में वह किसी की सराहना नहीं करता। आचार्य राय भी इसके अपवाद नहीं थे। इसलिये उनके मुंह से सेठ साहब की सराहना में कुछ कहा जाना बहुत अर्थ रखता है। वे सेठ साहब को "देश के करोड़ों क्षुधार्थियों को अन्न देने वाला" कहा करते थे। स्वदेशी उद्योगधन्धों का अभिप्राय भी यही था कि स्वदेश का पैसा स्वदेश में रहे, देशवासी भूखे न मरें और देश में कंगाली को पैर पसारने का अवसर न मिले। व्यापार-व्यवसाय में सेठ साहब ने करोड़ों का जो लाभ प्राप्त किया, वह उनके लिये व्यक्तिगत रूप में जितना समृद्धिशाली सिद्ध हो सकता था, उतना दूसरों के लिये नहीं। लेकिन, औद्योगिक विकास से प्राप्त होने वाली समृद्धि से जहां हजारों की भूख मिटती थी, वहां देश भी समृद्ध होता था। इसीलिये सेठ साहब का औद्योगिक स्वरूप व्यापारिक स्वरूप से कहीं अधिक आकर्षक और महान् है। आचार्य राय सरीखों का ध्यान भी उसकी ओर आकर्षित हुये बिना नहीं रहा।

मालवा मिल

मालवे में अफीम के व्यापार का बन्द होना भी कितना श्रेयस्कर हुआ? उसका ही यह परिणाम हुआ कि सेठ साहब की व्यापारिक प्रतिभा और कल्पना की जलधारा को अपने लिये मार्ग ढूंढ निकालना आवश्यक हो गया। यदि कहीं सेठ साहब अफीम के व्यापार में ही फंसे रहते, तो उद्योग-धन्धों की ओर आपका ध्यान न गया होता और इन्दौर का कदाचित औद्योगिक केन्द्र के रूप में ऐसा विकास भी न हुआ होता। सेठ साहब ने व्यापारिक क्षेत्र की तरह औद्योगिक क्षेत्र में भी कमाल कर दिखाया। इसीलिये आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने भी आपकी भूरि-भूरि सराहना की। 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः' का कथन औद्योगिक क्षेत्र में भी आप पर चरितार्थ हुआ। औद्योगिक क्षेत्र में चमत्कारपूर्ण सफलता प्राप्त करने का योग भी आपकी जन्मपत्री में ही लिखा हुआ था। स्वभाव से आप उद्यमी ही नहीं, किन्तु उद्योगशील भी हैं। आपके हृदय में यह भावना पैदा हुई कि मालवे की रुई का कपड़ा यहां ही क्यों न बनाया जाय? यहां की रुई विलायत जाकर वहां से यदि उसका कपड़ा बनकर आ सकता है और वहां के लोग उसको यहां बेच कर धन पैदा कर सकते हैं, तो उसका कपड़ा यहां ही क्यों न बनाया जाय और लाभ उठाया जाय? यह विचार और कल्पना ही इन्दौर में खड़ी हुई नौ सूती मिलों की जननी यानी जन्म देने वाली है। अपनी इस कल्पना को मूर्त रूप देने के लिये सेठ साहब ने सन् १९०० में इन्दौर मालवा कम्पनी कायम की। कम्पनी की पूंजी पन्द्रह लाख रखी गई। जमीन भी ले ली गई। दो कठिनाइयां थीं। एक तो यह कि आपको स्वयं तो मिल-संचालन का कुछ अनुभव न था और दूसरे राज्य में लिमिटेड कम्पनियों की रजिस्ट्री होने का कानून न था। पहिली कठिनाई बम्बई के सेठ सर करीमभाई इब्राहीम को कम्पनी का मैनेजिंग एजेण्ट नियत करके और दूसरी कठिनाई कम्पनी को बम्बई में रजिस्टर्ड करके वहां ही उनका केन्द्रीय कार्यालय कायम करके हल की गई। सेठ साहब स्वयं कम्पनी के स्थायी डायरेक्टर नियुक्त हो गये। अपनी सीमा को जानते हुये दूसरे के अनुभव से लाभ उठाने वाला कभी भी धोखा खा नहीं सकता। मिल निरन्तर उन्नति करती चली गई। उसकी उन्नति से औरों को भी प्रोत्साहन मिला। यूरोप के पहिले महायुद्ध में कम्पनी के शेयर का भाव ६००) तक चला गया था।

हुकमचन्द मिल

मालवा मिल की सफलता से सेठ साहब इतने उत्साहित हुये कि आपने अपनी ऐजेंसी में मिल खोलने का निश्चय किया। ठीक चार ही वर्ष बाद १९१३ में आपने १५ लाख की पूंजी से एक और मिल खोल ली, इसका नाम 'दि हुकमचन्द मिल्स' रखा गया। इसका शिलारोपण और उद्घाटन इन्दौर के तत्कालीन महाराजा साहब सर तुकोजीराव होलकर के हाथों से सम्पन्न कराया गया। महायुद्ध के कारण इसके माल की खपत भी खूब हुई और इसके शेयर की कीमत भी नौ सौ रुपयों पर पहुँच गई। दूसरे महायुद्ध में इसके शेयर की कीमत २४००) पर जा पहुंची थी। इन दिनों में एक वर्ष का मुनाफा भी एक करोड़ रुपया हुआ था। जिस मिल की मूल पूंजी केवल १५ लाख रुपया थी, उसका एक वर्ष का मुनाफा एक करोड़ रुपया होना असाधारण सफलता थी। इस मिल के काशमीरे कपड़े और रंगीन माल ने सारे ही देश में नाम पैदा किया है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, बंगाल में ही नहीं, किन्तु अफगानिस्तान तथा बिलोचिस्तान तक में इसके कपड़े की अच्छी मांग और अच्छी खपत थी।

मिल ने सुव्यवस्था और कार्यपटुता से इतनी पूंजी जमा कर ली कि सन् १९१९ ईस्वी में इसके रिजर्व फण्ड से इसी मिल की शाखा के रूप में एक मुनाफा मिल और खोल दी गई। श्री केशोरावजी पुराणिक और जैनजातिभूषण लाला हजारीलालजी जैन ने प्रारम्भिक दिनों में इसका कार्य इतनी तत्परता के साथ चलाया कि

सेठ साहब ने प्रसन्न होकर आप दोनों को हुकमचन्द मिल्स के क्रमशः १०० और ५० फुल्ली पेड अप शेयर्स इनाम में दिये। अन्य कर्मचारियों को भी डबल बोनस दिया गया। इस मिल में कुल ११७६ करघे और ४०५१२ तकुये हैं। इसकी गणना भारत की प्रथम श्रेणी की मिलों में की जाती है। श्रीमान् आर. सी. जाल एम. ए. एल. एल. बी. इसके सफल और कुशल मैनेजर हैं।

राजकुमार मिल

इस दूसरी मिल की स्थापना के तीन ही वर्ष बाद एक और मिल खड़ी की गई। उसका नाम अपने सुयोग्य पुत्र भैयासाहब श्री राजकुमारसिंहजी के नाम पर "दि राजकुमार मिल्स" रखा गया। प्रारम्भ में मिल का काम कुछ ढीला रहा। शेयरों का भाव गिर कर ४० रु० पर आ गया, किन्तु बाद में भाव चढ़ा और इस महायुद्ध में वह ५०० रु० तक बढ़ गया।

उज्जैन में हीरा मिल

इन्दौर के बाद आपका ध्यान उज्जैन की ओर भी गया। उज्जैन भी वस्तुतः मालवा का ही हिस्सा है। फिर भी वह ग्वालियर राज्य के आधीन था। स्वर्गीय ग्वालियर महाराज माधवराव सिन्धिया स्वदेशी उद्योगधंधों के अन्यतम समर्थक थे। ग्वालियर में अनेक उद्योग उनके संरक्षण में शुरू हो चुके थे। उज्जैन की ओर भी उनका ध्यान था। सेठजी पर भी उनकी कृपा थी। उन्होंने ही सेठजी को उज्जैन में मिल की स्थापना करने के लिये प्रेरित किया था। आपने हीरा मिल्स की स्थापना का उपक्रम किया ही था कि सन् १९२६ में महाराज साहब स्वर्ग सिधार गये। इसीलिये मिल का काम कुछ दिन के लिये रोक देना पड़ा। अन्त में सन् १९२८ सम्वत् १९८५ कार्तिक वदी ३ को महारानीजी साहिबा श्री चिनकूराजा साहिबा (वर्तमान महाराज की पूजनीया मां साहिबा) के हाथों से मिल का शिलान्यास बड़े समारोह के साथ कराया गया। महारानी साहिबा स्पेशल गाड़ी से उज्जैन पधारी थीं। इसमें सारा सामान सर्वथा नवीन ढंग का लगाया गया। मिल का बारीक और रंगीन कपड़ा खूब पसंद किया गया।

उज्जैन में विनोद मिल्स की भी स्थापना हो चुकी थी; किन्तु उसकी उन्नति का श्रेय भी सेठ साहब को है। मिल के मालिक झालरापाटन के श्री विनोदीरामजी बालचन्दजी के यशस्वी स्वत्वाधिकारी राय-बहादुर, वाणिज्यभूषण, साहित्यमनीषि रायबहादुर सेठ लालचन्दजी सेठी का शुभ विवाह सेठ साहब की पहिली कन्या श्रीमती रत्न प्रभाबाईजी के साथ हुआ था। इसीलिये सेठ साहब उनके काम को भी अपना ही काम समझते थे। १९१४ में महायुद्ध शुरू होने पर मिल की हालत में अन्य मिलों के समान कुछ सुधार या उन्नति न हुई। यह सेठ साहब को बहुत बुरा मालूम हुआ। आपने सेठीजी को अनेक लम्बे-लम्बे पत्र लिखकर स्वयं अपने हाथों में मिल का काम संभालने का आग्रह किया। आपने यहां तक लिख दिया कि काम संभालने के लिये पांच-दस लाख, जितने की भी जरूरत होगी, मैं मदद करने को तैयार हूं। पर, मिल का काम एक दम संभालना चाहिये। आपके लिखने का प्रभाव हुआ और आपने १२ जून १९१८ को स्वयं उज्जैन जाकर मिल का काम संभाल लिया। मिल का प्रबन्ध संभला कि माल भी अच्छा पैदा होने लगा, शेयरों की कीमत भी बढ़ने लगी और इतना लाभ हुआ कि पास की एक दूसरी मिल 'क्षिप्रा मिल' को भी ४ लाख ६१ हजार में खरीद कर 'दीपचन्द मिल्स' के नाम से चालू किया गया और विनोद मिल के अन्तर्गत ही उसका प्रबन्ध ले लिया गया। सेठ साहब की प्रेरणा का कितना अद्भुत परिणाम हुआ? डूबती हुई मिल ने एक और डूबी हुई मिल का भी उद्धार कर दिया।

कलकत्ता में जूट मिल

इन्दौर और उज्जैन में प्राप्त की गई इस सफलता से भी अधिक बड़ी सफलता वह थी, जो सेठ साहब

ने कलकत्ता के औद्योगिक क्षेत्र में प्राप्त की थी। कलकत्ता की पहिली यात्रा में वहां कोठी तो खोल दी गई थी और जूट-पाट की एजेन्सी का काम भी शुरू कर दिया गया था। लेकिन, आपके मन में जूट की मिल खोलने का विचार भी पैदा हो चुका था। हुकमचन्द मिल के मुनाफे से १९१९ में एक और मिल खोल देने के बाद आपका उत्साह बहुत बढ़ गया। उसके बाद आप कलकत्ता गये, तो इस विचार को मूर्त रूप देने का निश्चय किया। सबसे पहिले सन् १८५५ में श्रीलंका के एक उद्योगपति श्री आकलैण्ड ने कलकत्ता में जूट मिल खोली थी। तब से अंग्रेजों या विदेशियों का ही जूट मिलों पर एकाधिकार था। जूट मिल एसोसियेशन में भी उन्हीं का बोलबाला था। सच तो यह है कि इस उद्योग पर एकाधिकार बनाये रखने के लिये ही इस एसोसियेशन का संगठन किया गया था। कलकत्ता में जूट का काम इतनी तेजी पर था कि केवल सन् १९१० में जूट की नौ नई मिलें स्थापित हुई थीं। जूट के उद्योग में इतनी उन्नति होने पर भी भारतवासियों का उसमें प्रवेश नहीं हो सका था। १९१९ तक यही स्थिति रही। उस वर्ष कलकत्ता जाने पर सेठ साहब ने नैहाटी में अपनी जूट मिल खोलने का निश्चय किया। दी हुकमचन्द जूट मिल्स नाम से ८० लाख की पूंजी की कम्पनी खड़ी की गई। सेठ साहब का नाम कम्पनी की साख के लिये काफी था। समाचार पत्रों में कोई विज्ञापन नहीं किया गया। दलालों को दलाली नहीं दी गई। कम्पनी के कागज भी तैयार न हुये थे। सब ओर धूम मच गई। बात की बात में ४॥ करोड़ के शेयरों की दरख्वास्तें आ गईं। पांच की मांग करने वाले को मुश्किल से एक ही शेयर दिया जा सका। कोई छोटा काम करना तो सेठ साहब जानते ही न थे और सफलता मानो हाथ जोड़े आपके द्वार पर खड़ी रहती थी। इसके मामूली शेयर की कीमत ७॥) से बढ़कर सहसा ही ३२) पर पहुँच गई और शीघ्र ही मिल के मुनाफे से नं० २ और नं० ३ की मिलें भी खोल दी गईं। जूट के उद्योग में काम करने वाली यह पहिली भारतीय मिल थी। अथवा यह कह सकते हैं कि सेठ साहब ही सबसे पहिले भारतीय थे, जिन्होंने इस क्षेत्र में प्रवेश करके भारतीयों का माथा गौरवान्वित किया था और अंग्रेजों के एकाधिकार पर सफल छापा मारा था। इसमें दस हजार मजदूर काम करते थे। छः हजार हार्स पावर की बिजली काम में लाई जाती थी। ३०० करघों से शुरू की गई मिल में ६-७ वर्ष में ही २१२५ करघे चलने लग गये थे और ८० लाख की पूंजी की मिल की कीमत सवा दो करोड़ पर पहुंच गई थी। १९३४ में इसमें सर्वथा नयी मशीनें बिठाई गईं, जिनका आविष्कार उसी वर्ष हुआ था। मिल के प्रबन्ध के लिये अपने मुनीम श्री हरकिशनदासजी भट्टड़ की साझेदारी में सर सरूपचन्द हुकमचन्द एण्ड कम्पनी गठित की गई। सारे संसार की जूट मिलों में यह तीसरे नम्बर की मिल समझी जाती थी। भारत में तो निर्विवाद रूप से इसका पहिला स्थान था।

लोहे का कारखाना

जूट मिल में प्राप्त हुई सफलता से प्रेरित होकर सेठ साहब ने २५ लाख की पूंजी से "हुकमचन्द आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड" नाम की कम्पनी खड़ी की। इसमें भी श्री हरकिशनदास भट्टड़ का हिस्सा रखा गया। लोहे का यह कारखाना भी अपने ढंग का एक ही था। आचार्य राय इस पर बहुत अधिक मुग्ध थे और अपने भाषणों में प्रायः इसकी चर्चा किया करते थे। रेलवे कम्पनियों को इस कारखाने का काम बहुत अधिक पसन्द था। उनके काम का ढेर लगा रहता था और उनके आर्डर पैंडिंग में पड़े रहते थे।

श्री हरकिशनदासजी भट्टड़ के बाद उनके पुत्र सर्वश्री शिवकृष्ण भट्टड़, देवकृष्ण भट्टड़, पन्नालाल भट्टड़, और बुलाकीदास भट्टड़ ने उनका काम संभाला।

बीमा के क्षेत्र में

१९२९ में सर सरूपचन्द हुकमचन्द एण्ड कम्पनी ने बीमे का काम शुरू किया और उसके लिये "हुकम-

चन्द इंश्योरेंश कम्पनी लिमिटेड" के नाम से एक कम्पनी खड़ी कर ली। आग,मोटर दुर्घटना और जिन्दगी के बीमे का काम शुरू किया गया।

१६३४ तक कलकत्ता का काम खूब फला-फूला। लक्ष्मी जूट मिल भी खरीद ली गई। परन्तु बाद में बेच दी गई। सेठ साहब स्वयं प्रति वर्ष कलकत्ता जाकर सारे काम-काज की देखभाल किया करते थे। परन्तु इधर तीन-चार वर्ष नहीं जा सके। इन्दौर में भी काम काफी बढ़ चुका था। इन्दौर में ही कपड़ा मिलों, हुकमचन्द मिल्स और राजकुमार मिल्स तथा उज्जैन में एक कपड़ा मिल हीरा, मिल्स का सारा काम भी सर सरूपचन्द हुकमचन्द एण्ड कम्पनी की मैनेजिंग एजेंसी में था। इनके अलावा अनेक जिनिंग फेक्टरियां और प्रेस भी जहां तहां थे। कुछ अन्य काम-काज खेती आदि का भी फैला दिया गया था। इसीलिये कलकत्ता के कामकाज की स्वयं देखभाल कर सकना आपके लिये संभव नहीं रहा। वैसे भी १६३४-३८ तक कलकत्ता में भीषण औद्योगिक संकट रहा। १६३६ में वह संकट चरम सीमा पर पहुंच गया। भट्टड़ बन्धु उसको संभाल न सके। इसलिये सेठ साहब ने श्री बसन्तीलालजी कोठिया को वहां भेजा। उन्होंने वहां जाकर भट्टड़ बन्धुओं की साझेदारी समाप्त कर दी। हुकमचन्द जूट मिल की मैनेजिंग एजेंसी में मैसर्स रामदत्त रामकिशनदास को शामिल किया गया। हुकमचन्द स्टील कम्पनी में भरतिया एण्ड कम्पनी को मैनेजिंग एजेंसी में मिलाया गया। श्री ढेडराज भरतिया को बीमा कम्पनी का काम सौंप दिया गया। उनके स्वर्गवास के बाद उनके उत्तराधिकारी श्री सीताराम भरतिया उसका प्रबन्ध करते रहे। परन्तु १६५६ में वे भी उसको संभालने में असमर्थ होगये और फिर से उसका प्रबन्ध सर सरूपचन्द हुकमचन्द कम्पनी को अपने हाथों में लेना पड़ गया। उसके बाद से उसका प्रबन्ध एक डाइरेक्टर बोर्ड के हाथों में है।

कम्पनी की अधिकृत पूंजी २५ लाख की है, जिसमें दस लाख कारबार में लगी हुई है। भारत के जालन्धर, कानपुर, और मद्रास, अहमदाबाद, सूरत, बम्बई, अजमेर, दिल्ली, धनबाद आदि बड़े-बड़े शहरों में आपकी शाखायें हैं।

कलकत्ता में नेताजी सुभाष रोड़ के ३८ नम्बर पर सेठ साहब का अपना शानदार भवन और जमीन आदि की काफी जायदाद है। मैसर्स हुकमचन्द राजकुमारसिंह लिमिटेड कलकत्ता के नाम से भी कारबार चलता है।

सूत, जूट और स्टील के उद्योग में सेठ साहब ने वैसे ही यश सम्पादन किया, जैसे कि अफीम, रूई, सोना-चांदी आदि के सट्टे में किया था। सट्टे और फाटके का व्यापार तो फिर भी एक व्यसन या रोग था, किन्तु ये तीनों ही उद्योग स्वदेश के लिये अत्यन्त आवश्यक थे। स्वदेशी उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ इनसे हजारों देशवासियों का पालन-पोषण भी होता था। यह अनुमान किया गया था कि सेठ साहब द्वारा संचालित मिलों में कम से कम पन्द्रह-बीस हजार मजदूर तो काम करते ही होंगे। इनके आश्रित परिवार वालों की संख्या गिनी जाय, तो सेठ साहब ७०-८०हजार देशवासियों का नित्य प्रति भरण-पोषण करने का पुण्य प्राप्त करते थे। इतने देशवासियों की अप्रत्यक्ष शुभकामना से सेठ साहब ने इतना यश एवं पुण्य संचय किया हो, तो इसमें आश्चर्य क्या है? सेठ साहब ने स्वदेश के औद्योगिक क्षेत्र पर अपनी चमत्कारपूर्ण सफलता की अमिट छाप सदा के लिये लगा दी है। जब भी कभी स्वदेशी के आन्दोलन का इतिहास लिखते हुये उसको सफल बनाने में सक्रिय सहयोग देने वाले महानुभावों के क्रियाकलाप का वर्णन किया जायगा, तब निश्चय ही उसमें सेठ साहब के यशस्वी नाम का उल्लेख अगुआ के रूप में किया जायगा। भले ही सेठ साहब प्रत्यक्ष रूप से कभी उग्र राजनीतिक क्षेत्र में नहीं आये, किन्तु स्वदेशी उद्योगधन्धों को प्रतिष्ठित करने के लिये किया गया यह

महान कार्य देशसेवा की दृष्टि से भी इतना अधिक महत्व रखता है कि आपकी गणना बिना किसी संकोच के महान देश सेवकों में भी की जा सकती है। एक देशी राज्य के नागरिक होने और स्वभावतः सामाजिक एवं धार्मिक व्यक्ति होने के कारण ही आपने राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया। अन्यथा, आपने राजनीतिक क्षेत्र में भी नाम और यश अवश्य ही प्राप्त किया होता। फिर भी इन्दौर राज्य के राजनीतिक क्षेत्र में आपके महान व्यक्तित्व का अपना विशिष्ट स्थान, मान और महत्व सदा ही रहा।

: ५ :

स्वदेश का उत्कट प्रेम

"प्रिय श्री हुकमचन्दजी साहब,

खादी के लिये सरदार वल्लभभाई की अपील आपने देखी होगी। उसी की एक कापी आपको भेज रहा हूं। आप कृपया अपने यहां की म्यूनिसिपैलिटी तथा अन्य सज्जनों द्वारा खादी की खपत करवाने का प्रयत्न करेंगे, ऐसी आशा है। इस सम्बन्ध में जितना काम किया जा सके, उतना ही करना आवश्यक है। परिणाम की सूचना मुझे वर्धा के पते पर भेजें।

जमनालाल बजाज का
वन्देमातरम्"

यह पत्र स्वर्गीय देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाज ने सन् १९३१ के सितम्बर मास में खादी के सम्बन्ध में सरदार वल्लभ भाई पटेल द्वारा प्रकाशित उस अपील के नीचे ही लिखकर भेजा था, जो उन्होंने १४ सितम्बर १९३१ को अहमदाबाद से कांग्रेस के अध्यक्ष अर्थात् राष्ट्रपति के नाते प्रकाशित की थी। स्वर्गीय सेठजी महात्मा गांधी के दांये हाथ माने जाते थे और खादी का जो प्रचण्ड आन्दोलन उन्होंने १९२० में शुरू किया था, वे उसके सर्वेसर्वा थे। अखिल भारतीय चरखा संघ के तत्वाधान में खादी के उत्पादन और प्रसार का जो देशव्यापी आन्दोलन शुरू किया गया था, उसकी बागडोर सब सेठ जी के ही हाथों में थी। इसीलिये सेठजी ने सर सेठ साहब को यह पत्र लिखकर उनसे खादी के प्रसार में मदद चाही थी। महात्मा गान्धी ने हिन्दी के लिये सेठ साहब से जो आशा की थी, वैसी ही आशा सेठजी ने खादी के सम्बन्ध में सेठ साहब से की थी। यह इस पत्र से प्रकट है। लेकिन, कुछ लोगों को इस पर आश्चर्य हो सकता है कि जो व्यक्ति इतनी कपड़ा मिलों का मालिक हो और जिसके वैभव व उपभोग में विदेशी पदार्थों की इतनी अधिक खपत हो, उससे ऐसी आशा किस प्रकार की जा सकती थी? ऐसे लोगों को विज्ञानाचार्य और स्वदेशी के उत्कट प्रेमी डाक्टर प्रफुल्लचन्द्रराय द्वारा इन्दौर में १९३३ में उद्घाटित की गई स्वदेशी प्रदर्शनी के अवसर पर स्वागताध्यक्ष के पद से दिया गया सेठ साहब का भाषण एक बार अवश्य ही पढ़ लेना चाहिये। वह भाषण इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में विशेष रूप से दिया जा रहा है। उसमें सेठ साहब ने कहा था कि "मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि खादी इस देश का प्राण है। गांवों के लोगों के लिये खाली समय का उपयोग करके दो पैसे दूसरे देशों को जाने देने से रोकने और अपनी अधूरी एवं नाकाफी कमाई में मदद पहुंचाने वाला ऐसा कोई दूसरा साधन नहीं है। यही ऐसा उपाय है, जो दिन-ब दिन उजड़ने वाले गांवों की रक्षा कर सकता है और करोड़ों भूखों मरने वाले उनके निवासियों को बचा सकता है। इसलिये खादी का ज्यादा से ज्यादा प्रचार होना मैं अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ।"

ग्रामोद्योग खादी प्रदर्शनी का सन १९३५ में महात्मा गांधी ने उद्घाटन किया था। सेठ साहब, डा० सरयूप्रसाद और वैद्यराज ब्यालीराम जी द्विवेदी।

गांधी, श्री कस्तूरबा और मीरा बहन आदि के साथ इन्द्रभवन में भोजन करते हुये। सेठ साहब पीछे खड़े हैं।
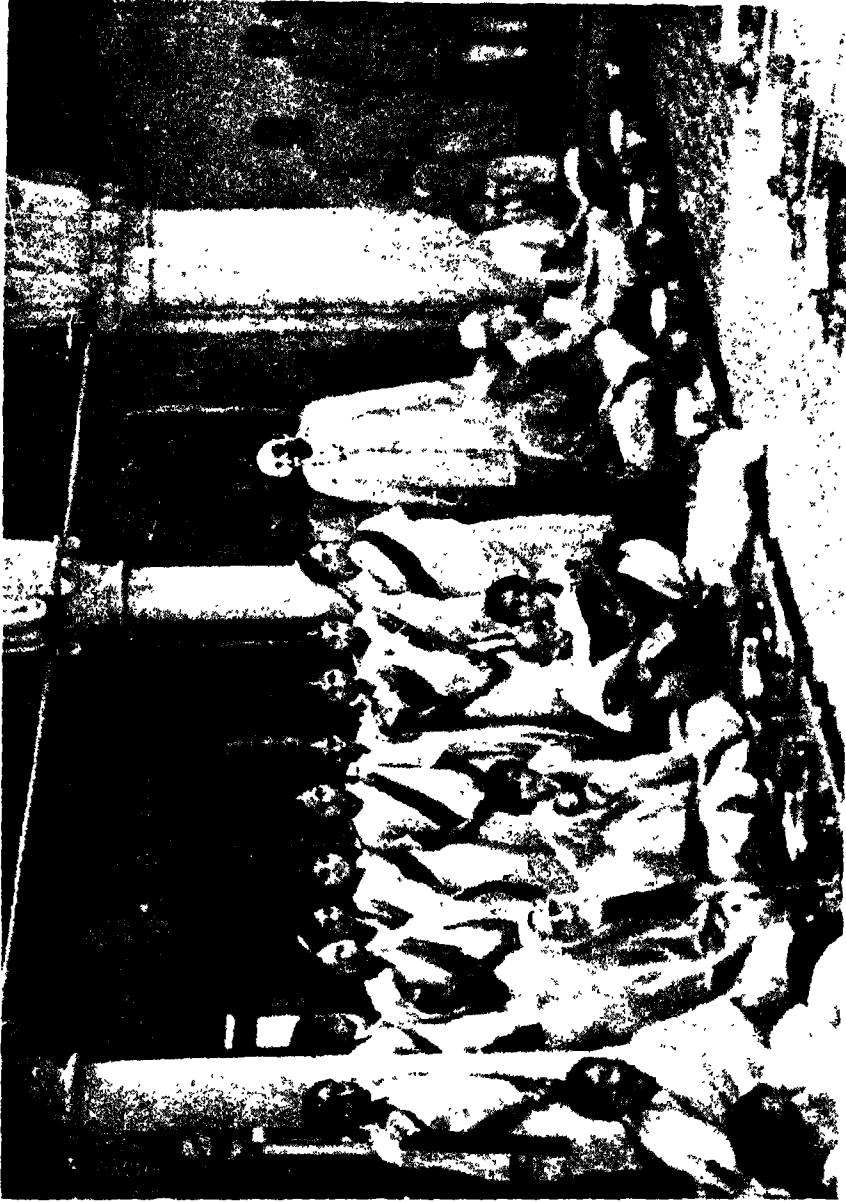
१९३५ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अधिवेशन के अवसर पर माता कस्तूरबा गांधी का इन्द्र भवन में महिलाओं द्वारा स्वागत। । एक ओर मीरा बहेन बैठी हैं और दूसरी ओर दानशीला सेठानी कंचनबाईजी (धर्मपत्नी सर सेठ हुकमचंदजी साहब) ।

सन १९१८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन इन्दौर के स्वागताध्यक्ष ।

उद्योगधंधों के प्रकरण में यह दिखाया जा चुका है कि सेठ साहब के हृदय में कपड़ा मिल खोलने की कल्पना इसी विचार से पैदा हुई थी कि मालवा की रुई का कपड़ा मालवा में ही तय्यार किया जाना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि इसी रुई का तो कपड़ा विलायत से बनकर आता है। अपनी इसी भावना और कल्पना को आपने अपने इस भाषण में भी प्रगट किया था। आपने कहा था कि, "इन्दौर राज्य में और मध्य भारत में कच्चे माल का बहुत बड़ा खज़ाना है और हमारे आगे बहुत उज्ज्वल भविष्य मुस्करा रहा है। मुझे आशा है कि यहां के नरेश, धनिक और जनता के अगुआ इस बात की ओर ज़रूर ध्यान देंगे कि कच्चे माल के इस अखूट साधन-सम्पत्ति का किस तरह अच्छे से अच्छा उपयोग किया जाय।" इसी भाषण में आपने विदेशियों की स्वदेशी की कल्पना को दूसरे देशों के शोषण किंवा चूसने का साधन बताते हुए अपनी स्वदेशी की कल्पना को "स्वदेशी धर्म" कहा था। वस्तुतः हमारे लिए स्वदेशी की भावना और कल्पना एक धर्म ही है, जिसका लक्ष्य देश की गरीबी को दूर करने और जन-साधारण को स्वयं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में लगाना है। सेठ साहब माल की "खूब पैदावार को" स्वदेशी नहीं मानते, क्योंकि आपका कहना है कि जिन देशों में माल की खूब पैदावार होती है उनमें भी बहुत से लोगों को पेट भर खाना और तन ढकने को कपड़ा भी नहीं मिलता। उनमें लाखों लोग भूखों मर रहे हैं। उनके पेट भरने की समस्या अधिकारियों को उलझाये हुए है। दिन पर दिन बेकारी बढ़ती जा रही है। संसार के आर्थिक अवस्था के डावांडोल होने का कारण उत्पादन का यही बेढंगा ढंग है। पश्चिम का अर्थशास्त्र और राजनीति इसी कारण आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में समर्थ नहीं हो रहे, अपितु उन पर "मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की" की ही कहावत चरितार्थ हो रही है। समस्यायें और परिस्थितियां और भी जटिल होती जा रही हैं। इसी लिए सेठ साहब ने अपने उस भाषण में देशवासियों को पश्चिम की अंधी नकल करने से सावधान किया था। आपने स्पष्ट शब्दों में यह चेतावनी दी थी कि हमें अपना अर्थशास्त्र किसान की झोंपड़ी और उसके खेत व खलिहान से शुरू करना होगा। अन्यथा गांव उजड़ जायेंगे और शहर उनका भार नहीं संभाल सकेंगे।

अपने इसी भाषण में सेठ साहब ने स्वदेशी के आन्दोलन को सफल बनाने के लिए स्वदेशी बैंक और स्वदेशी बीमा कम्पनियां स्थापित करने पर भी जोर दिया था। आपने कहा था कि "विदेशी बैंक और इन्शोरेंस कम्पनियां हमारे देश की गाढ़ी कमाई को खींच कर अपने व्यापार को पुष्ट कर रही हैं।" यही कारण है कि सेठ साहब ने कलकत्ता में जूट मिल और लोहे का कारखाना खोलने के साथ साथ बीमा कम्पनी भी स्थापित की और इन्दौर में बैंक कायम करने के साथ साथ सहोयोगी बैंक कायम करने में भी पूरा सहयोग दिया। मध्यभारत के सहोयोगी आन्दोलन का भी आपको अगुआ कहा जा सकता है। आधुनिक शिक्षा-दीक्षा से सर्वथा अनभिज्ञ होने पर भी देश की आर्थिक समस्या की गहराई में जा कर आपने उसका जो निदान और उपचार ढूंढ निकाला था, उसको केवल शब्दों में ही न कह कर उसे अपने जीवन में भी पूरा उतारा था। स्वदेशी प्रदर्शिनी में आपने यह घोषणा की थी कि "अब मैं आगे अपने घर में जहां तक बन सकेगा, वहां तक देशी ही चीजें काम में लाऊंगा। इस बात का मैं हमेशा पूरा ध्यान रखूंगा।"

बम्बई में १९३१ में स्वदेशी का जो आन्दोलन शुरू हुआ था, उसके आप ही अगुआ थे। इसी वर्ष मई मास में बम्बई के व्यवसाइयों की एक बड़ी सभा हो कर स्वदेशी वस्त्र के प्रचार और विलायती वस्त्र के बहिष्कार का निश्चय किया गया था। आप ही उस सभा के अध्यक्ष थे।

सन् १९३८ के जून मास के शुरू में आगरा-बेलनगंज की फर्म श्री हजारीलाल गणेशीलाल के मालिक श्री सरदारीमलजी गोधा की सुपुत्री के विवाह में सम्मिलित होने के लिए वहां गये थे। उस समय वहां के समा-

चारपत्रों और सार्वजनिक संस्थाओं ने आपका स्वागत स्वदेशी आन्दोलन के समर्थक के रूप में किया था। वहां के एक स्थानीय दैनिक पत्र "आगरा पंच" ने लिखा था कि "विवाह की बरात में सबसे बड़ा आकर्षण जिसने हजारों आदमियों को अपनी ओर आकर्षित किया था, वह था भारत के धनकुबेर, राज्यभूषण, दानवीर सर सेठ हुकमचन्दजी का जलूस में होना। जितने लोग बरात देखने पहुँचे, सबकी आंखें इन्दौर के इसी महापुरुष की ओर थीं।" वहां की सुप्रसिद्ध स्वदेशी बीमा कम्पनी ने आपके सम्मान में एक प्रीतिभोज का आयोजन किया था, जिसमें कम्पनी के चेयरमैन बाबू मथुराप्रसादजी कक्कड़ और संचालक बाबू श्रीचन्दजी दौनेरिया दोनों ने ही आपके उत्कट स्वदेशी प्रेम और स्वदेशी के क्षेत्र में की गई आपकी महान सेवाओं का विशेष रूप से उल्लेख किया था। उन्होंने कहा था कि "पिछले पच्चीस सालों में सेठसाहब ने अपनी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता से हिन्दुस्थान के व्यापार को तथा उद्योगधन्धों को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया है। पिछले पच्चीस सालों में व्यापारिक क्षेत्र में तथा १९३० के स्वदेशी आन्दोलन के समय में आपने जो कार्य किये हैं, उनकी मैं हृदय से सराहना करता हूँ। श्री बिड़ला साहब भी व्यापारिक क्षेत्र में उन्नति कर रहे हैं, परन्तु मैं कह सकता हूँ कि सेठ सर हुकमचन्दजी की बराबरी पिछले पच्चीस वर्षों में व्यापारिक क्षेत्र में कोई भी नहीं कर सकता।"

इन्दौर में १९३५ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर ग्रामोद्योग खादी प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। इन्दौर के वयोवृद्ध समाजसेवी वैद्य ख्यालीरामजी द्विवेदी उस प्रदर्शनी के संयोजक और स्वागताध्यक्ष थे। महात्मा गांधी के हाथों से ही उसका उद्घाटन कराया गया था। इस प्रदर्शनी में भी सेठ साहब ने सक्रिय सहयोग दिया था। आपकी इन प्रवृत्तियों के कारण ही अनेक समाचारपत्रों ने उन दिनों में आपकी जीवनी तथा परिचय प्रकाशित किये थे और आपको "देशभक्त" कह कर आपका विशेष रूप से सन्मान किया था। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय तो आप पर आपके इस उत्कट स्वदेशी प्रेम के कारण ही इतने मुग्ध थे कि उन दिनों में अपने भाषणों तथा लेखों में स्थान-स्थान पर आपकी सराहना किया करते थे। इन्दौर की स्वदेशी प्रदर्शनी का १९३३ में उद्घाटन करते हुये उन्होंने यहां तक कहा था कि "भारत में स्वदेशी उद्योगधन्धों के सामने जो विशाल क्षेत्र है, उसका हमने ठीक ठीक अनुमान भी नहीं किया था कि उससे पहले सर हुकमचन्दजी ने अपनी दूरदर्शिता से कपड़े की मिलों के महत्त्व को जान लिया और मिलें खोल भी दीं।" इसी प्रकार आपने मद्रास में भी स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये सेठ साहब का विशेष रूप से उल्लेख किया था। अपनी आत्मकथा में भी उन्होंने आपकी चर्चा की है। एक बार तो उन्होंने अपने और सेठ साहब द्वारा किये गये स्वदेशी के कार्य की तुलना करते हुए सेठ साहब को शाही शेर और अपने को घरेलू बिल्ली या उसका बच्चा कहा था। इसी प्रकार बंगला के सुप्रसिद्ध और प्रमुख दैनिक पत्र "आनन्द बाजार पत्रिका" में फरवरी १९३३ में करांची तथा इन्दौर के संस्मरण लिखते हुये सेठ साहब की जो प्रशंसा की थी, उसकी चर्चा यथास्थान की गई है। इसमें सन्देह नहीं कि आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय हमारे देश के उन कुछ विशिष्ट व्यक्तियों में से हैं, जिनका सारा ही जीवन स्वदेशी की साधना में पूरा हुआ है। वे अकारण ही सेठ साहब की प्रशंसा नहीं कर सकते थे। आज कल की राजनीति के दृष्टिकोण से देखने वाले सेठ साहब को "सरकारपरस्त" और 'पूंजीपति" कह कर उनकी उपेक्षा भले ही कर सकें; परन्तु उन्होंने स्वदेश और स्वदेशी के लिये अपने जीवन में जो कुछ भी किया, उसमें इतना आकर्षण अवश्य था कि उससे आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय सरीखे विज्ञानाचार्य, देशभक्त सेठ जमनालालजी सरीखे स्वदेशीप्रेमी, महामना मालवीयजी सरीखे राष्ट्रनेता सहसा ही आकर्षित हुये बिना नहीं रह सके। यह सभी महापुरुष हमारे देश की दिव्य विभूति हैं। सेठ साहब की धन-संपत्ति, वैभव और राजसी ठाठबाट का उनके लिये ऐसा कोई आकर्षण होना ही न था। यदि सेठ साहब में स्वदेशी और देशप्रेम की यत्किंचित

भी भावना नहीं होती, तो ये महापुरुष आपकी ओर इस प्रकार आकर्षित हो ही नहीं सकते थे और उनकी लेखनी या वाणी आपको इतना गौरवान्वित नहीं कर सकती थी। सेठ साहब का यह उत्कट स्वदेशी प्रेम देश के व्यावसायिक एवं औद्योगिक विकास तथा प्रगति में जिस रूप में सहायक हो सका है, उसका उल्लेख देश के आर्थिक इतिहास में निश्चय ही स्वर्णाक्षरों में किया जायगा। यही सेठ साहब की देशभक्ति और देशसेवा है, जिसके लिये "हाथ कंगन को आरसी क्या" की कहावत चरितार्थ होती है। इसी के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसके साहित्य की श्रीवृद्धि में सेठ साहब ने जो सहयोग दिया है, उसको भी देखा जा सके, तो स्वदेश प्रेम की आपकी भावना अत्यन्त स्पष्ट रूप में सामने आ जाती है। हिन्दी और उसके साहित्य के प्रति सेठ साहब का जो अनुराग है, वह आपके उत्कृष्ट स्वदेश प्रेम का ही सूचक है।

: ६ :

सार्वजनिक सेवा

सैकड़ों हाथों से उपार्जन करने के धर्मशास्त्रों के आदेश का सेठ साहब ने जिस खूबी के साथ पालन किया, उससे कहीं अधिक खूबी से आपने उनके इस आदेश का भी पालन किया कि उस उपार्जित सम्पत्ति को हजारों हाथों से लोकसेवा में लगा दो। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों को सिद्ध करना मानव जीवन का लक्ष्य बताया गया है। अर्थ और काम को धर्म और मोक्ष के बीच में बांधा गया है। यदि अर्थ का सम्पादन करते हुये धर्म की दृष्टि मंद पड़ गई और काम में आसक्त होने वाले मानव ने मोक्ष के परम लक्ष्य को आंखों से ओझल कर दिया, तो उसका पतन सुनिश्चित है और अन्त में उस का शतमुखी पतन हुये बिना रह नहीं सकता। सेठ साहब ने जिस अर्थ का सम्पादन किया, वह सांसारिक लोगों की दृष्टि में कुबेर के खजाने के समान है। वह अपार धन जिस यौवन में प्राप्त हुआ था, उसमें प्रभुता का वातावरण भी चारों ओर छाया ही हुआ था। परन्तु 'अविवेक' उसमें कभी चंचु-प्रवेश भी कर नहीं सका। 'धर्म' पर गड़ी हुई दृष्टि कभी भी उखड़ नहीं सकी। मोक्ष के परम लक्ष्य से दृष्टि कभी भी दूर नहीं हुई। भारतीय एवं जैन समाज व्यवस्था का भी पुरातनतम लक्ष्य यही रहा है कि वैश्य समस्त समाज और राष्ट्र की सामूहिक समृद्धि को ही अपना चरम उद्देश्य मानकर व्यापार-व्यवसाय तथा उद्योग-धन्धों में अपने को प्रवृत्त करे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्दों में वह अपने को उस सारी सम्पत्ति का ट्रस्टी माने, जिसका वह उपार्जन करता है। सेठ साहब ने इतनी अतुल सम्पत्ति का उपार्जन किया, इसमें सन्देह नहीं कि उसका उपभोग भी किया, आपके निवास-स्थान इन्द्रभवन का राजसी वैभव भी किसी राजमहल से कम नहीं है और 'सेठ' ही नहीं, 'सर सेठ' शब्द भी आपके नाम के साथ जुड़कर सार्थक हो गये; फिर भी यह स्पष्ट है कि आपने लोकसेवारूपी धर्म का पालन भी खूब किया और जन-कल्याणरूपी मोक्ष का लक्ष्य कभी भी अपनी आंखों से ओझल नहीं होने दिया। कोई भी अवसर ऐसा नहीं आया, जब धर्म, समाज तथा देश की सेवा में आपने हाथ न बटाया हो। जब जैसा समय उपस्थित हुआ और जैसी मांग आपसे की गई, आपने अपनी श्रद्धा और अपनी सामर्थ्य के अनुसार दिया और दिल खोलकर दिया। इस समय तक आप लगभग ८० लाख का दान कर चुके हैं। प्रायः सभी सार्वजनिक क्षेत्रों में काम करने वाली सभी प्रकार की संस्थाओं को आपकी उदारता का लाभ मिला है। शिक्षा, साहित्य, लोकसेवा, स्वास्थ्य रक्षा, शिशुरक्षा, गोसेवा, तीर्थ, देवालय इत्यादि सभी क्षेत्रों में आपने अपने उदारचेता स्वभाव से सभी प्रकार की संस्थाओं को उपकृत किया है। वृद्ध-युवा बालक और स्त्री-पुरुष सभी को उसका समान रूप से लाभ मिला है। बम्बई के मारवाड़ी विद्यालय को २५ हजार दिया गया, तो बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय में भी ८१ हजार लगाया गया। नई दिल्ली के लेडी हार्डिङ्ग मैडिकल कालेज को तो चार लाख मिल गया। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने दस हजार प्राप्त किया, तो १९२१ में तिलक स्वराज्य फण्ड में भी २५०० की भेंट दी ही गई। इन्दौर में आप द्वारा स्थापित, संचालित,

पोषित और पुष्ट की गई संस्थाओं का तो जाल ही बिछा हुआ है, बिना किसी अत्युक्ति के यह कहा जा सकता है कि इन्दौर में सार्वजनिक संस्थाओं और सार्वजनिक जीवन को आपसे विशेष प्रेरणा, प्रोत्साहन और बल मिला है। राजनीतिक संस्थाओं को शुरू में सहयोग देने में संकोच होते हुये भी उनकी भी सहायता आप समय-समय पर करते ही रहे हैं। अन्नदान, औषधदान और विद्यादान के साथ-साथ जीवनदान की भी अजस्र धारा आपकी उदारता तथा पारमार्थिक संस्थाओं के सोते से निरन्तर बहती ही रहती है। कृषि और गोपालन के आदर्श को भी आपने सक्रिय रूप देने का अनुकरणीय प्रयत्न किया है। देवदर्शन और धर्मलाभ की जो व्यवस्था आपने इन्दौर शहर में की है, उससे उसको तीर्थस्थान का-सा महत्त्व प्राप्त हो गया है। जैसे व्यापार-व्यवसाय और उद्योगधन्धों में आपकी चहुँमुखी प्रतिभा ने अपना अप्रतिम प्रभाव दिखाया है, वैसे ही आपके उदार स्वभाव ने लोकोपकारी सार्वजनिक जीवन में भी चहुँमुखी उदारता का विशाल परिचय दिया है। आपके इस महान् लोकोपकारी जीवन का प्रारम्भ दिगम्बर जैन धर्म तथा दिगम्बर जैन समाज से होने पर भी वह वहीं ही रुक नहीं गया; किन्तु गंगोत्री में गोमुख से निकलने वाली गंगा की पवित्र धारा की तरह वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ा, त्यों-त्यों उसका स्वरूप विकसित ही होता चला गया है। प्रभात में प्रगट होने वाले बालरवि की किरणें, आषाढ़ मास में बरसने वाले बादल की बौछारें और बसन्त में नवजीवन प्रदान करने वाले समीर के झोंके जैसे मानवमात्र के कल्याण के लिये ही होते हैं, ठीक वैसे ही सेठ साहब के उदारतापूर्ण दान का लक्ष्य भी सदा ही मानवजीवन का परम कल्याण रहा है। उसके लिये धर्म, जाति, सम्प्रदाय, प्रदेश अथवा काल की भी कोई सीमा नहीं रखी गई। समुद्र की तरह उसका कोई ओर या छोर बताया नहीं जा सकता।

आपकी उदारता अथवा दान प्रणाली की एक और विशेषता है। वह यह कि आपकी दृष्टि सदा यही रही कि जिस किसी संस्था को भी अपने धन से खड़ा किया जाय, उसमें अपना तन-मन भी लगाया जाय। यथा सम्भव उसकी व्यवस्था कर दी जाय। अन्यों द्वारा संस्थापित अथवा संचालित संस्था का प्रश्न तो अलग है, किन्तु अपने द्वारा संस्थापित संस्था का ध्रुव फण्ड स्थापित करने पर आपकी सदा ही दृष्टि रही है और अपने द्वारा दी हुई रकम का एक बड़ा भाग आपने उसके ध्रुव फण्ड के लिये स्थिर कर दिया है। आप द्वारा संस्थापित संस्थाओं के विवरण से पाठकों को ज्ञात हो सकेगा कि आज भी पारमार्थिक संस्थाओं के ध्रुवफण्ड की कितनी सुन्दर व्यवस्था आपने की हुई है और आपने निरन्तर उस व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने का ही प्रयत्न किया है। जनता के लिये प्रस्तावित संस्थाओं के भवन, सम्पत्ति और ध्रुव फण्ड भी जनता को ही सौंपकर आपने उनका ट्रस्ट बना दिया है। इसका लाभ यह होता है कि उनको किसी पर निर्भर न रहकर परमुखापेक्षी नहीं बनना पड़ता। स्वतन्त्र रूप से उनका संचालन होता रहता है और वे निरन्तर विकासोन्मुखी प्रगति करने में लगी रहती हैं। व्यापार-व्यवसाय और उद्योगधन्धों में प्राप्त की गई सफलता की तरह ही सेठ साहब ने सार्वजनिक संस्थाओं के संचालन में भी कमाल कर दिखाया है।

नेताओं के साथ आत्मीयता

इन्दौर नगर को देश के बड़े-बड़े महान् नेताओं का सम्मान करने का गर्व प्राप्त है। अन्य अनेक प्रगतिशील राज्यों की तरह इन्दौर राज्य भी अपने यहां हुये अखिल भारतीय आयोजनों में विशेष दिलचस्पी लेता रहा है। फिर भी इन्दौर में गतकाल में हुये अधिकांश आयोजनों का श्रेय हमारे चरित्रनायक सेठ साहब को है। राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जिन हिन्दी साहित्य सम्मेलनों के अध्यक्ष होकर दो बार इन्दौर पधारे, उनकी सफलता का श्रेय भी सेठ साहब को ही है। महात्मा गांधी दुबारा आने को तत्पर न थे। तब सेठ साहब की जानकारी के बिना ही आपके नाम से गान्धीजी को तार दे दिये गये थे और फोन पर भी सेठ साहब ने इनका आग्रह किया कि

गांधीजी को उसे स्वीकार करना ही पड़ गया। सम्मेलन में पधारने वाले साहित्य प्रेमियों के लिये १९१८ में बसाये गये नगर का नाम सेठ साहब के नाम पर "हुकमचन्द नगर" रखा गया था। १९३५ में दूसरी बार भी मुख्य द्वार आपके ही नाम से बनाया गया था। जब आठवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन पर आने के लिये महात्मा गांधी ने एक लाख की निधि जमा करने की शर्त लगा दी थी, तब स्वागतसमिति की व्यवस्था के लिये दिये गये २५००) के अलावा भी आपने दस हजार रुपया प्रदान किया था। गांधीजी ने इन्द्रभवन में पधार कर आपका आतिथ्य भी स्वीकार किया था और माता कस्तूरबा गांधी व मीरा बेन के साथ आपने वहां भोजन भी ग्रहण किया था। इसी प्रकार देशपूज्य महामना पण्डित मदनमोहनजी मालवीय भी दो बार आपके यहां पधारे और आपकी हीरक-जयन्ती के उत्सव में भी उन्होंने पधारने की कृपा की थी। ज्योतिष सम्मेलन के अध्यक्ष होकर पधारने के लिये मालवीयजी ने इनकार कर दिया; किन्तु सेठ साहब ने फोन पर इतना आग्रह किया कि वे उसे अस्वीकार नहीं कर सके। आपके हीरक जयन्ती उत्सव पर मालवीयजी ने अपने भाषण में आपकी बहुत सराहना की थी। अपने समय के महान् वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय ने भी आपका आतिथ्य स्वीकार किया था। इन्दौर के महाराज तुकोजीराव और ग्वालियर के स्वर्गीय महाराज माधोरावजी सिंधिया भी आपका विशेष सम्मान करते थे। वर्तमान नरेश श्रीमान् यशवन्तराव भी आपका आतिथ्य स्वीकार करते रहे हैं। महाराज जियाजीराव सिंधिया तो आपको 'काका' कहकर आपका सम्मान करते हैं। बीकानेर के राजनीतिकुशल महाराज गंगासिंह जी ने तो आपको अत्यन्त आग्रह के साथ अपने यहां कई बार बुलाया था और आपका राजकीय आतिथ्य-सत्कार किया था। मध्यभारत तथा राजपूताना के प्रायः सभी राजा, महाराज तथा नवाब आपका समान रूप से आज भी सम्मान करते हैं। सौराष्ट्र तथा गुजरात के राजाओं में भी आपकी विशेष प्रतिष्ठा है। मैसूर और बड़ौदा के नरेशों तक में आपका सम्मान है। इस सारे सम्मान तथा प्रतिष्ठा का कारण आपका सांसारिक वैभव और सम्पत्ति ही नहीं है किन्तु आपकी वह सार्वजनिक भावना है, जिससे प्रेरित होकर आपने देशव्यापी सार्वजनिक संस्थाओं को अपनी उदारता से उपकृत किया है। जैन संस्थाओं, जैन देवालयों और जैन तीर्थों के कारण आप इन लोगों के विशेष सम्पर्क में आये हैं। उस सबका विवरण यथास्थान दिया जायगा, यहां तो इतना ही दिखाना अभीष्ट है कि सेठ साहब ने अपनी सार्वजनिक भावना, सार्वजनिक वृत्ति और सार्वजनिक सेवा से राष्ट्रीय नेताओं और राजकीय पुरुषों का स्नेह, सम्मान और आदर समान रूप से प्राप्त किया है। अपने सार्वजनिक जीवन का निर्माण भी सेठ साहब ने स्वयं ही किया है। उसी के उज्ज्वल उदाहरण आगे के पृष्ठों में देने का यत्न किया जा रहा है।

सार्वजनिक सेवा की परम्परा

सेठ साहब के परिवार में सार्वजनिक सेवा का शुभ श्रीगणेश बहुत पहिले हो चुका था। आपके दादाभाई की गोद आने वाले सेठ कल्याणमलजी ने और सेठ ओंकारजी के सुपुत्र चरित्रनायक के पिता सेठ कस्तूरचन्दजी ने अनेक सार्वजनिक कार्यों का आरम्भ कर दिया था। औषधालय और कन्या पाठशाला की स्थापना उनके समय में ही कर दी गई थी। सेठ साहब ने इस परम्परा को भी पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया।

दुर्भिक्ष सहायता

लोक सेवा में हाथ बटाने का सबसे पहिला अवसर सेठ साहब को सम्वत् १९५६ के भीषण दुर्भिक्ष के दिनों में प्राप्त हुआ। यह दुर्भिक्ष इतना भयानक था कि चारों ओर हाहाकार मच गया था। गरीबों के लिये अन्न और वस्त्र की इतनी सुन्दर व्यवस्था की गई थी कि लोग आज तक भी उसको भूले नहीं हैं। प्रत्येक गरीब को आध सेर अनाज और आवश्यकता के अनुसार कपड़ा दिया जाता था। संकटापन्न लोगों को मुसीबत के दिन काटने को बहुत बड़ा सहारा मिल गया।

प्लेग में

सम्बत् १९६० में और फिर १९६४ में इन्दौर में जोरों की प्लेग फैली। लोगों को बीमारी का कष्ट तो भोगना ही था। क्वारंटीन के कष्टों से तो घावों पर नमक ही छिड़क गया। लोगों में त्राहि त्राहि मच गई। हमारे पाठकों को याद होना चाहिये कि पूना में सन १८९७ में प्लेग फैलने पर क्वारण्टीन के कष्टों के विरोध में ही तो लोकमान्य तिलक ने पहिला प्रचण्ड आन्दोलन प्रारम्भ किया था। तब पूना के प्लेग कमिश्नर श्री रैण्ड को चापेकर युवक के हाथों अपनी जान से हाथ धोना पड़ गया था और लोकमान्य पर हत्या के लिये प्रेरित करने के अपराध में राजद्रोह का पहिला मुकद्दमा चलाया गया था, जिसमें उनको १८ मास के कठोर कारावास की सजा दी गई थी। इन्दौर में वैसा उग्र आन्दोलन होना तो सम्भव ही न था। पर, लोगों को क्वारण्टीन के कष्ट प्रायः वैसे ही थे। लोग घबरा उठे। तब सेठ साहब ने जनता की सेवा का सराहनीय कार्य किया। एक हजार रुपया तो आपने गरीबों के लिये झोंपड़े बनाने को दिया और अपने जवेरी बाग तथा राऊ के बंगले में सैकड़ों-हजारों को आश्रय दिया। क्वारण्टीन के कष्टों के सम्बन्ध में आप स्वयं प्रधान-मन्त्री से मिले और क्वारण्टीन को आपने उठवा दिया। ऐसी संक्रामक बीमारियों के अवसर पर आप सदा ही जनता की सेवा करते रहे और उसके कष्टों को दूर करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहे।

सेठ साहब की व्यापक सार्वजनिक सेवा का प्रारम्भ जैन समाज और जैनधर्म की सेवा से ही हुआ था। आपने इस दिशा में सबसे पहिला यह काम किया कि एक सौ रुपया मासिक खर्च करके उन जैन भाइयोंके लिये, एक चौका खोल दिया, जो कहीं कोई रोजगार न मिलने के कारण बेकार रहते थे। ऐसे जैन भाई रोजगार मिलने तक सम्मान के साथ वहां भोजन कर सकते थे। उनके स्वाभिमान की रक्षा होकर उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने का अवसर मिल जाता था और वे अन्तःकरण से सेठ साहब का आधार मानते हुये आपके प्रति कृतज्ञता प्रगट किया करते थे।

चार लाख का दान

बम्बई के पालीताना तीर्थस्थान में बम्बई प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा का अधिवेशन सम्वत् १९७० में हुआ। आप ही उसके सभापति थे। वहां आपने चार लाख रुपये दान की घोषणा की। इन्दौर में स्थापित की गई पारमार्थिक संस्थाओं का शुभ श्रीगणेश इसी महादान से हुआ समझना चाहिये।

औषधालय को चालीस हजार

पहिला बड़ा सार्वजनिक दान जैन समाज से बाहर सम्भवतः आपने इन्दौर छावनी के किंग एडवर्ड अस्पताल के लिये सम्वत् १९७० में राजबहादुर पण्डित नन्दलालजी जज की प्रेरणा से दिया। उसमें एक वार्ड बनवाने के लिये चालीस हजार प्रदान किये और मेडिकल कालेज के लिये भूमि खरीदने के लिये भी आपने पच्चीस हजार देने की उदारता प्रगट की। छावनी के ही लेडी ओडायर गर्ल्स स्कूल के स्थायी फण्ड के लिये भी आपने दस हजार उदारतापूर्वक दिये।

सम्वत् १९७२ में कान्यकुब्ज हितकारिणी सभा के वार्षिक अधिवेशन पर उसको एक हजार की सहायता प्रदान की और इन्दौर के कृष्णापुरा की जनरल लाइब्रेरी को भी एक हजार रुपया प्रदान किया।

मैडिकल कालेज को चार लाख

सम्वत् १९७४ में चार लाख का महत्त्वपूर्ण बड़ा दान नई दिल्ली में बनाये गये लेडी हार्डिङ्ग मैडिकल कालेज तथा अस्पताल के लिये दिया। वायसराय महोदय ने स्वयं इसके लिये अपील की थी और आपको व्यक्तिगत पत्र लिखा था। इस पुनीत दान से उक्त संस्था में एक वार्ड बनाया गया है और उस पर आपके नाम

का शिलालेख भी लगाया गया है। नई दिल्ली की घनी आबादी के मध्य में यह लोकोपकारी संस्था ऐसे स्थान पर कायम की गई हैं, जिससे कि पुराने शहर की बस्तियां भी कुछ दूर नहीं हैं। यह महिलाओं के लिये एक मुख्य अस्पताल है और महिला डाक्टर तय्यार करने वाली उत्तर भारत की यह एक प्रमुख संस्था है। वायसराय महोदय ने फिर एक निजी पत्र लिख कर इसके लिये आपके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित की थी।

मिशन गर्ल्स स्कूल को २५००० रु०

इन्दौर का मिशन गर्ल्स स्कूल स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में अच्छा काम कर रहा था। इसके लिये अपना भवन बनाने का कार्य हाथ में लिया गया। सेठ साहब के पास भी अपील लेकर उसके कार्यकर्ता आये। आपकी सात्विक दानवृत्ति इतनी व्यापक है कि उसके सामने जाति, सम्प्रदाय तथा धर्म आदि के भेदभाव की समस्त संकीर्ण भावनायें क्षीण पड़ चुकी हैं। आपने शिष्टमण्डल का स्वागत किया और पच्चीस हजार के उदार दान से एक भवन खरीद कर विद्यालय को दे दिया। संचालकों को भवन की चिन्ता से सर्वथा मुक्त कर दिया।

पूना की दक्षिण एजूकेशन सोसाइटी शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ा और सराहनीय कार्य कर रही है। राजर्षि गोखले और लोकमान्य तिलक सरीखे देशभक्तों का भी उससे सम्पर्क रहा है। कर्मयोगी आचार्य कर्वे उसका शिष्टमण्डल लेकर धनसंग्रह के लिये इन्दौर आये। आपको भी एक हजार रुपया प्रदान करके सेठ साहब ने आपका भी सम्मान किया।

पहली बार सन् १६२० में बीकानेर जाने के उपलक्ष में आपने महाराज को किसी भी लोकोपकारी कार्य में खर्च करने के लिये पांच हजार रुपया भेजा था। इसी प्रकार आपने तत्कालीन ए० जी० जी० को (सम्वत् १६७६ में) पांच हजार रुपये भेजे और लिखा कि श्रीमान् इस धनराशि का उपयोग किसी भी सार्वजनिक हितकारी कार्य के लिये कर सकते हैं। ग्वालियर के महाराजा श्रीमन्त माधोरावजी सिंधिया को भी आपने इसी आशय से ग्यारह हजार रुपया भेजा। मानो, दान के लिये सेठ साहब किसी न किसी उपयोगी अवसर और पात्र की खोज में रहा करते थे।

मंहगाई में लोक-सेवा

सम्वत् १६७४ में मंहगाई बहुत बढ़ गई थी। महायुद्ध के कारण भी खाद्य पदार्थों की कीमतों में बेहद तेजी आगई थी। गेहूँ का भाव ४० रुपया मन पर पहुँच गया था, घी का १२० और शक्कर का २४ रुपया पर। गरीबों के लिये गृहस्थी का प्रबन्ध चलाना दूभर हो गया था। मंहगाई भत्ते से भी काम चलाना कठिन हो रहा था। सेठ साहब ने अपने समस्त कर्मचारियों को सैंतीस सैकड़ा मंहगाई दी और १६७७ में उतनी ही वेतन-वृद्धि करके उसको वेतन में मिला दिया। लेकिन, आम जनता का कष्ट तो मंहगाई के कारण बढ़ता ही चला गया। धानमंडी के लूटे जाने तक का भय उपस्थित हो गया। सेठ साहब इस विकट परिस्थिति में लोकसेवा के लिये सामने आये। आपने ३८-४० रुपये मन के महंगे भाव पर अन्न खरीद कर पांच रुपये मन के भाव बेचना शुरू कर दिया। स्वयं एक लाख का घाटा उठा कर जनता को आपने जो राहत पहुँचाई, उसकी चर्चा तब हर स्त्री-पुरुष के मुंह पर थी। होलकर नरेश और सरकारी अधिकारी भी आपके प्रति कृतज्ञता प्रगट करने लगे। आपकी इस दूरदर्शिता के कारण एक बड़ा संकट टल गया। लूटपाट और अराजकता की संभावना दूर हो गई। जनता में शान्ति और सन्तोष छा गया।

बियाबानी में औषधालय

लगभग सम्वत् १६६६-७० में दो सौ रुपये मासिक व्यय से स्थापित किये गये औषधालय ने विशाल

रूप सम्बत् १६७५ में तब धारण किया, जब सेठ साहब ने ढाई लाख के दान की घोषणा की। उस दान से इन्दौर के वियाबानी मुहल्ले में "प्रिंस यशवन्तराव आयुर्वेदिक जैन औषधालय" स्थापित किया गया। इन्दौर के युवराज के नाम पर ही यह नाम रखा गया था और तत्कालीन महाराजबहादुर श्रीमन्त सर तुकोजीराव होलकर के हाथों से उसका उद्घाटन-समारोह सम्पन्न कराया गया था। उद्घाटन के अवसर पर एक लाख के दान की घोषणा की गई। उसमें से साठ हजार औषधालय के चिरस्थायी फण्ड में और चालीस हजार प्रबन्ध-विभाग में चालू व्यय के लिये दिया गया। इससे औषधालय की व्यवस्था स्थायी हो गई। सेठ साहब का यही तो तरीका था, जिससे कि वे अपनी संस्थाओं की नींव पूरी तरह दृढ़ कर देते थे। यह औषधालय लोक-सेवा का अत्यन्त सराहनीय काम कर रहा है। सेठ साहब इस पर दो लाख बीस हजार रुपया आज तक खर्च कर चुके हैं।

प्रसूति गृह

प्रसूति गृह सेठ साहब द्वारा स्थापित की गई संस्थाओं में से एक प्रमुख संस्था है, इसलिये इसकी स्थापना का कुछ विवरण देना आवश्यक है। सम्मेदशिखरजी की यात्रा से लौटकर आपने जिस एक लाख के दान की घोषणा की थी, उसमें से पचास हजार स्त्रियोपयोगी कार्य के लिये रखा गया था। ट्रस्ट कमेटी की बैठक में राज्यभूषण सेठ हीरालालजी काशलीवाल ने जच्चाओं की होने वाली दुर्गति और सुआ रोग का सन्तान तथा माता पर जो कुप्रभाव पड़ता है, उसकी चर्चा की और प्रसूति गृह तथा शिशु रक्षा के लिये समुचित वैज्ञानिक व्यवस्था करने का प्रस्ताव किया। प्रस्ताव स्वीकार हो गया। तत्कालीन होम मिनिस्टर की सहमति से जमीन लेली गई और कार्य प्रारम्भ किया गया। आधार शिला सम्बत् १६८१ में महारानी साहेबा के हाथों से रखवाई गई। संस्था का नाम "श्रीमती कञ्चनबाई प्रसूति गृह और शिशु स्वास्थ्यरक्षा संस्था" रखा गया। सुप्रसिद्ध स्टेट सर्जन श्री सरजूप्रसादजी के सहयोग से संस्था ने आशातीत प्रगति की और शहर की एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति कर दी। पचास हजार तो इमारतों में ही लग गया और ध्रुव फण्ड के लिये भी पैंतीस हजार का प्रबन्ध हो गया। चौबीसों घण्टे संस्था का द्वार प्रसूताओं के लिये खुला रहता है। तीन वार्डों में तीस प्रसूताओं के रहने का प्रबन्ध है। पलंग, बिस्तर, दवा आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था है।

सम्बत् १६७७ में अपनी दूसरी कन्या श्रीमती ताराबाई के शुभ विवाह पर भी आपने छब्बीस हजार के दान की घोषणा की थी। १६८० में सेठ साहब श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा पर गये थे। वहां से सफल वापिस लौटने पर आपने एक लाख के दान की घोषणा की थी। इनमें से पचास हजार तो प्रसूति गृह के काम में लगाया गया और पचास हजार महाविद्यालय के ध्रुव फण्ड में जमा किया गया।

मारवाड़ी विद्यालय को

'मारवाड़ी विद्यालय' बम्बई की एक पुरानी सार्वजनिक संस्था है, जो मारवाड़ी समाज में शिक्षा के प्रसार का अभिनन्दनीय कार्य कर रही है। उसको आपने पच्चीस हजार की उदार सहायता प्रदान की।

हिन्दी साहित्य से अनुराग

किसी शिक्षा-संस्था में कोई विशेष और उच्च शिक्षा प्राप्त न करने पर भी हिन्दी और उसके साहित्य के प्रति आपका अनुराग बहुत गहरा और सराहनीय है। आपने हिन्दी साहित्य की समृद्धि की अभिवृद्धि में भी सराहनीय सहयोग दिया है। सम्बत् १६७५ अथवा सन् १६१८ में इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आठवां अधिवेशन हुआ। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी उसके अध्यक्ष थे। महाराज यशवन्तराज होलकर तब युवराज थे। युवराज के हाथों उसका उद्घाटन कराया गया था और सेठ साहब उसके स्वागताध्यक्ष थे। स्वागत समिति की ओर से अभ्यागत सज्जनों के आतिथ्य सत्कार तथा निवास आदि के लिये जो नगर बसाया गया था, उसका नाम

सेठ साहब के नाम पर 'हुकमचन्द नगर' रखा गया था। दो हजार आपने स्वागत समिति के काम के लिये, ७२१ रुपये साहित्य प्रकाशन और दस हजार रुपये सम्मेलन की निधि ने हिन्दी में शब्दकोष प्रकाशन करने के लिये प्रदान किये। अनेक प्रतिनिधि आपके निजी मेहमान थे, जिनको रंग महल आदि में ठहराया गया था।

इन्दौर की प्रमुख साहित्यिक संस्था मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति को भी आपका सम्पूर्ण सहयोग प्राप्त रहा है। वर्षों आप उसके सभापति रहे हैं। रायबहादुर मुन्तजिम खासबहादुर डाक्टर सरजूप्रसादजी उसके संस्थापक थे और प्रधान-मन्त्री भी रहे थे। समिति की ओर से आपके दान से "हुकमचन्द ग्रन्थमाला" का प्रकाशन हो रहा है। दस हजार रुपया आपने समिति के भवन को अपील होने पर भी दिया और उस भवन के शिवाजी हाल के लिये सेठ कस्तूरचन्दजी से भी तीस हजार के लगभग मिल गया। मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को भी सेठजी का सम्पूर्ण सहयोग प्राप्त है। पहिला अधिवेशन देवास के महाराज, दूसरा उज्जैन के प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य पं० सूर्यनारायणजी व्यास और तीसरा अधिवेशन ११-१२ जून १९४४ को बागली में सेठ साहब के सभापतित्व में हुआ। बागली के ठाकुर साहब मेजर सज्जनसिंहजी ने इसका उद्घाटन किया था। सेठ कस्तूरचन्दजी टोंगिया उसके स्वागताध्यक्ष थे। सेठ साहब का भाषण अत्यन्त सामयिक था, जो बहुत ही सराहा गया था। सेठ साहब ने इसमें ठीक ही कहा था कि "आपको मुझसे किसी विद्वत्तापूर्ण लम्बे-चौड़े भाषण की आशा या अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये। मैंने जो कुछ कहा है, वह मेरे अल्प अनुभव की बातें हैं।" सचमुच ही सेठ साहब का क्रियात्मक अनुभव इतना विशाल है कि उससे सभी क्षेत्रों में लाभ उठाया जा सकता है। 'हिन्दी' के प्रति अपनी सहज आस्था और निष्ठा का उल्लेख आपने इन शब्दों में किया था कि "आपको विदित ही है कि यह मेरी वृद्धावस्था है और मैं सांसारिक कार्यों से एक प्रकार से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा हूँ। फिर भी हिन्दी के हितों के संरक्षण का प्रश्न जब मेरे सामने आता है, तब मैं अपनी उस उदासीन वृत्ति को सहज में भूल जाता हूं और आज भी उसी भाव से प्रवृत्त होकर यहां आपके समक्ष उपस्थित हूँ।" विनीत भावना की प्रतिमूर्ति देखनी हो, तो इन शब्दों में देखिये कि "मध्यभारत को गौरव है कि यहां दो बार अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन हो चुके हैं। जहां इन अधिवेशनों में तप और त्याग की प्रतिमूर्ति उपस्थित थे, वहां राजकीय वैभव व राज्याश्रय भी पूर्ण मात्रा में कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन दे रहा था। इन दोनों सम्मेलनों की आयोजना में जो थोड़ी-बहुत सेवा मुझसे हो सकी थी, वह की थी और मध्यभारतीय साहित्य सम्मेलन की भी स्थापना से अब तक मैं उसका समर्थक व सहायक रहा हूं और आज भी उस पवित्र नाते को निबाहना मैंने अपना कर्तव्य समझा है।"

प्रान्तीय सम्मेलन को स्थायी रूप देने के लिये आपने स्वयं १००१) प्रदान किया और अपने मित्रों को भी प्रेरित करके दस हजार का चंदा सहज में ही करवा दिया। बागली में आपके व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव पड़ा और चंदा देने में तो होड़ ही सी लग गयी।

१९३५ में फिर दुबारा इन्दौर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन महात्मा गांधी के ही सभापतित्व में हुआ। इसी सम्मेलन में हिन्दी के राजभाषा और राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की मांग की गई थी। सेठ साहब का इस बार भी सराहनीय सहयोग रहा।

गांधीजी की पच्चीस हजार

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की सेठ साहब के साथ कितनी घनिष्ट आत्मीयता पैदा हो गई थी, इसका पता १९३५ में ३० अप्रैल को वर्धा से महात्मा गांधी के सेठ साहब को लिखे गये पत्र से मिलता है। वह पत्र यह है--

"भाई हुकमचन्द जी,

अब तक आपके तरफ से मुझे कुछ नहीं मिला, यह दुःख की बात है। अब भी अवश्य आशा रखूंगा कि हिन्दी प्रचार के लिये मुझे एक अच्छी हुण्डी मिल जायगी।

इसके साथ मजदूरों का दिया हुआ खत भेजता हूँ। यदि उस पत्र में लिखी हुई बात सही है, तो उसका इलाज शीघ्र करना आवश्यक और उचित समझता हूँ। कोई कारण नहीं कि आपके यहां आदर्श स्थापित न हो।

वर्धा आपका
३०—४—३५ मो० क० गांधी"

यह पत्र सेठ साहब के प्रति महात्माजी की आत्मीयता के साथ साथ सेठ साहब के उस हिन्दी प्रेम और मजदूरों के प्रति उस आदर्श व्यवहार का भी सूचक है, जिसका कि गान्धीजी को भी पूरा भरोसा था। इस पत्र के उत्तर में आपने पच्चीस हजार रुपया गान्धीजी को भिजवाया था।

हिन्दी की कवितायें सुनने को भी सेठ साहब को विशेष रुचि है। कवियों की कवितायें सुनना, उनसे वार्तालाप करना और उनका सम्मान करना भी कभी आपका स्वभाव-सा बन गया था। किसी स्कूल या कालेज की विशेष शिक्षा न होने पर भी आपको पुस्तकें और समाचार पत्र पढ़ने की विशेष अभिरुचि है। आपने सैकड़ों ग्रन्थ पढ़े होंगे और दो-चार दैनिक समाचारपत्र तो आप अब भी प्रति दिन देखते व पढ़ते हैं। देश व संसार की गतिविधि की आप पूरी जानकारी रखते हैं। स्मरण शक्ति भी आपकी आश्चर्यजनक है। पढ़ी हुई भी बात आपको याद रह जाती है। कोई लेखक या सम्पादक सामने आया और उसकी पुस्तक या समाचारपत्र आपने कभी पढ़ा है, तो उसी की चर्चा प्रारम्भ हो जायगी। हिन्दी के प्रति आपका प्रेम निर्विवाद और संशयरहित है। गुजराती का भी आपको अच्छा अभ्यास है। गुजराती की पुस्तकें और समाचारपत्र भी आप प्रायः पढ़ते रहते हैं।

तिलक स्वराज्य फण्ड

१६२० में देश की सर्वोपरि राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस की बागडोर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के हाथों में जब आई, तब आपने एक वर्ष में स्वराज्य-प्राप्ति के लिये जो कार्यक्रम प्रसिद्ध किया था, उसमें लोकमान्य तिलक की पुण्य स्मृति में कायम किये गये कांग्रेस के कोष में एक करोड़ रुपया जमा करना भी तय किया गया था। उस समय सभी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियां और सभी कार्यकर्ता इस निधि के लिये चन्दा जमा करने में जुटे हुये थे। अजमेर राजपूताना और मध्यभारत की एक ही प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी थी और उसका कार्यालय था अजमेर में। अजमेर से देशभक्त श्री चांदकरणजी शारदा के नेतृत्व में वयोवृद्ध श्री गणेशनारायणजी सोमानी, श्री गौरीशंकरजी भार्गव और स्वामी नृसिंहदेवजी का एक शिष्टमण्डल इन्दौर धन संग्रह करने के लिये आया। हिन्दी में विविध कोषों के रचयिता श्री सुखसम्पत्तिरायजी भण्डारी के साथ यह शिष्टमण्डल सेठ साहब की सेवा में उपस्थित हुआ। आपने इस शिष्टमण्डल का उचित सम्मान किया और २१०१) तिलक स्वराज्य फण्ड में प्रदान किया। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय सेठ साहब का कांग्रेस के साथ कोई विशेष सम्पर्क नहीं था। फिर भी आपके ही प्रभाव से इन्दौर में लगभग चालीस हजार की राशि जमा हो गई।

डेली कालेज

इन्दौर की छोटी-बड़ी सभी संस्थायें आपके उदार दान से उपकृत होती रही हैं। इन्दौर का 'डेली कालेज' मध्यभारत की वह संस्था है, जिसमें राजाओं, महाराजाओं और नवाबों तथा रईसों के लड़के ही शिक्षा ग्रहण करते हैं। आपके सुयोग्य पुत्र भैया साहब श्री राजकुमारसिंहजी साहब ने भी इसी कालेज में शिक्षा ग्रहण

की है। उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये आपने सम्वत् १९८९ में पच्चीस हजार रुपया प्रदान किया था। कालेज की प्रबन्धकारिणी समिति ने इसको धन्यवाद के साथ स्वीकार किया था।

प्लाण्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट

कृषिसम्बन्धी खोज करने वाली और अपनी खोज से किसानों तथा कृषिप्रेमियों को लाभान्वित करने वाली "प्लाण्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट" नाम की एक संस्था है। इस उपयोगी संस्था के विद्यार्थियों को स्कालरशिप देने के लिये आपने चार हजार रुपये प्रदान किये।

सर हुकमचन्द नेत्र औषधालय

इन्दौर में इतने औषधालय होते हुये भी आंखों के औषधालय की कमी थी और यह कमी बहुत खटकने वाली थी। आंखों के बीमार बहुत कष्ट उठाते थे। जनता के इस कष्ट और नगर की इस कमी को दूर करने के लिये तत्कालीन लोकप्रिय प्रधानमन्त्री रायबहादुर सर सिरेमल बापना तथा स्टेट सर्जन डा० सरजूप्रसादजी तिवारी ने सेठ साहब से निवेदन किया। दोनों के परामर्श पर सेठ साहब ने इकानबे हजार रुपये आंखों का औषधालय खोलने के लिये दिये। इस रकम से महाराजा तुकोजीराव हास्पिटल के अन्तर्गत आंखों का अस्पताल खोल दिया गया। सेठ साहब के नाम पर उसका नाम "सर हुकमचन्द आई हास्पिटल" रखा गया। समय-समय पर सेठ साहब इस हास्पिटल में अनेक भवन बनवाते रहे हैं। महाजन वार्ड आपका ही बनवाया हुआ है। इसी प्रकार इससे लगे हुये फीमेल हास्पिटल में सौभाग्यवती इन्दिरा महारानी आऊटडोर हास्पिटल, नर्सेस इन्स्टीट्यूशन और फैमिली वार्ड भी आपके ही बनवाये हुये हैं। इनमें एक लाख रुपया आपने व्यय कर दिया है। उसका उद्घाटन श्रीमान् महाराजा साहब श्री यशवन्तरावजी होलकर के हाथों से कराया गया। मध्यभारत में इस औषधालय ने आंखों के औषधोपचार के लिये विशेष ख्याति प्राप्त की। बहुत दूर-दूर से लोग आंखों के उपचार के लिये यहां आने लग गये थे। महाराजा साहब ने अपना भाषण स्वयं ही पढ़ा और उसमें आपने सेठ साहब और उनके घराने की दानशीलता की भूरि-भूरि सराहना की।

महाराजा साहब ने अपने भाषण में कहा था कि "इस समारंभ के अवसर पर "सर हुकमचन्द आई हॉस्पिटल" और "राज्यभूषण रायबहादुर कल्याणमल नर्सिंग होम" का उद्घाटन करते हुए उस उत्कृष्ट औदार्य का, जिसके कारण ये दोनों सुन्दर इमारतें बन सकी हैं, हार्दिक गौरव प्रकट करने में हमको विशेष आनन्द होता है। "नर्सिंग होम" के द्वारा इन्दौर और आस-पास के लोगों को औषधोपचार की अधिक सुविधाएं प्राप्त होंगी और यह उस व्यक्ति का जो आजीवन अपनी दानशीलता के लिये प्रसिद्ध था, उपयुक्त स्मारक होगा। वैसे तो यह अस्पताल उस बड़ी संस्था का, जो हमारे प्रतापी पितामह महाराजा तुकोजीराव के नाम से प्रसिद्ध है, नेत्र चिकित्सा विभाग का एक अमूल्य योग होगा।

"इन इमारतों का इन्दौर की जनता के उपयोग के लिए दिया जाना समाज सेवा का एक सुन्दर उदाहरण है, जिससे हमारे प्रमुख नागरिकों को उत्साहित होना चाहिए और मुझे आशा है कि उनका उत्साह हमेशा बढ़ता रहेगा। इन इमारतों के दाताओं की उदारता का संतोषकारक लक्षण, जिसकी ओर हम आज आपका ध्यान आकर्षित करें, यह है कि यह उदारता व्यावहारिक उपयोगिता के स्वरूप में प्रकट की गई है। इस देश में इस बात पर शायद ही ध्यान दिया जाता है कि दान निस्वार्थ दाताओं की कीर्ति का कारण होता है। वह उन दाताओं की कीर्ति द्विगुणित करता है, जो निस्वार्थ भाव से ही नहीं अपितु बुद्धिमानी से दान करते हैं।

"अविचारपूर्वक किया हुआ दान यद्यपि दाता की धार्मिकता का परिचायक है, तथापि हो सकता है कि वह पानेवाले को बहुत ही कम या कुछ भी फायदा न पहुंचा सके। यह हो सकता है कि अनुचित दान का नतीजा

केवल याचकवर्ग का ही पालनकर्त्ता रह जाय।

"हिन्दुस्तान के निवासी अपनी उदारता, भिक्षा देने में तत्परता तथा गरीब और दुःखी प्राणियों को मदद देने में प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ प्रतिवर्ष धर्मादा के नाम से अधिक मात्रा में चन्दा एकत्रित किया जाता है, किन्तु इस उदारता का प्रतिफल किसी चिरस्थायी रूप में नजर नहीं आता। हिन्दुस्तान में दानरूपी अविरत बहने वाली नदी का विभाजन बिल्कुल असंगठित है। दयापूर्वक देने की प्रवृत्ति है; किन्तु उस दान की मार्गदर्शक दूरदर्शिता का अभाव है। ऐसी हालत में यह देखकर समाधान होता है कि इस मौके पर दोनों सज्जन अपने स्वार्थत्याग के इन दोनों स्मारकों के कारण न केवल दान देने बल्कि रचनात्मक उदारता का उदाहरण पेश करने में सफल हुये हैं। उत्तम होगा, यदि दूसरे सज्जन भी इसका अनुकरण करें और हमको विश्वास है कि ज्यों-ज्यों समय गुजरेगा, त्यों-त्यों इन्दौर शहर में दान का संगठन अधिकाधिक महत्व का होता जायेगा और धार्मिक या मामूली दान के हितकर फल अत्यधिक-परिमाण में बढ़ जावेंगे। चूंकि हम सुसंगठित दान के विषय में बोल रहे हैं, हम आपका ध्यान एक दूसरे उद्देश्य की ओर, जिसका सीधा सम्बन्ध सार्वजनिक अस्पतालों की आर्थिक तथा कर्मचारियों की योजना से है—खींचना चाहते हैं। दूसरे देशोंमें प्रत्येक शारीरिक रोग के इलाज के लिए बड़ी बड़ी संस्थाओं को प्रतिवर्ष जनता की इच्छानुसार दिये हुए चन्दे से आर्थिक सहायता मिलती है। इन संस्थाओं मे बहुधा खानगी डाक्टर भी अधिकांश अवैतनिक कार्य करते हैं। इस देश में नियमबद्ध चिकित्सा अपनी बाल्य-दशा में ही है। उसके विस्तार में विलम्ब होने का कारण यह है कि यहां इस विषय मे सरकार को आय में से बहुत अधिक मात्रा में सहारे की आशा की जाती है। सरकार अपना कर्त्तव्य अदा करने के लिए तैयार है। लेकिन, वगैर दीगर सहायता के वह विस्तृत रूप में सार्वजनिक चिकित्सा का कुछ बोझा उठाने की जवाबदारी सहन करने की आशा नहीं कर सकती। निःसंशय, सर हुकमचन्दजी और रायबहादुर हीरालालजी का औदार्य, जिसका सम्मान करने के लिए आज हम सब यहाँ एकत्रित हुए हैं, योग्य दिशा में एक कदम स्वरूप है। किन्तु यहाँ पर भी हमें भविष्य में संस्था के चलाने तथा उसमें योग्य चिकित्सक की सेवा मिलाने के लिए सार्वजनिक दान के हर संगठन और व्यक्तिगत स्वार्थत्याग की आवश्यकता होगी। इन बातों में सार्वजनिक मत को शिक्षित करने के लिये बड़ा भारी अवसर है और हमको आशा है कि यहाँ पर एकत्रित हुए समस्त महानुभाव तथा शहर के दीगर निवासी हमारे इस अभिप्राय के महत्व को महसूस करेंगे। हम केवल निरन्तर आर्थिक सहायता और प्रचुर परिमाण में दान और खानगी व्यक्तियों द्वारा नियमबद्ध समाजसेवा से ही इन्दौर शहर तथा होलकर स्टेट की जरूरत के अनुरूप उपयुक्त रोग चिकित्सा कार्य को चलाने तथा उसका विकास करने की आशा कर सकते हैं। अन्त में आपने जो हमारा सत्कार किया है तथा इन दोनों नूतन संस्थाओं के दाताओं ने हमारे लिए जिन सम्मानसूचक शब्दों का प्रयोग किया है, इन दोनों के लिए सौ० महारानी साहिबा तथा अपनी ओर से हम हार्दिक धन्यवाद प्रकट करते हैं। हम दोनों उस समाज सेवा भाव को स्वीकार करने में, जिसकी प्रेरणा से ये दोनों संस्थाएं, अस्तित्व में आई हैं तथा उनके उद्घाटन सम्बन्धी उत्सव के मौके पर अध्यक्ष पद को स्वीकार करने में सच्चा आनन्द अनुभव करते हैं।"

श्री अहिल्या माता गौशाला

सेठ साहब की गोरक्षा भी आदर्श और अनुकरणीय है। आपकी निजी गोशाला में जैसी गाय, बैल, और भैंस हैं, वैसे आस-पास में मिलने मुश्किल हैं। पिछले ही वर्षों में इन्दौर में एक बृहद् यज्ञ वेदमन्त्रों के पाठ से किया गया था, जिसके लिए गौओं के प्रदर्शन की भी आवश्यकता थी। तब आपकी गोशाला की ही गायें वहां लाई गई थीं। उनके नाम भी आपने बहुत सुन्दर रखे हुये हैं। घर के पारिवारिक जनों की तरह उनका

लालन-पालन और पोषण किया जाता है। घर की दूध, घी, दही आदि की सारी आवश्यकता उसी से पूरी की जाती है। कितने ही गरीब लोग प्रतिदिन छाछ प्राप्त करके सन्तुष्ट और तृप्त होते हैं। फिर भी इन्दौर सरीखे धार्मिक नगर में गोरक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध न था। सम्वत् १९७७ में लोगों का इस ओर आपने ही ध्यान आकर्षित किया। आपने पिंजरापोल की स्थापना के लिये एक शिष्टमण्डल संगठित किया। ग्यारह पंचों की देख-रेख में चलने वाली गोशाला को भी आदर्श रूप देने की आपने बात उठाई। फण्ड की कमी थी। आपने दूकान दूकान से चन्दा जमा करने का प्रस्ताव किया। आपने शिष्टमण्डल संगठित किया और स्वयं दूकान दूकान पर जाकर सत्तर हजार रुपया जमा करा दिया। अपने पास से ३१०१) रुपया प्रदान किया। प्रातःस्मरणीया पुण्य-श्लोका अहिल्या महारानी के नाम पर "श्री अहिल्या माता गोशाला" की स्थापना की गई। आप वर्षों उसके अध्यक्ष रहे। आपको उसकी निरन्तर चिन्ता रहती है। अपने मुनीम गुमाश्तों से आप अपनी ही देखरेख में उसकी सारी व्यवस्था चला रहे हैं।

तुकोजीराव क्लाथ मार्केट

इन्दौर कपड़े की बहुत बड़ी मण्डी तो था ही; परन्तु मिलें खुल जाने से उसको और भी महत्व प्राप्त हो गया। सूती मिलों की संख्या इस समय पौन दर्जन पर पहुंची हुई है। इसीलिये उनके माल की निकासी के लिये एक बड़े मार्केट की आवश्यकता अनुभव की गई। बग्गीखाने पायगा की भूमि इसके लिये पसंद की गई और महाराज सर तुकोजीराव होलकर के हाथों से उसका शिलान्यास भी करा दिया गया। कुछ सरकारी झगड़ों और आपसी मतभेद से उसका काम बीच में ही रुक गया। मामला सेठ साहब के पास आया। आपने बीच में पड़कर सारा मामला निपटाया और मार्केट को बनवाकर बसा भी दिया। "श्री महाराजा तुकोजीराव क्लाथ मार्केट" इसी का नाम है। आप ही मार्केट कमेटी के अध्यक्ष हैं। दूर-दूर शहरों के व्यापारी आकर इस मार्केट में बस गये और इस मार्केट से देश की सभी मंडियों को कपड़ा जाना शुरू हो गया था। इस मार्केट की सफलता के लिये सेठ साहब द्वारा किये गये प्रयत्न के प्रति आभार प्रदर्शित करने के लिये मार्केट कमेटी ने इन्दौर के जैन समाज के अनुसार इस मार्केट में आपकी मूर्ति प्रस्थापित करने का निश्चय किया है।

हिंदू विश्वविद्यालय को

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के समान महामना पण्डित मदनमोहनजी मालवीय के निकट सम्पर्क में आने का सुअवसर भी आपको प्राप्त हुआ। हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये चन्दा जमा करने के सिलसिले में महामना मालवीयजी १९२० में इन्दौर पधारे थे। टाउन हाल में (इस समय जिसको 'गान्धी हाल' नाम दे दिया गया है) महाराजा साहब के सभापतित्व में विराट् सभा हुई। आपने तीनों भाइयों की ओर से पन्द्रह हजार देने का निश्चय प्रगट किया और विश्वविद्यालय में "जैन मन्दिर" और "जैन बोर्डिङ्ग हाउस" बनवाने की इच्छा प्रगट की। उस समय महामना मालवीयजी ने इस रकम को थोड़ी कह कर स्वीकार नहीं किया और सेठ साहब ने उसको उनके नाम से अलग जमा कर दिया। सम्वत् १९७१में सेठ साहब का 'हीरक जयन्ती उत्सव' मनाया गया। उसी अवसर पर महामना मालवीय जी अखिल भारतीय ज्योतिष सम्मेलन के सभापति होकर इन्दौर पधारे थे। आपसे उत्सव में पधारने का भी अनुरोध किया गया। उस अवसर से लाभ उठा कर सेठ साहब ने अपने पिछले दान के सम्बन्ध में फिर यह घोषणा की कि "वह रकम ब्याज सहित इस समय तक ४५ हजार हो चुकी है। उसमें पांच हजार अपनी ओर से और मिला कर पचास हजार मालवीयजी की सेवा में उपस्थित करता हूँ।"

मन्दिर और बोर्डिङ्ग हाउस के लिये योग्य भूमि के लिये लिखा-पढ़ी की गई और स्वयं भी सेठ साहब

दो बार इसी उद्देश्य से बनारस गये। एक बार तो विश्वविद्यालय के शिलारोपण-समारंभ के समय और दूसरी बार सम्वत् १९९० में कानपुर जाने पर। सेठ साहब मालवीयजी के साथ इस सम्बन्ध में निरन्तर पत्र-व्यवहार करते रहे। अन्त में २० मार्च १९४८ को अत्यन्त समारोह के साथ इसका शिलान्यास हो गया। सेठ साहब ने इसके लिये तब इक्यासी हजार का शुभ दान किया, जो कि शुरू में १५ हजार ही था, हीरक जयन्ती पर आपने उसको ५० हजार कर दिया था और अब उसको ८१ हजार कर दिया गया।

तुकोगंज में भूतपूर्व महाराज साहब द्वारा एक क्लब की योजना की गई। सेठ साहब ने क्लब के भवन के लिये पहिले पचास और बाद में पच्चीस हजार रुपये दिये।

किसानों के लिये दो लाख

सम्वत् १९७० में श्रीमाध महाराज साहब ने किसानों की सहायता के लिये एक निधि की स्थापना की थी। सेठजी से भी इसके लिये अनुरोध किया गया। आपने दो लाख रुपया प्रदान किया और उसका विनियोग महाराजा साहब की इच्छा पर ही छोड़ दिया।

श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक कालेज

सम्वत् २००० में फागुन बदी २ (११ फरवरी १९४४) को अपने सुयोग्य पुत्र के नाम पर "श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक कालेज" की स्थापना का उद्घाटन महोत्सव महाराज श्री यशवन्तराव होलकर के द्वारा सम्पन्न किया गया था। महाराज ने अपने भाषण में कहा था कि "आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली हमारे पूर्वजों के उन्नत ज्ञान का प्रमाण देती है। उन्होंने अपनी उपयोगिता से भारत के मस्तक को ऊंचा उठा रक्खा था। यहां पर यह ध्यान रखना चाहिए कि केवल पूर्वजों के नाम पर ही कोई कार्य जनता का ध्यान अधिक समय तक आकर्षित नहीं कर सकता। वर्तमान युग के वैज्ञानिक खोज का परिणाम है कि पश्चिमी देशों ने चिकित्सा प्रणाली में आश्चर्यजनक उन्नति की है। उसको ध्यान में रखते हुए आयुर्वेद प्रणाली में संशोधन की बहुत कुछ आवश्यकता मालूम होती है। औषधि-निर्माण में भी बहुत कुछ सुधार की मांग है। इससे प्रामाणिक औषधियां जनता में अधिक विश्वास उत्पन्न कर सकेंगी। चरक और सुश्रुत में जिस शस्त्र-क्रिया का उल्लेख मिलता है, उसमें भी परिस्थिति अनुसार सुधार करने की आवश्यकता है। आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली को हमारे राज्य में राज्याश्रय देने की योजना हमारे सामने कई वर्षों से थी। सुयोग्य व्यक्ति ही वैद्यका व्यवसाय करे, इस ध्येय की शर्त के लिये लगभग आठ वर्ष पूर्व हमने इन्दौर मेडिकल एक्ट जारी करने की स्वीकृति दी थी। इस एक्ट के अनुसार जो व्यक्ति योग्य थे, उनकी सूची तैयार की गई। देहातों में इस प्रणाली का अधिक प्रचार करने के उद्देश्य से कुछ दवाखानों में वैद्यों की नियुक्ति करने का प्रबन्ध किया गया। जिनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है। यद्यपि आरम्भ में इन दवाखानों का प्रबन्ध करने वाले योग्य वैद्यों की नियुक्ति में कुछ कठिनाइयां उपस्थित हुईं; परन्तु हर्ष की बात है कि अब इन दवाखानों का कार्य सन्तोष-जनक रूप में चल रहा है। हमें आशा है कि इस संस्था से उत्तीर्ण होने वाले भावी वैद्य हमारी प्रजा विशेषत: हमारी कृषक प्रजा, जिसकी बहतरी और खुशहाली की योजनाओं की ओर हमारा ध्यान सदैव लगा रहता है, के स्वास्थ्य की उन्नति में दिलचस्पी दिखाकर लोकसेवा का कार्य करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे। हम फिर सर हुकमचन्दजी के अनेक लोकसेवा के कार्यों की सराहना करते हैं और आशा करते हैं कि हमारे राज्य के अन्य धनिक भी उनका उदाहरण ग्रहण कर अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग लोकसेवा के कार्यों में ही करते रहेंगे।"

सेठ साहब ने महाराजा साहब का आभार मानते हुये यह घोषणा की कि "चिरंजीव राजकुमारसिंह ने इस कालेज के लिये अपने पास से एक लाख दिया है।" भवन आदि का ५० हजार इससे अलग था। इस प्रकार

यह दान डेढ़ लाख का हो गया। इसी पर भैय्या साहब को 'दानवीर' की उपाधि से विभूषित किया गया है।

मालेगांव के हिन्दू

मालेगांव दक्षिण के हिन्दुओं का कर आदि के कारण स्थानीय अधिकारियों के साथ कुछ झगड़ा हो गया और हिन्दू लोग मालेगांव छोड़ कर बाहर जाने लगे। उनका एक डेपूटेशन सेठ साहब के पास भी आया। आपने बम्बई के बड़े लोगों और सरकारी अधिकारियों के साथ लिखापढ़ी की। आप गवर्नर से स्वयं भी मिले। उनके सारे कष्ट आपने दूर करा दिये। इसके लिये वहां की जनता अब भी आपका आभार मानती है।

विक्रमादित्य

उज्जैन में सम्वत् २००० पूरे होने पर श्री विक्रमादित्य महोत्सव मनाने का आयोजन किया गया था। उसके लिये आपने पचास हजार देने की घोषणा की थी। सम्वत् २००१ में श्रावण वदी ७ को श्रीमान महाराज यशवन्तराव के युवराज-जन्म के उपलक्ष में गरीबों की सहायता के लिये ७००१) दिये गये थे। सम्वत् २००१ को वैशाख वदी १४ को ग्वालियर महाराज के नामकरण महोत्सव के अवसर पर परमार्थ कार्यों के लिये इक्कीस हजार प्रदान किया था। इसी वर्ष उज्जैन में राजयक्ष्मा का औषधालय बनाने के लिये ग्वालियर महाराज को चार लाख, बम्बई के राजयक्ष्मा औषधालय को २१ हजार, ग्वालियर में माउण्टमरी विद्यालय बनाने के लिये अपनी ओर से ८२०० और सेठानी साहिबा की ओर से ४१०० रुपये प्रदान किये। सम्वत् २००२ में वैशाख सुदी १० को इन्दौर के राजयक्ष्मा अस्पताल के लिये इन्दौर नरेश की मार्फत दो लाख और इसी वर्ष फागुन वदी १२ को श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक-कालेज की स्थिर निधि के लिये एक लाख दिया। संयोगितागंज के गर्ल्स स्कूल को २००३ में २१०१, उज्जैन महिला मण्डल को सेठानीजी की ओर से ५००० और अखिल भारतीय महिला परिषद् को भी ५००० दिया गया।

देशी राज्य लोक परिषद्

तिलक स्वराज्य फण्ड में दिये गये दान की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। सम्वत् २००३ में असोज वदी ६ को आपने इन्दौर राज्य प्रजामण्डल की सहायता के लिये २१०१, चेत वदी ११ को ग्वालियर में पण्डित जवाहरलालजी नेहरू के सभापतित्व में हुये अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के आठवें अधिवेशन के लिये स्वागत समिति को पांच हजार, फिर २००४ में फागुन वदी १० को मध्य भारत देसी राज्य लोक परिषद् को ३१०० और इन्दौर कांग्रेस कमेटी को भी आपने २००० रुपये प्रदान किये।

स्थानीय गांधी निधि

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की पुण्य स्मृति में कायम की गई राष्ट्रीय निधि के लिये भी आपने स्थानीय निधि में दस हजार एक का दान दिया। बम्बई में जमा की गई निधि में भी दो हजार दिये। सरदार पटेल द्वारा उद्योगपतियों की ओर से की गई पांच करोड़ की निधि में भी आपने अपना हिस्सा प्रदान किया।

सम्वत् २००३ में भाद्वा सुदी २ को शरणार्थी रिलीफ फण्ड में आपने पच्चीस हजार रुपये प्रदान किये।

इनके अलावा जो छोटी-मोटी अन्य रकमें समय-समय पर दी गई, उनका जोड़ भी पन्द्रह लाख पर पहुंच जाता है। धार्मिक और सामाजिक कार्यों में लगाये गये लाखों रुपयों की चर्चा तो अगले प्रकरण में की जायगी। कुल मिलाकर सारा दान ८० लाख के लगभग हो गया है। अब भी दान का यह प्रवाह बंद नहीं हुआ है। ऊपर के दिये गये विवरण से यह प्रगट है कि यह दान सहस्रधारा की तरह सब ओर, सभी संस्थाओं और सभी कार्यों के लिये दिया गया है। लोकोपकार की कोई भी दिशा उससे वंचित नहीं रही है। राजकीय किंवा

शासकीय क्षेत्र के समान राष्ट्रीय किंवा राजनीतिक क्षेत्र भी इससे वंचित नहीं रहे। शहर की जनता के लिये जहां-जहां अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं के समान गांवों के किसान भाइयों की पुकार पर भी सेठ साहब ने समुचित ध्यान दिया। अन्न-दान, वस्त्र-दान, औषध-दान के साथ जीवन-दान और सबसे बढ़कर ज्ञान-दान का पुण्य लाभ करके सेठ साहब ने अपनी सम्पत्ति को सार्थक बना लिया। संस्थाओं की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से और काल की दृष्टि से भी यह दान इतना व्यापक है कि इसको 'सर्वमेधयज्ञ' का अनुष्ठान कहा जा सकता है। 'सर्वमेध' का अभिप्राय यहां लोकोपकार और जनकल्याण की सभी प्रवृत्तियों को सफलतापूर्वक पूर्ण बनाना है। यह अपने पाठकों पर ही छोड़ना समुचित रहेगा कि वे देखें कि सार्वजनिक जीवन की कौन सी दिशा या प्रवृत्ति ऐसी है, जो सेठ साहब के उदार दान के सात्त्विक लाभ से वंचित रह गई है। इस प्रकार का चहुँमुखी दान करने वाले विरले ही भाग्यवान दीख पड़ते हैं।

: ७ :

धार्मिक क्षेत्र में

"आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥"
"अरब खरब की सम्पदा, उदय अस्त लों राज ।
धर्म बिना सब व्यर्थ ज्यों, पत्थर भरी जहाज ॥"

धर्मशास्त्रों में ही नहीं, नीतिग्रन्थों में भी धर्म की असाधारण महिमा गाई गई है । आज का मानव धर्म से इतना उपराम या विमुख हो गया है कि उसे नीति अथवा व्यवहार में धर्म की कुछ भी आवश्यकता अनुभव नहीं होती । नीति को वह धर्म से बिलकुल रहित ही मानता है । इसीलिये वह इतना अधिक स्वच्छन्द होता जा रहा है कि उसको जीवन में संयम, सादगी, सरलता, सहिष्णुता तथा सहृदयता आदि की कुछ भी आवश्यकता अनुभव नहीं होती । हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि ऐसे स्वच्छन्द जीवन और पशु के जीवन में कुछ भी अन्तर नहीं है । खाना-पीना, सोना, जागना, डरना-डराना और इन्द्रिय भोग तो पशु और मनुष्य समान रूप से करते ही हैं । मनुष्य में यदि अधिक कुछ है, तो वह केवल धर्म है और धर्म के बिना वह पशु के समान है । मनुष्य ने यदि अरब-खरब की सम्पदा पैदा कर ली और जहां से सूर्य उदय होता है, वहां से लेकर जहां वह अस्त होता है, वहां तक का राज्य भी प्राप्त कर लिया, तो धर्म के बिना वह सब वैसे ही व्यर्थ है, जैसे कि पत्थर से भरा हुआ जहाज होता है । पत्थरों से भरे हुये जहाज का भविष्य डूबने के सिवाय और क्या हो सकता है ? इसी प्रकार धर्म से विमुख होकर मनुष्य अन्त में डूबेगा ही । कितने मनुष्य हैं, जो इस सचाई को समझते हैं और समझ कर भी उसको अपने जीवन में पूरा उतारते हैं । इसीलिये तो आज के मानव ने उस संसार को, जिसको कि वह स्वर्ग बना सकता है, नरक बना रखा है और नरक को भीषण यातनायें भोगने में वह लगा हुआ है । हमारे चरित्रनायक इसके अपवाद हैं । धर्म में आपको सहज और स्वाभाविक आस्था है । कुलपरम्परा से ही धार्मिक वृत्ति आप में असाधारण रूप में जागृत हुई है । आप स्वयं उसको जन्मसिद्ध मानते हैं । आपके जन्म के ग्रहों का योग भी कुछ ऐसा प्रस्तुत है कि उसी में यह निहित है कि आपकी धार्मिक वृत्ति भी अत्यन्त प्रबल होगी । पुराने इतिहास और साहित्य में ऐसे महापुरुषों का चरित्र अवश्य मिलता है, जिन्होंने संसार में राजकीय वैभव में रहकर भी उसका उपभोग इस रूप में नहीं किया कि वे उसमें तल्लीन हो गये हों । लोक में राजा जनक को 'विदेह' इसीलिए कहा गया है कि धर्म में लीन होने पर वे अपने देह की सुध-बुध भूल जाते थे । संसार के सुख, वैभव और ऐश्वर्य की तो बात ही क्या है ? राजा भरत भी ऐसे ही चक्रवर्ती सम्राट् थे । उन महापुरुषों की पुरातनतम परम्परा की एक दिव्य झांकी सेठ साहब ने भी अपने सफल और महान जीवन में उपस्थित कर दिखाई है । आपके साधनामय विरक्त जीवन का चित्र तो यथास्थान उपस्थित किया जायगा । यहां तो केवल वह भव्य

पृष्ठभूमि ही उपस्थित की जा रही है, जिस पर सेठ साहब सरीखे चतुर चित्रकार ने अपने सक्रिय जीवन का वह दिव्य चित्र अंकित किया है। संसारी जीवों के लिये तो आपने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर दिखाया है।

इसमें सन्देह नहीं कि सेठ साहब के व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन के उत्कर्ष का आधार श्री दिगम्बर जैन धर्म है। उसकी इकाई दिगम्बर जैन समाज कहा जा सकता है। परन्तु आपके धर्म और समाज की इस भावना तथा कल्पना को संकीर्णता कहीं छू भी नहीं सकी है। वह समुद्र की तरह महान, हिमालय की तरह उज्ज्वल और आकाश की तरह विशाल है। अनुदारता का उसको कहीं स्पर्श भी नहीं हुआ है। तभी तो आपके जीवन की प्रगति इस प्रकार विकासोन्मुखी हुई है कि उसको देखने वाले चकित रह जाते हैं। आपके प्रारम्भिक जीवन की छाया में आज के जीवन को देखने वाले सहसा ही विस्मय में पड़ जाते हैं। परन्तु जिन्होंने इस प्रगति और विकास के क्रम का कुछ बारीकी या गहराई से अध्ययन किया है, उनके लिए यह समझ सकना कुछ भी कठिन नहीं है कि जो हमारे चरित्रनायक के जीवन में माता के स्तनपान के साथ ही धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण हो गया था और उन बीजों का अंकुर जब फूटा, तब वह आकाश में सिर ऊंचा किये ऊपर की ओर ही बढ़ता चला गया।

जैन धर्म और जैन समाज पर ही नहीं, किन्तु किसी पर भी कोई संकट उपस्थित हो, तो तुरन्त उसके निवारण के लिये समुचित कार्यवाही करना आपका स्वभाव बन गया है। प्लेग, मंहगाई और दुर्भिक्ष आदि की आधिभौतिक किंवा दैवीय आधिव्याधि उपस्थित होने पर मनुष्यमात्र की सेवा के लिये आपका हृदय विकल हो उठता है। ४ फरवरी १६५१ को बांकानेर-मध्यभारत में श्री १०८ मुनि महावीर कीर्तिजी महाराज पर मन्दिरजी की धर्मशाला को आम रास्ते से जाते हुये एक गुण्डे ने लकड़ी से प्रहार कर दिया। उसकी सूचना सेठ साहब को दी गई, तो आपने तुरन्त फोन करके अधिकारियों को उचित कार्यवाही करने के लिये प्रेरित किया। एक जैन पत्र में इस घटना की पूरी जानकारी न होने के कारण कुछ ऐसी आलोचना कर दी गई कि "जैन समाज घोर निद्रा में है और मुनि महाराज पर इतना उपसर्ग होने पर भी किसी में चेतना नहीं आई।" इस पर सेठ साहब ने उक्त पत्र के सम्पादक-महोदय को एक पत्र लिखते हुये लिखा कि "इस घटना के बाबत हमारे पास धर्मपुरी के जैन समाज का तार आने से हमने फौरन कार्यवाही की।...................... आपने जैन समाज और पुलिस को घोर निद्रा में लिखा, सो ऐसी बात नहीं है। बांकानेर और धर्मपुरी से तार द्वारा समाचार मिलते ही हमने पर्याप्त प्रयत्न किया, जिसका विवरण यहां के पत्रों में भी छप गया है, सो भेजते हैं। आपको पढ़ने से सब मालूम हो जायगा। यह कैसे हो सकता है कि खास हमारे मध्यभारत में ही ऐसी घटना हो जावे और हम चुप रहें? ऐसे मामलों में हम सदा सतर्क रहते हैं और फौरन कार्यवाही करा कर ठीक करा देते हैं। यह तो हमारे मध्यभारत का ही गांव था, सो टेलीफोन करने से काम बन गया। बाकी दूसरी जगह के काम में भी पूर्ण लगन से यथाशक्ति काम किया ही जाता है।"

आचार्यश्री में श्रद्धा

परमपूज्य जगत्वन्द्य चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज अपने चरित्र और तपोबल के प्रभाव से संसार में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। अवसर निकाल कर सेठ साहब आपके दर्शनों का लाभ निरन्तर लेते रहते हैं? आचार्य श्री संघसहित जब इन्दौर पधारे थे, तब आपके अद्वितीय व्यक्तित्व का सेठ साहब पर विशेष प्रभाव पड़ा। स्वदारसन्तोष व्रत तो आप प्रारम्भ से ही पालते आ रहे हैं और पीछे ६० वर्ष की अवस्था में आचार्यश्री के सम्मुख त्रिलोकचन्द जैन हाईस्कूल में आपने हजारों की उपस्थिति से पूर्ण ब्रह्मचर्य का

व्रत लिया और उसका आप यथावत् पालन कर रहे हैं। आपके-से धन-वैभव, सुख-सम्पत्ति और सर्वसाधना सुलभ व्यक्ति के लिये संयम का जीवन बिताना कितना कठिन है ? फिर भी आपका संयम सराहनीय और अनुकरणीय है। आचार्यश्री और मुनिधर्म पर जब भी कोई उपसर्ग या संकट उपस्थित हुआ, आप उसके निवारण करने में सहसा ही तत्पर हो गये और अपने प्रयत्नों में सफल होकर ही आप शान्त हुये। सन् १९२९ में आचार्यश्री संघ के साथ दिल्ली पधारे थे। तब सरकार की ओर से कुछ पाबन्दियां लगा दी गईं थीं। उन पर विचार करने के लिये कलकत्ता में एक विराट सम्मेलन का आयोजन किया गया था। आप ही उसके सभापति हुये थे और सारी कार्रवाई आपके ही नेतृत्व में की गई थी। १९४२ में नातेपूते (शोलापुर) में आप पर उपसर्ग होने पर अदालत में जब मुकदमा चला, तब आप अहोरात्र चिन्तित रहते थे और चारों ओर फोन आदि करके उचित परामर्श देते रहे थे। आपने सभी सदस्यों को अर्जेण्ट तार देकर महासभा की बैठक बुलाने का भी अनुरोध किया था। आप स्वयं मोटर द्वारा इन्दौर से दिल्ली पधारे थे और मुकदमे की पैरवी के लिये समुचित प्रबन्ध किया था। बम्बई सरकार ने हरिजन मन्दिर प्रवेश कानून को जब जैन मन्दिरों पर भी जबरन् लागू किया, तब सन् १९४८ में आचार्यश्री ने अन्न का परित्याग कर जो आत्मसाधना की, उससे सेठ साहब को बहुत चिन्ता हुई। सेठ साहब ने काफी समय तक अन्नाहार का भी त्याग कर दिया था। पीछे आचार्यश्री की वृद्धावस्था का आपके तन-बदन पर विपरीत असर पड़ने लगा, तब आप और भी अधिक चिन्तित रहने लगे। आप स्वयं भी बम्बई में बीमार थे। आपकी शारीरिक स्थिति चिन्ताजनक हो गई थी। फिर भी आपने आचार्यश्री के दर्शनों के लिये जाने का आग्रह किया। डाक्टरों ने रेल-यात्रा करने की अनुमति न दी। आपने इन्दौर से अपनी मोटर गाड़ियां मंगा कर यात्रा करने और आचार्यश्री के दर्शनों के लिये गजपंथा जाने का सारा प्रबन्ध कर लिया। अन्तिम समय में पता चला कि आचार्यश्री का विहार आगे की ओर हो गया है। तब निराश होकर आपने यात्रा का विचार छोड़ दिया और मोटरें इन्दौर लौटा दी गईं। इन दिनों में भी आपको आचार्यश्री के स्वास्थ्य की विशेष चिन्ता रहती है और उनके सम्बन्ध में समाचार मंगाते ही रहते हैं। आपकी गुरुभक्ति अनुकरणीय है।

श्रीकानजी स्वामी में भक्ति

सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन धर्म की प्रभावना करने वाले, हजारों को दिगम्बर जैन धर्म की दीक्षा देने वाले और स्वयं भी सम्वत् १९९२ के लगभग श्वेताम्बर से दिगम्बर धर्म को अंगीकार करने वाले श्री कानजी स्वामी में भी आपकी अपार भक्ति है। स्वामीजी के दर्शनों के लिये आपने तीन बार सोनगढ़ की यात्रा की है। वहां जैनधर्म की प्रभावना करने में आपका बहुत बड़ा हाथ रहा है। वहां आपने लगभग एक लाख रुपये का दान मन्दिर तथा स्वाध्याय भवन आदि के निर्माण के लिये किया है। सन् १९४८-४९ में अत्यन्त रुग्ण और अशक्त रहते हुये भी आपने लाठी-सौराष्ट्र में होने वाले पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में जाने का उत्साह प्रगट किया था। उन दिनों में आप प्रायः यही कहा करते थे कि श्री कानजी स्वामी सनातन दिगम्बर जैन धर्म का महान उद्योग कर रहे हैं। इसीलिये उनके उपदेश से दिगम्बर जैन धर्म स्वीकार करने वाले हजारों भाई-बहिन धन्य है। मेरा उनके प्रति उत्कट वात्सल्य भाव है।

पहिली बार सेठ साहब सन् १९४५ में अपने परिवार के विशिष्ट लोगों—सौ० सेठानी साहिबा, सेठानी प्यारकुंवरबाईजी (डा० वी० रा० ब० स्व० सेठ कल्याणमलजी की पत्नी) सेठ फतेचन्दजी सेठी, सेठ नाथूलालजी सराफ, लाला हजारीलालजी जैन, पं० नाथूलालजी शास्त्री आदि अनेक सज्जनों तथा नौकर-चाकरों के साथ धार, सरदारपुर, दाहोद, गोदरा, अहमदाबाद, डाकोर, बावरा, भायला, धंधूका आदि होते हुये तीन मोटरों पर स्थल मार्ग से गये थे। सोनगढ़ में श्रीसीमंधर स्वामी का दिगम्बर जैन मन्दिर, श्री समोसरण मन्दिर, जैन स्वाध्याय

मन्दिर पुस्तकालय आदि दर्शनीय हैं। यहां सेठ साहब ने १२५०१ रुपये जैन मन्दिर ट्रस्ट को प्रदान किया। सेठानी साहिबा ने भी १२५०१ रुपये, सेठानी प्यारकुंवरबाईजी ने ५००१ रुपये और सेठ फतेचन्द सेठी ने ५०१ रुपये प्रदान किये। इस संस्था के मासिक पत्र "आत्मधर्म" को गुजराती से हिन्दी में प्रकाशित करने के लिये भी सेठ साहब ने १००१ रुपये दिये। राजकोट के श्री जौहरी कालीदास राघवजी ने श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत ४१५ गाथाओं को चांदी के सुन्दर पत्रों पर खुदवाया था। वह उन्होंने सेठ साहब को भेंट किये और सेठ साहब ने श्री कानजी स्वामी को समर्पित किये। सोनगढ़ के आर्यसमाज के गुरुकुल में भी आपका स्वागत सम्मान किया गया। आपको सोनगढ़ में ४० स्थानों के प्रतिनिधियों ने मानपत्र भेंट किया और श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप के शिलान्यास के लिये पधारने को प्रार्थना की। जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट की ओर से प्रकाशित १८ ग्रन्थ भी आपको भेंट किये गये। लौटते हुये राजकोट और बढ़वान आदि में आपका भव्य स्वागत किया गया। बढ़वान के भाइयों की ओर से बैरिस्टर पोपटलाल चुडगीगर ने कहा कि "सर सेठ साहब का सम्मान हम धनकुबेर होने के नाते नहीं करते, अपितु इसलिये करते हैं कि आप दृढ़ धार्मिक और लोकोपकारी महापुरुष हैं। इसीलिये आपके प्रति हमारा आदरभाव है। आपके इधर आने से नवीन दिगम्बर जैन बन्धुओं को बड़ा बल मिला है।"

तीसरी बार सेठ साहब "भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप" का उद्घाटन करने के लिये १८ फरवरी १९४७ को सोनगढ़ स्पेशल बोगी रिजर्व करवा कर गये थे। दूसरी बार इसी का शिलान्यास करने के लिये पधारे थे। तब आपने ११००१ रुपया प्रदान किया था। इस बार भी कुटुम्ब के लोग और आपकी पार्टी साथ थी। भैया साहब श्री राजकुमारसिंहजी कलकत्ता से हवाई जहाज से एक दिन पहले पहुँच गये थे। बढ़वान तथा अन्य स्टेशनों पर महिलाओं ने मंगल गीत गाकर स्वागत किया। २१ फरवरी को बड़ी धूमधाम से जलूस निकाले जाने के बाद भवन का उद्घाटन किया गया और परिवार के उपस्थित पांचों सदस्यों (स्वयं सेठानी साहिबा, भैया साहब, पुत्रवधु और पौत्र) की ओर से सात-सात हजार कुल पैंतीस हजार का दान "स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट" को देने की घोषणा की। विद्यार्थियों का भैया भगवतीदासजी रचित निमित्त उपादान का रोचक संवाद सुनकर उनको १०१ रुपये का पारितोषक प्रदान किया। २२ फरवरी को भावनगर राज्य के दीवान साहब के सभापतित्व में ५६ स्थानों के दिगम्बर जैन भाइयों की ओर से आपको मानपत्र भेंट किया गया। आपने विनम्र शब्दों में कहा कि श्री कानजी स्वामी द्वारा की जाने वाली धर्म प्रभावना में अपनी सारी सम्पत्ति के उपयोग को भी मैं सफल मानूंगा।" २३ फरवरी को स्टेट की मोटरों से आप सारी पार्टी के साथ भावनगर गये और वहां ताज-महल अतिथि भवन में ठहराये गये। घोंघा बन्दर के भव्य दिगम्बर जैन मन्दिरों के दर्शन किये, जिनमें पचासों चौबीसी और अति प्राचीन स्फटिक की प्रतिमा हैं। सोनगढ़ के महिला ब्रह्मचर्य आश्रम में महिलाओं की सभा सेठानीजी की अध्यक्षता में हुई।

श्वास रहते भी सहयोग दूंगा

२४ फरवरी को विछिया ग्राम जयन्दन राज्य में नवीन दिगम्बर जैन मन्दिर और स्वाध्याय मन्दिर का शिलान्यास करने के लिये करीब सौ मनुष्यों के साथ स्पेशल गाड़ी से गये। वहां स्टेट गार्ड ने आपको सलामी दी और स्टेट के लवाजमे के साथ जनता ने आपका स्वागत किया। महिलाओं का "आज सोना को सूरज उगियो" स्वागत गीत अत्यन्त ओजस्वी और महत्वपूर्ण था। सेठ साहब ने कहा कि "श्री कानजी स्वामी के प्रभाव से इस ओर जहां भी कहीं दिगम्बर जैन मन्दिर की नींव डाली जायेगी, तो मुझे बुलाने पर श्वास रहने भी आकर सहयोग दूंगा।" आपने अपने परिवार के उपस्थित पांचों व्यक्तियों की ओर से एक-एक हजार कुल पांच हजार भेंट किया। स्वर्गीय सेठ कल्याणमलजी साहब और सेठ देवकुमारसिंहजी एम० ए० की पत्नियों ने भी

२०१-२०१ प्रदान किया। आपकी प्रेरणा से तत्काल ३२ हजार का चन्दा जमा हो गया। इसके अतिरिक्त एक हजार रुपया जसंदन के परवार साहब ने भी प्रदान किया। लौटते हुए आपने आबूजी के ऐतिहासिक मन्दिरों और चित्तौड़गढ़ के ऐतिहासिक किले तथा अन्य स्थानों का भी अवलोकन किया। वहां जीर्ण-शीर्ण जैन मन्दिरों और मानस्तम्भ पर निर्मित जैन मूर्तियों को देख कर आपने उन स्थानों को उदयपुर राज्य से प्राप्त कर उनका जीर्णोद्धार करने पर जोर दिया। दानवीर धर्मवीर सर सेठ भागचन्दजी सोनी को इसके लिये प्रेरित भी किया। सारे मार्ग में खूब चर्चा रही। भैय्या साहब श्री राजकुमारसिंहजी की धर्मजिज्ञासा, प्रतिभा तथा बुद्धिमत्ता की श्री कानजी स्वामी ने सराहना की। २६ फरवरी की रात को सेठ साहब सब साथियों के साथ इस धर्मयात्रा से वापिस लौटे।

कुल परम्परा

सेठ साहब में धर्मप्रभावना की यह उत्कट भावना पारिवारिक संस्कारों का ही परिणाम समझी जानी चाहिये। धर्म कार्यों में आवश्यकता तथा अवसर के अनुसार मुक्त दान से खर्च करना आपके घराने की परिपाटी रही है। सम्वत् १९३९ में, जब सेठ साहब आठ वर्ष के थे, बड़वानी सिद्धक्षेत्र पर बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था। तब सेठत्रय माणिकचन्दजी, सरूपचन्दजी और ओंकारजी कुटुम्ब सहित पन्द्रह दिन पहले वहां पहुंच गये थे बहुत उत्साह से उसमें तीनों भाइयों ने योगदान दिया और खर्चे में भी उदारता से हाथ बंटाया। पहाड़ की तलेटी में तब सकराने का एक मन्दिर भी बनवाया था। इस अवसर पर दस हजार रुपया खर्च किया गया था।

सन् १९४८-४९ की भयानक बीमारी में कभी किसी ने भी आपके मुंह से 'आह' की आवाज नहीं सुनी। हर समय मणिमय माला हाथ में रखे हुये 'अरहन्त' का ही निरन्तर जाप करते रहे।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के साथ उसके जन्म समय से ही आपका सम्पर्क है। ४०-४५ वर्षों से यह सम्पर्क विशेष रूप से है। सच तो यह है कि आपके सम्पर्क, सहयोग और नेतृत्व से महासभा को आज का सा स्वरूप, शक्ति, संगठन तथा बल मिला है और आपकी सार्वजनिक प्रवृत्तियों का क्षेत्र भी महासभा के ही कारण इतना व्यापक, विस्तृत और प्रभावशाली बन सका है। महासभा के सम्बन्ध में सबसे बड़ी उल्लेखनीय बात तो यह है कि आपने महासभा के साथ सम्पर्क हो जाने के बाद अपनी सार्वजनिक प्रवृत्तियों, जैन धर्म तथा जैन समाज की सेवा का सारा श्रेय प्रायः महासभा को ही देने का प्रयत्न किया और अपने व्यक्तित्व को महासभा के संगठन की भेंट सर्वतोभावेन कर दिया। गांधीजी के महान व्यक्तित्व का जो लाभ कांग्रेस को मिला है, उससे कुछ अधिक ही लाभ आपके महान व्यक्तित्व से महासभा को प्राप्त हुआ है। सन् १९१९ में श्री सम्मेद-शिखरजी ने अपने चौदहवें चालू अधिवेशन के सभापतित्व का कार्य सम्पादन किया और वहां आप प्रधानमन्त्री नियुक्त किये गये, जो कि दो वर्ष तक रहे। फिर मथुरा में सन् १९१४ में १९ वें वार्षिक अधिवेशन के आप सभापति हुये और सात वर्षों तक आप स्थायी सभापति रहे। फिर सन् १९३८ में बनेड़िया में ४१ वें अधिवेशन के आप सभापति हुये। उसके बाद सन् १९४० में देवगढ़ में ४२ वें और ४३ वें अधिवेशनों के सभापति हुये। इन अवसरों पर दिये गये आपके भाषणों को बहुत अधिक सराहा गया। समय-समय पर आप महासभा के चालू खर्च और स्थायी फण्ड के लिये बराबर बड़ी-बड़ी रकमें देते रहे। सम्वत् १९७० में मथुरा में महासभा के तेतीसवें वार्षिक अधिवेशन पर आपको महासभा की ओर से मानपत्र दिया गया और "दानवीर" की पदवी से भी विभूषित किया गया। यहां अपने महासभा के चालू खर्च के लिये बड़ी रकम दी। सन् १९४४ में उज्जैन में हुये ४६ वें अधिवेशन में आपने सात हजार रुपया अपने पास से देकर विशेष चन्दा करा दिया। मालवा प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा के आप स्थायी अध्यक्ष हैं और उसके अनेक अधिवेशनों का भी आपने सभापतित्व किया

और उसके लिये भी हजारों रुपया प्रदान किया। बम्बई प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा को भी आपसे विशेष सहायता और बल मिला है। इस समय आप महासभा के संरक्षक हैं। धर्म, जाति और समाज की सेवा का जो भी कार्य आप करते हैं, उसका सारा श्रेय महासभा को देने में आप तनिक भी संकोच नहीं करते।

सेवा जीवन का व्रत

जैन धर्म और जैन समाज की सेवा को जीवन का व्रत बनाकर आपने जो महान कार्य किये हैं, उनको मुख्यतः चार भागों में बांटा जा सकता है। एक तीर्थों की सेवा, दूसरा जैन तीर्थों अथवा मुनिधर्म के लिये उपस्थित होने वाले उपसर्ग या संकट का निवारण, तीसरा आपस के झगड़ों का निपटारा और चौथा विविध संस्थाओं की स्थापना और सहायता। सामान्य रूप से गत आधी सदी की दिगम्बर जैन समाज की प्रगति एवं विकास का इतिहास आपके जीवन के साथ छाया की तरह जुड़ा हुआ है। दोनों को एक दूसरे से अलग करना कठिन है। यदि उससे सेठ साहब के व्यक्तित्व और जीवन कार्य को अलग कर दिया जाय, जो कि संभव नहीं है, तो वह निश्चय ही अर्थशून्य और प्रभावशून्य हो जायगा।

तीर्थों की सेवा

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणकचन्दजी के देहान्त के बाद से ही तीर्थ क्षेत्र कमेटी का कार्यभार आपके कन्धों पर है। उसी समय से आप उसके अध्यक्ष हैं। तीर्थों की मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा तथा गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने और उन पर दिगम्बर समाज के स्वत्व एवं अधिकारों की रक्षा के लिये आपने अहोरात्र प्रयत्न किया है।

सबसे पहिला प्रसंग सम्भवतः सम्वत् १६५७ में इन्दौर में ही उपस्थित हुआ, तब शक्कर बजार में मारवाड़ी दिगम्बर जैन मन्दिर पर कलश चढ़ाने के समय कुछ अड़चन उपस्थित की गई। मामला सेठ साहब के पास लाया गया। आपने महाराज साहब तथा रेजीडेण्ट के सम्मुख सारी परिस्थिति उपस्थित की और कलश चढ़ाने का हुक्म प्राप्त किया। आषाढ़ मास में हजारों की उपस्थिति में कलशारोहण उत्सव बड़े समारोह और धूमधाम के साथ सम्पन्न किया गया। सेठ साहब ने इस महोत्सव पर पच्चीस हजार रुपये व्यय किये।

श्रीसम्मेदशिखरजी

सम्बत् १६५६ में जैनियों के परम-पवित्र पर्वतराज श्रीसम्मेदशिखरजी के लिये एक संकट उपस्थित हो गया। वहां पर अंग्रेजों की बस्ती बसाने का निश्चय किया गया। समस्त जैनसमाज में सहसा ही हलचल मच गई। हजारीबाग के डिप्टी कमिश्नर के पास विरोध में हजारों तार भेजे गये। अनेक शिष्टमण्डल भी मिलने गये। अन्त में बंगाल-बिहार के तत्कालीन छोटे लाट ने मौके पर पहुँच कर स्वयं सारी स्थिति देखने का निश्चय किया। २३ अगस्त १६८७ को छोटे लाट वहां पहुँचे। स्थान स्थान के जैन मुखिया वहां एकत्रित हुये। इन्दौर से सेठ साहब भी सेठ कस्तूरचन्दजी, सेठ कल्याणचन्दजी, सेठ अमोलकचन्दजी, सेठ बालचन्दजी, सेठ मुन्नालालजी और सेठ मांगीलालजी आदि के साथ वहां पहुँचे। छोटे लाट के आने पर जैन समाज के समस्त उपस्थित मुखिया नंगे पैरों उनके साथ पर्वतराज पर पहुँचे और उनको यह बताया गया कि पर्वतराज का एक-एक कंकर जैनियों के लिये पवित्र और पूज्य है। यदि जैन समाज की इस भावना और विरोध का विचार न करके यहां अंग्रेजों की बस्ती बसाने के लिये बंगले बनाये ही गये, तो उसमें भयंकर विरोधाग्नि सुलग उठेगी। पन्द्रह लाख जैनियों का यहां खून बह जायगा। पर, बंगले नहीं बनने दिये जायेंगे। लाट साहब पर इसका असर पड़ा और बंगले बनाने की योजना स्थगित कर दी गई। बम्बई में सम्बत् १६६७ में जैन समाज के प्रमुख नेताओं ने इकट्ठे होकर निश्चय किया कि पर्वतराज को खरीद ही क्यों न लिया जाय और ऐसा कोई प्रश्न भविष्य में पैदा होने का अवसर

न आने दिया जाय। दानवीर सेठ माणिकचन्दजी इसके लिये चन्दा जमा करने को स्वयं इन्दौर पधारे। सेठ साहब ने स्वयं अपने पास से पांच हजार देकर इन्दौर से पच्चीस हजार जमा करा दिये।

श्रीमक्सी क्षेत्र

सम्वत् १९८४ में श्रीमक्सीजी तीर्थक्षेत्र पर धर्मशाला बनवाने के लिये पांच हजार प्रदान किये। इस तीर्थ की व्यवस्था और निरीक्षण आपके ही हाथों में है। आपके ही कारण यहां के झगड़े आपस में निपटते रहते हैं। अन्य कुछ क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र के लिये भी श्वेताम्बरियों और दिगम्बरियों के झगड़ों पर दोनों ओर के लाखों रुपये खर्च हो चुके थे। अन्त में सन् १९०२ में कैलाशवासी श्रीमन्त महाराज श्री माधवराव सिंधिया ने दिगम्बरियों के पक्ष में निर्णय देकर वर्षों की कलह समाप्त की। इस क्षेत्र के लिये भी आपने स्थायी कोष का प्रबन्ध किया, जिसके लिये अपने पास से अच्छी रकम देकर दूसरों को भी देने के लिये प्रेरित किया।

राजगढ़ ब्यावरा में ब्राह्मणों के विवाद के कारण जैनियों के जलूस पर रोक लगा दी गई थी। वहां के जैनी भाई सेठजी के पास आये। सेठजी स्वयं दरबार राजगढ़ से जाकर मिले। ६ सितम्बर १९३८ के पत्र से दरबार ने जलूस निकालने की आज्ञा दे दी और उससे सम्बन्धी सारी रुकावटें भी दूर कर दी गईं।

तारंगाजी और "जैन सम्राट" का पद

श्री तारंगाजी सिद्ध क्षेत्र पर भी दिगम्बरियों और श्वेताम्बरियों में काफी संघर्ष चल रहा था। सेठ साहब ने महीकांठा पोलिटिकल एजेन्ट से इस सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी की और सम्वत १९८५ में दोनों पक्षों के लोग बम्बई में इकट्ठे हुये और सेठ साहब के प्रभाव के कारण पोलिटिकल एजेण्ट की उपस्थिति में आपस में समझौता होकर पुराना विवाद और संघर्ष मिट गया। इस क्षेत्र की आपने जो सेवा की, उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिये आपको आचार्य श्री कुन्थूसागरजी के समक्ष "जैन सम्राट" की पदवी से विभूषित किया गया और यहां स्थापित किये गये मानस्तम्भ के उत्तर में यह लेख दिया गया है कि "वीर निर्माण सम्वत् २४६४ में भारत-शिरोमणि जैनदिवाकर रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी साहब इन्दौर आपकी धर्मपत्नी विदुषीरत्न सौभाग्यवती श्रीमती कञ्चनबाईजी तथा भैया साहब राजकुमारसिंहजी आदि सहकुटुम्ब व सेक्रेटरी बाबू वसन्तीलालजी कोठिया व पं० खूबचन्दजी शास्त्री आदि सहित यात्रार्थ पधारे। तब सर सेठजी साहब ने तीर्थभक्त सेठ जीवनलालजी वखारिया कल्लोलनिवासी के प्रस्तावानुकूल तारंगाजी क्षेत्र स्थायी फण्ड हेतु आदर्श योजना प्रस्तुत की। विशेषानुरोध से संरक्षक पद स्वयं स्वीकार किया। पश्चात तीर्थभक्त सेठ जीवनलालजी वखारिया ने पेथापुरवासी शाह पन्नालालजी तथा वैद्यरत्न पण्डित आनन्दरामजी जैन सर्ग योजना के विषय में इन्दौर पहुँचे। वहां पर सेठ साहब की प्रेरणा से बड़वानी व पावागिरी ऊन दर्शनार्थ गये। यहां मानस्तम्भ के दर्शन कर तीर्थभक्त सेठ जीवनलाल वखारिया के प्रबल मानता हुई कि श्री तारंगाजी पर भी मानस्तम्भ हो। अतः पूज्य श्री कुन्थूसागरजी मुनिराज के चरणों में विचार प्रगट किये व तारंगाजी पर जनसमुदाय के सन्मुख विचार-प्रस्ताव रखा। पूज्य श्री के सदुपदेश से सायरावासी कञ्चनबाई ने मानस्तम्भ की पूर्ति कर अपूर्व पुण्योपार्जन किया। एतदर्थ धन्यवाद हैं।"

श्री ऋषभदेवजी

उदयपुर-मेवाड़ के श्रीऋषभदेवजी के सुप्रसिद्ध तीर्थ पर भी काफी समय से परस्पर विवाद चल रहा था। सम्वत् १९८५ में ध्वजादण्ड चढ़ाने के अवसर पर उस विवाद ने उग्र संघर्ष का भीषण रूप धारण कर लिया। श्वेताम्बरियों ने दिगम्बरियों पर मन्दिरजी में ही लाठियों से आक्रमण कर दिया। ६ दिगम्बरी घायल हो गये और मन्दिरजी में ही उनका देहान्त भी हो गया। पं० गिरधारीलालजी भी उनमें एक थे। सारे समाज में हलचल मच गई। सेठ साहब के पास समुचित कार्यवाही करने के लिये चारों ओर से तार आने शुरू हो गये।

कई शिष्टमण्डल भी उदयपुर गये और अन्त में सेठजी को भी वहां जाना पड़ा। अजमेर से स्वर्गीय सेठ टीकमचन्दजी भी सोनी पधारे। आपको बागोर की हवेली के गेस्ट हाउस में बतौर राज्य के मेहमान के ठहराया गया। महाराणा साहब से मिलने की जब सहूलियत न हुई, तब आपने दौरे पर ही जाकर उनसे मुलाकात की और सारी घटना उनको कह सुनाई। श्री महाराणा साहब की जो तलवार वहां रखी हुई थी, उसको उठाकर अपने गले पर रखते हुये कहा कि यदि हमारे साथ न्याय नहीं हो सकता, तो अच्छा है इसको हमारे गले पर चला दिया जाय। हम धर्म पर मर मिटेंगे। पर, अन्याय सहन नहीं करेंगे। आपकी इस दृढ़ता का महाराणा साहब के हृदय पर जादू का-सा असर हुआ और सेठ साहब को न्याय करने का उन्होंने आश्वासन दिया। महाराणा साहब ने अपने वचन को पूरा किया और कुछ स्थानीय अधिकारियों के विरुद्ध भी कार्यवाही की गई।

श्री पावागिरी-ऊन

पावागिरि सिद्धक्षेत्र इन्दौर राज्य के नीमाड़ जिले के सेगांव परगने के समीप अज्ञात अवस्था में था कि तीर्थभक्त सेठ हासुखजी सुसारी के असीम परिश्रम से की गई खोज से यह प्रसिद्धि में आया। श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा, पांच अन्य प्रतिमायें तथा चरणपादुका भूमि में से प्राप्त हुई थीं। एकाएक उनके सम्बन्ध में कुछ निर्णय करना कठिन था। इसलिये सम्वत् १९९१ के श्रावण मास की सुदी ६ अर्थात १६ अगस्त १९३४ को सेठ साहब की अध्यक्षता में दानवारिया धर्मशाला में सभा होकर इसका विवेचन किया गया। अनेक पण्डितों ने विचार-विनिमय तथा शास्त्र-चर्चा करके यह निर्णय किया कि यही पावागिरी का सिद्धक्षेत्र है, जो शास्त्रप्रतिपादित चिन्हों के सर्वथा अनुकूल है। परन्तु राज्य से उसको प्राप्त करना और जैनियों के अधिकार में लेना आवश्यक था। सेठजी इसके लिये कटिबद्ध हो गये। महाराज की सेवा में प्रार्थना-पत्र भेजा गया। वह स्वीकार कर लिया गया। २९ अगस्त १९३५ के हजूर श्री शंकर आर्डर ११४ के अनुसार यह क्षेत्र दिगम्बर जैन समाज को देना स्वीकार कर लिया गया। ५ अक्टूबर १९३५ को ही मन्दिरजी और धर्मशाला की नींव सेठ साहब के ही हाथों से डाली जाकर जीर्णोद्धार का कार्य शुरू कर दिया गया। आस-पास के स्थानों सनावद, महेश्वर, तोलारा, सुसारी तथा बड़वानी आदि से हजारों जैन इस अवसर पर पधारे। सेठ साहब के १००१) के दान से इस कार्य के लिये चन्दा लिखना शुरू किया गया। इस क्षेत्र कमेटी के, जिसका नाम दिगम्बर जैन पावागिरी संरक्षिणी कमेटी है, आप ही सभापति और कोषाध्यक्ष हैं। मन्दिर का निर्माण हो जाने के बाद प्रतिष्ठा-महोत्सव का आयोजन किया गया। इन्दौर के सेठ हीरालालजी घासीलालजी काला की ओर से श्री बिम्ब प्रतिष्ठा पंचकल्याणक महोत्सव बड़े ही समारोह के साथ सम्पन्न कराया गया और मन्दिरजी के शिखर पर कलश चढ़ाया गया। इसी अवसर पर मालवा प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा का अधिवेशन भी हुआ। इसी समय धर्मशाला की नींव खोदने के समय तीसरे भगवान संभवनाथजी की मूर्ति प्राप्त हुई। प्राकृतिक दृष्टि से स्थान बड़ा ही मनोरम है। पूर्व दिशा में चेलना नदी बहती है। पश्चिम में कमलतलाई है। उत्तर में ऊन गांव है। दक्षिण में नारायणकुण्ड है, जो वैष्णवों का तीर्थ है। कहते हैं कि प्राचीन काल में यहां ९९ मन्दिर और तालाब थे। उनके चिह्न अब भी दीख पड़ते हैं। १०-१२ मन्दिरों के खण्डहर तो अब भी अवशेष हैं, जो अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़े हुये हैं। इनमें खुदाई का काम दर्शनीय है। गवालेश्वर वाले मुख्य मन्दिर की प्रतिमायें विशाल हैं। बीच की भूमि तपोभूमि कही जाती है। सुवर्णभद्र आदि चार मुनीश्वरों ने यहीं से मोक्षपद प्राप्त किया। मूर्तियों पर अनेक सम्वत् दिये हुये हैं। एक पर १२५३ सम्वत् है। इससे यह स्पष्ट है कि समय-समय पर इस मन्दिर और क्षेत्र का जीर्णोद्धार होता रहा है। बावनगजाजी और सिद्धवरकूट के बीच का यह प्राचीन पावागिरी सिद्धक्षेत्र है। इस समय इसके जीर्णोद्धार और उसको दिगम्बर जैन समाज के अधिकार में लाने का अधिकतर श्रेय सेठ साहब को ही है।

श्री गजपन्थाजी

नासिक के पास श्री गजपंथाजी क्षेत्र के समीप सैनिकों की दूसरे महायुद्ध के दिनों में एक छावनी थी। वहां रंगरूट सैनिक भरती किये जाते थे। उन्होंने एक बार पहाड़ी पर जाकर क्षेत्रजी पर इतना उत्पात किया कि मन्दिरजी का ताला तोड़कर मूर्तियां आदि चुरा लाये। वहां के चौकीदार और माली आदि ने रोका, तो उनके साथ उन्होंने मारपीट भी की। समस्त जैन समाज में समाचार पहुँचते ही तहलका मच गया। सेठ साहब को भी विशेष सूचना दी गई। आपने तुरन्त नई दिल्ली में महासभा के कार्यालय को सूचना दी और उच्च फौजी अधिकारियों तक मामला पहुँचाने का अनुरोध किया। महासभा के कार्यालय से और अजमेर से महासभा के प्रधान सर सेठ भागचन्दजी की ओर से अभी सम्बन्धित अधिकारियों को तार दिये ही गये थे कि सेठ साहब का तार आया कि हमें पता चला है कि गजपन्थाजी में ऐसी कोई विशेष गड़बड़ नहीं हुई है। महासभा के अधिकारी असमंजस में पड़ गये कि क्या किया जाय? सेठ साहब ने सम्मति दी कि उच्च अधिकारियों को खेद प्रकट करते हुये लिख दिया जाय कि हमें पहिले जो सूचना मिली थी, वह ठीक नहीं थी। लेकिन, इसी समय फिर यह पता चला कि घटना सर्वथा सत्य है। स्थानीय सैनिक अधिकारियों ने जनता में क्षोभ न फैलने देने के लिये सारे मामले को दबा देने के लिये वैसा समाचार भिजवा दिया था। बस, फिर क्या था? सेठ साहब ने जोर लगाकर उचित कार्यवाही करने का आदेश महासभा को दिया। महासभा के प्रधान के नाते सर सेठ भागचन्दजी सोनी से आपने अनुरोध किया कि वे ऊंचे अधिकारियों से स्वयं मिलें। आप तब केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य थे। आप रक्षामन्त्री और गृहमन्त्री आदि से मिले। प्रधान सेनापति तथा बम्बई प्रान्तीय सरकार के अधिकारियों को भी तार दिये गये। सेठ साहब ने फोन व तार आदि से सम्बन्धित अधिकारियों का सोना मुश्किल कर दिया। अन्त में स्थानीय सैनिक अधिकारियों को उचित कार्यवाही करने के लिये लाचार होना ही पड़ गया। सिपाहियों की परेड में पहचान करवाई गई। उनकी बैरकों की तलाशी ली गई। क्षेत्रजी से चोरी किया गया सारा सामान सिपाहियों के सामान में से और कुछ इधर-उधर छिपाया मिल गया। कोर्टमार्शल किया गया। अपराधी सैनिकों को सजा दी गई। इससे यह भी प्रगट है कि सेठ साहब ऐसे मामलों में कितने सतर्क और सावधान रहते हैं?

श्री गोमटस्वामी का मस्तकाभिषेक

सम्वत् १९८२ में आप परिवारसहित श्री गोम्मटस्वामी महामस्तकाभिषेक महोत्सव में सम्मिलित हुये। मैसूर राज्य के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक तीर्थ श्री श्रवणबेलगोला पर श्री १००८ बाहुबली स्वामीजी की ५७ फीट ऊंची एक विशाल प्रतिमा है। उसका मस्तकाभिषेक हर बारहवें वर्ष अत्यन्त समारोह के साथ हुआ करता है। मैसूर महाराज भी इसमें सम्मिलित होते हैं। इस वर्ष भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी का अधिवेशन भी वहां ही किया गया था। सेठ साहब इसके अध्यक्ष थे। मन्दारगिरी से पुल बनाने का प्रश्न वहां उपस्थित हुआ। आपने स्वयं होकर कलश की बोली बोलनी शुरू कर दी। बात की बात में पैंतीस हजार उसी स्थान पर एकत्रित हो गया। इस अवसर पर लगभग बीस हजार जैनी एकत्रित हुये थे। मार्ग में और श्रवणबेलगोला में भी सेठ साहब का अपूर्व स्वागत हुआ। मैसूर में तो आपको अभिनन्दन-पत्र भी भेंट किया गया।

सम्वत् १९९६ में आप फिर दुबारा श्री श्रवणबेलगोला के श्री गोम्मटस्वामीजी के महामस्तकाभिषेक महोत्सव में सम्मिलित हुये। इस बार वहां तीस हजार के लगभग जैनी भाई उपस्थित हुये थे। मैसूर महाराज भी युवराज के साथ महोत्सव में सम्मिलित हुये थे। इस बार सेठजी ने फिर महामस्तकाभिषेक के लिये कलशों की बोली बोली और अस्सी हजार की निधि जमा कर दी। पांच हजार से पांच रुपये तक की बोली बोली गई।

तीर्थ की रक्षा और स्थायी व्यवस्था के लिये आप दो बार फिर भी श्री श्रवणबेलगोला गये। दो वर्ष की लिखा पढ़ी के बाद आपने यह रकम मैसूर स्टेट बैंक में जमा करवा दी और सरकार से इसकी ट्रस्ट कमेटी के लिये स्वीकृति दिलाकर ही आपने सन्तोष माना। इस प्रकार आपने सदा के लिये भगवान के महामस्तकाभिषेक के लिये खर्च का प्रबन्ध कर दिया। रकम सुरक्षित कर दी गई और ब्याज से अभिषेक का व्यय पूरा किया जाने लगा।

बागीदौरा में प्रतिष्ठा

सम्वत् १९८४ में आप बागीदौरा में हुये श्री जिनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव में सम्मिलित हुये। अत्यन्त अधिक कार्यव्यग्र होते हुये भी वहां के पंचों के स्वयं आकर आग्रह करने के कारण आप टाल न सके। बांसवाडा से आगे जाने पर रात होने से रास्ता भूल गये। जंगल का रास्ता था। साथी घबरा गये, तो रिवाल्वर हाथ में लेकर आप सबसे आगे आगे हो लिये। वहां मालवा प्रान्तिक सभा का अधिवेशन भी था। लौटते हुये बांसवाडा के दरबार साहब ने एक दिन रोककर आपको अपना मेहमान रखा। इसी वर्ष आपने मोटरों से श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा की। चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज का संघ वहां पधारा था। बम्बई के सेठ घासीलालजी पूनमचन्दजी की तरफ से श्री बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव का समारोह भी था। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का वार्षिक अधिवेशन और तीर्थ क्षेत्र कमेटी की भी बैठक वहां थी। सेठ साहब तीर्थक्षेत्र कमेटी के प्रधान थे। पण्डित पार्टी और बाबू पार्टी में यहां खींचतान बहुत अधिक बढ़ गई। आपने बड़ी युक्ति के साथ दोनों दलों को संभाला और सभा का कार्य सम्पन्न किया। अपनी ओर से २१०० रुपया प्रदान करके क्षेत्र कमेटी के लिये अच्छी बड़ी धनराशि जमा करवा दी।

बड़वानी में बिम्बप्रतिष्ठा

सम्वत् १९८७ में सेठ साहब के समधी श्री परसरामजी दुलीचन्दजी फर्म के मालिक सेठ फत्तेचन्दजी साहब ने बड़वानी में श्री बिम्बप्रतिष्ठा (पंचकल्याणक) महोत्सव कराया। आपने सारा कार्यभार सेठ साहब को सौंप दिया। श्री बड़वानी सिद्धक्षेत्र का विशेष महात्म्य है। श्री १००८ इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण तथा अन्य अनेक मुनिगण भी यहीं से मोक्ष पधारे हैं। यहीं पर्वत पर श्री आदिनाथ भगवान की ७२ फीट ऊंची विशाल प्रतिमा है। सेठ हरसुखजी साहब सुसारी और लाला देवीसहायजी साहब बड़वानी वालों ने इस प्रतिमाजी का जीर्णोद्धार कराया था और उसी के उपलक्ष में यह प्रतिष्ठा-महोत्सव किया गया था। बड़वानी शहर के पास एक विशाल सभा मण्डप बनवाया गया। हजारों की संख्या में कैम्प व तम्बू आदि लगाये गये थे और लाउडस्पीकर का भी प्रबन्ध किया गया था, जो इस क्षेत्र के लिए अभूतपूर्व था। स्टेट की ओर से सेठ साहब के लिये खास दरबारी डेरा दिया गया था और सैनिक पहरे का प्रबन्ध किया गया था। बड़वानी शहर से पर्वत तक पक्की सड़क बनवाने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो सेठ साहब ने श्री बावनगजाजी आदिनाथ भगवान के महामस्तिकाभिषेक के कलशों की बोली बोलकर तत्काल तीस हजार रुपये जमा कर दिये। आधी रकम सड़क बनवाने के लिये स्टेट के सुपुर्द कर दी गई। यहां चूलगिरी पर सेठ साहब का बनवाया हुआ एक मन्दिर भी है। स्वर्गीय रायबहादुर सेठ कल्याणमलजी की पत्नियों ने इस मन्दिर पर जो शिखर बनवाया था, उस पर सेठ साहब ने इसी अवसर अपने हाथों से कलश चढ़ाया था। इसी अवसर पर बड़वानी में सेठ साहब के सभापतित्व में मालवा प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा का अधिवेशन था। इसी में आपको "तीर्थ भक्त शिरोमणि" के पद से विभूषित किया गया था। जैन समाज के आपके प्रति आदर और तीर्थों के प्रति आपकी श्रद्धा की यह निशानी है। १९७८ में भी आप यहां पधारे थे। तब आपको मानपत्र दिया था और आपने धर्मशाला के लिये चार हजार और मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये एक हजार प्रदान

किया था।

आपने पावापुरजी, शत्रुंजयजी और शौरीपुर बटेश्वरजी आदि सिद्धक्षेत्रों तथा अतिशय क्षेत्रों की भी महान सेवा की है और उन पर दिगम्बर जैन धर्म तथा दिगम्बर जैन समाज के प्रभुत्व तथा प्रभाव को अक्षुण्ण बनाये रखने का महान पुण्य तथा श्रेय सम्पादन किया है। गिरनारजी सिद्धक्षेत्र के लिये आप अब भी प्रयत्नशील हैं और कई बार सौराष्ट्र के प्रधानमन्त्री श्री ढेबर भाई से टेलीफोन पर बातचीत कर चुके हैं। भैयासाहब श्री राजकुमारसिंहजी को वहां शिष्टमण्डल में कई बार भेज चुके हैं।

३. मुनिराज सेवा

इसी प्रकार मुनिधर्म पर संकट आने पर भी आपने उसके निवारण के लिये भी कुछ उठा नहीं रखा और मुनिराज की सेवा का अक्षय पुण्य सम्पादन किया है। चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज के संघ पर आये हुये उपसर्ग या संकट का निवारण करने की तरह आपने अन्य स्थानों पर भी ऐसा संकट उपस्थित होने पर मुनिराज की सेवा के लिये तुरन्त ही उपयुक्त कार्यवाही की। ऐसे अवसरों पर कमजोरी, कायरता या घबराहट दिखाना आप जानते ही नहीं। तन-मन-धन सर्वस्व की बाजी लगा देते हैं। दिल्ली और नातेपूते की चर्चा पीछे की जा चुकी है। सम्वत् १९८६ में बयाना में रथयात्रा पर और राजाखेड़ा में मुनि संघ तथा दिगम्बर जैनियों पर आक्रमण किया गया। आपने उन रियासतों के दीवान तथा पोलिटिकल एजेन्ट और ए. जी. जी. तक मामला पहुंचाया और सफलता प्राप्त की। श्री पावापुरजी तीर्थक्षेत्र पर मन्दिरजी के मामले में आप स्वयं वहाँ गये और सफल होकर लौटे। बंडीलालजी दिगम्बर जैन कारखाना जूनागढ़ गिरनार कमेटी की बागडोर सम्वत् १९६५ से ही आपके हाथों में है, जब कि आप सेठ माणकचन्दजी के साथ वहां गये थे। इसका प्रधान कार्यालय प्रतापगढ़ में है। आप इसके अध्यक्ष हैं। इसके द्रव्य की रक्षा करने, इसको ब्याज पर लगाने और यहां पर होने वाले झगड़ों को निपटाने का भार भी आप पर ही है। दिगम्बरी भाइयों के अधिकारों की रक्षा के लिये आप निरन्तर कटिबद्ध रहते हैं।

ईडर में

ईडर के साबरा महीकांठा स्थान में मुनिविहार पर प्रतिबन्ध लगाने पर आप सर सेठ भागचन्दजी सोनी के साथ वहां गये और प्रतिबन्ध को दूर कराया। आचार्य श्री कुन्थुसागरजी के प्रति भी आपकी अटूट श्रद्धा थी। सम्वत् १९९६ में मुनिजी वहां ससंघ विराजते थे। तब आप उनके दर्शनों के लिये वहां पहुँचे और बिना सूचना दिये ही वहां पहुँच गये। ईडर महाराज को आपके आगमन का पता लगते ही आपको हिम्मतनगर के राजमहल में स्टेट गेस्ट के रूप में ठहराया गया और सारा प्रबन्ध राज की ओर से ही किया गया। स्वयं महाराज भी हवाई विमान से मुनिश्री के दर्शनों के लिये पधारे और सेठ साहब की धार्मिक भावना तथा मुनिभक्ति देखकर गद्गद् हो गये। आपके शुभागमन का समाचार बिजली की तरह चारों ओर फैल गया। ईडर के जैन समाज की ओर से आपको मानपत्र भेंट किया गया और लौटते हुये अनेक स्टेशनों पर गाड़ी को अधिक समय रोक कर आपको मानपत्र तथा चायपार्टी आदि देकर जैन समाज ने आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट कर अपने को कृतार्थ किया।

हैदराबाद में प्रतिबन्ध

हैदराबाद में सन् १९३३ में मुनिविहार पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाने पर उसको निवारण कराने के लिये आप स्पेशल ट्रेन से सत्याग्रह करने के लिये हैदराबाद जाने और साथ में हजारों जैनियों को भी ले जाने के लिये तय्यार हो गये। इन्दौर में विरोध में हुई सभा में आपने घोषणा की थी कि "यदि मुनिधर्म के लिये बलिदान की भी आवश्यकता हुई, तो सबसे पहले मेरा बलिदान होगा और मुनिधर्म की रक्षा अवश्य की जायगी।"

आपकी इस वीर गर्जना और साहसपूर्ण तैयारी से सारे ही जैन समाज में उत्साह, जोश और बलिदान की वेगवती लहर दौड़ गई। हजारों जैन भाई आपके नेतृत्व में हैदराबाद कूच करने को तय्यार हो गये। लेकिन, नवाब साहब के ठीक अवसर पर संभल जाने से ऐसा समय न आया। सेठ साहब के तारों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि मुनिधर्म की समस्त बाधायें निजाम राज्य से सदा के लिये दूर हो गईं।

इन्दौर में प्रतिबन्ध

मुनि विहार के सम्बन्ध में अपने घर इन्दौर में सन् १६३२ में अत्यन्त संकटमय विषम स्थिति पैदा हो गई। लेजिस्लेटिव कौंसिल ने मुनि विहार प्रतिबन्धक कानून के सम्बन्ध में एक बिल पास कर दिया था। इसे सहन करना सेठ साहब के लिये संभव ही न था। आपको पूरे एक वर्ष उसके विरुद्ध प्रयत्न करना पड़ा और अन्त में आपने महाराजा साहब से उसको हटवा कर ही सन्तोष किया। १६३४ में आपकी साठवीं वर्षगांठ पर हीरक जयन्ती मनाने का निश्चय हो गया था। परन्तु आपने इस प्रतिबन्ध के रहते किसी भी प्रकार का उत्सव मनाने से इनकार कर दिया। प्रतिबन्ध हटने पर १६३६ में यह उत्सव मनाया गया। इस प्रकार जहां भी कहीं ऐसा संकट, बाधा या रुकावट उपस्थित हुई, तो आप पूर्ण प्रयत्न करके उसको दूर करवा कर ही शान्त हुये।

"जैनीदण्डनम्" पुस्तक की जब्ती

सन् १६४२ में 'जैनीदण्डनम्' नाम की एक पुस्तक बघेलखंड के जसो राज्य के एक पण्डित भगवताचार्य ने लिखी थी। वह इलाहाबाद के किसी प्रेस में प्रकाशित हुई थी। अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ने उसको जब्त कराने का काम जब अपने हाथ में लिया, तब आपने उसके लिये कितने ही तार व पत्र सम्बन्धित अधिकारियों को दिये। ए० जी० जी० से आप स्वयं मिले। जसो राज्य के राजा साहब के साथ भी लिखापढ़ी की। छः मास बाद उत्तर प्रदेश की सरकार ने उसको जब्त किया। राजा साहब जसो ने उसको जब्त किया और लेखक की जैन-धर्मविरोधी हरकतों को सदा के लिये ही बन्द करवा दिया।

आकलूज काण्ड

शोलापुर के आकलूज गांव में दिसम्बर १६५० को स्थानीय अधिकारियों ने ताले तोड़कर जबरन हरिजनों को जैन मन्दिरों में प्रवेश करवाया। मामला इस समय बम्बई हाईकोर्ट में पेश है। सेठ साहब ने इस मामले में भी तार व फोन आदि करके मामला हाईकोर्ट में ले जाने का परामर्श दिया और उचित कार्यवाही करने में सहायता प्रदान की।

आप साधनामय विरक्त जीवन बिताते हुये भी मुनिधर्म पर आने वाले संकटों का निवारण करने के लिये अहोरात्र चिन्तित और प्रयत्नशील रहते हैं। आप स्वयं आजकल कहीं बाहर नहीं जा सकते, तो भैया साहब राजकुमारसिंहजी को भेज कर समुचित कार्यवाही करने का प्रबन्ध करते हैं। भैया साहब सेठ साहब के पदचिन्हों पर चलते हुये आपके आदेश-निर्देश का यथावत् पालन कर धर्म तथा समाज की सेवा करने में लगे रहते हैं।

३. आपस के झगड़ों का निपटारा

आपस के झगड़े निपटाने की कला में सेठ साहब ने विशेष निपुणता प्राप्त की है। न केवल दिगम्बर जैन समाज के आपस के, किन्तु कोई भी झगड़ा किन्हीं भी लोगों में आपस में क्यों न हो, उसको निपटाने का कार्य यदि आपको सौंपा जाता है, तो उसको निपटाये बिना आप दम नहीं लेते।

बड़नगर के तेरापंथी गोट का पंचायती झगड़ा इतना बढ़ गया था कि हजारों रुपया मुकद्दमेबाजी में भी फूंक दिया गया था और मन्दिर के द्रव्य तथा समाज की शक्ति व्यर्थ में नष्ट हो रही थी। मन्दिरजी की आमदनी और खर्च का कोई नियमित हिसाब रखा न जाता था। अन्त में सारा मामला सेठ साहब के हाथों में दे दिया

गया। सेठ साहब कई बार बड़नगर गये और अपने प्रभाव से काम लेकर आपने आपस का पंचायती झगड़ा आपस में ही निपटा दिया और वैमनस्य दूर कर शान्ति कायम करा दी। आय-व्यय के हिसाब की भी समुचित व्यवस्था कर दी। तब से पंचायत और मन्दिरजी का कार्य सुचारू रूप से चल रहा है।

सोनकच्छ में भी इसी प्रकार आपसी वैमनस्य के कारण हजारों रुपयों की गड़बड़ काफी समय से चल रही थी। वहां के लोगों ने भी आप से झगड़ा व वैमनस्य दूर करने की प्रार्थना की। श्री केसरीमलजी के विशेष आग्रह से आप ६ नवम्बर १९३३ को सोनकच्छ पधारे। मन्दिरजी का सारा हिसाब संभाला। जिनसे रकम लेनी निकलती थी, उनसे लिखा-पढ़ी करके मामला निपटाया। कुछ को उनकी अनुचित कार्यवाही के लिये दण्ड भी दिया। अपने स्वभाव तथा प्रभाव से सबको सन्तुष्ट कर वर्षों पुरानी कलह शान्त कर दी।

मथुराजी में राजा लक्ष्मणदासजी की धर्मपत्नी और वहां की पंचायत में मन्दिरजी के हिसाब आदि को लेकर बहुत झगड़ा चल रहा था। मामले-मुकद्दमे में दोनों ओर से काफी रुपया बरबाद किया जा रहा था। समाज में भी वैमनस्य बढ़ता जा रहा था। आपके प्रयत्न से राज्यभूषण सेठ हीरालालजी साहब को मध्यस्थ बनाया गया और उनका निर्णय दोनों पक्षों के द्वारा मान्य हो जाने से एक पुराने संघर्ष का अन्त हो गया।

४. संस्थाओं की स्थापना और सहायता

जैन सार्वजनिक संस्थाओं, मन्दिरों, धर्मशालाओं, पुस्तकालयों, स्वाध्याय भवनों तथा ऐसी ही अन्य संस्थाओं की सेठ साहब ने समय-समय पर जो उदार सहायता की है, उसका विवरण दान की विस्तृत सूची में दिया जा रहा है। यहां भी संक्षेप में उसका उल्लेख इस लिये किया जा रहा है कि उससे उनकी धर्म प्रभावना पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

सबसे पहिले चार लाख के बड़े दान की घोषणा सम्भवतः आपने सम्वत १९७१ में पालीताना में बम्बई प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा के अधिवेशन पर की थी, जिसके कि आप ही सभापति थे। स्वयंसेवकों ने आपकी गाड़ी के घोड़े खोल दिये और स्वयं गाड़ी खींच कर आपका जलूस निकाला। सेठानी साहिबा श्रीमती कंचनबाई ने उसी समय उसमें से एक लाख रुपया स्त्री शिक्षा के लिये अलग करवा लिया। नरसिंह बाजार इन्दौर में इसी एक लाख से श्री कंचनबाई दिगम्बर श्राविका आश्रम की स्थापना सम्वत १९७२ में की गई। महारानी श्रीमती चन्द्रावतीबाई ने उसका उद्घाटन किया और सेठानी साहिबा को "दानशीला" की पदवी से सम्मानित किया गया।

असहाय विधवा सहायक फण्ड

स्त्रीशिक्षा के लिये यह ठोस कदम उठाने के बाद सेठानी साहिबा का ध्यान विधवा बहिनों की दयनीय दशा की ओर भी गया और आपने सेठ साहब से अनुरोध करके सम्वत १९७५ में दिगम्बर जैन असहाय विधवा सहायता फण्ड स्थापित करवाया। सम्वत १९७५-७६ में सेठानीजी के बहुत बीमार रहने के कारण सेठ साहब ने मन्दिरजी की वेदी प्रतिष्ठा के समय यह घोषणा की कि "सेठानीजी का यह वर्ष बहुत अधिक कष्ट का है। यदि सम्वत् १९७६ उनके लिये निर्विघ्न बीत गया, तो मैं एक लाख की चांदी की प्रतिमा निर्माण कराऊंगा।" सेठानी जी ने स्वास्थ्य लाभ कर लिया और जब प्रतिमा बनवाने का प्रश्न आया, तो आपने सेठ साहब से अनुरोध किया कि इस धनराशि को विधवा बहिनों की सहायता में लगाया जाय। इसी अनुरोध पर इस फण्ड की स्थापना की गई।

इससे पहिले सम्वत् १९७० में हस्तिनापुर के श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम के शिष्ट मण्डल को दस हजार अपने पास से दे कर इन्दौर से कुल १६५०० रुपये का चन्दा करवा दिया था।

रथयात्रा महोत्सव

सम्वत् १९८३ में श्वेत अश्वों का स्वर्णमय वह विमान भगवान का रथ बन कर तय्यार हो गया, जिस पर सेठ साहब ने पचास हजार रुपया व्यय करने का संकल्प किया था। इसी उद्देश्य से रथयात्रा निकाली गई और पारमार्थिक संस्थाओं का द्वादश वर्षीय महोत्सव भी जवरीबाग में किया गया। भव्य पंडाल में मांङ्गलिक पूजन विधान किया गया। इस उत्सव और रथयात्रा की छटा दर्शनीय थी। महाविद्यालय के विद्यार्थियों को तत्कालीन ए. जी. जी. सर रेजिनाल्ड ग्लांसी की अध्यक्षता में पारितोषक दिये गये। इन्दौर की समस्त जैन-अजैन कन्याओं को लेडी ग्लांसी की अध्यक्षता में पुरस्कार बांटा गया। उत्सव की समाप्ति पर सेठ साहब ने प्रीतिभोज भी दिया।

उदासीन आश्रम

पाळीताना में घोषित किये गये चार लाख रुपये के दान में से दस हजार रुपया उदासीन आश्रम की स्थापना के लिये अलग रख दिया गया था। यह आश्रम तुकोगंज में स्थापित किया गया। उद्देश्य इसका यह था कि जो लोग घर-गृहस्थी और सांसारिक जंजाल से विरक्त होकर धर्म की भावना में अपने को लगाना चाहें, उनको जीविका के अर्जन की चिन्ता न रहे। पं० पन्नालालजी गोधा ने १५०रु० मासिक की मुनीमी छोड़कर उदासीन वृत्ति धारण की और इस आश्रम का भार संभालने की इच्छा प्रकट की। उस दस हजार के अलावा तीनों भाइयों ने दस-दस हजार रुपया और लगाया। एक दुमंजिली खुली इमारत में इसका काम शुरू किया गया। इस समय इसकी निधि में एक लाख रुपया जमा है।

शीशवारिया का भव्य जैन मन्दिर

सम्वत् १९७८ में शीशवारिया के श्री दिगम्बर जैन मन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव बड़ी ही धूमधाम और समारोह के साथ किया गया। मारवाड़ी गोठ में परस्पर में मतभेद पैदा हो जाने से शान्तभाव से धर्मसाधना और धर्मप्रभावना करने के लिये श्रीमाणकचंदजी मगनीरामजी की गोठ अलग कायम की गई थी, तभी सम्वत् १९६९ में इस मन्दिर की नींव डाली गई थी। वहां पहिले श्री कनीराम-चम्पालाल का मकान था। वह तीनों भाइयों ने खरीद लिया और मन्दिर के लिये उसको दे दिया। मन्दिर का निर्माण आधुनिक निर्माण-कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। जयपुर और इरान तक से कुशल और सुयोग्य कारीगर बुलाये गये। सारा काम प्रायः काच का ही किया गया। रंग-बिरंगे काच के अत्यन्त सुन्दर और मनोहर चित्र बनाये गये हैं। सिद्धक्षेत्र, समोशरण, तीन लोक, नन्दीश्वर द्वीप, स्वर्ग की रचना, सप्त व्यसन तथा अष्टकर्म इत्यादि के भाव के द्योतक चित्र देखते ही बनते हैं। चमर, छत्र, अशोक वृक्ष, पुष्पक विमान आदि की छटा भी काच-निर्मित चित्रों में ही दिखाई गई है। चित्रों के साथ उपदेशप्रद भावपूर्ण दोहे, श्लोक, कथा तथा वचन भी दिये गये हैं। दर्शक जब चित्र देखता और उनको पढ़ता है, तब भक्ति के भावावेश में आये बिना नहीं रह सकता।

मन्दिर की शोभा धार्मिक दृष्टि से तो इतनी अधिक है कि इसी के कारण इन्दौर नगरी को तीर्थ का-सा महत्त्व प्राप्त हो गया है, क्योंकि इन्दौर आने वाला धार्मिक व्यक्ति इसके पुण्य दर्शन से धर्म-लाभ किये बिना रह नहीं सकता। कलात्मक दृष्टि से भी मन्दिर की शोभा और आकर्षण इतना अपूर्व है कि इन्दौर के दर्शनीय स्थानों की यात्रा के लिये आने वाला व्यक्ति इसके दर्शन करने के लोभ का संवरण नहीं कर सकता। सेठ साहब की धार्मिक वृत्ति के साथ-साथ यह विशाल मन्दिर आपके कला प्रेम की भी साक्षी अनन्त काल तक देता रहेगा। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सभी को इसको देखने की आपने उदारतापूर्ण अनुमति दी हुई है। भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड रीडिंग व लेडी रीडिंग, भूतपूर्व प्रधान सेनापति फील्ड मार्शल सर विलियम बर्डवुड, बड़ौदा के

महाराज, दतिया, प्रतापगढ़, कुशलगढ़, कांछी बड़ोदा, ध्रांगध्रा और बामंदा के नरेश, मध्यभारत के एजेण्ट और आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय तथा महामना मालवीयजी सरीखे देशनेता आदि इसके दर्शन कर चुके हैं। जो भी देखने आता है, वह सेठ साहब के कला-प्रेम और धर्म-प्रेम की सराहना किये बिना नहीं रहता। मन्दिर की दिव्यता, भव्यता, कारीगरी, पच्चीकारी, चित्रकला, भाव-दर्शन आदि की सराहना दर्शक करता रह जाता है। मन्दिर की इतनी उत्कृष्ट कल्पना के लिये भी वह सेठ साहब की प्रशंसा करता है। लाखों रुपया इसमें लग चुका है और अब भी काम बराबर होता ही रहता है। इसमें एक सरस्वती भण्डार भी है, जिसमें जैन ग्रन्थों का नियमित रूप से स्वाध्याय करने वाले नर-नारियों के लिये लगभग पांच हजार ग्रन्थों का संग्रह किया गया है। अन्य धर्मों के ग्रन्थ भी इसमें रखे गये हैं। इस विशाल मन्दिर के साथ में ही एक विशाल धर्मशाला भी बनवाई गई है, जिसमें जाति की रसोई आदि के लिये भी अत्यन्त उत्तम व्यवस्था है। इस पर एक लाख रुपया खर्च किया गया है।

दिल्ली में

सम्वत् १९८० में दिल्ली में बिम्ब प्रतिष्ठा पंचकल्याणक महोत्सव बड़े समारोह के साथ किया गया था। दूर-दूर से लाखों दिगम्बर जैन भाई उसमें सम्मिलित हुये थे। सेठ साहब भी इष्टमित्रों और परिवार के लोगों के साथ पधारे थे। प्रतिष्ठा मण्डप के पास ही आपका कैम्प लगा था। दीक्षा कल्याणक के बाद भगवान् का आहार आपके ही यहां हुआ था। सेठ साहब ने इस शुभ अवसर पर ५१००० रुपये के दान की घोषणा की। इनमें से तीस हजार जबरीबाग के विश्रान्ति भवन को दुमंजिला बनाने पर व्यय किया, बीस हजार दीतवारिया के मन्दिरजी के लिये नियत किया गया और एक हजार दिल्ली की संस्थाओं को दिया गया। सेठ साहब के दर्शनों के लिए आपके डेरे पर भीड़ लगी रहती थी। आपके धर्मप्रेम की खूब चर्चा रही और प्रभाव भी खूब रहा।

सम्मेदशिखरजी की यात्रा

दिल्ली से सेठ साहब श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा पर गये। मार्ग में अनेक तीर्थक्षेत्रों के दर्शन किये। जहां भी कहीं मन्दिर अथवा धर्मशाला के निर्माण किंवा जीर्णोद्धार की आवश्यकता अनुभव की, वहां उसके लिये अनुमति दे दी और अपने आदमी भेज कर उसको पूरा करा दिया। इन सब कार्यों में कुल मिला कर इस धर्मयात्रा में एक लाख पन्द्रह हजार रुपये खर्च हुये। यात्रा से सकुशल लौटने पर सेठ साहब का इन्दौर की जनता ने भव्य स्वागत किया। जबरीबाग से शहर तक आप पैदल ही पधारे और पचासों-स्थानों में इत्र-पान आदि से आपका सम्मान किया गया। आपने भी एक प्रीतिभोज दिया, जिसमें पांच हजार नर-नारी सम्मिलित हुये। इसी दिन पारमार्थिक संस्थाओं तथा दिगम्बर जैन खंडेलवाल स्वयंसेवक मंडल की ओर से आपको अभिनन्दन पत्र भेंट किये गये। आपने इस अवसर पर एक लाख के दान की घोषणा की। इसमें से पचास हजार महाविद्यालय और बोर्डिंग हाउस के ध्रुव फण्ड में और पचास हजार प्रसूतिगृह की स्थापना के लिये दिये गये। इस यात्रा में भी अपने साथियों की सेठ साहब ने बहुत ध्यान से सेवा की। किसी को कोई कष्ट नहीं होने दिया। कलकत्ता में कुछ साथी बीमार हो गये, तो आपने स्वयं ही उनकी सेवा-सुश्रुषा की। इसके लिये आपके सभी साथी आपके चिर ऋणी बन गये।

इन्दौर में व्रत उद्यापन महोत्सव

सम्वत् १९८८ में सेठ साहब ने इन्दौर में व्रत उद्यापन महोत्सव कराया था। श्री दीतवारिया धर्मशाला में तीन लोक मण्डल की अपूर्व रचना अत्यन्त दर्शनीय ढंग से की गई थी। तीन सुवर्णमयी वेदियों पर श्री जिनेन्द्र भगवान विराजमान किये गये। अकृत्रिम चैत्यालय की रचना जयपुर से श्री दीवान विधीचन्दजी के मन्दिर

सीकर में १६४८ की बिम्ब प्रतिष्ठा के अवसर पर ऐरावत हाथी पर इन्द्र भगवान को जन्माभिषेक के लिये पांडुक शिला की ओर लेजारहे हैं और सेठ साहब स्वयं महावत बने हैं

दीतवारिया इन्दौर में कांच के दि० जैन मन्दिर का मुख्यद्वार।

सीकर में सन १९४८ में बिम्ब प्रतिष्ठा में भगवान को वैराग्य होने पर पालकी में विराजमान कर लेजाते हुये राजागणों में सर सेठ हुकमचंदजी और सर सेठ भागचंदजी साहब।

इतवारा इन्दौर में कांच के मन्दिरजी पर कलशारोहणका दृश्य।

सेठ साहब के बनाये हुये श्वेत अश्वरथ का जलूस। रथ में भगवान विराजमान हैं और सेठ साहब सारथी बने हुये हैं।

गजरथ यात्रा का जन जमा (सन १९४२)

इन्दौर के गजरथ महोत्सव का एक दृश्य (सन १९४२)

र्जा से मंगा कर की गई थी। लगभग पांच हजार जैनी भाई और प्रायः समस्त जैन पण्डित मण्डली पधारी थी। दीतवारिया में बनाया गया विशाल सभा मण्डप शाम से ही खचाखच भर जाता था। अजैन नर-नारी भी बहुत बड़ी संख्या में सम्मिलित होते थे। यात्रियों के ठहरने की समुचित व्यवस्था रंगमहल आदि में की गई थी। उत्तमोत्तम भजन मंडलियां उपदेशक तथा विद्वान दूर-दूर से पधारे थे। सेठ साहब ने एक लाख रुपया और पच्चीस हजार के सोने-चांदी के उपकरण श्री दीतवारिया मन्दिरजी को भेंट किये थे। अन्य सब मन्दिरों को भी बहुत से उपकरण दिये गये। आपका और सेठ कल्याणमलजी हीरालालजी साहब का इस महोत्सव पर ढाई लाख रुपया खर्च हुआ।

बिम्ब प्रतिष्ठा व गजरथ महोत्सव

सम्वत १९९८ में दानवीर जैनरत्न राज्यभूषण रायबहादुर सेठ हीरालालजी साहब की वृद्धा मातुश्री द्वारा 'कल्याण भवन' तुकोगंज पर बनाये गये सहस्रकूट चैत्यालय सहित संगमरमर के मन्दिरजी बना कर तय्यार किये गये थे। उनका प्रतिष्ठा-महोत्सव करवाने का विचार सेठ हीरालालजी कर ही रहे थे कि जाति के पंचों ने आपसे "बिम्ब प्रतिष्ठा तथा गजरथ महोत्सव' करने का अनुरोध किया। तुकोगंज में यशवन्त क्लब के पास 'शान्ति नगर' बसाया गया। भारत के विभिन्न स्थलों से कोई २५ हजार नरनारी इस महोत्सव के लिये पधारे होंगे। महोत्सव बहुत धूम धाम से सम्पन्न हुआ। अन्तिम दिन तिमंजले गजरथ की सवारी निकाली गई और मंडप की तीन प्रदक्षिणा दी गईं। इसी अवसर पर मालवा प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा और खण्डेलवाल दिगम्बर जैन महासभा के भी वार्षिक अधिवेशन हुये। सेठ साहब और सेठ हीरालालजी साहब की ओर से दो लाख के दान की घोषणा की गई। सेठ फतेहचन्दजी साहब ने भी ५० हजार के दान की घोषणा की। बुन्देलखण्ड के दिगम्बर जैन समाज में यह पुरानी परम्परा है कि जिस महानुभाव के घराने में तीन बिम्ब प्रतिष्ठा हो जाती हैं, उसको 'श्रीमन्त' की पदवी से सम्मानित किया जाता है। यह बहुमान सेठ साहब और भैया साहब को प्रदान किया गया और बहुमूल्य सिरोपाव भी भेंट किये गये। आपके परिवार में सम्वत् १९५९ में इन्दौर में पहिली, सम्वत १९६२ में उज्जैन में दूसरी और १९९८ में हुई यह तीसरी बिम्ब प्रतिष्ठा और गजरथ महोत्सव था।

शांति मंगल महोत्सव

दो वर्ष बाद सम्वत २००० में सेठ साहब के यहां एक और महोत्सव की योजना की गई थी, जो आपकी धार्मिक भावना की ही द्योतक थी। कुछ ज्योतिषियों ने आपकी जन्मपत्रीमें मारकेश की दशा बताई थी। सेठानीजी और सेठ साहब की भी यह इच्छा हुई कि धर्माराधन का कुछ विशेष आयोजन किया जाय। पति-पत्नी दोनों की स्वाभाविक धर्मनिष्ठा के कारण ऐसा विचार होना सहज ही था। सिद्धचक्र विधान की योजना की गई। सेठ साहब ने इसका नाम "शान्ति मंगल महोत्सव" रखा था। दीतवारिया बाजार में बड़े पैमाने पर धार्मिक उत्सव करने के लिये विशाल मण्डप बनाया गया। पांच हजार नरनारी स्थान-स्थान से इसके लिये पधारे। सिद्धचक्र विधान और एक लाख जापके लिये ८ दिन का कार्यक्रम रहा। नवें दिन रथयात्रा और हवनविधान होकर करीब पांच हजार भिक्षुओं को मिष्ठान्न बांटा गया। २०-२५हजार नरनारियों को प्रीतिभोज दिया गया। स्थान की कमी और जाति व्यवहार के विचार के कारण दस-बारह रसोइयों की व्यवस्था की गई थी। जवेरीबाग की पारमार्थिक संस्थाओं के लिये छः लाख के दान की घोषणा की गई। पन्द्रह सौ चांदी के गिलास और वैराग्य-वर्धक मालायें भी बाँटी गईं। इस सब समारोह में ६४५२०॥≶) खर्च किया गया था।

लोगों में यह समाचार फैल गया था कि सेठ साहब संसार का परित्याग करके वैराग्य-वृत्ति धारण करने

जा रहे हैं। ऐसा न करने के लिये सेठ साहब से अनुरोध किया जाने लगा। अनेक तार व पत्र आपके पास दूर दूर से आये। सिद्धचक्र विधान के बाद सेठ साहब ने अत्यन्त मार्मिक और सारगर्भित भाषण देते हुये कहा था कि "मेरे संसार छोड़ने की जो बातें उड़ रही हैं, वे बिना पाये के नहीं हैं। इसको वास्तविक परिस्थिति में आपके सामने स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। मेरी आयु के बारे में ज्योतिषी लोग कुछ कहते हैं। मैं स्वयं भी ज्योतिष देखने वाला हूं। परन्तु आयु के पूरे दिन तो भगवान ही जान सकते हैं। मेरे को इस बारे में कतई चिन्ता नहीं है। यह शरीर दो वर्ष रहे, दो मास रहे या दो दिन ही क्यों न रहे? संसार में जो यह मनुष्य देह मिली है, इससे जिस तरह दूध से मक्खन निकाला जाता है, उसी तरह जितना पुण्य या धर्मकार्य बन सके, उतना करना यही मेरा सदा से ध्येय रहा है। परन्तु मैं ऐसी कोई बात नहीं करूंगा, जिससे पीछे मेरी हंसी हो। मेरे संसार छोड़ने के बारे में इन्दौर के भूतपूर्व प्राइम मिनिस्टर सर एस० एम० बापना साहब का भी तार मुझे मिला है। आपने लिखा है कि "मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप संसार का त्याग न करें। संसार में रह कर आप अपना और लोगों का भी भला कर सकते हैं।" इसके जवाब में मैंने तार दिया कि "आपके समान हितचिन्तक लोग इसी तरह की सलाह दे रहे हैं। जाज साहब, भैया साहब, सेठानी साहबा भी यही सलाह देते हैं।" इन सलाहों को ध्यान में रख कर मैं ऐसा कोई काम नहीं करूंगा, जिससे संसार के प्राणियों की सेवा न हो सके। मैं धर्मकार्य में अधिक समय खर्च करूंगा। अभी सौगन्ध-सम्पत तो लूंगा नहीं। यद्यपि मैं जितनी बन सकेगी, उतनी आपकी, समाज की तथा देश की सेवा करता रहूँगा, तथापि थोड़ा-बहुत दान हो जाय, तो ठीक है। मौके-मौके पर दान करते रहना अपना कर्तव्य है। इसीलिये मैं इस समय भी छः लाख रुपये का दान करता हूँ।"

इन्दौर की जनता इस अनुष्ठान और दान से इतनी प्रभावित हुई कि तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजा ज्ञाननाथ के सभापतित्व में सेठजी के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिये एक विशेष आयोजन किया गया। अनेक संस्थाओं ने अनेक ज्ञानवर्धक शास्त्र चांदी के करंड आदि में रख कर सेठ साहब को भेंट किये। अभिनन्दन-पत्र भी प्रस्तुत किया। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ के प्रधान मन्त्री पं० राजेन्द्रकुमारजी न्यायतीर्थ ने सेठ साहब की तुलना इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री लायड जार्ज से की थी, जिन्होंने अपने जन्म स्थान में किये गये अपने सम्मान को बहुत मान दिया था। सेठ साहब का सम्मान भी अपने घर में, आपने कहा कि, कितना है, यह आज के समारोह से प्रगट है। श्री जौहरीलालजी मित्तल और स्वर्गीय सेठ गोविन्दरामजी सेक्सरिया के भी भाषण हुये थे। महाराज तुकोजीराव क्लाथ मार्केट में सेठजी की संगमरमर की प्रतिमा निर्माण करने का निश्चय किया गया। दीतवारिया बाजार का नाम "हुकमचन्द रोड" रखे जाने की म्युनिसिपैलिटी से मांग की गई। राजा ज्ञाननाथजी ने भी सेठ साहब की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुये संक्षिप्त भाषण दिया और कहा कि दस वर्ष बाद भी हम ऐसा ही उत्सव मनायेंगे। सेठ साहब की सुयोग्य कन्या सौभाग्यवती श्रीमती चन्द्रप्रभादेवी मोदी विशारदा ने कविता में जो श्रद्धांजलि अर्पित की थी, वह बहुत ही सामयिक और मार्मिक थी।

सेठ साहब ने इसी अवसर पर तीनों भाइयों सेठ हीरालालजी, भैय्यासाहब राजकुमारसिंह और सेठ देवकुमारसिंह को बुला कर सट्टा छोड़ने का उपदेश दिया था। सेठ हीरालालजी ने घोषणा की कि काका साहब के उपदेश को शिरोधार्य करते हुये सदैव के लिये सट्टा छोड़ने की प्रतिज्ञा करता हूँ। आपने यह भी कहा कि इस उत्सव द्वारा सेठ साहब ने धर्म साधने का जो आदर्श उपस्थित किया है, वह हमारा मार्ग प्रदर्शक बन कर हमें सदा ही धर्म के मार्ग पर अग्रसर करता रहे और हमारे आत्मकल्याण में सहायक हो।

इस वर्ष सेठ साहब को शेयरों तथा मिलों से लगभग पौन करोड़ की आय हुई और स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा हो गया। सेठ साहब इसे धर्म-ध्यान और आराधन का ही शुभ परिणाम मानते हैं।

वीर शासन महोत्सव

वीर शासन के २५०० वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में कलकत्ता में सम्वत २००२ में समस्त जैन समाज की ओर से वीर शासन महोत्सव मनाया गया था। इसी अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी का वार्षिक उत्सव भी किया गया था। सेठ साहब ही दोनों आयोजनों के अध्यक्ष थे। साहू श्री शान्तिप्रसादजी जैन स्वागताध्यक्ष थे। श्री पार्श्वनाथ भगवान का विराट जलूस निकाला गया था। सेठ साहब ने सारथी की बोली ११००० रुपये की बोली और स्वयं रथ की बागडोर संभाली थी। डाक्टर सातकौड़ी राय की अध्यक्षता में जैन दर्शन परिषद् और श्री अजितप्रसादजी जैन की अध्यक्षता में जैनधर्म परिषद् भी हुई थीं। स्वयं सेठ साहब ने ग्यारह हजार एक प्रदान किया था और आपके प्रभाव के ही कारण कलकत्ता में विद्या मन्दिर की स्थापना के लिये दो लाख अठासी हजार और तीर्थयात्री समिति की बैठक में जैन तीर्थ यात्रियों की सुख-सुविधा के लिये लगभग दो लाख जमा हो गया था।

सीकर में प्रतिष्ठा

सम्वत् २००४ में चैत बदी ४ को सीकर में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के प्रधानमन्त्री जैनजातिभूषण लाला परसादीलालजी पाटनी द्वारा बिम्ब प्रतिष्ठा करवाई गई थी। तब सेठ साहब अस्वस्थ होते हुए भी वहां पधारे थे। वहां आपको हाथी पर सवार और स्वयं अपने हाथ में अंकुश लेकर उसको चलाते देख जनता-चकित रह गई। वहां आपने आठ हजार एक सौ एक रुपये के दान की घोषणा की। आपका वहां बड़ा प्रभाव पड़ा। रावराजाजी ने आपका सम्मान किया और एक प्रीतिभोज दिया। रावराजाजी के सभापतित्व में ही आपको सीकर के नागरिकों की ओर से मानपत्र दिया गया।

हिन्दूविश्वविद्यालय में मन्दिरजी का शिलान्यास

सीकर बिम्ब प्रतिष्ठा के महोत्सव से निवृत्त होकर सेठ साहब का बनारस जाने का कार्यक्रम था, जहां कि २० मार्च १९४८ को (सम्वत् २००४ में) मन्दिरजी और जैन बोर्डिंग हाऊस का शिलान्यास होना था। आपने इनके लिये क्रमशः ५६ हजार और २५ हजार का दान किया था, जो कि १५ हजार से हीरक जयन्ती उत्सव पर ५० हजार और इस अवसर पर ८१ हजार कर दिया गया था। १७ मार्च को सीकर से बिदा होकर आप जयपुर आ गये। जयपुर से "हनुमान विमान" द्वारा आप १९ मार्च को २५ साथियों के साथ बनारस के लिये बिदा हो गये। उसी दिन एक बजे बावतपुर हवाई अड्डे पर आपका हार्दिक स्वागत किया गया। १८ मील मोटर द्वारा चल कर आप निवास स्थान पर लाये गये। कलकत्ता के सेठ बैजनाथजी सरावगी का इसके लिये विशेष आग्रह था। आपने ही इसके लिये २५ हजार में एक भूमि नन्दकिशोरजी पुस्तकविक्रेता से खरीदी थी। आप सेठ साहब को लाने के लिये सीकर पहुँच गये थे। भूमि का एक और टुकड़ा भी ग्यारह हजार में खरीद लिया था, जिसकी कीमत राँची के सेठ चम्पालालजी ने प्रदान की थी। रात्रि को स्याद्वाद विद्यालय भदैनीघाट में सेठ साहब का अभिनन्दन किया गया। संस्कृत में मानपत्र भेंट किया गया। सेठ साहब ने विद्यालय के ध्रुव फण्ड में ग्यारह हजार, सेठ बैजनाथजी ने ३१०१ और जयपुर के सेठ रामचन्द्रजी खिंदूका ने ५०१) प्रदान किये। २० मार्च को प्रातः १०-४५ पर शिलान्यास का मुहूर्त था। इसी अवसर पर हुई सार्वजनिक सभा में सेठ साहब, सेठ बैजनाथजी और सेठ रामचन्द्रजी को मानपत्र भेंट किये गये। पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ ने नियत समय पर शिलान्यास विधि विधिवत सम्पन्न करवाई। मन्दिरजी और बोर्डिंग हाऊस का संचालन करने के लिये समिति का नाम "सन्मति ज्ञान प्रचारक मण्डल" और उस स्थान का नाम "सन्मति ज्ञान निकेतन" रखा गया। उसी दिन १ बजे सेठ साहब बनारस से बिदा हो कर ४० मिनिट में इलाहाबाद पहुँच गये। ६२५० रुपये में

जहाज जयपुर लौटने के लिये किया गया था। १८०० रुपया अधिक देकर इन्दौर जाना ही तय किया और शाम को ५ बजे इन्दौर पहुंच गये। इन्दौर में उतरते हुये जहाज जमीन से टकरा कर क्षतिग्रस्त हो गया और चालक की बुद्धिमत्ता से एक भीषण दुर्घटना होते होते बच गई। अन्यथा जहाज में आग लग कर भीषण काण्ड हो जाने का भय था।

तीर्थयात्रा

सेठ साहब को तीर्थयात्रा और पर्यटन की विशेष रुचि है। लम्बी-लम्बी यात्रायें आप कई बार कर चुके हैं। मोटर पर सुदूर स्थान की यात्रा करने का आपको विशेष शौक है। हवाई जहाज में भी आपने अनेक लम्बी-लम्बी यात्रायें तब की थीं, जब कि उन पर चढ़ना बड़ा भारी जोखम माना जाता था। पहिली लम्बी यात्रा आपने सम्वत् १९६३ में की, जब कि आप एक बड़े संघ के साथ दक्षिण में श्री जैनबद्री और मूलबद्री तक गये थे। आपके साथ जाने वाले भाई आपके प्रेमपूर्ण सहृदय व्यवहार से इतने अधिक प्रभावित हुये कि वे उस यात्रा को आज तक भी याद करते हैं। आपकी धर्मप्रभावना का भी लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। हर भाई की छोटी से छोटी आवश्यकता का भी आप स्वयं ध्यान रखते थे। स्वार्थभावना को आप सर्वथा तिलांजलि दे चुके हैं। सब के ठहरने की समुचित व्यवस्था हो जाने के बाद आप अपने ठहरने की चिन्ता करते थे। गाड़ी पर सबके सवार हो जाने के बाद आप सवार होते थे। किसी के भी बीमार होने पर स्वयं उसकी सुश्रुषा-सेवा करते थे। सम्वत् १९६५ में भी आपने एक लम्बी यात्रा की। तब दिल्ली दरबार में आपको विशेष रूप से निमन्त्रित किया गया था। आपको विशेष स्थान और मान दिया गया था। दिल्ली से लौटते हुये आप आबू, तारंगा, शत्रुंजय और गिरनारजी की यात्रा पर भी गये थे। इस यात्रा में आपको मास्टर दरयावसिंहजी और उदासीन अमरचन्दजी की संगति का लाभ मिला। वैराग्य की लहर आप में यहां से ही पैदा हुई समझनी चाहिये। भक्ति के जो भाव उस समय आपके हृदय में जागृत हुये थे, उनकी साक्षी उस समय का चित्र आज तक भी दे रहा है। पर्यूषण पर्व में मण्डप में आप स्वयं शास्त्रों का प्रवचन करते रहे हैं। नेमनाथजी की बारहमासा तो ऐसी ओजस्विनी भाषा में मग्न होकर पढ़ते हैं कि श्रोता भी वैराग्य की लहर में झूमने लग जाते हैं।

सम्वत् १९७४ में आप बुन्देलखण्ड की यात्रा पर सपरिवार गये थे। दरयावसिंहजी और उदासीन अमरचन्दजी भी आपके साथ थे। तब आप चन्देरी, ललितपुर, नैनागिर, द्रोणागिर, कुण्डलपुर, सोनागिर, गढ़ाकोटा आदि गये थे। सागर में स्वयंसेवकों ने आपका रथ खींचकर आपका जलूस निकाला था। १९८० में दिल्ली में बिम्ब प्रतिष्ठा में सम्मिलित होने के बाद श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा पर गये थे। अन्य यात्राओं का विवरण यथास्थान दिया ही गया है।

विविध दान

सेठानी साहिबा ने १९७३ में कांजी बारस व्रत का उद्यापन किया था। तब सेठ साहब ने १५ हजार दौलतबारियाजी के मन्दिरजी और १६६२१ पारमार्थिक संस्थाओं के लिये दिये। सम्वत् २००१ में पालीताना शत्रुंजयजी की धर्मशाला के लिये पाँच हजार, खण्डवा में जैन धर्मशाला बनाने के लिये दस हजार और भरतपुर के ज्ञानचन्द्रिका औषधालय के लिये चार हजार प्रदान किये। सम्वत् २००२ में क्षुल्लक पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी के सागर के विद्यालय को सत्ताइस हजार पांच सौ प्रदान किये।

सम्वत् २००३ और ४ में सोनगढ़ के श्री कुंदकुंद प्रवचन मण्डप को ग्यारह हजार एक, उज्जैन के सिंगपुरा मन्दिरजी के जीर्णोद्धार के लिये ग्यारह हजार, प्रतापगढ़ के श्री यशकीर्ति दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस को तीन हजार, नागपुर की जैन धर्मशाला को पच्चीस सौ प्रदान किये।

सम्वत् २००४ में वैशाख बदी ३ को श्री गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेना को पांच हजार एक और आषाढ़ सुदी ६ को बड़नगर के अनाथालय को पांच हजार दो सौ सेठ साहब और सेठानीजी ने दिये।

सम्वत् २००५-६ में फाल्गुन बदी ३ को मथुरा में चौरासी दिगम्बर जैन महाविद्यालय को पांच हजार, आषाढ़ बदी ७ को बम्बई के श्री कानजी स्वामी के अनुयायियों के लिये दिगम्बर जैन मन्दिर के निर्माण के लिये पन्द्रह हजार और आषाढ़ सुदी ७ को ऋषभ ब्रह्मचर्य आश्रम मथुरा को इक्कीस सौ प्रदान किये।

पारिमार्थिक संस्थायें

सम्वत् १६६६ में सेठ साहब ने जिन परिमार्थिक संस्थाओं का सूत्रपात किया था और इस समय जिनके ध्रुव फण्ड का रुपया बीस लाख से भी ऊपर का है, उनकी विस्तृत चर्चा पृथक् रूप से विस्तार के साथ की जा रही है। इसीलिये उनकी चर्चा इस प्रकरण में नहीं की गई है।

बम्बई में समारोह

जैन समाज की हितसाधना में आप किस प्रकार दत्तचित्त रहते हैं, इसका एक और उदाहरण दिये बिना यह प्रकरण अधूरा रह जायगा। बम्बई के सर शान्तिदास आसकरण जैन समाज के अत्यन्त लब्धप्रतिष्ठ नेता हो गये हैं। आपका पिछले ही दिनों में स्वर्गवास हुआ है। आप पीछे 'कौंसिल आफ स्टेट' के वर्षों तक सदस्य रहे थे। बम्बई के शैरिफ भी थे। तब मार्च सन् १६४४ में बन्दरगाह में भीषण विस्फोट हो जानेसे शहर का बड़ा हिस्सा भस्मसात हो गया था। वह अभूतपूर्व रोमांचकारी दुर्घटना घटी थी। आपके ही उद्योग से सरकार ने क्षतिग्रस्त लोगों को पूरा मुआवजा देने का निश्चय किया था। लगभग २५ करोड़ की हानि का अनुमान लगाया गया था। आपकी इस अनुपम सेवा के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिये बम्बई में एक विराट आयोजन किया गया था, जिसके लिये 'सर शान्तिदास आसकरण सम्मान समिति' का गठन किया गया था। सौ प्रमुख नागरिक इसके सदस्य थे, जिनमें सर कीकाभाई प्रेमचन्द, सर मणिलाल बी० नानावती, सर चुन्नीलाल भाईचन्द महता और हमारे चरित्रनायक सरीखे विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित थे। समारोह का सभापतित्व करने के लिये इन्दौर से हमारे चरित्रनायक को ही निमन्त्रित किया गया था। आप मोटर से बम्बई पहुँचे। आपका भी वहां हार्दिक स्वागत किया गया। १०-१२ हजार की उपस्थिति थी। आपने अपने भाषण में कहा था कि "सर शान्तिदासजी को अनेक रियासतों के साथ सम्बन्ध है। सरकार में भी आपको विशेष प्रतिष्ठा है। इसको देखते हुये मुझे जैन समाज के पुराने इतिहास की याद आ जाती है। हमारे देश के सम्राटों के दरबार में जैन महाजनों को उच्च स्थान प्राप्त था। राज्य के कारोबार और शासन में सलाहकारों के विशिष्ट स्थान पर वे नियुक्त थे। ठीक वही स्थिति सर शान्तिदासजी ने इस समय प्राप्त की है। आपके प्रयत्न से पशुबध पर रोक लगाने का हुक्म सरकार से जारी हुआ है। राजा और प्रजा का आपके प्रति जो विश्वास है, वह इसी का परिणाम है।" जैन समाज के प्रति आपकी उच्चतम भावना और जैन इतिहास के प्रति गौरव आपके इस भाषण के प्रत्येक शब्द में झलकता है। परन्तु उसी प्रसंग की एक और घटना से आपकी इस भावना का और भी अधिक उज्ज्वल परिचय मिलता है। आपके सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभी जैनियों अर्थात श्वेताम्बरों, दिगम्बरों तथा स्थानकवासियों को सामाजिक मामलों में एक हो जाना चाहिये। आपने अत्यन्त हर्ष के साथ यह सम्मति प्रगट की कि "ये तीनों सदा से ही एक हैं और एक ही रहेंगे। श्वेताम्बरी भाइयों से मेरा निवेदन है कि वे दिगम्बरों को अपना छोटा भाई समझें और उनको गले लगावें। इसी प्रकार आपस का प्रेम और सद्भाव सदा बढ़ता रहेगा। जमाना एकता, संगठन और मिलकर रहने तथा काम करने का है। हमको वास्तव में ही एक होकर रहना चाहिये।" इसका जैन समाज पर बहुत ही अनुकूल प्रभाव पड़ा। श्वेताम्बरों ने सेठ साहब का विशेष रूप से

स्वागत किया। स्थान-स्थान पर आपको प्रीतिभोज दिये गये। इसी अवसर पर भोलेश्वर के दिगम्बर जैन मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये प्रयत्न किया गया और आपने अपने पास से सात हजार रुपया प्रदान करके पचहत्तर हजार रुपया उसके लिये जमा करा दिया। सम्वत् १९७३ में भी आपने इसके लिये दस हजार रुपया प्रदान किया था और अन्य लोगों से भी चन्दा करवाया था। कलकत्ता में सम्वत् २००१ की मगसर बदी में जो वीर शासन महोत्सव हुआ था, उसमें भी समस्त जैन समाज सम्मिलित था और उसके अध्यक्ष भी सेठ साहब ही निर्वाचित किये गये थे। दिगम्बरों और श्वेताम्बरों के आपस के झगड़ों को पंच-पंचायत के ढंग पर निपटाकर आपस में सहृदयता पैदा करने के जो प्रयत्न आपने समय-समय पर और स्थान-स्थान पर किये, उनकी चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। जैन समाज में परस्पर सहृदय सम्बन्ध स्थापित करना आपकी सबसे बड़ी सेवा है।

सारांश यह है कि धर्म और समाज के लिये जहां भी जब भी कभी आवश्यकता हुई, आपने उदारतापूर्वक देने में संकोच नहीं किया। कोई प्रान्त और कोई प्रदेश, कोई प्रवृत्ति और कोई आन्दोलन तथा कोई संस्था और कोई संगठन आपकी उदार वृत्ति से सहज ही में उपकृत हुये बिना रह नहीं सकी। कहीं भी कोई भी प्रश्न या समस्या उपस्थित होने पर आप पीछे रहना जानते ही नहीं। आपका सदा ही यह प्रयत्न रहता है कि समाज में वितण्डावाद न फैले, शान्ति स्थापित रहे, मर्यादा का भंग न हो और धर्म तथा समाज का सारा कार्य यथावत् नियम से चलता रहे। धर्म की प्रभावना निरन्तर होती रहे। धर्म और समाज की आपकी सेवा बहुमुखी और व्यापक है। न केवल अपने तन-मन-धन से उसको सम्पन्न किया है, दूसरों को भी प्रेरित करके स्थान-स्थान पर हजारों-लाखों की निधि की व्यवस्था की है। आन्तरिक कलहों को मिटाकर बाहरी आक्रमणों से भी उसकी रक्षा की है। दिगम्बर जैन धर्म तथा समाज के लिये आपने अनेक बार अनेक स्थानों पर ढाल या कवच का काम दिया है। आपने कर्तव्य-भावना से उसकी पूर्ति में सुख व सन्तोष मानकर ही सेवाधर्म का पालन किया और कभी भी उसके लिये बदले की इच्छा नहीं की। निःस्वार्थ भाव और निरभिमान हृदय से जो कुछ भी आपसे बना, आपने किया। आपकी वृत्ति तो सदा यही रही है कि:—

> "स्वयं न स्वादन्ति फलानि वृक्षाः
> पिबन्ति नाम्भः स्वयमेव नद्यः।
> धाराधरो वर्षति नात्महेतोः
> परोपकाराय सतां विभूतयः॥"

जैन समाज ने भी सेठ साहब के प्रति अपना आदर, श्रद्धा तथा कृतज्ञता प्रकट करने में कुछ भी उठा नहीं रखा। आपको अनेक सम्मानित पदवियों से विभूषित कर सैकड़ों स्थानों पर आपके विशाल जलूस निकाले गये और आपको मानपत्र भी भेंट किये गये।

: ८ :

सम्मान व मान्यता

"स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते" की कहावत के अनुसार राजा का सम्मान केवल अपने देश में होता है और विद्वान् का देश-विदेश सभी में। सेठ साहब की स्थिति अपने नगर में राजा के ही समान है। इसलिये उसमें आपका अपूर्व सम्मान हुआ, उस पर किसी को कुछ भी आश्चर्य नहीं होना चाहिये; किन्तु आश्चर्य उस सम्मान के लिये अवश्य है, जो आपने अपने नगर और इन्दौर के बाहर अन्य राज्यों और देशों में सर्वत्र प्राप्त किया। कहते हैं कि कुछ विदेशी व्यापारी आपको देखने के लिये केवल इसलिये आये कि वे उस सफल व्यापारी के दर्शन करना चाहते थे, जिसके हाथों में उस समय देश-विदेश के सभी बाजार खेला करते थे। आपको 'विद्वान्' नहीं कहा जा सकता। अंग्रेजी की आप दो पोथियां भी नहीं पढ़े हैं और हिन्दी में भी आपने ऐसी कोई ऊंची परीक्षा पास नहीं की है। एक ज्योतिषी ने आपके सम्बन्ध में यह ठीक ही भविष्यवाणी की थी कि "विद्याहीनो महाज्ञानी महाभक्ति, प्रचण्डवानशक्तिः कीर्तियोग विशालाक्षी चन्द्रधरमहामुने दैवं भोगाद्बली।" फिर उसने कहा था कि 'देशे विदेशे कीर्तिर्नोविख्यातोभुविमण्डले।" ज्योतिषी की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई है। निस्सन्देह, सेठ साहब ने अपने समय की भावना के अनुसार राजधर्म का यथावत् पालन किया। राजा में अगाध निष्ठा और भक्ति रखने वाले राजभक्तों में आपकी गणना की जाती रही है। यथावसर राजभक्ति का प्रदर्शन भी आप करते ही रहे हैं। लेकिन, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि आप में लोकसेवा और देशसेवा की भावना नहीं है। लोकसेवा का भी कोई अवसर आपने हाथ से जाने नहीं दिया। इसी लिये राज और लोक दोनों ही दृष्टियों से आपने वह सम्मान व मान्यता प्राप्त की, जो किन्हीं असाधारण व्यक्तियों को ही प्राप्त होती है। उसका उपार्जन या सम्पादन भी आपने सहस्र हाथों से किया है। आपका जीवन इस कथन की भी साक्षी है कि—

> "नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके,
> जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः।
> इति महति विरोधे वर्तमाने समाने,
> नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता॥"

राजकीय क्षेत्र और जनता में समान स्नेह, आदर एवं सम्मान प्राप्त करके आपने यह सिद्ध कर दिया कि दोनों के हित का सम्पादन समान रूप से किस प्रकार किया जा सकता है? आपकी राजभक्ति का अर्थ झूठी चापलूसी या स्वार्थपूर्ण खुशामद नहीं है। इन्दौर में ऐसे कितने ही अवसर आये, जब अपनी जनता के लिये राज और राजकीय अधिकारियों के साथ भी जूझ गये और राज्य ने जब लोकहित में कुछ ढील की, तब आप स्वयं उसमें जुट गये। राज्य के प्रति "हितं मनोहारी च दुर्लभं वचः" की नीति से काम लेने में भी आपको संकोच नहीं

हुआ। उज्जैन में सन् १९१० के लगभग दशहरा और मुहर्रम साथ-साथ आ जाने से हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। हिन्दुओं को स्थानीय अधिकारियों के कारण बहुत नीचा देखना पड़ा। एक फ्रेंच आर्नेट उस समय सूबा के पद पर नियुक्त थे। ताजिये और हिन्दुओं का जलूस एक ही सड़क पर आ निकले। दोनों ओर से कुछ जिद्दा-जिद्दी हुई। हिन्दुओं का जलूस फौज के पहरे में निकल गया। पर, मुसलमानों के ताजिये कई दिनों तक सड़क पर ही पड़े रहे। बाद में कई मुकद्दमे भी चले, जिनमें हिन्दू ही दबाये गये। आपके ही सामने उज्जैन रेलवे स्टेशन पर एक मुसलमान ने एक हिन्दू की नाक की तरफ अपनी जूती का संकेत करते हुये हिन्दुओं की नाक काट लेने का दर्प-पूर्ण प्रदर्शन किया। उसके कुछ ही समय बाद आप ग्वालियर के स्वर्गीय महाराज श्रीमन्त माधवरावजी सिंधिया के शिवपुरी में अतिथि हुये। रात्रि को ताश का खेल चल रहा था। साथ में भारत के एक और सुप्रसिद्ध करोड़पति उद्योगपति भी उपस्थित थे। खेल समाप्त होने से पहिले सेठ साहब ने उज्जैन के दंगे की चर्चा शुरू कर दी और साफ शब्दों में कह दिया कि आप सरीखे हिन्दू महाराज के राज्य में हिन्दुओं की नाक कट गई। यह कितनी लज्जा की बात है ? महाराज के चेहरे पर एकाएक गंभीरता छा गई। वे चुप रह गये और खेल समाप्त हो गया। सेठ साहब के साथी उद्योगपति ने बाहर आते ही कहा कि आपने यह चर्चा करके ठीक नहीं किया। महाराज नाराज हो गये हैं। सेठ साहब ने बात टाल दी। दूसरे दिन सवेरे ही उस दंगे के सम्बन्ध में महाराज द्वारा जारी किये गये सारे आर्डर लेकर उनका खास आदमी सेठ साहब के पास आया। सेठ साहब से उसने निवेदन किया कि महाराज ने आदेश दिया है कि आप उन द्वारा जारी किये गये इन सारे हुक्मों को देखकर यह बतायें कि उन्होंने कहां क्या भूल की है और उनके किस हुक्म के कारण हिन्दुओं को नीचा देखना पड़ा है ? सेठ साहब ने उन कागजों को देखे बिना ही कह दिया कि इन हुक्मों के साथ यह देखना भी तो आवश्यक है कि इनका पालन किस प्रकार किया गया और सूबा साहब ने इन पर क्या कार्यवाही की ? सूबा साहब का दायित्व भी तो अन्त में महाराज पर ही है। महाराज के पास जैसे ही सेठ साहब की यह बात पहुंचाई गई, वैसे ही उन्होंने उज्जैन के सूबा को अपने समस्त कागज-पत्र लेकर शिवपुरी पहुंचने का आदेश दिया और उन्होंने देखा कि उनके हुक्मों का यथावत पालन न करके कैसी मनमानी कार्यवाही की गई है ? सूबा तथा अन्य अधिकारियों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की गई। दूसरे दिन सेठ साहब को इन्दौर लौटना था। महाराज से विदाई लेने गये, तो महाराज ने सेठ साहब का आभार मानते हुये कहा कि आपने मुझे अच्छे समय सावधान कर दिया। सूबा ने तो हमारी सारी ही प्रतिष्ठा धूल में मिला दी थी। सेठ साहब के साथी दंग रह गये और आपकी सूझ-बूझ की उन्होंने भी बहुत सराहना की।

अन्य अनेक राजाओं तथा महाराजाओं के साथ बीती हुई ऐसी ही अनेक घटनायें यहां दी जा सकती हैं। इन्दौर में प्लेग के दिनों में क्वारण्टाइन के मामले पर, दुर्भिक्ष आदि के अवसरों पर, क्लाथ मार्केट तथा सराफा बाजार में संकट उपस्थित होने पर और मुनिविहार पर लगाये गये प्रतिबन्ध पर सेठ साहब ने जनता के लिये जो कुछ किया, उसकी यहां पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है। उदयपुर, ग्वालियर, बड़वानी, ब्यावरा तथा सौराष्ट्र के अनेक राज्यों में और बिहार तथा हैदराबाद आदि में दिगम्बर जैन समाज पर संकट उपस्थित होने पर सेठ साहब ने अनेक बार अपने प्राणों तक की बाजी लगा देने की घोषणा की और राजकीय अन्याय का प्रतिकार करा कर ही दम लिया। हैदराबाद में तो आप सत्याग्रह करने के लिये भी जाने को तैयार हो गये थे। इसीलिये तो सेठ साहब की राजभक्ति का अर्थ कोरी चापलूसी या खुशामद ही न था। आप में स्वाभिमान और आत्मगौरव की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। अपनी जाति, धर्म तथा समाज का अभिमान आपकी रग-रग में समाया हुआ है। इसीलिये राज और सरकार से जो भी सम्मान तथा मान्यता आपने प्राप्त की है, वह आपकी

उस अपरिमित लोकसेवा का परिणाम है, जिसका आदि और अन्त अक्षरों मे नहीं लिखा जा सकता।

इन्दौर राज्य में

इन्दौर राज्य के राजघराने के साथ आपके घराने का कई पीढ़ियों का सम्बन्ध कहा जा सकता है। ग्वालियर, बीकानेर, जोधपुर, मैसूर, बड़ौदा तथा मध्यभारत, राजस्थान और सौराष्ट्र के अनेक राज्यों के साथ भी आपका कई पीढ़ियों का पुराना सम्बन्ध है। इसीलिये इन्दौर, ग्वालियर तथा अन्य राज्यों में भी आपने जो सम्मान तथा मान्यता प्राप्त की, वह सहज और स्वाभाविक थी। श्रीमन्त महाराज सर तुकोजीराव बहादुर के साथ तो आपकी इतनी अधिक घनिष्ठता है कि उनके राज्यसिंहासनासीन होने के समय से अब तक भी आपका उनसे स्नेह और व्यवहार है। महाराज के बीमार होने के समय, विदेश-यात्रा पर जाने अथवा सकुशल लौटने पर और ऐसे ही अन्य अवसरों पर भी आप उनके प्रति अपने स्नेह का प्रदर्शन बराबर किया ही करते थे। वर्तमान महाराज श्रीमन्त यशवन्तराव होलकर के साथ भी आपका वैसा ही स्नेहपूर्ण व्यवहार है। आपके यहां महाराज कितनी ही बार पधारे हैं, आपकी कितनी ही संस्थाओं का उन्होंने उद्घाटन अथवा उनका शिलान्यास किया है, विवाह आदि के अनेक शुभ प्रसंगों को अपनी उपस्थिति से सुशोभित किया है और अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में भी अपनी कृपा का परिचय दिया है। परस्पर का यह व्यवहार तब चरम सीमा पर पहुँच गया था, जब बम्बई के बावला-प्रकरण में महाराज तुकोजीराव का हाथ बताकर उनको गद्दी त्यागने अथवा कमीशन के सामने अपनी सफाई पेश करने के लिये कहा गया था। इस अवसर पर इन्दौर की जनता की जो विराट सभा हुई थी, उसके आप ही सभापति थे। उच्चतम अधिकारियों से आप महाराज की ओर से मिले और अन्त में आप कलकत्ता में वायसराय से भी मिलने गये।

कलकत्ता पहुँचने पर वायसराय के मिलिटरी सेक्रेटरी से आपने मिलने का समय मांगा, तो वह समझा गया कि आप महाराज का मामला लेकर मिलने के लिये आये हैं। लेकिन, आपने भेद नहीं दिया और यह प्रगट किया कि वायसराय महोदय इन्दौर में आपके मन्दिर में भी पधारे थे और आप केवल कृतज्ञता प्रगट करने आये हैं। मुलाकात का समय दूसरे दिन ११ बजे का नियत किया गया। वायसराय महोदय ने पहुँचते ही कुशल-क्षेम पूछा, तो आपने सहसा ही कह दिया कि जब महाराज ही कुशल-क्षेम पूर्वक नहीं हैं, तब उनकी प्रजा कैसे कुशल-क्षेम से रह सकती है? आपने महाराज को सर्वथा निर्दोष बताया। परन्तु वायसराय महोदय पहिले ही हुक्म जारी कर चुके थे। इसीलिये उन्होंने कुछ कर सकने में खेद प्रगट किया। पर, सेठ साहब हार मानने वाले नहीं थे। आपने दो वचन तो ले ही लिये। एक तो यह कि आपको सम्मान के साथ गद्दी से अलग किया जाय और दूसरा यह कि जीवन-भरण के लिये अच्छी रकम दी जाय। अपने उत्तराधिकारी के पक्ष में स्वयं राजगद्दी छोड़ने का उनको अवसर दिया गया और प्रति-वर्ष के लिये जो एक लाख की रकम रखी गई थी, वह छः लाख कर दी गई। सेठ साहब के व्यक्तित्व, प्रभाव और राजभक्ति के अतिरिक्त यह घटना इस बात की भी सूचक है कि आप जनता के भाव-अभियोग उच्चतम अधिकारियों तक किस रूप में पहुंचाया करते हैं। जनमत का प्रतिनिधित्व करने में आप परम प्रवीण हैं। इन्दौर की जनता की सार्वजनिक सभा के सभापति के नाते से ही तो आप कलकत्ता वायसराय के पास गये थे।

ऐसे जन-प्रतिनिधि का इन्दौर राज्य में जितना भी सम्मान हुआ, वह कम ही है। सम्वत् १६४३ से ही आपके घराने की राज्य में प्रतिष्ठा या मान्यता थी। तब (२३ जुलाई १८८६ के) एक हुक्म द्वारा तत्कालीन महाराज श्रीमन्त तुकोजीराव द्वितीय ने अबकारी का परवाना देकर आपकी दूकान को सम्मानित किया था। इसका अभिप्राय यह था कि आपकी दूकान के लिये सायर या चुंगी का आधा कर माफ कर दिया गया था। इन्दौर

में ग्यारह पंच नाम की एक संस्था है, जिसको व्यापारियों की प्रतिनिधि संस्था कहा जाता है। इसके सभी सदस्य राज्य द्वारा नियुक्त किये जाते थे। इसको इन्साल्वेंसी कोर्ट के अनेक दीवानी अधिकार प्राप्त थे। सम्वत् १६५० में सेठ साहब की दूकान को भी इसकी सदस्यता प्राप्त हुई। बाद में आप इसके अध्यक्ष बनाये गये और वर्षों तक आप इस पद पर प्रतिष्ठित रहे।

सन् १६१६ से आपको राज्य द्वारा व्यक्तिगत सम्मान प्राप्त होना शुरू हुआ। इसी वर्ष महाराज श्रीमन्त तुकोजीराव बहादुर ने अपनी जन्मगांठ पर आपको दरबार में ऊंची बैठक और हाथी रखने का सम्मान प्रदान किया। १६१८ में फिर वर्षगांठ पर ही आपको दो सम्मान और दिये गये। एक तो यह कि दीवानी अदालत में आप वादी, प्रतिवादी तथा गवाह के रूप में सम्मन द्वारा बुलाये नहीं जायेंगे। काम पड़ने पर मजिस्ट्रेट आपके यहां जायेंगे और वहां ही आवश्यक अदालती कार्यवाही कर ली जायगी। दूसरा यह कि आपके यहां उत्सव और त्यौहार आदि का कार्य पड़ने पर प्रथम श्रेणी का स्पेशल लवाजमा भेजा जाया करेगा। १६१६ में अपनी जन्मगाँठ के दरबार में आपको "राज्यभूषण" की उपाधि से विभूषित किया गया और दशहरा की सवारी में हाथी की बैठक प्रदान की गई। सन १६२० के दरबार में आपको पैर में पहनने के लिये सोने का कड़ा प्रदान किया गया। राजस्थान और मध्य भारत के देशी राज्यों में यह सम्मान असाधारण माना जाता है और किसी भाग्यशाली व्यक्ति को ही प्राप्त होता है। आपने इस सम्मान के लिये महाराज के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने के लिये एक थाल में उन्हें ५७१ तोला सोना और ७१ मोहरें भेंट कीं। सन् १६२४ के दरबार में आपको सरकारी दरबारों में सरदारों की श्रेणी में बैठने का सम्मान दिया गया।

वर्तमान महाराज ने भी सेठ साहब के सम्मान की इस परम्परा को इसी प्रकार कायम रखा। १६२६ के फरवरी मास में १०६१ संख्या के पत्र से आपको 'रावराजा' की उपाधि देने का महाराज ने विचार प्रगट किया था। १६३० में आपके उत्तराधिकारी महाराज ने अपने जन्म दिन के दरबार में आपको इस उपाधि से सम्मानित किया और इसके बाद ही "राज्यरत्न" की उच्चतम उपाधि से भी आप विभूषित किये गये।

इन सब सम्मानों के बाद आपके आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किये जाने और म्यूनिसिपैलिटी तथा लेजिस्लेटिव कमेटी के सदस्य नामजद किये जाने का उल्लेख करना विशेष महत्व नहीं रखता। परन्तु सम्वत् २००१ में भी धारासभा का सदस्य नियुक्त किया जाना अवश्य ही उल्लेखनीय है। तब लेजिस्लेटिव कमेटी को धारासभा का रूप दे दिया गया था और जनता की राजनीतिक संस्था प्रजामण्डल द्वारा पहिली बार चुनाव लड़े गये थे। बहुत ही कड़ा मुकाबला था। सेठ साहब ने हवा का रुख देखते हुये चुनाव न लड़ने का निश्चय किया और उससे सर्वथा उदासीन रहे। लेकिन, आपके अनुभव, विचक्षण बुद्धि तथा व्यापार कौशल से लाभ उठाने के लिये आपको नामजद करना आवश्यक समझा गया और आपके इन्कार मना करने पर भी आप नामजद कर दिये गये। प्रजामण्डल के उन दिनों के नेता तथा अन्य सज्जन भी धारासभा की कमेटियों तथा अन्य सरकारी कमेटियों में आपके साथ काम करने का उल्लेख बड़े ही गर्व के साथ करते हैं।

उन दिनों की व्यापारी संस्थायें भी प्रायः अर्धसरकारी ही होती थीं। उन सब में भी आपको विशेष सम्मान प्राप्त होता था। इन्दौर राज्य व्यापारी संघ (चेम्बर आफ कामर्स), मिल मालिक संघ और इन्दौर बैंक के आप वर्षों प्रधान रहे हैं।

अंग्रेजी राज्य में

अन्य देशी राज्यों में आपको जो सम्मान तथा मान्यता प्राप्त हुई, उसकी चर्चा करने से पहिले अंग्रेजी सरकार द्वारा प्राप्त सम्मान तथा मान्यता का उल्लेख करना ठीक होगा। इन्दौर राज्य के बाहर भी अनेक

संस्थाओं को आपकी उदारता का लाभ मिला था। इन्दौर छावनी भी उस समय अंग्रेजी राज के ही आधीन थी। उस क्षेत्र की सार्वजनिक संस्थाओं के अलावा आपने दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई तथा अन्य स्थानों की सार्वजनिक संस्थाओं को भी बहुत बड़ी बड़ी रकमें प्रदान की थीं। सरकार की सबसे बड़ी सहायता आपने पहिले विश्वव्यापी महायुद्ध में की थी, जब कि अकेले आपने एक करोड़ रुपये का युद्ध ऋण लिया था। युद्ध के अन्य चंदों में भी, जैसे कि 'वार रिलीफ फण्ड', 'एम्बूलैंस कोर' और 'अावर डे' आदि में भी आपने अच्छी रकमें प्रदान की थीं। इन्दौर में पहिले महायुद्ध के समय युद्ध-ऋण के लिये टाऊन हाल में एक सार्वजनिक सभा हुई। लोगों से युद्ध-ऋण के लिये अपील की गई। आपने व्यक्तिगत रूप से पांच लाख का युद्ध-ऋण लेने का निश्चय किया था, किन्तु जनता को असमंजस में पड़ी देखकर आप ने यह घोषणा की कि मैं पांच लाख के बजाय दस लाख युद्ध-ऋण लेता हूँ। जनता को इसके लिये कष्ट देने की आवश्यकता नहीं है। एक पन्थ दो काज साधने की सेठ साहब की उदारता और दूरदर्शिता की सब ओर सराहना होने लगी। जनता को राहत मिली और सरकार का भी काम हो गया। इन्दौर के वयोवृद्ध जनसेवक श्री सरवटे साहब भी, जो कि इन्दौर के गान्धी कहे जाते हैं, सेठ साहब की इस उदारता की मुक्तकंठ से सराहना करते सुने गये हैं। एक करोड़ का युद्ध-ऋण भी आपकी दूरदर्शिता और सूझ-बूझ का सूचक है। यहां वह पत्र अविकल रूप से उद्धृत किया जाता है, जो इसके लिये आपने गवर्नर जनरल के मध्यभारतस्थित तत्कालीन एजेन्ट श्री० ओ० बी० बौसंक्वेट आई० सी० एस०, सी० आई० ई०, आई० एम० आई० को २२ मार्च १९१७ को लिखा था :—

"In reference to your Honour's wishes I have called on you to-day. Your Honour's desire is that I should contribute to the War loan. I therefore explain underneath my intention with regard to my contribution to the War Loan.

I have now purchased 70 Lakhs of 3.1/2% Government paper, mainly with the object of supporting the price of this security. I will now tender for Rs. 47 Lakhs to the 5% war Loan. Against this tender of the 5% War Loan the Government will give me about Rs. 70 Lakhs of Conversion warrants. I will convert my holding of 70 Lakhs of 3.1/2% Government paper with these warrants. As the conversion rate is Rs. 76 for Rs. 100, I will get Rs. 53 Lakhs of 5% war loan to the 47 Lakhs of my 3.1/2% Government paper. Adding these 53 Lakhs of 5% war loan to the 47 Lakhs of 5% War Loan, for which I will tender, I will have altogether Rs. 100 Lakhs of the 5% War Loan. This will be my humble contribution to the war loan."

एक करोड़ का युद्ध-ऋण लेने में सेठ साहब ने जिस दूरदर्शिता से काम लिया, वह इस पत्र से स्पष्ट है। सरकारी कागजों के गिरते हुये भाव से आपने लाभ उठाया। सारे देश में इतनी बड़ी रकम युद्ध-ऋण में देने वाले आप अकेले ही थे। जब आपने इतनी बड़ी रकम युद्ध-ऋण में लेने का विचार प्रगट किया, तब बम्बई के गवर्नर, मध्यभारत के एजेण्ट और इन्दौर राज्य में यह कशमकश शुरू हो गई कि आप यह उनके यहां से लें। बम्बई के गवर्नर ने कई सन्देश भिजवाए। अन्त में आपने अपने यहां इन्दौर से ही लेने का निश्चय किया। निस्सन्देह, सरकार की यह बहुत बड़ी सहायता थी। इसलिये सरकार की दृष्टि में आपका सम्मान और मान्यता का बढ़ना स्वाभाविक ही था। १९१५ में सम्राट् के जन्मदिन पर आपको "रायबहादुर" और १९१९ में "सर" की उच्चतम

उपाधि से सम्मानित किया गया। चारों ओर से आपपर बधाइयों की वर्षा हुई। वायसराय ने भी आपको २ जुलाई को हार्दिक बधाई का तार दिया। सितम्बर मास में आपको वायसराय ने शिमला निमंत्रित करके 'सर' की उपाधि और 'नाइटहुड' के पदक प्रदान किये। एजेंट के यहां आपको विशेष सम्मान सदा 'ही मिलता था। दिल्ली दरबार में भी आपको ऊँचा आसन दिया गया था।

आपको 'राजा' की उपाधि से विभूषित करने का भी कई बार विचार किया गया। दतिया के दीवान सर अजीजुद्दीन अहमद ने १० जुलाई १९२९ के अपने पत्र में लिखा था कि 'मैं कुछ समय से आपको पत्र लिखने का विचार कर रहा था। आपने सरकार, होलकर महाराज और देशी राज्यों तथा ब्रिटिश भारत में जनता की भलाई के जो महान कार्य किये हैं,उनका मैं सदा से ही प्रशंसक रहा हूं। आपको 'सर' और 'रायबहादुर' का सम्मान सर्वथा उचित ही दिया गया है; किन्तु मैं तो कहता हूं कि आपको 'राजा' के पद से विभूषित किया जाय। अनेक देशी नरेशों ने अपने यहां के लोगों को राजा और नवाब के खिताब दिये है। पटियाला के महाराज ने अभी-अभी अपने दीवान सर दयाकिशन कौल को 'राजा' की पदवी दी है। यह देशी नरेशों के लिये ही शोभास्पद है कि उनकी प्रजा के विशिष्ट व्यक्ति 'राजा' आदि पदवियों से सम्मानित किये जांय। मैं चाहूंगा कि इन्दौर के महाराज आपको किसी उपयुक्त अवसर पर 'राजा' की पदवी से सम्मानित करें। ब्रिटिश भारत में अनेक हिन्दू व्यापारियों को इससे सम्मानित किया गया है।''

कलकत्ता के आपके अनेक मित्रों ने वायसराय से आपको 'राजा' की पदवी दिलाने का एक बार आयोजन भी किया था। उस आयोजन का उल्लेख व्यापार-व्यवसाय के प्रकरण म कलकत्ता में दूकान खोलने के सिलसिले में किया जा चुका है। एक राज्य में दो 'राजा' न रहने की आपकी भावना कितनी सरल थी? 'राव-राजा' की उपाधि प्राप्त कर लेने के बाद आपको 'राजा' की उपाधि में कुछ भी आकर्षण दीख नहीं पड़ा।

१९ नवम्बर १९१९ को एजेंट सर बोसंक्वेट ने सेठ साहब ने विदाई भोज दिया था। तब आपकी प्रशंसा करते हुये एजेंट महोदय ने कहा था कि 'इन्दौर मध्यभारत का प्रमुख औद्योगिक नगर है और सेठ हुकमचन्द इन्दौर के प्रमुख व्यापारी हैं। सार्वजनिक कार्यों के लिये आपने अपने विपुल धन का सुन्दर विनियोग किया है। युद्ध-ऋण में आपने एक करोड़ रुपया प्रदान किया है, जो कि किसी भी व्यक्ति द्वारा दी गई सबसे बड़ी रकम है। दिल्ली के लेडी हार्डिङ्ग अस्पताल व कालेज को भी आपने बहुत बड़ी उदार सहायता प्रदान की है। भारतीय महिलाओं की दशा सुधारने के काम मे सदा ही सेठ हुकमचन्द ने सहयोग दिया है। विधवाओं की सहायता और उन्हें स्वावलम्बी बनाने वाली शिक्षा देने के लिये इन्दौर में आपने एक भवन भी खोला हुआ है। इन्दौर के कनाडियन मिशन को आपने २५ हजार रुपया दिया, जिससे वे अपने कन्या विद्यालय के लिये नया भवन बना सके हैं। आपकी सार्वजनिक सेवाओं का सम्मान करते हुये सम्राट् ने आपको "नाइटहुड" का जो सम्मान दिया है, उसके लिये आपके मित्रों को बहुत प्रसन्नता हुई है।" अन्य अनेक उच्च सरकारी अधिकारियों और एजेंटों ने भी आपकी समय-समय पर इसी प्रकार सराहना की है। श्री एच० डाली नाम के एजेंट ने, जो बाद में मैसूर के रेजिडेंट नियुक्त हुये थे, बंगलोर से लिखे गये पत्र में सेठ साहब की बहुत प्रशंसा की थी। ऐसे पत्रों और भाषणों का यहां उल्लेख करना प्रायः अनावश्यक ही है।

ग्वालियर में

इन्दौर के बाहर जिन अन्य राज्यों में सेठ साहब का सम्मान हुआ अथवा उनको मान्यता प्राप्त हुई, उनमें ग्वालियर का स्थान मुख्य है। स्वर्गीय महाराज श्रीमन्त यशवन्तराव सिंधिया के साथ तो आपका घर का-सा व्यवहार हो गया था। महाराज बहादुर को राज्य की आर्थिक, औद्योगिक तथा व्यावहारिक उन्नति करने का

विशेष शौक था। बिड़ला बन्धुओं को उन्होंने ग्वालियर-मुरार में कपड़ा मिल खोलने का निमन्त्रण दिया, तो सेठ साहब को उज्जैन में मिल खोलने के लिये प्रेरित किया, जिसकी आधारशिला उनके स्वर्गवास के बाद राजमाता द्वारा रखी गई थी। महाराज ने आपको इकोनामिक बोर्ड का सदस्य नियुक्त किया था। २१ नवम्बर १६३२ को जन्म दिवस के दरबार में ग्वालियर ने आपको पोशाक अता फरमाई थी। महाराज के स्वर्गवास के बाद राज्य की पच्चीस करोड़ की निधि के ट्रस्ट बोर्ड के आप ट्रस्टी नियुक्त किये गये थे। आप अकेले ही गैरसरकारी सदस्य थे। ट्रस्ट बोर्ड के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना का यहां उल्लेख करना आवश्यक है।

ट्रस्ट बोर्ड की पहिले ही वर्ष की वार्षिक बैठक में वर्षभर का जमा-खर्च प्रस्तुत हुआ। बैठक के बाद सेठ साहब ने महारानी साहिबा (राजमाता) को वस्तुस्थिति की जानकारी देने के लिये एक पत्र लिखा। उसमें आपने लिखा था कि राज्य के पच्चीस करोड़ में से पांच करोड़ डूब चुके हैं। यही स्थिति रही, तो दो चार वर्षों में ही राज्य का दिवाला पिट जायगा। पत्र ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। वह तत्कालीन वायसराय के पास पहुंचाया गया। उन्होंने सहसा ही इम्पीरियल बैंक के सबसे बड़े मैनेजर और रियासत के मन्त्री श्री अकबर अली का एक कमीशन जांच के लिये नियुक्त कर दिया। ट्रस्ट के मैनेजर श्री एफ० जी० दीनशा को सफाई पेश करने और सेठ साहब को भी अपने कथन को प्रमाणित करने की सूचना दी गई। बम्बई में ताजमहल में कमीशन की बैठक हुई। श्री एफ० जी० दीनशा जामे से बाहर हो गये। उन्होंने मानहानि का दावा दायर करने की तय्यारी की। कई नामी नामी बैरिस्टर अपने पक्ष में खड़े कर लिये। सेठ साहब विचित्र परेशानी में पड़ गये। चले थे राज्य का भला करने उलटी मुसीबत गले बंध गई। "गये थे रोजा छुड़वाने नमाज गले पड़ गई" वाला हाल हुआ। डाक्टर वारनोक के आपरेशन के घाव अभी भरे भी नहीं थे कि आपको अपनी मान-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये एकाएक बम्बई जाना पड़ गया। कमीशन के सामने आपने सारे कागज-पत्रों की छानबीन करके साढ़े पांच करोड़ के डूबने का हिसाब पेश कर दिया। आपकी बात सत्य प्रमाणित हुई। श्री अकबर अली ने वहां कमीशन में बैठे हुये ही आपके प्रति कृतज्ञता प्रगट की और सर्वत्र यह स्वीकार किया गया कि आपने ग्वालियर राज्य की रक्षा कर ली। महारानी साहिबा का आपके प्रति विश्वास दुगना हो गया और वर्तमान युवा महाराज की श्रद्धा आपके प्रति और अधिक दृढ़ हो गई। आपके परामर्श पर ही रुपये का विनियोग किया गया। कई करोड़ का लाभ हुआ।

स्वर्गीय महाराज श्रीमन्त माधवराज सिंधिया के साथ आपके सम्बन्ध कितने गहरे थे, इसको प्रगट करने वाली दो और घटनाओं का यहां देना अप्रासंगिक न होगा। सन् १६२४ की बात है कि महाराज साहब और आपमें किसी बात पर एक-एक कौड़ी की शर्त लग गई। महाराज शर्त जीत गये। सेठ साहब कौड़ी भेजना भूल गये, तो महाराज साहब ने भेजने की याद दिलाई। सेठ साहब ने स्वर्ण-मण्डित और हीरा-मोती-पन्ना जड़ित एक सुन्दर कौड़ी तय्यार करवा कर महाराज को भेजी। सेठ साहब ने साधारण कौड़ी का भेजना अपनी और महाराज साहब की शान के प्रतिकूल समझा। इस पर माधोविलास शिवपुरी से २१ जुलाई १६२४ को महाराज ने सेठ साहब को एक पत्र लिखा कि "आपके १७ जुलाई के कृपा पत्र के लिये धन्यवाद है। मुझे तो सादी और सीधी कौड़ी चाहिये। सोने से मण्डित और कीमती जवाहर से जड़ित नहीं। उसको रजिस्टर्ड डाक से भेज दीजिये। इसके लिये मैं आपका कृतज्ञ होऊंगा। मुझे आशा है कि आप स्वस्थ-मगन हैं।" इस पत्र के बाद सादी कौड़ी भेजी गई, तब महाराज ने जय विलास ग्वालियर से १० अगस्त को दूसरे पत्र में लिखा कि "मेरी जीती हुई बाजी की कौड़ी भेजने के लिये मैं आपका आभारी हूं। सोने की कौड़ी मैं लौटा रहा हूँ। मुझे आशा है यह आपके पास सुरक्षित पहुँच जायेगी। इसकी पहुँच की कृपापूर्वक सूचना दें। आप स्वस्थ होंगे।" अंग्रेजी में दोनों पत्र निम्न प्रकार हैं:—

(१)

Madho Vilas
Shivapuri 21st July, 1924.

Dear Sir Saheb,

I thank you very much for your kind letter of 17th July.

I want pure and simple' conrie and not covered with gold or expensive stones. Please send it by registered post for which I shall be grateful to you.

I hope you are keeping well.

Your Sincerely
M. Scindia

(२)

Jai Vilas,
Gwalior 10th August 1924

Dear Sir Saheb,

I am grateful to you for sending me the promised winning of the bate. I have returned the gold one, which I hope will reach you safely and which kindly acknowledge.

I hope you are well.

Your Sincerely
M. Scindia

इससे भी अधिक मनोरंजक एक और घटना है। उज्जैन में सिंहस्थ का मेला था। महाराज साहब स्वयं सारी व्यवस्था का निरीक्षण करने के लिये पधारे। सेठ साहब को भी याद किया गया। आप शाम के समय मोटर से आते और रात को लौट जाते। एक दिन महाराज साहब ने पूछा कि आपके गले के कण्ठे की कीमत क्या होगी? आपने कहा कि तीन लाख से कम तो नहीं है। सेठ साहब के बिदा हो जाने के बाद महाराज साहब ने अपने दो-चार साथियों को बुलाया और उनसे कहा कि कल रास्ते में सेठ साहब का कण्ठा वगैरः लूटना चाहिये और चौबीस घण्टे परेशान करने के बाद लौटा देना चाहिये। सेठजी को लूटने की सारी तैयारी कर ली गई। बनावटी दाढ़ी-मूछ का सामान भी जुटा लिया गया। दूसरे दिन रात को लौटते हुये सेठजी की मोटर पर डाका डालने की निश्चित योजना बना ली गई। दूसरे दिन सेठ साहब और भी अधिक कीमती कण्ठा पहन कर आये। महाराज साहब ने फिर पूछा कि उसकी क्या कीमत होगी? सेठ साहब ने उत्तर दिया कि छः सात लाख के बीच होगी। महाराज ने इस पर कहा कि आप इतने कीमती आभूषण व कपड़े पहनकर रात को यहां से अकेले मोटर पर लौटते हैं। मेरी सीमा में तो मेले के कारण पुलिस व फौज का भी पहरा है; किन्तु सिप्रा नदी के पार इन्दौर की सीमा पर कोई लूट-पाट हो जाय, तो उसका आपके पास क्या प्रबन्ध है? सेठ साहब ने सहसा ही बड़ी दृढ़ता से कहा कि इसका मैंने पक्का प्रबन्ध किया हुआ है। बन्दूक और रिवाल्वर वाले दो आदमी मेरे साथ मोटर पर सदैव रहते हैं। उनको यह आदेश है कि रात को मोटर के पास आकर कोई जरा सी भी गड़बड़ करे, तो उसको तुरन्त गोली से उड़ा दिया जाय। बाद में जो होगा, देख लिया जायगा। इस पर महाराज बोले कि हमने तो आज रात आपको लूटने की योजना बनाई थी, तो हम भी गोली से उड़ा दिये जाते। सेठ साहब ने कहा कि हां,

ऐसा ही होता। विनोदपूर्ण वातावरण में लूटने के षड्यन्त्र का भेद महाराज ने स्वयं ही खोल दिया। संभावित अनर्थकारी दुर्घटना विनोद में परिणत हो गई।

वर्तमान महाराज श्रीमन्त जियाजीराव सिंधिया सेठ साहब के प्रति स्नेह से अधिक श्रद्धा रखते हैं और आपको 'काका' कह कर आपका सम्मान करते हैं। पीछे सन् १६४१ में, जब सेठ साहब बम्बई में अत्यन्त रुग्ण थे और आपको औषधोपचार के लिये विदेश ले जाने का आग्रह किया जा रहा था, तब श्रीमन्त साहब स्वयं वही आग्रह करने के लिये बम्बई पधारे थे। श्रीमन्त ने इस ग्रन्थ के लिये सेठ साहब के सम्बन्ध में जो दो शब्द लिख भेजने की कृपा की है, उनसे भी आपके प्रति उनका आदर एवं श्रद्धा ही व्यक्त होती है। सेठ साहब भी स्वर्गीय महाराज के समान वर्तमान महाराज के प्रति भी वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करते हैं। पीछे सम्राट विक्रमादि य का द्विसहस्राब्दि-महोत्सव की योजना होने पर आपने पचास हजार रुपया उसके लिये प्रदान किया था। उसके लिये २६ अगस्त १६४३ को पद्म विलास-पूना से एक पत्र लिख कर महाराज साहब ने आपके और भैया-साहब श्री राजकुमारसिंहजी के प्रति कृतज्ञता प्रगट की थी।

बीकानेर में

बीकानेर के स्वर्गीय महाराज सर गंगासिंहजी बहादुर भी सेठ साहब का स्वर्गीय श्रीमन्त माधवरावजी के ही समान सम्मान करते थे। उनके साथ भी आपका घर का-सा व्यवहार था। आपको उन्होंने कई बार बीकानेर पधारने का आग्रह किया था। सन् १६२० में आप पहिली बार बीकानेर गये थे। तब वहाँ से लौट कर आपने महाराज बहादुर को पांच हजार रुपये किसी सार्वजनिक कार्य में व्यय करने के लिये भेजे थे। बाईजी साहिबा के शुभ विवाह पर भी आपको आग्रहपूर्वक बुलाया गया था। उस समय तो सेठ साहब बीकानेर न जा सके, किन्तु सम्बत् १६८६ में गंगा नहर के उद्घाटन के समारम्भ में सेठ साहब सम्मिलित होने के लिये बीकानेर गये थे। महाराज स्वयं स्टेशन पर महाराजकुमार तथा अन्य उच्च अधिकारियों के साथ स्वागत करने के लिये उपस्थित हुये थे। रामपुर, डूंगरपुर, दतिया, नवानगर, झालावाड़, राजपिपल्या तथा नरसिंहगढ़ के नरेशों के अलावा सर अप्पाजीराव शितोले, सर रहमतुल्ला खां और सर रामास्वामी अय्यर सरीखे राजनीतिज्ञों की उपस्थिति में महाराज बहादुर ने जो भोज ६ मार्च की शाम को दिया, उसमें सेठ साहब के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि "सेठ हुकमचन्दजी हमारे खास मित्रों में से हैं। भारत के ये एक बड़े व्यापारी हैं। हमारा इसका व्यवहार बहुत दिनों से चला आ रहा है। राजाओं का-सा इनका भी काम है। इन्होंने सन् १६२० में बीकानेर में किसी पब्लिक काम में खर्च करने के लिये पांच हजार रुपये भिजवाये थे। ब्याजसहित ये रुपये पब्लिक थियेटर बनाने में लगाये गये हैं। सेठ साहब को इसके लिये धन्यवाद है।"

सेठ साहब जब विदा होने के लिये महाराज बहादुर के यहां गये, तब उन्होंने आपसे अपने साथ दिल्ली चलने का अनुरोध किया अपनी स्पेशल ट्रेन से आपको वे दिल्ली लाये और बीकानेर भवन में अपने अतिथि के रूप में आपको ठहराया। दिल्ली से आपने १४०० रुपये में इन्दौर जाने-आने के लिये हवाई जहाज किराये पर किया। उसमें आप इन्दौर पहुंचे, तो हजारों की भीड़ हवाई जहाज की साहसपूर्ण यात्रा से सकुशल पहुंचने पर आपके स्वागत के लिये उपस्थित थी। लौटती यात्रा में आपने भैया साहब राजकुमारसिंहजी और सेठ हीरालालजी साहब को उसी हवाई जहाज से दिल्ली भेजा। सन् १६३७ में अपनी राजगद्दी के हीरक-जयन्ती उत्सव पर भी सेठ साहब को महाराज बहादुर ने बड़े ही आग्रह से निमन्त्रित किया था। तब कई दिनों तक आपको अपना अतिथि बनाये रख कर लौटने दिया था।

अन्य राज्यों में

मैसूर राज्य में श्री गोमटस्वामी महाराज के महामस्तकाभिषेक के महोत्सव पर सेठ साहब सम्वत् १९८२ और १९९६ में वहां गये थे। इसकी चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। इस महोत्सव के व्यय का स्थायी प्रबन्ध सेठ साहब ने कलशों की बोली बोल कर किया था। तब मैसूर नरेश युवराज के साथ पधारे थे और तभी से सेठ साहब का आपके साथ स्नेह-सम्बन्ध कायम हुआ था। दशहरा के अवसर पर महाराज आपको अवश्य ही निमन्त्रित किया करते थे।

आपको अनेक राज्यों में छोटा-बड़ा सम्मान प्राप्त होने के अनेकों अवसर आये। सम्वत् २०००के कार्तिक मास में रतलाम में सेठ डामरजी गिरधारीजी ने अष्टान्हिका महोत्सव का आयोजन किया था। जैनियों की ओर से आपके सभापतित्व में महाराज साहब को मानपत्र दिया गया था। मानपत्र के बाद महाराज सेठ साहब को अपने साथ ही मोटर पर लिवा ले गये। शहर में २५-३० स्थानों में दुग्धपान हुआ और दो घण्टों तक महल में अनेक विषयों पर चर्चा हुई। उसके बाद आपको रञ्जन विलास महल के 'गेस्ट हाउस' में ठहराया गया। अलवर, उदयपुर, धार, बड़वानी, झालावाड़, देवास, झाबुआ, सीतामऊ, सैलाना, नरसिंहगढ़, राजगढ़, बांसवाड़ा, डूंगरगढ़ आदि दर्जनों राज्यों में आपका विशेष सम्मान हुआ और जहां भी कहीं आप गये, आप उनके विशेष मेहमान हुये और पूर्ण प्रतिष्ठा के साथ वहां ठहराये गये।

आपके सुयोग्य पुत्र भैया साहब श्री राजकुमारसिंहजी ने भी आपके ही समान मान-प्रतिष्ठा प्राप्त की है। भारत सरकार ने आपको 'रायबहादुर' की उपाधि प्रदान की, तो इन्दौर राज्य ने 'मशीर बहादुर' 'राज्य भूषण' की उपाधि से आपको सम्मानित किया। सेठ हीरालालजी काशलीवाल भी इसी प्रकार विविध उपाधियों से सम्मानित हुये। अंग्रेजी सरकार ने आपको भी सम्वत् १९८६ में ही 'रायबहादुर' की उपाधि प्रदान की, सेना में 'कैप्टेन' का पद भी दिया और इन्दौर सरकार ने 'राज्यभूषण' तथा 'राज्यरत्न' की उपाधि देकर आपको सम्मानित किया। जनता ने भी आप दोनों का ही यथायोग्य सम्मान किया है।

जनता में

सरकारी क्षेत्रों और देशी राज्यों से भी अधिक आपका सम्मान जनता में हुआ। स्थान-स्थान पर आपको जो मानपत्र प्राप्त हुए हैं, उनका संग्रह किया जाय, तो एक बड़ी पोथी बन जाय। इन मानपत्रों के साथ प्राप्त हुए विविध प्रकार के सोने-चांदी के कास्केट आदि शीशमहल में कई अलमारियों में रखे गये हैं, जिनको कि दर्शक बहुत कौतुक के साथ देखते हैं। कुछ मानपत्र यथास्थान दिये जायेंगे। ये मानपत्र इतने व्यापक क्षेत्रों से दिये गये हैं, जितना विस्तृत सेठ साहब का सार्वजनिक जीवन और कार्यक्षेत्र रहा है। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद, कानपुर, बनारस, पटना, जयपुर तथा अजमेर आदि उत्तर भारतीय नगरों से ही नहीं, किन्तु मैसूर, मद्रास, हैदराबाद, शोलापुर, पूना आदि दक्षिण के नगरों और प्रायः समस्त तीर्थस्थानों से आपको ये मानपत्र विविध व्यापारी, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं की ओर से दिये गये हैं। मानपत्रों में आपके लिये प्रयुक्त शब्दों से ही आपकी लोकप्रियता का परिचय मिलता है। उनमें आपके लिये वैश्यकुलतिलक, धनकुबेर, धर्मपरायण, समाजशिरोमणि, श्रेष्ठीवर्य, शिक्षाप्रेमी, दानवीर, धर्मवीर, कर्मवीर, वणिकवर, जैनजातिसूर्य, समाजसेवापरायण, व्यापारशिरोमणि, धनिक प्रवर, जिनेन्द्रभक्त तथा उदाराशय आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैन समाज, जैनधर्म, जैन मन्दिरों और जैन तीर्थों की आपने जो अनुपम सेवा की है, उसके लिये जैन समाज ने आपको "जैन दिवाकर", "जैन सम्राट्", "दानवीर", 'तीर्थभक्तशिरोमणि' तथा 'श्रीमन्त' आदि पदवियों से विभूषित किया है। भैय्यासाहब राजकुमारसिंहजी और सेठ हीरालालजी काशलीवाल को भी दानवीर,

सर सेठ साहब श्रीमंत ग्वालियर महाराज के साथ हर्षमय मुद्रा में।

[इन्दौर नरेश श्री यशवंतरावजी होलकर का इत्रपान करते हुये सेठ साहब ।
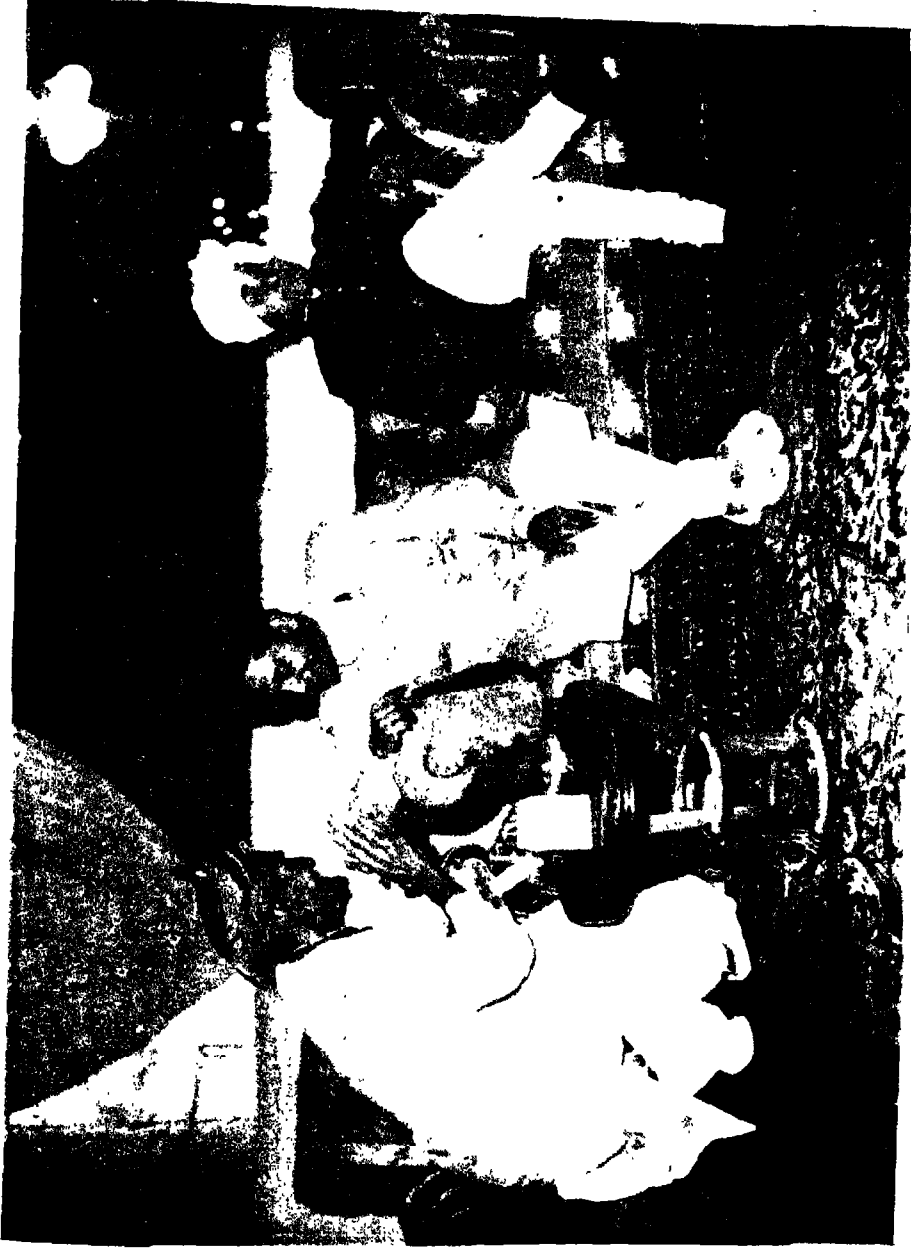
श्रीमंत महाराज ग्वालियर और श्रीमंत महाराज रतलाम के साथ सेठ साहब ।

भैयासाहब राजकुमारसिंहजी के सुपुत्र श्री राजाबहादुरसिंहजी के शुभ विवाह पर भोज के समय इन्दौर नरेश श्री यशवंतसिंहजी और सेठ साहब ।

सेठ साहब मैसूर के महाराज श्रीमंत श्रीकृष्ण राजेन्द्र वाडियर बहादुर जी.सी.एस.आई.जी.बी.ई. को २६ फरवरी १६३६ को मानपत्र भेंट कर रहे हैं।

सेठ साहब श्री इन्दौर नरेश के साथ। भैयासाहब राजकुमारसिंहजी पीछे खड़े हैं।

जैनरत्न आदि उपाधियों से सम्मानित किया गया है। सेठानी साहिबा को भी 'दानशीला' की सम्मानास्पद उपाधि प्रदान की गई है। यह असाधारण लोक सम्मान कितने परिवारों को प्राप्त करने का सौभाग्य मिल सका है ?

राजधानी दिल्ली में

भारत की राजधानी दिल्ली में आपका एक बार से अधिक बार जो भव्य स्वागत व सम्मान हुआ, वह उल्लेखनीय है। सम्वत १९९७ में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा की प्रबन्धकारिणी की बैठक के लिये जब आप दिल्ली पधारे थे, तब चार घोड़ों की बग्घी पर आपका शानदार जलूस निकाला गया था, जिसकी शोभा दर्शनीय थी। आपको एक भोज भी दिया गया था। श्रावण सम्वत् २००१ में भी आप दिल्ली पधारे थे, तब भी आपके स्वागत का आयोजन किया गया था। अपने पौत्र कुमार महाराजकुमारसिंह के शुभ विवाह के लिये जब आप दिल्ली पधारे थे, तब बरात का जलूस इस शान के साथ निकला था कि चारों ही ओर उसकी धूम मच गई थी। इसी प्रकार कानपुर में भी चार घोड़ों की बग्घी पर आपका शानदार जलूस निकाला गया था। शहर में उस दिन हड़ताल होने पर भी जलूस की शान में अन्तर न आया था। नागरिकों की ओर से भोज भी दिया गया था।

अन्य नगरों मे

मथुराजी में चौरासी सिद्धक्षेत्र के मन्दिर के सम्बन्ध में वहां की पंचायत और राजा लक्ष्मणदासजी साहब के घराने में वर्षों से मुकदमा चल रहा था। अन्त में श्रावण २००१ में दोनों पक्षों ने सेठ साहब की प्रेरणा पर राज्यभूषण, दानवीर, रायबहादुर सेठ हीरालालजी साहब को पंच नियुक्त कर दिया और मुकदमेबाजी समाप्त हो कर दोनों पक्षों ने आपका निर्णय स्वीकार कर लिया। मथुरा में शास्त्रार्थ संघ के भवन-निर्माण में आपका भी मुख्य हिस्सा है। इस अवसर पर ७ अगस्त १९४४ को सेठ साहब का विशेष सम्मान किया गया और आपको मान-पत्र भी समर्पित किया गया।

बम्बई, कलकत्ता और नागपुर आदि की अनेक व्यापारी संस्थाओं ने आपको अनेकों मान-पत्र विशेष रूप से भेंट किये हैं। ये मानपत्र हिन्दी के अतिरिक्त मराठी तथा गुजराती आदि में भी दिये गये हैं। जैन तीर्थों में और सामाजिक संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशनों मे आपका जो सम्मान हुआ है, वह तो 'भूतो न भावी' है।

इन्दौर के आप 'बेताज के बादशाह' ही हैं। अपनी लोकप्रियता से आपने इन्दौर के छोटे-बड़े सभी नागरिकों, सभी जाति, धर्म तथा सम्प्रदाय के लोगों, धनी निर्धन आदि सभी वर्गों तथा श्रेणियों के जन-जन के हृदय में अपना स्थान बनाया हुआ है। अपने शहर की जनता का इतना स्नेह, आदर व श्रद्धा इतनी सहज में किसी असाधारण व्यक्ति को ही प्राप्त होती है। आपको वह कितनी प्रचुर मात्रा में प्राप्त है, इसका परिचय सम्वत् २००४ में सिद्धचक्रविधान और सम्वत २००६ में आपकी आरोग्य कामना के लिये हुये महोत्सवों से भी मिलता है। 'सिद्धचक्रविधान' की चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। आरोग्य कामना समारम्भ का विवरण यहां ही देना समुचित इसलिये है कि उससे आपके प्रति जनता के स्नेह, आदर तथा श्रद्धा का अच्छा परिचय मिलता है।

आरोग्य कामना समारम्भ

यह समारम्भ आपके प्रति जनता की श्रद्धा का प्रतीक है। सन् १९४८ के फरवरी मार्च मास में अकस्मात ही सेठ साहब के आमाशय ने काम करना बन्द कर दिया। न तो भोजन पेट में नीचे उतरता और न उलटी या डकार से बाहर ही निकलता था, बल्कि भीतर ही भीतर बहुत बढ़ जाता। एक सेर का वजन तीन सेर हो जाता था। इससे होने वाली वेदना असह्य हो जाती। आमाशय में नली डालकर सारा भोजन बाहर निकाल दिया जाता। दो माह के अन्तर से ऐसे तीन-चार दौरे आये। इन्दौर में किया गया सब प्रकार का उपचार जब लाभप्रद न हुआ, तब आपको अक्तूबर १९४८ में विशेष हवाई जहाज से सपरिवार बम्बई ले जाया

गया। वहां अनेक ऐक्सरे फोटो लिये गये, मल-मूत्र की परीक्षा की गई और खून भी चढ़ाया गया। सुप्रसिद्ध सर्जनों, चिकित्सा विशारदों और भिन्न भिन्न रोगों के विशेषज्ञों का एक बोर्ड बिठा कर विशेष जाँच-पड़ताल की गई। सम्मति यह हुई कि भीतर कैंसर आदि सरीखा कोई विकार न हो कर केवल वृद्धावस्था के कारण आमाशय की थैली कमजोर पड़ गई है। वह अधिक जोर पड़ने से रुक जाती है। औषधोपचार का एक क्रम बना दिया गया और आप इन्दौर लौट आये। छः मास तक वह क्रम चला परन्तु दौरों का क्रम बढ़ गया। कभी तो छः-छः सात-सात दिन में ही दौरा आने लगता। भोजन हर तीसरे घण्टे में नियमित तोल कर दिया जाने लगा। सेठ साहब पर इसका बहुत ही विपरीत असर पड़ा। शरीर निर्बल पड़ गया, वजन घट गया और हाथ-पैर चेहरे पर सूजन आ गई। बम्बई में डाक्टर बुलाये गये और उनकी राय से आपको फिर ३० मार्च १९४९ को बम्बई ले जाया गया। चार-चार पांच-पांच दिन में खून चढ़ाया जाने लगा। कुछ शान्ति आई और सूजन जाती रही। हर प्रकार की परीक्षा की गई। विशेषज्ञों से परामर्श किया गया। ऐक्सरे फोटो भेज कर अमेरिका, फ्रांस तथा इंगलैण्ड के डाक्टरों की भी राय मंगाई गई और उनकी हिदायत के अनुसार भी फोटो भेजे गये। धीरे-धीरे सुधार शुरू हुआ। वजन बढ़ने लगा। भोजन की मात्रा भी बढ़ने लगी। शरीर में स्फूर्ति दीख पड़ने लगी। जो वजन २४० पौण्ड से घटते घटते केवल ११० पौण्ड रह गया था, वह १२४ पौण्ड हो गया। विलायत के डाक्टरों की राय हुई कि एक छोटा सा आपरेशन करके पेट को सदा के लिये ठीक किया जा सकता है। उन डाक्टरों को विलायत से बुलवाया गया।

सेठ साहब यद्यपि स्वस्थ होकर प्रति दिन दुपहर को दो घण्टा धर्म-ध्यान, शास्त्र स्वाध्याय-चर्चा आदि में बिताने लगे थे, किन्तु घर वालों को सन्तोष नहीं था। आपको औषधोपचार के लिये विलायत ले जाने की योजना बना ली गई। सेठानी साहिबा, भैय्यासाहब और अन्य सगे-सम्बन्धी भी धरना दे कर बैठ गये। ग्वालियर से महाराजा और महारानी साहिबा भी आगईं। परन्तु सेठ साहब ने किसी की भी न मानी। आपने साफ कह दिया कि "मुझे तो इन्दौर में ही मरना है। मैं कहीं भी और जाने को तय्यार नहीं हूं।" आप इन्दौर लौट आये और यहां आकर औषधोपचार भी बन्द कर दिया। दृढ़ संकल्प और आत्म विश्वास की अदम्य भावना काम कर गई। आप दिन प्रति दिन स्वस्थ होते चले गये।

बीमारी ने इतना भीषण रूप धारण कर लिया था कि चारों ही ओर चिन्ता व्याप गई थी। आरोग्य कामना के आठ दिन का कार्यक्रम बनाया गया। इन्दौर में राज्यभूषण-'रावराजा' जैनरत्न लैफ्टिनेण्ट कर्नल,श्रीमन्त सेठ हीरालालजी कासलीवाल के सभापतित्व और समाजसेवी श्री हुकमचन्दजी पाटनी बी० ए० एल० एल० बी०, जैनरत्न श्री गुलाबचन्दजी टोंग्या और वयोवृद्ध श्री सेठ भंवरलालजी सेठी के संयोजकत्व में 'श्रीमन्त सेठ हुकमचन्दजी आरोग्य कामना समिति' बनाई गई। छओं गोटों और समस्त दिगम्बर समाज के प्रतिनिधि इसमें लिये गये। इन्दौर में वैसाख वदी १ से अक्षयतृतीया तदनुसार रविवार २४ अप्रैल १९४९ से आठ दिन तक आरोग्य कामना समारम्भ और समस्त भारतवर्ष में वैसाख सुदी ३ अक्षय तृतीया को "श्री हुकमचन्द आरोग्य कामना दिवस मनाने का निश्चय किया गया। समारम्भ के सफल आयोजन के लिये पूजन विधान, शान्तिजाप्य विधान, पण्डाल, स्वयं सेवक, प्रचार तथा कार्यक्रम आदि के लिये अनेक उपसमितियों का गठन कर लिया गया और अलग अलग उनके संयोजक नियुक्त कर दिये गये। जिन सहस्र नामस्तल विधान मंडवा सौ-सौ मन्त्रों से पूजन किया गया, सवा लाख का जाप शान्ति के लिये किया गया। प्रत्येक द्रव्य चढ़ा कर इन्दौर के तुकोजीराव अस्पताल, एडवर्ड अस्पताल, मिशन अस्पताल, और सियागंज के जैन औषधालय आदि प्राय: समस्त औषधालयों के असहाय रोगियों को पथ्य,दूध व मौसम्मी आदि वितरण किये गये। अक्षय तृतीया को असहाय रोगियों व अपाहज

लोगों को मिठाई बांटी गई। दीतवारिया बाजार में एक विशेष मण्डप का निर्माण किया गया। मथुरा, सागर, दिल्ली आदि से विद्वान पण्डित और संगीतज्ञ बुलाये गये। महिला मण्डल के तत्त्वावधान में महिलाओं की सभा श्रीमती कमलाबाई किबे के सभापतित्व में हुई। जलयात्रा का दृश्य तो देखते ही बनता था। १०८ कलशों की बोली में तो होड़ ही लग गई। रथयात्रा का जलूस भी निकाला गया।

समारम्भ के अन्तिम दिन एक मई की रात्रि को ६ बजे श्रीमन्त महाराज तुकोजीराव होलकर के सभापतित्व में बीस हजार नागरिकों की उपस्थिति में विराट सभा हुई। आरोग्य कामना के प्रस्ताव पर तत्कालीन उद्योगमन्त्री श्री मिश्रीलालजी गंगवाल, श्री देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य श्री शिवदत्तजी, शुक्ल, वाणिज्यभूषण रायबहादुर सेठ लालचन्दजी सेठी आदि के भाषण हुये। महाराज साहब ने अपने भाषण में कहा था कि "सर सेठ हुकमचन्दजी की तबीयत ठीक नहीं है,—यह जान कर मुझे बहुत चिन्ता हुई। उनसे मेरा निकट सम्बन्ध रहा है। अतएव उनकी शुभ कामना में सम्मिलित होने में मुझे परम हर्ष है। सेठजी उन महानुभावों में से हैं, जिनसे एक बार सम्पर्क हो जाने पर उसे वे कभी नहीं भूलते। यह कितना महान गुण है। मैं इस गुण की बहुत कद्र करता हूं। सेठजी के उद्योग और व्यवसाय की बुद्धि भारत में सुप्रसिद्ध है। इन्दौर नगर के उद्योग-धन्धों की उन्नति का श्रेय बहुत कुछ उन्हीं को है। अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों में भी सेठजी सहयोग देते रहे हैं। उनके दान से संचालित अनेक संस्थायें प्रजा का हित-साधन कर रही हैं। ऐसे व्यक्ति जितना अधिक हमारे साथ रहते हैं, उतना ही अधिक जनता का लाभ होता है। अतएव इस आयोजन की मैं प्रशंसा करता हूं। आपके साथ ही मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि सेठजी शीघ्र रोगमुक्त होकर हमारे बीच में आवें और सुख-शान्ति से रहकर पूर्ववत जनता का हित करते रहें।"

सारे देश में भी अक्षय तृतीया को 'श्री हुकमचन्द आरोग्य कामना दिवस' अत्यन्त श्रद्धाभक्ति के साथ मनाया गया। सर्वत्र आरोग्य कामना की गई। प्रार्थना, अभिषेक, पूजन तथा शान्ति यज्ञ का विधिवत् आयोजन किया गया। कुछ स्थानों में वैष्णव मन्दिरों में भी पूजा-पाठ किया गया।

यह देशव्यापी समारम्भ उस स्नेह, आदर तथा श्रद्धा एवं सम्मान व मान्यता का प्रतीक है, जो सेठ साहब को जनता में लोकसेवा के कारण ही प्राप्त हुई है। इन्दौर के समारम्भ में भैया साहब श्री राजकुमारसिंहजी साहब ने जो दो शब्द कहे थे, वे अपने पूज्य पिताजी के प्रति सुयोग्य पुत्र की श्रद्धा-भक्ति के सूचक हैं। इसीलिये उनको यहां देने के लोभ का संवरण किया नहीं जा सकता। आपके उन शब्दों पर जनता गद्गद् हो गई थी। आपने कहा था कि :—

"इस इन्दौर की पुण्य पवित्र माता अहिल्याबाई की गद्दी के शासन कर्त्ताओं की चार पीढ़ियों से हमारे घराने पर कृपा रहती आई है और समय समय पर हमारे कुटुम्बियों को हर प्रकार का प्रोत्साहन मिलता रहा है। श्रीमंत महाराजा साहब का तो पूर्ण स्नेह पूज्य पिताजी पर प्रारम्भ से ही रहा है। उनके द्वारा औद्योगिक तथा समाज सेवा के जितने भी साधन स्थापित हैं, उनमें श्रीमंत की पूर्ण प्रेरणा रही है और श्रीमंत ने उन कार्यों के उत्थान में समय समय पर पूर्ण सहानुभूति तथा सहायता प्रदान की है।

"आज आठ रोज से मैं अनुभव कर रहा हूँ कि इन्दौर की समाज का प्रत्येक व्यक्ति मेरे पूज्य पिताजी सर सेठ हुकमचन्दजी साहब को आरोग्य कामना के निमित्त धार्मिक समारंभ के प्रत्येक कार्यक्रम में पूर्ण लगन व उत्साह से भाग लेकर हमारे प्रति वात्सल्य भाव प्रगट कर रहा है। इस ही तरह भारतवर्ष के कई स्थानों की जैन संस्थाओं व समाज ने भी धार्मिक आयोजन कर पूज्य पिताजी के लिये मंगल कामना की है। आज इन्दौर के समस्त नागरिक महाशय भी उस ही हेतु को दृष्टि में रखकर यहां पधारे हुए हैं। जैन व जैनेतर समस्त महानुभावों

के इस वात्सल्य व प्रेम को देखकर मेरा हृदय गद्गद् हो रहा है। समझ में नहीं आता कि हम आपके इस अभूतपूर्व प्रेम का मूल्यांकन किन शब्दों में करें। हम यही कहकर संतोष मान लेते हैं कि पूज्य पिताजी व हम सब कुटुम्बीजन आपके चिरऋणी रहेंगे। परन्तु इस उपकार का सच्चा बदला अधिक से अधिक समाज सेवा करके ही चुकाया जा सकता है, यह हमारी निश्चित धारणा है।

"पूज्य पिताजी साहब की बीमारी ने हम लोगों को व्याकुल व चिंतित कर दिया था, किन्तु इन विविध आयोजनों से मुझे बल मिला है। मानव की मंगल कामना मानवी सत्ता के अन्तर्गत स्व-प्रभाव से मंगल स्थापना कर सकती है। अतएव मुझे दृढ़ विश्वास है कि इस समय अनेकों भाइयों द्वारा नियोजित स्नेहपूर्ण मंगल कामनाएं पूज्य पिताजी को अवश्यमेव स्वास्थ्य लाभ करावेंगी।

"अन्त में मेरी जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि मुझे ऐसी बुद्धि, साहस व बल दें कि मैं भी आप सब भाइयों का उस ही तरह स्नेह प्राप्त करने के योग्य बन सकूं। आशा करता हूँ कि आप मेरे प्रति पूर्ण स्नेह बनाये रखेंगे। पुनः श्रीमन्त का व आप सब महानुभावों का हृदय से आभार मानता हूं।"

इस प्रकार सरकारी क्षेत्रों और जनता दोनों ही से सेठ साहब ने जो सम्मान, मान्यता, आदर तथा श्रद्धा प्राप्त की है, वह किसी असाधारण व्यक्ति को ही प्राप्त होती है। यह सब आपकी सहृदयता, उदारता तथा लोक सेवा का ही परिणाम है।

: ९ :

महान सफल व्यक्तित्व

"मैंने कहीं कहा है कि मुझ में कई परस्पर विरोधी बातें हैं। एक रासायनिक की हैसियत से मैंने जीवन भर प्रयोग किये हैं। मुझे सबसे अधिक आनन्द अपने प्रिय शिष्यों के साथ प्रयोगशाला के कमरों में ही मिला है। आज भी यदि दिन के चार पाँच घण्टे मैं प्रयोगशाला में अपने शिष्यों के साथ बिता नहीं सकता, तो मैं समझता हूँ कि अपना वह दिन मैंने यों ही नष्ट कर दिया। फिर भी मैं देश में नये उद्योग-धन्धों को शुरू करने वालों में अग्रणी माना जाता हूँ। प्राणिशास्त्र के विद्यार्थी खूब भली प्रकार जानते हैं कि बंगाल का शाही शेर—खुलना प्रदेश का मेरा निकट का पड़ोसी—और सामान्य बिल्ली एक ही परिवार के माने जाते हैं। शेर बहुत बड़ी बिल्ली कहा जाता है। इसी तरह मुझ में और सर हुकमचन्द में भी एक रिश्ता है। अन्तर केवल इतना ही है कि सर हुकमचन्द शाही शेर हैं और मैं एक घरेलू बिल्ली का बच्चा हूँ।"

ये शब्द १९३९ के जनवरी मास में भारत के सुप्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विज्ञानाचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र राय ने इन्दौर में स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये कहे थे। इनसे सेठ साहब के महान और सफल व्यक्तित्व पर ऐसा प्रकाश पड़ता है कि उसके बारे में कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व जिन गुणों से बनता है, वे सेठ साहब में कूट-कूट कर भरे हुये हैं। जीवन की सरलता सादगी, सहृदयता, मिलनसारिता, उदारता, परोपकार वृत्ति अथवा पराई पीर में अनुभूति तथा समुचित सहायता करने की भावना आदि विशिष्ट गुणों की तो मानो आप साक्षात् प्रतिमा ही हैं। एक बार भी जो आपके सम्पर्क में आ जाता है, वह आपके सहृदय व्यवहार से सदा के लिये ही प्रभावित हो जाता है। छोटे-बड़े सभी के प्रति आपका सहज स्नेह इतना आदरमय होता है कि वह आपका अपना ही बन जाता है। घर के छोटे नौकरों के साथ भी आप नौकरों का-सा व्यवहार नहीं करते। 'आप' 'साहब' या 'भैया' के बिना कोई वाक्य आपके मुंह से कभी निकलता सुना नहीं गया। किसी को कभी भी अपने यहां से असन्तुष्ट होकर आपने जाने नहीं दिया। किसी मामले में यदि कभी आप पंच बनाये गये, तो उसको निपटाये बिना और आपस का झगड़ा मिटाये बिना आप उठना जानते ही नहीं। पंचायत में भी आपका प्रयत्न सबको आपस में मिलाने का ही रहता है और जाजम को तब तक नहीं छोड़ते, जब तक कि सब एकमत नहीं हो जाते। अपने शान्त स्वभाव से सारे विरोध पर विजय प्राप्त करने में भी आप अत्यन्त चतुर हैं। आपस के विरोध को मिटाने के लिये समय आने पर अपनी पगड़ी तक उतार कर दूसरों के पैर में रखने में आप संकोच नहीं करते। दिगम्बर जैन समाज के वर्षों के आपस के झगड़ों को आपने कितने ही स्थानों पर सफलता के साथ निपटाया है और उसमें एकता कायम करने के लिये कुछ भी उठा नहीं रखा है। यह सफलता भी आपके विशिष्ट व्यक्तित्व की ही सूचक है। आपका महान् व्यक्तित्व इन्दौर की विभूति, मालव अथवा मध्यभारत का भूषण और जैन समाज के सौभाग्य का तो सिंदूर ही है देश

के व्यापारी जगत् में आपका व्यक्तित्व देदीप्यमान नक्षत्र है, तो स्वदेशी उद्योग-धन्धों में पहल करने के कारण औद्योगिक क्षेत्र के लिये उसको अपनी सोलह कलाओं के साथ चमकने वाला चन्द्र कह सकते हैं। जीवन की इतनी ऊंचाई पर उठ जाने के बाद भी 'अभिमान' आपको कहीं छू भी नहीं गया है। निरभिमान स्वभाव के कारण ही हृदय इतना स्वच्छ एवं निर्मल बन गया है कि उसमें ईर्ष्या, द्वेष, कलह, वैमनस्य, राग, हिंसा अथवा प्रति-हिंसा के लिये कुछ भी स्थान बाकी नहीं रहा है। न आपको किसी से द्वेष दीख पड़ता है और न कोई आपका द्वेषी ही जान पड़ता है। 'सर्व प्रिय' और 'अजातशत्रु' दोनों शब्द आप पर यथार्थ बैठते हैं। व्यापारिक प्रति-द्वन्द्विता के कारण भी आपने किसी को अपना दुश्मन नहीं बनने दिया है। स्वयं हानि उठा कर भी दूसरों को प्रसन्न रखना या करना अपना स्वभाव-सा बन गया है। नौकरों तक पर कभी कुछ जुर्माना किया जाता है, तो उससे अधिक उनको पुरस्कार मिल जाता है और जुर्माने की रकम भी नौकरों में ही बांट दी जाती है। अपनी भूल को आप अबोध बालक की तरह स्वीकार कर लेते हैं और साधारण से साधारण व्यक्ति के सामने भी उसे कह डालने में संकोच नहीं करते। सबेरे कोई भूल हो भी गई तो शाम तक उसका निराकरण हो ही जायगा। क्षमा और पश्चात्ताप भी आपके स्वभाव के अंग बन गये हैं। भूल का खाता उस दिन का उसी दिन चुका दिया जाता है। उधार में किसी भी भूल को रखना आप जानते नहीं। इसीलिये दिल में किसी बात को रखना और भीतर ही भीतर किसी के लिये जहर घोलना भी आप नहीं जानते। कभी तात्कालिक आवेश में क्षणिक क्रोध आ गया और किसी को आपने कुछ कह भी दिया, तो दूसरे ही क्षण में क्रोध शान्त हो जायगा और कही हुई बात आप तुरन्त वापिस ले लेंगे। अपराध स्वीकार करते ही मामला समाप्त कर दिया जाता है और बड़े से बड़ा अपराध भी क्षमा कर दिया जाता है। मन में कषाय का जरा-सा भी अंश रह नहीं पाता और परिणामों में वैर-विरोध की सन्तति रहती नहीं। कषायों में बांधी हुई परिपाटी-सम्बन्धी कमठ पार्श्वनाथ के भव की और काल-सम्बर प्रद्युम्नकुमारजी की कथाओं को अनेक बार पढ़ते हुये अपने जीवन को तदनुकूल बना लेने के कारण किसी के भी प्रति वैर विरोध या कषाय आपके चित्त में रह नहीं सकता।

ऐसा सरल, शुद्ध, पवित्र और उदार हृदय पाकर भी आपने मानव को परखने की जो विलक्षण प्रतिभा प्राप्त की है, वह अत्यन्त अद्भुत और विस्मयजनक है। आप जैसा विश्वासी हृदय किसी पर भी अविश्वास नहीं कर सकता। फिर भी आपको कोई ठग नहीं सकता। किसी पर भी ठगने का सन्देह हो गया, तो उसको भी मान-सम्मान के साथ ही विदा कर दिया। अधिक ठगने का अवसर नहीं आने दिया। उदारता के साथ दान देने की प्रवृत्ति होने पर भी आपके दान का दुरुपयोग कर सकना प्रायः असम्भव ही है। कई बार ऐसे अवसर आये हैं कि किसी काम के लिये स्वीकृति दे देने पर भी आपको उसे केवल इसलिये अस्वीकार कर देना पड़ा है कि सामने वाले की सचाई पर आपको सन्देह या आशंका हो गई। इसे गुण कहा जाय या अवगुण किन्तु इसी के कारण आपको धोखा दे सकना सम्भव नहीं है। व्यापार में भी आपने बहुत ही कम धोखा खाया है और अपनी रकम के डूबने का अवसर प्रायः नहीं आने दिया है। रुपये-पैसे के मामले में मिथ्या व्यवहार आपके लिये असह्य है। ऐसे मामलों को पुलिस में देने में आप जरासा भी संकोच नहीं करते। जीवन में नैतिकता को भी आप बहुत ऊंचा स्थान देते हैं। इसीलिये आपका विश्वास प्राप्त करना जितना कठिन है, उससे भी अधिक कठिन है प्राप्त किये हुये विश्वास का खोना। विश्वास के भी आप बहुत बड़े धनी हैं। बम्बई के आपके किसी आदमी की आप पर अनेकों शिकायतें की गईं और बम्बई जाने पर उसके विरुद्ध आपको घेर लिया गया। आपने सहसा ही कह दिया कि मुझे लाखों की आमदनी देने वाले पर मैं कैसे अविश्वास करूं? स्वयं जाँच-पड़ताल या अनुभव किये बिना किसी की शिकायत करने, बहकाने या उल्टा सीधा कहने पर आप कभी भी भरोसा नहीं करते

परन्तु जब जान लिया कि किसी में कोई खोट है, तो फिर उसको अलग करने में एक मिनिट का भी समय नहीं लगायेंगे। वर्षों का घरोबा या घनिष्ठ सम्बन्ध तब एक मिनिट में टूट जायगा। विश्वास की क्रिया जितनी प्रबल होती है, अविश्वास की प्रतिक्रिया का भी उतना ही प्रबल होना स्वाभाविक है।

आपके स्वभाव में एक बड़ी विशेषता तुरन्त ही काम को निपटाने की है। कुछ करने की मन में आ गई, तो खर्च की परवाह नहीं की जायगी, वह काम उसी समय किया जायगा; भले ही फोन, तार, मोटर आदि पर कुछ भी खर्च क्यों न हो जाय? कभी उस पर दो-तीन पैसे का कार्ड भी खर्च नहीं किया जायगा, तो कभी पैसा पानी की तरह बहा दिया जायगा। आपके स्वभाव की इस विशेषता को बताने वाली दो घटनाएं यहां देनी आवश्यक हैं। एक बार आप भोजन करने बैठे, तो थाली में कैरी या आम का आचार नहीं परोसा गया। पूछने पर पता चला कि वह समाप्त हो चुका है। भोजन पर बैठे हुये वहीं पर फोन लाया गया और बम्बई को फोन मिलाया गया। मुनीमजी से कहा गया कि पता किया जाय कि क्या कहीं कैरी कच्चा आम मिल सकता है? आम का मौसम निकल चुका था। क्रफोर्ड मार्केट में आम के एक व्यापारी के पास डेढ़ सौ कैरियां मिलने का समाचार फोन पर ही दिया गया। हुकम हुआ कि खरीद कर आदमी के साथ भेज दी जांय। दूसरे दिन सवेरे ही आदमी पहुँच गया। कैरी काटी गई, आचार डाला गया और सवेरे ही खाने में परोसा गया। दो बार का बम्बई के ट्रंक कॉल का चार्ज, आदमी के आने-जाने का खर्च और मुंह मांगी कीमत डेढ़ सौ कैरी की दी गई। इतने में इन्दौर में ही कितना आचार खरीदा जा सकता था? पर, नहीं। मन में जो आ गया, सो होना चाहिये। लेकिन, इसको रईसी मिजाज में शामिल करना भूल होगी। रईसी शान में, निस्सन्देह, सेठ साहब राजाओं को भी मात करते हैं। परन्तु मितव्ययिता की भी पराकाष्ठा है। खर्च की एक एक पाई पर कितना कठोर नियन्त्रण रखा जाता है, इसका भी एक मनोरंजक उदाहरण यहां दिया जा रहा है। रसोई का खर्च प्रति दिन सेठ साहब के सामने नियम से पेश किया जाता था। एक दिन हरे धनिये के दो पैसे पर सेठ साहब को सन्देह हो गया। मुनीम जी की पेशी हुई। उन्होंने जिसको सब्जी दी थी, वह पेश किया गया। जांच होते होते छठे नम्बर पर वह व्यक्ति पेश हुआ, जिसने चटनी पीस कर कटोरी में रखी थी। परोसने वाला सेठ साहब को थाली में चटनी परोसना भूल गया था। भूल के लिये चार आने का दण्ड हुआ। कितने गृहस्थ हैं, जो ऐसी पैनी दृष्टि अपनी गृह-व्यवस्था पर रखते हैं? एक नीबू और हरी मिर्च तक सेठ साहब की दृष्टि से बच नहीं सकते। ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। बम्बई में मक्का के भुट्टे मंगाये गये। खाते-खाते आप उठकर कहीं चले गये। दूसरे दिन फिर ध्यान आया, तो पता चला कि भुट्टे तो बांट दिये गये। सभी चार चार आना जुर्माना किया जायगा। नियन्त्रण और अनुशासन तो इसी का नाम है। यदि ऐसा न हो, तो इतने बड़े घर का प्रबन्ध इतना सुन्दर और व्यवस्थित रह न सके।

सेठ साहब की गृह-व्यवस्था आदर्श और अनुकरणीय है। बीकानेर महाराज ने कभी कहा था कि राजाओं का-सा आपका काम है। परन्तु आपका रहन-सहन और व्यवहार कभी राजाओं और रईसों को भी मात करता था। रंग महल का बग्गीखाना, शीशमहल की शान शौकत और इन्द्र भवन की व्यवस्था जिस रईसीपन की द्योतक है, वह अनेक रईसों के यहां भी मिलनी दुर्लभ है। नीति शास्त्रों में कहा गया है कि—

"दानं भोगो नाशस्तिस्रो, गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति॥"

सेठ साहब ने शत हाथों से उपार्जित अपने धन का सहस्रों हाथों से जो दान किया, उसका उल्लेख

को छटा शादी विवाह, त्यौहारों तथा सम्मेलनों आदि के अवसर पर जिनको भी कभी देखने को मिली है, वे ही आपके राजसी ठाट-बाट की कुछ कल्पना कर सकते हैं। कई बार ऐसे प्रसंग भी आये कि कभी कुछ नुकसान हो गया, किन्तु आपकी पुण्याई के कारण उसकी भरपाई भी सहसा ही हो गई। स्वर्गीया तारामतीबाई के मुकलावे के अवसर पर सेठजी का एक लाख की कीमत का मोती का कण्ठा चोरी चला गया। कई दिनों बाद उसकी याद आई, तो आपने विचार किया और दीवानियों के घर जाकर सारा सम्मान ज्यों का त्यों प्राप्त कर लिया गया। इसी प्रकार सम्वत् १६८७ में सेठजी का पन्ने का कण्ठा डेढ़ लाख की कीमत का तुकोगंज की सड़क पर कहीं गिर गया। दस हजार के इनाम की घोषणा करने पर भी कण्ठा मिला नहीं। छः महीने बाद काशी का एक जौहरी उसी कण्ठे की कुछ मणियां आपके ही पास बेचने के लिये आ पहुँचा। आप तुरन्त पहचान गये। सारा माल बरामद हो गया। इसी प्रकार का एक किस्सा हुकमचन्द मिल का है। १५-१६ हजार के नोट चोरी चले गये। कुछ भी पता न चला, किन्तु एक शाम बाद चोरी करने वाला स्वयं ही उनको लौटा गया। एक बार बड़वानी जाते हुये दस हजार मूल्य की हीरे की अंगूठी खुरमपुर डाक बंगले के अहाते में गिर गई। बड़वानी जाने पर मोटर वापिस भेजी गई, तो अंगूठी जमीन पर पड़ी हुई मिल गई। अनेक बार ऐसे प्रसंग आये कि आपको बुन्देलखण्ड, वागीदौरा तथा अन्य यात्राओं में लूटने का षड्यन्त्र रचा गया। परन्तु आप अपने निर्भय स्वभाव और साहसपूर्ण चातुरी से बाल-बाल बच गये। वागीदौरा जाते हुये एक बार रास्ता भटक गये, तो मोटर छोड़ कर पैदल चलना पड़ा। साथ में जो पुलिस वाले थे, वे भी घबरा गये। पर, आपने रिवाल्वर हाथ में लिया और आगे आगे चल दिये।

बचपन से ही आपका स्वभाव निर्भीक, साहसी और तेजस्वी है। जैसे आपने व्यापार-व्यवसाय और औद्योगिक क्षेत्र में जोखिम उठाने में कभी भी संकोच नहीं किया, वैसे ही जीवन में भी आप कभी जोखिम उठाने से घबराये नहीं। निर्भयता और दृढ़ संकल्प दोनों आपके स्वाभाविक गुण ही समझने चाहियें। सम्वत् १६६८ (सन् १९११) की इलाहाबाद की सुप्रसिद्ध प्रदर्शनी में सम्भवतः पहिली बार हमारे देश में आधुनिक युग में विमान या हवाई जहाज आया था। कोई उस पर चढ़ने का साहस नहीं करता था। आप आगे बढ़े, जहाज पर सवार हो गये और सारी प्रदर्शनी की तीन परिक्रमायें लगाई गईं। जहाज पर चढ़ते और उतरते हुये आपके कितने ही फोटो लिये गये। समाचार पत्रों में आपके इस साहस की बहुत सराहना की गई। सम्वत् १९९० में दिल्ली से इन्दौर तक की हवाई यात्रा भी कुछ कम साहसपूर्ण नहीं थी। इसी प्रकार का एक प्रसंग मैसूर का है, जब आप सोने की खदानें देखने गये थे। आप जिस दिन वहां पहुंचे, उससे पहले ही दिन लिफ्ट के टूटने और कइयों के उसके शिकार होने की रोमांचकारी दुर्घटना हुई थी। सब ओर आतंक छाया हुआ था। आपको परामर्श दिया गया कि आप खान में नीचे न उतरें। पर,,आप तो लिफ्ट पर सवार हो ही गये और नीचे जाकर सारा कुछ देख आये। इसी प्रकार की एक घटना इन्दौर से ग्वालियर जाने और लौटने की है। भैया साहब राजकुमारसिंहजी के प्रथम पुत्र पैदा होने की खुशियां मनाई जा रहीं थीं। एक भोज का आयोजन आपके किसी सम्बन्धी ने किया था। परन्तु ग्वालियर जाना भी आवश्यक था। आपसे न जाने का अनुरोध किया गया। आपने वायदा किया कि आप भोज के समय तक लौट आयेंगे। पांच-पांच हजार की शर्त लग गई। लौटते हुये मोटर ६०-७० मील की रफ्तार से चली आ रही थी। एक स्थान में पेड़ से टकरा गई। आपके माथे पर चोट आई और खून बह निकला। फिर भी आपने मोटर को रोका नहीं। हाथ से माथा पोंछते हुये ड्राइवर को आगे बढ़ने का ही आदेश दिया गया। आप ठीक समय पर इन्दौर लौट आये। आपके साहस पर सभी स्तम्भित रह गये। ऐसी कितनी ही घटनायें यहां दी जा सकती हैं।

भ्रमण का भी आपको विलक्षण शौक है। बहुत लम्बी-लम्बी यात्रायें आपने प्राय: अपनी मोटर पर ही की हैं। इधर स्पेशल हवाई जहाज पर भी आपने अनेक यात्रायें की हैं। मोटर में छः-सात साथी साथ में रहते हैं और खान-पान की सम्पूर्ण व्यवस्था भी साथ में रहती है। रसोइया, नाई, गड़िया, मुनीम और सेक्रेटरी का साथ में रहना आवश्यक है। सड़क पर मोटर रोक कर जंगल में दाल-बाटी का भोजन बनाने और खाने का भी आपको खूब शौक है। ग्वालियर से इन्दौर आते हुये एक बार आप गुना के पास सड़क पर रुक गये और मोटर को सड़क पर ही खड़ी करके दाल-बाटी बननी शुरू हो गई, सूबा साहब घोड़े पर टहलते हुये उधर ही आ निकले। सड़क पर मोटर खड़ी देख कर पहिले तो वे कुछ रुष्ट हुये, किन्तु सेठ साहब को देखते ही उनका रोष सहृदयता में परिणत हो गया। उन्होंने सेठ साहब से निवेदन किया कि सड़क की धूल-मिट्टी से बच कर किसी पेड़ के नीचे अथवा मकान में चल कर भोजन किया जाय, तो अच्छा है। आपने सरल भाव से उत्तर दिया कि पत्तल और आसन के नीचे भी तो मिट्टी ही है, कुछ ऊपर भी आ जावेगी, तो हानि क्या है? जीवन को इतना विनोदमय और बड़प्पन के भार से रहित बनाने की कला में भी आप पारंगत हैं।

अपने भ्रमणशील स्वभाव के कारण सेठ साहब ने दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास की भी कितनी ही यात्रायें की हैं। कोई ही तीर्थ और देवमन्दिर आपकी यात्रा से बचा होगा। अपनी २५-२६ वर्ष की आयु में सम्वत् १६७६-७७ में आप रंगून भी गये थे। श्री नन्दरामजी पाटनी और श्री फूलचन्दजी काशलीवाल आपके साथी थे। बन्दरगाह पर सैकड़ों हिन्दू-मुसलमान आपके स्वागत के लिये उपस्थित थे। मारवाड़ी भाई विशेष संख्या में आये थे। सेठ आदमजी के बंगले पर आप ठहरे थे। बीकानेर के श्री० मुलतानचन्दजी नरसिंहदासजी ने आपके भोजन का प्रबन्ध किया था। मोटर में आपने सारे बर्मा का भ्रमण किया

श्रीलंका तो आप अनेकों बार गये हैं। आधे दर्जन से अधिक बार वहां की आपने यात्रा की है। मोटर पर सारे देश का भ्रमण किया है। दो एक बार तो श्रीमन्त महाराज तुकोजीराव के विलायत से लौटने पर स्वागत सत्कार के लिये भी आप वहां गये थे। एक बार सपरिवार भी गये थे।

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" अथवा "नायमात्माबलहीनेन लभ्यः" के मूलमन्त्र की तो आपने बचपन से ही गांठ बांधी हुई है। कमजोर शरीर में स्वस्थ आत्मा निवास नहीं कर सकता और रोगी देह से धर्म की साधना नहीं की जा सकती। इस तथ्य को सामने रख कर आपने अपने स्वास्थ्य का निरन्तर पूरा ध्यान रखा है। मालूम होता है कि अमेरिका के करोड़पति राकफेलर का यह कथन आपके भी सामने सदा ही रहा है कि 'लखपति बनने के लिये प्रति दिन दो घण्टा खेलना या व्यायाम करना आवश्यक है। उसके बाद फिर सारा दिन डट कर काम करना चाहिये।" आपके जीवन की सफलता का भी यही रहस्य जान पड़ता है। जब तक शरीर में सामर्थ्य रही, आपने व्यायाम नहीं छोड़ा। शीश महल के पांचवें तल्ले में बनाया गया विशाल अखाड़ा व्यायाम में आपकी रुचि का प्रबल प्रमाण है। ६० वर्ष की आयु तक आप सौ डेढ़ सौ डण्ड-बैठक निकालते और मुद्गर भी घुमाया करते थे। शरीर की मालिश भी नियम से होती और पाव भर तेल देह को पिला दिया जाता था। ८-१० मील वायु सेवन के लिये निकल जाना साधारण बात थी। अच्छे-अच्छे नौजवान भी आपके साथ चल नहीं सकते थे। चार-पांच पहलवानों के साथ आप अखाड़े में उतरते थे और उनका सांस टूट जाने पर भी आपका सांस नहीं टूटता था। अखाड़े में लेट कर पांच-सात आदमियों को ऊपर से अपने ऊपर कुदवाने की भी आपको आदत थी। इस व्यायाम के ही कारण असाधारण पौष्टिक भोजन आप सहज में ही पचा लेते थे। पाचन शक्ति कमाल की थी। दिमाग और स्मरण शक्ति भी असाधारण थी। आँखों की शक्ति तो अब भी ऐसी है कि बिना चश्मे के छोटे-से-छोटे अक्षर भी आप खूब आसानी से पढ़ लेते हैं। ६०-६१ वर्ष की आयु तक आप कभी भी अधिक बीमार नहीं

की सफलता और महानता का मूलमन्त्र है। शील, संयम, चरित्र, आत्म-विश्वास, वात्सल्य-स्नेह, सहृदयता, उदारता, सरलता, उत्साह, धैर्य, साहस, पौरुष, निर्दयता, विवेक-बुद्धि, समयसूचकता, निरभिमान स्वभाव, परोपकार परायण वृत्ति, दीन सेवा, सामाजिक भावना और सार्वजनिक प्रवृत्ति आदि जिन गुणों से मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होकर उसका जीवन सफल होता है, उन सब गुणों के समुच्चय से ही मानो सेठ साहब का निर्माण हुआ है। सत्संग, शास्त्रचर्चा तथा दान, धर्म, भक्ति, भजन, स्वाध्याय, सचाई-ईमानदारी-नेकनीयती और जाति सेवा के अक्षय पुण्य का भी आपने विपुल संचय किया है। सैकड़ों हजारों के बीच एकाएक आप पर ही हर किसी की दृष्टि जाती है। जिधर भी आप निकल जाते हैं, लोग सहसा आपकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। ऊँचा सुडौल डीलडौल, कान्तिमय मुखमण्डल, उन्नत ललाट, हंसता हुआ दीप्तिमय चेहरा, मखमल की सफेद शुभ्र पोशाक, देशी ढंग की विशिष्ट पगड़ी, गले में हीरे पन्ने के कंठे और अन्य जवाहरात आदि सब मिलकर आपके असाधारण तेजस्वी व्यक्तित्व को प्रकट करते हैं। सभा मण्डप आपकी उपस्थिति से चमक उठता है और व्याख्यान की ध्वनि से गूंज उठता है। ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व के निर्माण का रहस्य एक महान् पुरुष के इस कथन में है कि "धन जिनका गुलाम है, वे बड़भागी हैं और जो धन के गुलाम हैं, वे बड़े अभागे हैं।" इससे भी अधिक बड़ा सच यह है कि—

> *"नार्मी जयी जितो येन नक्रव्यालमृगाधिपाः।*
> *जितं तेनैव येनेह दान्तोमारस्त्रिलोकजित्॥"*

"घड़ियाल, सर्प और सिंह पर विजय प्राप्त करने वाला ही विजयी नहीं है, किन्तु सच्चा विजयी तो वह है, जिसने त्रिलोक को जीतने वाले कामदेव को अपने वश में कर लिया है।" षोडश वर्ष की ही आयु में सब व्यसनों का परित्याग कर स्वयं अपना कायाकल्प कर लेने वाले हमारे चरित्रनायक ने साठ वर्ष की आयु में चारित्र-चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी के समक्ष त्रिलोकचन्द जैन हाई स्कूल में पूर्ण ब्रह्मचर्य का नियम लेकर उसको पूरी सचाई और ईमानदारी के साथ निभाया है। मनोरंजन के लिये दो चार साथियों के साथ कभी ताश खेल लेने के सिवाय कोई भी और व्यसन आप में नाममात्र को भी नहीं है। आपके विश्वासपात्र साथी आपके "मन्त्री" नाम से प्रसिद्ध लाला हजारीलालजी साहब ने आपके सम्बन्ध में यह ठीक ही लिखा है कि "यद्यपि सेठ साहब राजसी ठाठबाठ में रहते हुए अपने पुण्योदय से प्रायः अपार लक्ष्मी का यथेष्ट उपभोग करते हैं, किन्तु कठिन से कठिन अवसर प्राप्त होने पर भी श्रीमान ने अपने शीलव्रत पर कभी भी आघात नहीं पहुंचने दिया है।" इसी प्रकार इन्दौर की लोकसेविका सौभाग्यवती कमलाबाई किबे ने भी एक बार लिखा था कि "एक धनिक व्यक्ति की मृत्यु के सम्मुख खड़े रहने की तैयारी देखकर आश्चर्य प्रतीत हुआ। मृत्यु को सामने देखकर जो व्यक्ति डरता नहीं, वही सच्चा व्यक्ति है। अपार लक्ष्मी के भोगसाधन रहते हुये भी उनका लक्ष्य धर्म की ओर अचल है। जैन समाज के लिये यह बात भूषणावह है। उनका सारा, वैभव, कीर्ति व नागरिकत्व स्वयं निर्मित है। उनकी धन्यता मानव जनता भूल नहीं सकती।"

मध्यभारत के अर्थमन्त्री जैनजातिभूषण जैनवीर श्री मिश्रीलालजी गंगवाल ने भी कभी ठीक ही लिखा था कि "सेठ साहब ने धनोपार्जन किया और लोकसेवा की। उनके दान से कई संस्थायें खड़ी हैं। उनके व्यक्तित्व से उन संस्थाओं को बल मिलता रहता है। उनकी सी व्यवस्थापक शक्ति बहुत कम लोगों में पाई जाती है। उनके प्रत्येक कार्य में उनके व्यक्तित्व की छाप पाई जाती है। सेठ साहब के पास बड़े से बड़ा संचय है। पर, उनके मन पर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ा। मैंने जब भी उनको देखा, उनमें एक विशेष प्रतिभा के दर्शन किये। उनके व्यक्तित्व में एक शक्ति है। उसमें कुछ देने की क्षमता है। वे शिक्षित नहीं, फिर भी उनके कारखाने

व्यवस्था-शक्ति के प्रतीक हैं। जितने व्यापक रूप में पैसे को सेठ साहब ने छोड़ा है, क्या किसी अन्य ने छोड़ा है ? उन्होंने पैसे को छोड़ा ही नहीं, अपि तु उसे अच्छी तरह बोया भी है। उसे उन्होंने तालाब या कुये में नहीं डाला, खेत में डाला है। एक एक दाने से हजार दाने उगते हैं।"

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज ने तो आपको 'पंचम काल का "चक्रवर्ती' कह कर संबोधित किया है।

इस पर भी आप में विनय और नम्रता की भावना कैसे घर किये हुये है, इसका परिचय उन उद्गारों से मिलता है, जो आपने आरोग्य कामना के लिये आभार मानते हुये प्रगट किये थे। आपने कहा था कि "मैं जैन-समाज और सर्वसाधारण के यानी मानवमात्र के चरणों का एक लघु सेवक हूँ। मैंने जनता से ही सम्पत्ति कमाई और बहुत कम जनता को सेवा में लगाई। फिर भी आप मुझे बड़ी-बड़ी पदवियों से सम्मानित करते आये हैं। मेरा शरीर, जिसे मैं अपना कहता आया हूं, वह मेरा अपना नहीं है। वह आपकी सेवा में लगे, यही भावना मेरी सदा रही है। यह शरीर समाज की और धर्म की सेवा में काम आवे और आप मुझ से अन्त तक काम लें। इसी में मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ। इसी में क्षण नश्वर जीवन की सार्थकता है। मैं सच कहता हूँ कि मुझे सामाजिक, धार्मिक और जनसेवा का कार्य करने में बड़ा आनन्द आता है।" इस सेवा भावना से ही आपका जीवन और व्यक्तित्व इतना खिल उठा है कि उसको महान और सफल कहने में कुछ भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

: १० :

साधनामय विरक्त जीवन

*"प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति ॥"*

"मैं यह जानता हूं कि शायद ७० वें वर्ष में यह शरीर रहे या न रहे । कोई ज्योतिषी मेरी आयु के तीन वर्ष या पांच वर्ष बताते हैं । परन्तु मुझको इस बारे में कतई चिन्ता नहीं है । यह शरीर दो वर्ष रहे या दो दिन ही रहे । संसार में जो यह मनुष्य देह मिली है, उससे दूध में से मक्खन की तरह जितना भी धर्म और पुण्य साधा जा सके, उतना साधना यही मेरा सदा से ध्येय रहा है । परन्तु मैं ऐसा कोई बात नहीं करूँगा, जिससे कि पीछे मेरी हंसी हो । मैं जो भी पांव बढ़ाऊंगा, वह बहुत सोच-समझकर बढ़ाऊँगा और जो पांव एक बार आगे बढ़ाया जायगा, वह फिर आगे ही बढ़ता जायगा, पीछे नहीं हटेगा। मैं पहिले से ज्यादा समय धर्मध्यान में लगाऊंगा । उस दिन को मैं परम भाग्यशाली समझूंगा, जिस दिन आत्मा में लीन हो जाऊंगा और अपनी आत्मा का उद्धार कर मनुष्य जीवन सफल बनाऊंगा । परन्तु अभी मैं नियम करलूं और बाद में वह भंग हो जाय,— यह अच्छा नहीं । ऐसी जगहंसाई मैं कभी नहीं करूंगा । आप सब समझते हैं कि मैं बड़ा आदमी हूँ । मेरे पास धन है और इज्जत है; किन्तु सच पूछा जाय, तो मैं उजाड़ गांव में कुमार मेहता जैसा हूँ ।"

ये शब्द सम्वत २००० सन् १९४३ जुलाई के आषाढ़ मास में इन्दौर में मनाये गये "शान्ति मंगल विधान" अथवा "अष्टाह्निका पर्व" के बाद श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन इन्दौर के तत्कालीन प्राइम मिनिस्टर राजा ज्ञाननाथजी के सभापतित्व में दिये गये मानपत्र के उत्तर में लगभग तीस हजार नर-नारियों की उपस्थिति में कहे गये थे । इसी प्रकार सम्वत् २००६ में मनाये गये आरोग्य कामना समारंभ के लिये आभार प्रदर्शित करते हुये सेठ साहब ने बम्बई से लिखा था कि "मुझे जैनधर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा है । मैं किशोर अवस्था से ही ऐसे ढांचे में ढला हूं कि मेरे इस विश्वास में थोड़ा-सा भी परिवर्तन हो नहीं सकता । जैन शास्त्रों के स्वाध्याय, त्यागियों तथा विद्वानों के सत्संग और अपने साधर्मी मित्रों की गोष्ठी ने मुझे ऊंचा उठाया है। यह मैं जानता हूं कि मुझे अब कोई सांसारिक काम करना बाकी नहीं रहा है । सब तरह साधन, आनन्द तथा योग्य उत्तराधिकारी पाकर अब कुछ भी करने की इच्छा नहीं है । यह शरीर, जो कि स्वभाव से प्रतिक्षण क्षीण होता जा रहा है, अब ज्यादा टिक नहीं सकता । मेरी वृद्ध अवस्था है । यह मेरा जो शरीर-रोग है, वह उसका वजन बढ़ जाने या साता का अनुभव हो जाने से शायद बिलकुल दूर हो जाने से पूर्ण स्वास्थ लाभ हो सकता है । यह भी मानने को मैं तैयार नहीं हूँ । मैं यहां बम्बई में आया हूं । यह भी कुटुम्ब-प्रेरणा से और व्यवहार साधने के लिये । मेरा दिल तो यही कह रहा है कि इन्दौर पहुँचकर अपना पूर्ण समय आत्म-कल्याण में लगाऊं और परम समाधि द्वारा उस नित्य और शुद्ध दशा को प्राप्त कर लूं । मेरा विश्वास है कि मेरा होनहार अच्छा है और मैं इस दृढ़ निश्चय को

सेठ साहब स्वाध्याय करते हुये पंडित मंडली और त्यागी वर्ग के साथ।

स्वर्गीय मास्टर दरयावसिंहजी के साथ सर सेठ हुकमचंद जी ।

आचार्य श्री सूर्यसगार जी महाराज के शास्त्र प्रवचन में सेठ साहब पंडित मंडली और त्यागीवर्ग ।

सेठ साहब के साथ-जीवन परिचय के लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार । ३१ मार्च १९५१ के दिन लिया गया चित्र ।

पूरा कर इस पर्याय को सफल बनाऊंगा।"

इसी प्रकार आपने गत वर्ष सम्वत २००७ वैशाख बदी १४ अप्रैल १६ सन् १६५० को जैन समाज की ओर से अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा नई दिल्ली में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी का स्वतन्त्र प्रजातन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति चुने जाने पर जो भव्य स्वागत-समारोह हुआ था, उसमें सेठ साहब से भी पधारने के लिये अनुरोध किया गया था। तब आपने महासभा के महामन्त्री लाला परसादीलालजी पाटनी को लिखा था कि "राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी के स्वागत-समारोह के सम्बन्ध में निमन्त्रण पत्र और तार मिले। पढ़कर बहुत खुशी हुई। हम यहां बैठे हुये ही आपके इस राष्ट्रपति-सम्मान-समारोह की सफलता की कामना करते हैं। मैंने सभी सांसारिक कार्यों में भाग लेना छोड़ दिया है और विरक्त-सा जीवन व्यतीत करता हूँ। इसलिये विशेष आग्रह न करें और मुझे अपने कल्याण के पथ पर जाने दें।"

इन तीनों उद्धरणों से यह प्रगट है कि सम्वत् २००० में सेठ साहब में साधनामय विरक्त जीवन बिताने की भावना विशेष रूप से जागृत हुई और वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। वास्तविकता तो यह है कि ये संस्कार आपने अपने पूज्य पिताजी से ही ग्रहण किये थे। पिताजी इतनी आस्तिक बुद्धि और धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे कि उनका समाधिमरण ही हुआ था। जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने चारों प्रकार के आहार का परित्याग कर और सम्पूर्ण परिग्रह का भी परित्याग कर दिगम्बर मुद्रा धारण कर ली थी। णमोकार मन्त्र का उच्चारण करते हुये ही देह का त्याग किया था। सेठ साहब का स्वयं भी कहना है कि १६-१७ वर्ष में आप में एक बार तो वैराग्य भावना इतनी प्रबल हो उठी थी कि आपने घरबार छोड़ कर मुनिव्रत धारण कर लेने का निश्चय कर लिया था। यही कारण था कि आपने बड़े भैय्यासाहब राज्यभूषण हीरालालजी काशलीवाल को इतनी जल्दी गोद ले लिया था और उनको सब प्रकार से योग्य बनाने का प्रयत्न किया था। आपकी जन्मकुण्डली बनाने और आपका भविष्य लिखने वालों ने तो यह पहिले ही लिख दिया था कि आप अवश्य ही आत्मदीक्षा ग्रहण करेंगे। "श्री रणवीरज्योतिर्महानिबंध:" नाम का एक पुराना ज्योतिष ग्रन्थ है। इसे हस्तलिखित रूप में किसी काश्मीरी पण्डित से इन्दौर महाराज ने पच्चीस हजार रुपये में प्राप्त किया था और उसकी कुछ ही प्रतियां अपने व्यय से मुद्रित कराईं थीं। उसकी एक प्रति सेठ साहब के पास भी सुरक्षित है। उसके निम्न श्लोक चरित्रनायक के जीवन पर अच्छा प्रकाश डालते हैं:—

"जन्माधिप: सूर्यसुतेन दृष्ट: शेषैरदृष्ट: पुरुषस्य सुतौ।
आत्मीयदीक्षां कुरुते ह्यवश्यं पूर्वोक्तमत्रापि विचारणीयम्॥"

अर्थात् "जिनके जन्म लग्न का स्वामी शनि करके देखा होवे और शेष और कोई ग्रह नहीं देखता होवे, तब तिस पुरुष को आत्मदीक्षा में अवश्य युक्त कर्ता है और पूर्वोक्त लक्षण जिसमें विचारने योग्य हैं—गृहस्थ व वानप्रस्थ इत्यादि।"

कठोरव्रतनिरता दिगम्बरा: श्वेतभिक्षवो ये च।
तेषामधिपतिरार्कि: श्रावकलम्बिन: सुदुस्तापधा:॥"

अर्थात् "और कठोर व्रत में जो स्थित हैं और दिगम्बर जो हैं, नग्न व्रत के धारण करने वाले और श्रावक मत में स्थित होने वाले और बड़े कठिन तप के करने वाले जो तपस्वी हैं, तिनका स्वामी सूर्य का पुत्र जो शनि है, सो कहा है।"

"अकथित मुनियोगे राजयोगो यदि स्यादशुभफलविपाकसर्वभूम्यीशपश्चात्।
जनयति पृथवीशं दीक्षितं साधुशीलं प्रणतं नृपशिरोमिणिष्टपादाब्जयुग्मम्॥"

अर्थात् "और कहते हैं कि यह मुनियोग है। इनमें जब राजयोग होवे तब सम्पूर्ण अशुभ फल को दूर करके पीछे से बड़े प्रताप करके युक्त राजा होता है। कैसा राजा होता है? शीघ्र करके युक्त और साधु स्वभाव करके युक्त और बड़े बड़े राजा जिसके कमलरूपी चरणों को अपने शिरों करके नम्र होय कर रगड़ते हैं।"

यह भाषा अविकल रूप से उसी ग्रन्थ से ही दे दी गई है। इसी प्रकार के अन्य अनेक ग्रन्थ भी सेठ साहब के पास हैं। वैष्णव दृष्टिकोण से विचारने और लिखने वालों का तो कहना यह है कि योगभ्रष्ट देवता की-सी सेठ साहब की स्थिति है और इसी जन्म में आपको वैकुण्ठ प्राप्त हो जाने वाला है। सेठानी साहिबा के सम्बन्ध में भी ऐसा ही लिखा गया है। वह लिखना सत्य हो या मिथ्या,—इसमें तो लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि सेठ साहब ने उन लोगों के लिये एक उच्चतम आदर्श उपस्थित कर दिया है, जो जीवन के अन्तिम काल में भी धन, दारा और सुत के मोह या मायाजाल में उलझे रहते हैं और जिन्हें तब भी धर्म-ध्यान, दान-पुण्य, स्वाध्याय और आत्मोन्नति का ध्यान नहीं आता। सेठ साहब ने आत्म-कल्याण का यह मार्ग किसी क्षणिक भावावेश में आ कर यों ही स्वीकार नहीं कर लिया है। यह आपके चिर चिन्तन, निरन्तर स्वाध्याय, अविरल सत्समागम, आजीवन की गई गुरु-तीर्थ-भक्ति तथा देवपूजन और उत्तरोत्तर जागृत की गई धार्मिक वृत्ति का ही शुभ परिणाम है। आपने यत्नपूर्वक अपने जीवन में इन सबका सम्यक् प्रकार से सम्पादन किया है। इस प्रकरण के आरम्भ में ऊपर दिये गये उद्धरण में आपने स्वयं ही इस तथ्य को स्वीकार किया है। लगभग साठ वर्षों से नियमित रूप से चलने वाली शास्त्र-चर्चा, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्यनिष्ठा, अध्यात्मवृत्ति, उदासीन त्यागियों तथा विद्वानों के सत्समागम से अपनी आत्मा को सुसंस्कृत बना कर पारलौकिक सुख के हेतु आप मनुष्य पर्याय के अन्तिम भाग को पूर्ण सफल बनाने में संलग्न हैं। अन्यथा, चक्रवर्ती सरीखी सम्पदा और इन्द्र सरीखा भोग छोड़ कर आज की-सी साधनामय विरक्त वृत्ति को स्वीकार कर सकना इतना सहज नहीं था।

धार्मिक प्रकरण में आपकी धार्मिक वृत्ति, मुनिराज सेवा, तीर्थभक्ति और सात्विक प्रवृत्ति की काफी चर्चा की जा चुकी है। सत्समागम का तो यह हाल रहा है कि तीर्थयात्रा में भी आप अपने साथ कुछ विद्वानों को अवश्य ले जाते हैं और मार्ग का मुख्य कार्यक्रम प्रायः धर्म चर्चा, शंका समाधान और स्वाध्याय तथा प्रवचन ही रहता रहा है। अपने चारों ओर आप स्वाध्यायमण्डल ही बनाये रखते हैं। मास्टर दरयावसिंहजी सोधिया आपके पुराने स्वाध्याय मण्डली हैं और वे अन्त तक आपके ही साथ रहे! स्वर्गीय उदासीन पण्डित पन्नालालजी गोधा का नाम भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। इस समय भी एक अच्छी मण्डली के साथ शास्त्र-चर्चा और स्वाध्याय होता ही रहता है। सवेरे और रात्रि में नियमित रूप में शास्त्र-चर्चा और स्वाध्याय होता है। इनमें पं० खूबचन्दजी शास्त्री, पं० वंशीधरजी न्यायालंकार, पं० देवकीनन्दनजी शास्त्री, पं० जीवंधरजी न्यायतीर्थ, पं० लालबहादुरजी शास्त्री और पं० नाथूलालजी शास्त्री के नाम सम्मान के साथ लिये जाने चाहियें। आप सरीखे विद्वानों का सत्संग सेठ साहब की आत्मसाधना में विशेष सहायक हुआ और हो रहा है। विद्या का आपने कोई विशेष अभ्यास नहीं किया है; किंतु आत्मसाधना के लिये अधिकतर ज्ञान का सम्पादन किया है। इस लिये ज्ञानवृद्धि चरित्रनिर्माण में सहायक होकर आत्मसाधना में प्रेरित करने वाली सिद्ध हुई है। छोटी अवस्था में एक बार हरिवंशपुराण में अर्जुन आदि विशिष्ट पुरुषों के चरित्र का वर्णन सुन आपने सहसा ही अपने को वैसा सच्चरित्र और तेजस्वी पुरुष बनाने की अभिलाषा प्रगट की। अपने को ऊंचा उठाने की यह अभिलाषा और प्रवृत्ति आपके प्रायः सारे जीवन में व्यापक दीख पड़ती है। देवपूजन में आपकी श्रद्धा का यह परिणाम है कि इन्दौर में दीतवारिया बाजार में, नशियाजी में और इन्द्र भवन में तीन विशाल जिनालयों का निर्माण हुआ है और इन्दौर में धार्मिक महोत्सवों की जब-तब धूम मची रहती है। मन्दिरजी में पूजन, दर्शन और चर्चा आपके

जीवन के नैत्यिक कर्म रहे हैं। उनमें यथासंभव नागा नहीं होने दिया गया है। मुनिराज सेवा का भी आपने आदर्श उपस्थित कर दिया है। जिनवाणी में आपकी श्रद्धा निर्विवाद है। आपका यह कहना अक्षरशः सत्य है कि "मुझे जैनधर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा है। मैं किशोर अवस्था से ही ऐसे ढांचे में ढला हूं कि मेरे इस विश्वास में थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं हो सकता।" इस श्रद्धा और विश्वास की ही तो प्रतिमूर्ति आपका धार्मिक जीवन है और विरक्त जीवन की साधना का अंकुर इसी श्रद्धा और विश्वास में से प्रस्फुटित हुआ है।

आत्मरत होने की इसी प्रबल भावना से प्रेरित हो कर सेठ साहब सन् १९३० में योगिराज श्री अरविन्द के दर्शन करने के लिये पाण्डीचेरी गये थे और सन् १९३४ में आपने रमणऋषि के दर्शन भी उनके आश्रम में जाकर किये थे। आत्मज्ञान की पिपासा की पूर्ति में रत मानव की हालत उस पोत के कप्तान की सी हो जाती है, जो प्रकाशस्तम्भ की खोज में लगा होता है और जिस ओर भी प्रकाश दीखता है, उसी ओर चल पड़ता है। लेकिन, इस समय तो सेठ साहब की स्थिति आत्मरत उस महान व्यक्ति के समान हो गई दीखती है, जिसके चित्त पर नियमरूपेण मोक्षमार्ग रूप रत्नत्रय का महत्त्व अंकित हो जाता है और जो सेठ साहब के अपने शब्दों में परमपुरुषार्थ मोक्ष की साधना में अपने को लगा कर मनुष्य पर्याय के अन्तिम भाग को पूर्ण सफल बनाने में लग जाता है। इस प्रकार हम मानवी जीवों के लिये आप अपने जीवन के अन्तिम भाग में भी सराहनीय एवं अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर जाना चाहते हैं।

वंश-परिचय

धर्म-दिगम्बर जैन, जाति खण्डेलवाल, गोत्र-काशलीवाल

पहिली पीढ़ी—सेठ पूसाजी के दो पुत्र सेठ कुशालजी और सेठ श्यामाजी।

दूसरी पीढ़ी—सेठ श्यामाजी के पुत्र सेठ माणिकचन्दजी।

तीसरी पीढ़ी—सेठ माणिकचन्द के पुत्र सेठ मगनीरामजी, सेठ सरूपचन्दजी, सेठ मन्नालालजी, सेठ ओंकारजी और सेठ तिलोकचन्दजी।

चौथी पीढ़ी— १. सेठ सरूपचन्दजी के पुत्र चरित्रनायक *सेठ हुकमचन्दजी*।

२. सेठ ओंकारजी के गोद आये सेठ कस्तूरचन्दजी।

३. सेठ त्रिलोकचन्दजी के गोद आये सेठ कल्याणमलजी।

पांचवीं पीढ़ी—१. चरित्रनायक ने गोद लिया सेठ हीरालालजी को और दानशीला श्रीमती कंचनबाई ने जन्म लिया भैय्यासाहब राजकुमारसिंहजी ने।

२. सेठ कल्याणमलजी के गोद गये सेठ हीरालालजी।

३. सेठ कस्तूरचन्दजी के गोद आये सेठ देवकुमारसिंहजी।

छठी पीढ़ी—१. भैय्यासाहब राजकुमारसिंहजी के पांच सुपुत्र—श्री राजाबहादुरसिंह, श्री महाराजबहादुरसिंह, श्री जम्बूकुमारसिंह, श्री चन्द्रकुमारसिंह और श्री यशकुमारसिंह।

२. सेठ हीरालालजी के दो सुपुत्र श्री नरेन्द्रकुमारसिंहजी और श्री राजेन्द्रकुमारसिंहजी।

३. सेठ देवकुमारसिंहजी के दो सुपुत्र

सातवीं पीढ़ी—१. श्री राजाबहादुरसिंह के एक कन्यारत्न।

२. श्री नरेन्द्रकुमारसिंह के चि० अशोककुमार, चि० महेन्द्रकुमार, चि० सुरेशकुमार और चि० दिलीपकुमार। श्री राजेन्द्रकुमारसिंह के एक पुत्र आयु ७-८ मास।

सेठ साहब की चौथी कन्या श्रीमती सेठ राजाबाई का शुभविवाह सेठ फतेहचन्दजी साहब के सुपुत्र श्री राजमलजी साहब सेठी के साथ हुआ। भैय्यासाहब के सुपुत्र श्री राजाबहादुरसिंह का शुभ विवाह दिल्ली में लाला गुलाबचन्दजी साहब केले वालों के यहां हुआ। सेठ हीरालालजी के सुपुत्र श्री राजेन्द्रकुमारसिंह का शुभ विवाह अलीगढ़ में लाला दामोदरदासजी के यहां हुआ। जीवन परिचय में इतना परिचय शेष रह गया है।

---

२२ फरवरी १२४१ को सोनगढ़ में सौराष्ट्र के २६ स्थानों की ओर से सेठ साहब का अभिनंदन किया जा रहा है।

जुलाई १६४२ में शान्ति विधान महोत्सव के बाद इन्दौर के तत्कालीन प्रधान मंत्री राजा ज्ञाननाथ की अध्यक्षता में सेठ साहब को मानपत्र दिया जा रहा है. जब कि आपने छः लाख के दान की घोषणा की थी।

वे विविध कास्केट, जिनमें सेठ साहब को विविध स्थानों और प्रसंगों पर अनेक मानपत्र भेंट किए गये। शीशमहल में कई आलमारियों में ये दर्शनीय वस्तुओं की तरह सुरक्षित रखे गये हैं।

२
पारमार्थिक संस्थायें
दान-भाषण व
मानपत्र

पारमार्थिक संस्थाओं की स्थापना, उनके संगठन और संचालन का जो रूप है, वह एक आदर्श है, जिसका अनुकरण देश के अन्य धनी मानी सज्जनों को भी निश्चय ही करना चाहिए। सेठ साहब ने उनकी स्थापना पूज्या मातुःश्री की अक्षय स्मृति के रूप में की है और उनका लालन-पालन अपनी सबसे अधिक प्यारी सन्तान की तरह किया है। तभी तो वट के बीज के रूप में प्रारम्भ किया गया यह सत्कार्य आज फल-फूल कर विशाल वृक्ष का रूप धारण किये हुए है, जिसकी शीतल छाया में थका मांदा मानव न केवल शारिरिक, किन्तु बौद्धिक, मानसिक और आत्मिक एवं अध्यात्मिक सुख-समृद्धि भी प्राप्त कर परम सन्तोष अनुभव करता है। विश्रान्ति गृह, महाविद्यालय तथा बोर्डिंग हाऊस और जिनालय के एक स्थान में निर्माण से यह स्थान मानव के तन-मन व आत्मा तीनों के परम कल्याण के लिए एक केन्द्र भी बन गया है, जो कि कालान्तर में 'तीर्थ' का-सा महत्व भी प्राप्त कर सकता है। जैसे पिता संकट में सन्तान की रक्षा कर उसे धन-धान्य से समृद्ध देखना चाहता है, वैसे ही सेठ साहब ने शेयरों के भाव गिरने पर घाटे का सारा भार अपने ऊपर लेकर ध्रुव फण्ड की राशि को समय समय पर उदार सहायता देते हुए बीस लाख से भी ऊपर पहुंचा दिया है।

देश के धनी-मानी सज्जनों द्वारा कायम किये गये लोकोपकारी ट्रस्टों में इन संस्थाओं का यह ट्रस्ट निश्चय ही प्रमुख है।

गत चालीस वर्ष का आँकड़ा संक्षेप में निम्न प्रकार है:—

आय		व्यय	
५८,६६,१२१=)	श्रीमंत सेठजी के दान से	६,७१,६३८॥≡)॥।२	संस्थाओं की इमारतों की लागत
१,१८,०६२–)२	चालू खातों की बचत जो इमारतों में लगी	१३,५६,५७७≡)॥	ध्रुवफंड की इमारतें, जिनके किराये की आमदनी से संस्थाओं का खर्च चलता है
३८,६६१॥)	ट्रस्टडीड के नियमानुसार ५) सैकड़ा से ध्रुव फंड में बढ़ाये	२६,७७४।=)॥।	जबरीबाग प्रिंटिंग प्रेस की तरफ लेना
१,८७,६६३।≡)॥।	श्रीमंत सेठजी की दूकान का चालू खाते देना	२,०६,७५१॥।)॥	प्रिंस यशवन्तराव आयुर्वेद औषधालय के केमिकल वर्क्स की तरफ लेना
१८,७७१)॥	उदरत खाते जमा नांव काटकर देना बाकी	७,८६७)॥।	शिलक बाकी
	२२,७२,६०६=)॥ २		२२,७२,६०६≡)॥२

: १ :

पारमार्थिक संस्थायें

सम्वत् १९५१ में सेठ साहब की उन पारमार्थिक संस्थाओं की नींव पड़ी समझनी चाहिये, जिनका जाल इस समय इन्दौर शहर में बिछा हुआ है और जो विविध प्रकार की लोकसेवा का निमित्त बनी हुई हैं। शहर और छावनी के बीच की एक लाख वर्गफीट भूमि सेठ साहब ने सरकार से खरीदी। सबसे पहिले मध्य में श्री पार्श्वनाथ भगवान् के भव्य जिनालय का निर्माण किया गया। बाद में यात्रियों के ठहरने आदि के लिये एक सौ कोठरियां बनाई गईं। इसी वर्ष मन्दिरजी की पंचकल्याणक श्री बिम्बप्रतिष्ठा बड़े समारोह के साथ की गई। श्री दिगम्बर जैन मालवा प्रान्तिक सभा की नींव भी इसी समय दृढ़ की गई। वह आपके सभापतित्व में निरन्तर उन्नति कर रही है। मन्दिर निर्माण, बिम्ब प्रतिष्ठा तथा आस-पास की इमारतों के निर्माण में सेठ साहब ने दो लाख रुपया लगा दिया। अब तो यह स्थान अनेक संस्थाओं का केन्द्र बन गया है। पूजनीय मातुश्री के नाम पर इसका नाम "जबरी बाग' रखा गया है। महाविद्यालय, बोर्डिङ्ग हाऊस, विश्रान्ति भवन आदि संस्थायें इसी स्थान पर स्थापित हैं, जो जनकल्याण का सराहनीय कार्य कर रही हैं। २०६६१४०॥≡) का इनका इस समय ध्रुव फण्ड है, जो एक ट्रस्ट के आधीन है। सम्वत् १९६२ में इन्दौर में एक जैन बोर्डिङ्ग हाउस की आवश्यकता अनुभव की गई थी, जिसमें मालवा के विविध स्थानों से आने वाले विद्यार्थी विद्याध्ययन करते हुये सुविधापूर्वक रह सकें और निश्चिन्त होकर अपने अध्ययन में लग सकें। एक सौ रुपया मासिक के खर्च से नशियाजी (जबरी बाग) में जैन बोर्डिंग हाउस और पाठशाला का काम शुरू कर दिया गया। ये ही संस्थायें कालान्तर में पारमार्थिक संस्थाओं को जन्म देने वाली सिद्ध हुईं। लोककल्याण की सद्‌भावना से शुरू किया गया छोटा-सा काम भी कितना विशाल रूप धारण कर लेता है, इसी का जीवित उदाहरण इन पारमार्थिक संस्थाओं का आज का रूप है। सम्वत् १९६९ में दानवीर स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजी और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी के इन्दौर में शुभागमन से इन संस्थाओं को और भी प्रोत्साहन मिला। बोर्डिङ्ग हाऊस की सुव्यवस्था देख कर दोनों महानुभाव बहुत अधिक प्रभावित हुये। उनकी प्रेरणा से उस निधि की नींव डाली गई, जो इस समय २० लाख से भी ऊपर पहुँच गई है। मन्दिरजी के खर्च के लिये नौ हजार और धर्मशाला के खर्च के के लिये चौदह हजार पांच सौ रुपया अलग निकलवा कर फण्ड कायम कर दिया गया। नशियांजी का आधा हिस्सा धर्मशाला के लिये अलग करके संस्थाओं का सारा कार्य नियमबद्ध तथा व्यवस्थित कर दिया गया। जैनजातिभूषण हजारीलालजी जैन प्रायः उसी समय से संस्थाओं के मन्त्रिपद का कार्य संभाले हुये हैं और लगभग बयालीस वर्षों से पारमार्थिक संस्थायें उनके नियन्त्रण में लोकसेवा का कार्य करती हुई विकास, प्रगति तथा उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही हैं। वे 'मन्त्री' नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

अधिकांश संस्थाओं की स्थापना का विवरण यथास्थान दिया जा चुका है। यहां केवल उनका संक्षिप्त

परिचय दिया जा रहा है :—

(१) श्री दिगम्बर जैन मन्दिरजी

यहां पूजन, शास्त्र सभा, मंडल विधानादि धार्मिक कृत्य नियमित रूप से होते रहते हैं। इसके सरस्वती भंडार में ६८७ धार्मिक ग्रंथ इस समय विद्यमान हैं। हिसाब के अन्तिम वर्ष सम्वत् २००६ में कुल आय १७४७।=) हुई और लगभग इतना ही खर्च हुआ।

(२) विश्रांति भवन

विश्रांति भवन की पिछली बचत से सम्वत् २००४ में दुकानों की दूसरी मंजिल तैयार कराई गई, जिससे किराये की आमदनी वर्ष में सात आठ सौ बढ़ गई। अन्तिम वर्ष सम्वत् २००६ में आय ७११३ रुपये हुई और इतना ही खर्च हुआ। यात्रियों की संख्या ४८००० रही।

(३) संस्कृत महाविद्यालय

सम्वत् २००६ में छात्रों की संख्या २६ रही और अंग्रेजी विभाग के धर्मशास्त्रों का अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या ६० पर पहुँच गई। छात्रों को अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के परीक्षा बोर्ड तथा संस्था की ओर से पारितोषिक दिया जाता है। इसके पुस्तकालय में २५६३ हिन्दी और १०५५ अंग्रेजी की पुस्तकें हैं। सम्वत् २००६ का बजट ५७१६) स्वीकार हुआ था और खर्च हुआ ६७६६)।

(४) दिगम्बर जैन बोर्डिङ्ग हाउस

संस्कृत महाविद्यालय तथा स्कूल और कालिजों में पढ़ने वाले छात्र इसमें रहते हैं। इनके खान-पान रहन-सहन आदि का सारा प्रबन्ध संस्था की ओर से समान रूप से किया जाता है। बोर्डिङ्ग हाउस में यूनिवर्सिटी के नियम के अनुसार कालेज और हाईस्कूल के छात्र इकट्ठे नहीं रह सकते। इसलिये सेठ साहब ने सम्वत् २००४ में ३८००० रुपये प्रदान करके हाईस्कूल के छात्रों के रहने के लिये एक पृथक् बोर्डिङ्ग हाउस बनवा दिया और २६ दिसम्बर १९४६ को इन्दौर के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री एन० सी० महता से उसका उद्घाटन करवाया गया। छात्रों में धार्मिक भावना पैदा करने के लिये उन्हें देवदर्शन, पूजन तथा अन्य धार्मिक क्रिया कलाप यथाशक्ति करवाया जाता है। सम्वत् २००६ में इसका बजट २१७४६।।।=) था।

(५) सौ० कञ्चनबाई दिगम्बर जैन श्राविकाश्रम

सम्वत २००६ में इसका बजट ८१५१३ रु०३आ०था। छात्राओं की एक पाक्षिक सभा होती है। उनका अपना पुस्तकालय है, जिसमें १५० ग्रन्थ हैं। छात्राओं की संख्या इस वर्ष ३३ रही।

(६) प्रिंस यशवंतराव आयुर्वेदिक जैन औषधालय

यह औषधालय बियाबानी में कायम है। इसकी एक शाखा संयोगिता गंज में खोली गई है। एक वृहद् रसायनशाला भी साथ में चालू है। इसमें लगभग ५०००० खर्च हो चुका है। कफ मूत्रादि की परीक्षा और आपरेशन आदि का प्रबन्ध है। सम्वत् २००६ में इसका बजट २१५५५) था, जिसमें से २१५४२) से अधिक आयुर्वेद की काष्ठौषधियों पर और २५००) सिद्धौषधियों पर खर्च हुआ।

(७) दिगम्बर जैन असहाय विधवा सहायता फण्ड व भोजनशाला

इसकी स्थापना का विवरण पीछे दिया जा चुका है। सम्वत् २००६ में ४१विधवाओं को सहायता दी गई। भोजनशाला में १६६ व्यक्तियों ने भोजन किया, जिनकी हाजिरी ५६४८ रही। बजट ७११०।।।=) था।

(८) सौ० दानशीला कंचनबाई प्रसूतिगृह व शिशुस्वास्थ्य रक्षा संस्था

सम्वत २००६ में ६५२ प्रसव हुये। इनमें दो मुसलमान थे। आउट डोर डिस्पेंसरी से २[illegible]०७ ने

लाभ उठाया, जिनमें ३२७१ नये बीमार थे। बजट १६७३३ ।।।=) का मंजूर किया गया था। स्थापना का विवरण पहिले दिया जा चुका है।

(७) श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक कालेज

इसकी स्थापना का विवरण भी विस्तार के साथ पीछे दिया जा चुका है। संवत् २००६में कुल छात्रों की संख्या १०७ रही। कालिज का संबंध उत्तर प्रदेश के बोर्ड आफ इंडियन मेडीसन के साथ है। उसी की ओर से परीक्षाओं का प्रबंध किया जाता है। औषध निर्माण और शवपरीक्षा की शिक्षा भी विद्यार्थियों को दी जाती है। छात्रसंघ और क्रीडाविभाग भी कालेज में कायम हैं। संवत् २००६ में लगभग १५५००) का बजट मंजूर किया गया था।

(१०) मॉं० दानशीला कंचनबाई दिगंबर जैन कन्यापाठशाला

इसकी स्थापना सेठ साहब की ७५ वीं वर्ष गांठ के शुभ अवसर पर आषाढ़ शुक्ला १ संवत् २००५ में की गई। संवत् २००६ में छात्राओं की संख्या ४३ रही, जिनमें से परीक्षा में ४१ पास हुईं।

(११) प्रबंध विभाग

इन सब संस्थाओं का प्रबंध एक ट्रस्ट और प्रबंधकारिणी कमेटी के आधीन है। इसीके आधीन एक छापाखाना भी चलता है। दिगंबर जैन खंडेलवाल बन्धु सहायक फण्ड भी इसीके आधीन है। सहायक मंत्री का काम बाबू बसंतीलालजी कोरिया करते हैं।

———:०:———

: २ :

दान की सूची

सेठ साहब द्वारा किये गये दान तथा धर्म कार्य में खर्च की हुई ८० लाख की रकम का ब्यौरा इस प्रकार है:—

१९३७	बड़वानी सिद्धक्षेत्र पर मंदिर बनवाने व प्रतिष्ठा के भाग में दिये	१०,०००)
१९५५	कछाल्या ग्राम में मंदिर बनवाने व प्रतिष्ठा कराने के लिये	१५,०००)
१९५७	मारवाड़ी मंदिर शक्कर बाजार पर कलश चढ़ाने में तीनों भाइयों ने खर्च किये	२५,०००)
१९५९	नसिया की इमारत व मंदिर बनाने और बिम्ब प्रतिष्ठा कराने में खर्च किये	२,००,०००)
१९६३	जैनबद्री मूडबद्री की यात्रार्थ जाने में खर्च किये	१०,०००)
१९६३	नसियाजी में बोर्डिंग १००) मासिक से शुरू किया, सात वर्ष तक चलता रहा	८,४००)
१९६५	प्लेग के समय गरीबों के झोंपड़े बनवाने के लिये	१,०००)
१९६६ से १९७२	असहाय जैनियों के लिये एक चौका शक्कर बाजार में खुलवाया, जिसमें १००) मासिक खर्च किया जाता था	७,२००)
१९६६	शिखरजी के पर्वत रक्षा फण्ड में इन्दौर से २५,०००) करवा दिये, जिसमें आपके	५,०००)
१९६६	शिखरजी पर महासभा के प्रबंध खाते में दिये, जिसके ब्याज से अब तक प्रबंध खाते का काम चल रहा है	१०,०००)
	उक्त जगह जाने आने में लगे	५,०००)

१९६८	श्रीमंत महाराजा साहब के कारोनेशन के समय पब्लिक कार्य के लिये दिये	२१,०००)
१९६८	दिल्ली दरबार से गिरनारजी की यात्रार्थ गये जिसमें खर्च	७,०००)
१९७०	मथुरा महासभा के अधिवेशन के समय चालू खाते में दिये	२,५००)
	सफर खर्च	५००)
१९७०	पालीताना में बम्बई प्रान्तिक सभा के अधिवेशन के समय दान दिया, जिसमें ४ लाख जवरी बाग में महाविद्यालय, बोर्डिंग हाउस, धर्मशाला, कंचनबाई श्राविकाश्रम आदि संस्थाओंमें लगे। इसी में १००००) उदासीनाश्रम में लगे	४,००,०००)
१९७०	बड़वानी सिद्धक्षेत्र पर जीर्णोद्धार के लिये	२,१००)
,,	श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम को दिये मध्ये १६५०८) के	१०,०००)
,,	बम्बई भोलेश्वर के मंदिर के लिये दिये पागडी में	१०,०००)
१९७०	श्रीमंत महाराजा साहब विलायत से सानंद पधारे इस खुशी में	३४,०००)
,,	महाराज तुकोजीराव हास्पिटल में नरसेज इस्टीट्यूशन में लगे	२०,०००)
,,	बड़नगर में बिम्बप्रतिष्ठा के समय दि. जैन मालवा प्रान्तिक सभा को	३,६००)
१९७१	इतवारिया में मंदिरजी बनवाने में कुल खर्च सवा पांच लाख हुआ, जिसमें १ लाख दोनों भाइयों ने दिया, शेष १९८८ तक लगे	५,२५,०००)
१९१७	छावनी के वाररिलीफ फंड के चंदे में दिये	८,०००)
,,	श्रीमंत महाराजा साहब की तबियत ठीक होने की खुशी में गरीबों को कपड़ा बांटा	५००)
,,	किंग एडवर्ड हास्पिटल छावनी में वार्ड बनवाने को दिये	४०,०००)
	लेडी ओडवायर गर्ल्स स्कूल छावनी के स्थाई फंड में	१०,०००)
,,	इतवारिया बाजार में जाति की रसोई के लिये भोजनशाला बनवाने में लगे	१७,०००)
,,	४२ वीं जन्मगांठ के समय जवरी बाग बोर्डिंग के कर्मचारी लोगों के लिये मकान बनवाने में दिये	३०,०००)
,,	स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्दजी की शोक सभा के समय ५०००) जवरी बाग लायब्रेरी के लिये और १०००) स्मारक फण्ड में	६,०००)
,,	हिंदू विश्वविद्यालय बनारस में जैन मंदिर बनवाने को तीनों भाइयों ने मिलकर १५०००) दिये, जिसमें सेठ साहिब के	५,०००)
,,	स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस को दिये	१,०००)
,,	अष्टम हिंदी साहित्य सम्मेलन को दिये, जिसमें २००२) स्वागतकारिणी के लिये, १००००) हिन्दी साहित्य के कोष के लिये और ७५१) इन्दौर की उन्नति के लिये	१२,७५३)
११७१	छावनी में मेडिकल स्कूल की बिल्डिंग खरीदकर अस्पताल को दे दी *	२५,०००)
१९७२	कान्यकुब्ज महासभा अधिवेशन में सहायता	१,०००)
१९७२	इन्दौर कृष्णपुरा की जनरल लायब्रेरी को	१,०००)
१९७३	भय्यासाहब हीरालालजी के विवाह में धार्मिक संस्थाओं को	५,०००)
,,	श्रीमती सौ. सेठानीजी व्रत-उद्यापन के समय दिया गया, जिसमें १००००) इतवारिया मंदिर में, १६६२१) पारमार्थिक संस्थाओं और शेष मन्दिरों को ५०००)	३१,६२१)

श्रीमंत सर सेठ साहब की पूज्य माताजी की स्मृति में बनाया हुआ जंवरीबाग विश्रांति भवन जिसे नसियां भी कहते हैं।
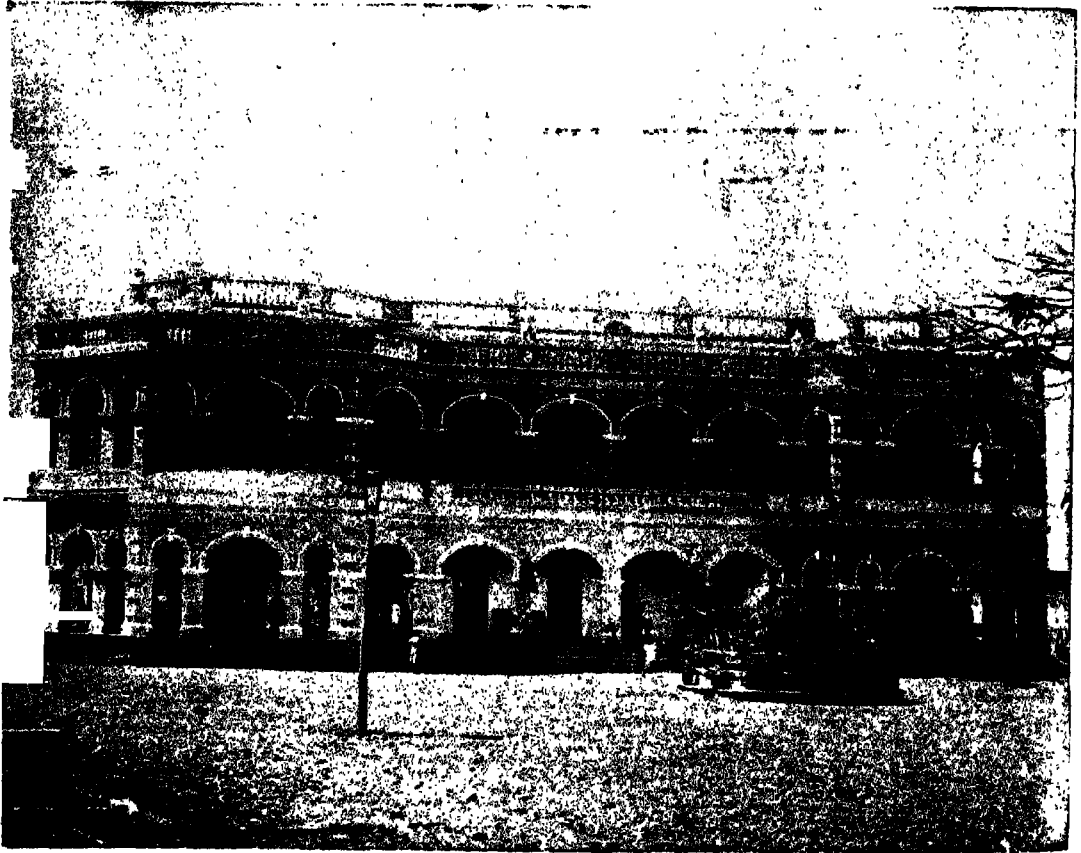
जवेरी बाग नसियाजी में दिगम्बर जैन महाविद्यालय।

सर सेठ सरूपचन्द हुकमचन्द दिगंबर जैन बोर्डिंग हाउस नशियाजी जवरीबाग के विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच सेठ साहब

श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज का भवन।
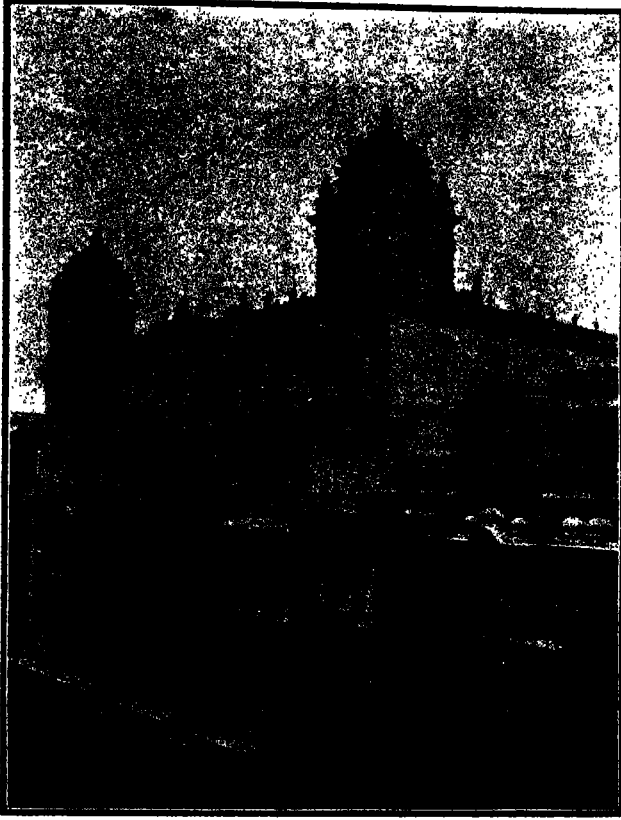
शीशमहल

दानशीला कंचनबाई
प्रसूतिगृह की
विशाल इमारत।
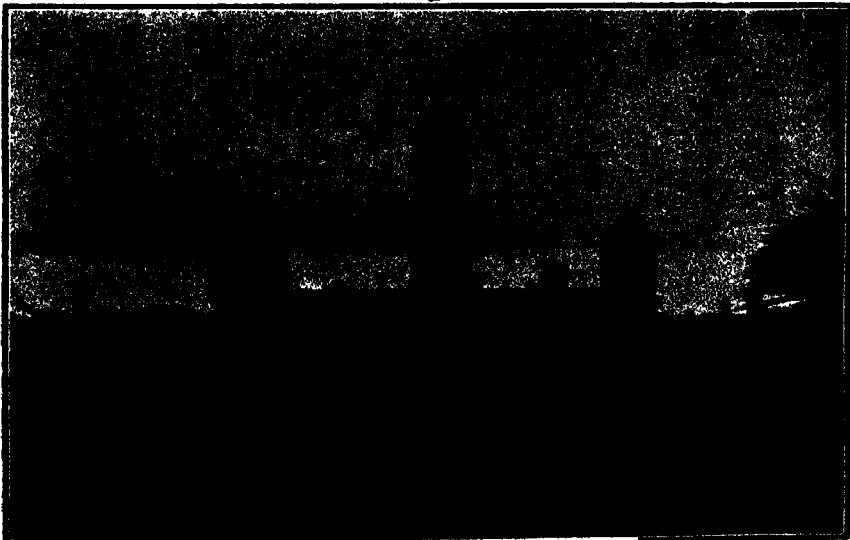
सरूपचंद हुकमचंद दिगंबर जैन महाविद्यालय के अध्यापकों और छात्रों का ग्रूप ।
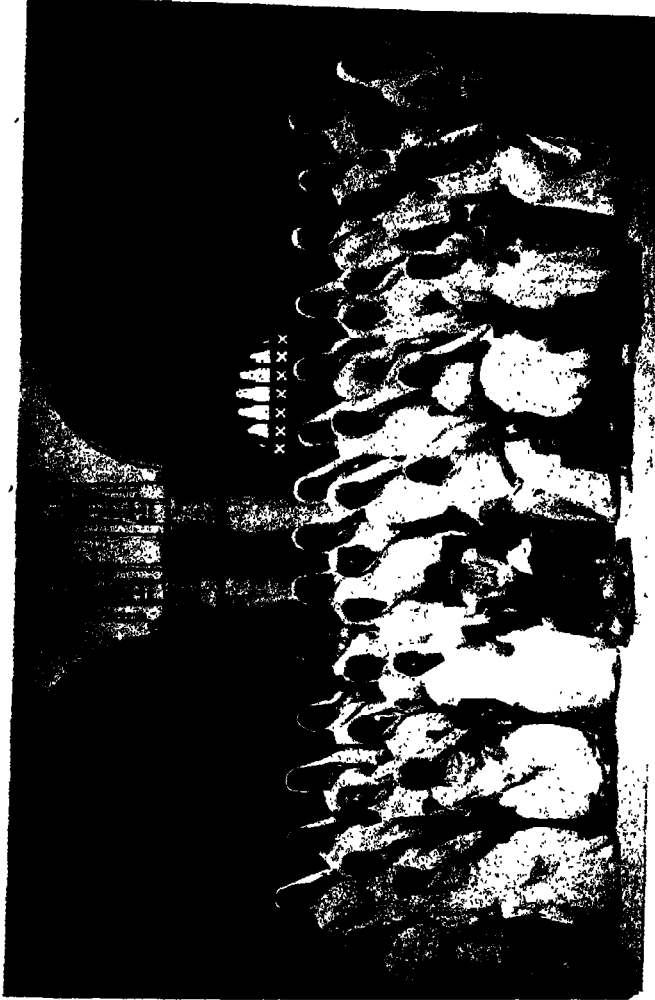
सौभाग्यवती दानशीला कंचनबाई श्राविकाश्रम की महिलाओं का ग्रुप।

पियावाली के प्रिंस यशवन्तराव आयुर्वेदिक औषधालय का एक भाग।

१९७३	बुन्देलखंड की यात्रा में खर्च	५,०००)
	वारलोन एक करोड़ का किया, उस समय आवरडे फण्ड में १०००) और चीफ कमिश्नर की मार्फत गरीबों के लिये ५००)	१,५००)
,,	गरीब प्रजा के लिये सस्ते भाव का तौल गेहूं का लगाया, उसमें घाटा उठाया	७५,०००)
१९७४	दिल्ली में लेडी हार्डिंग मेडिकल हास्पिटल में वार्ड बनवाने को	४,००,०००)
,,	मिशन गर्ल्स स्कूल छावनी की बिल्डिंग की खरीद कर दी	२५,०००)
,,	इन्दौर में आयुर्वेदीय औषधालय बनाने के लिये	१,५०,०००)
,,	दि० जैन विधवा सहायता व असहाय भोजनशाला खोलने को दिये, जो भोजनालय १००) मासिक पर चल रहा था, वह भी इसमें मिला दिया गया	१,००,७००)
१९७५	बम्बई चेम्बर आफ कामर्स को	२५,०००)
१९७६	दक्षिण फीमेल एज्यूकेशन सोसायटी पूना को	१,०००)
१९७६	श्रीमंत महाराजा साहब के पास यशवंत क्लब के लिये	५०,०००)
,,	यशवंत क्लब का काम अधूरा रह जाने से और जरूरत होने से सेठ साहब ने फिर दिये	२५,०००)
,,	जाली क्लब की उद्योगशाला को	२,१००)
,,	औषधालय व अनाथालय बड़नगर	६०१)
,,	छावनी में जैन मंदिरजी की पानड़ी में दिये	७०१)
१९७६	पब्लिक लाभार्थ मार्फत ग्वालियर महाराज के	११,०००)
१९७७	सर नाइट के इन्वेस्टीचर में जैन धर्मशाला शिमला को	१,५०१)
,,	बीकानेर में पब्लिक काम के लिये मार्फत बीकानेर महाराज	५,०००)
१९७६	श्रीमती तारादेवीजी के विवाह में संस्थाओं को	२६,०००)
१९७४	प्रिन्स यशवन्तराव आयुर्वेदीय जैन औषधालय की ओपनिंग सेरेमनी के समय, औषधालय ६००००), प्रबन्ध विभाग ४००००)	१,००,०००)
,,	अहिल्या माता गोशाला पींजरापोल की पानड़ी में	३,१०१)
१९७८	दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र शिखरजी के तीर्थ रक्षा फण्ड में	११,०००)
,,	पारमार्थिक संस्थाओं के शेयर घरू रखकर घाटा उठाया	३,००,०००)
,,	तिलक स्वराज्य फण्ड में	२,५०१)
१९७८	इन्दौर में मोदीजी की नसियां में जीर्णोद्धार के वास्ते	२,५००)
,,	श्रीमती इन्द्राबाई महाराणी साहिबा के नाम से स्त्रियोपयोगी नर्सों के लिये संस्था की बिल्डिंग बनाने को दिये	२५,०००)
,,	बड़वानी में धर्मशाला बनवाने को ४०००) और मूर्ति जीर्णोद्धार के लिये १०००)	५,०००)
,,	दिल्ली प्रतिष्ठा के समय	५१,०००)
,,	श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा में जगह-जगह पर धर्मशाला व जीर्णोद्धार व मन्दिर वगैरा बनवाने को दिये	३७,५००)
१९८०	श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा का खर्च	१५,०००)

१९८०	अभिनन्दन पत्रों के ग्रहण करने के बाद पुनः पारमार्थिक संस्थाओं के लिये	१,००,०००)
१९८१	श्री जैनबद्री महामस्तकाभिषेक के समय यात्रार्थ खर्च और कलश वगैरह के लिये	१३,०००)
,,	मक्सीजी में मुकद्दमे खर्च व धर्मशाला जीर्णोद्धार के लिये	२,५००)
,,	सागवाड़ा पाठशाला को	१,०००)
१९८३	जवरी बाग में संस्थाओं को द्वादशवर्षीय महोत्सव पर	१०,०००)
१९८४	तीनों विवाहों के उपलक्ष में	३१,०००)
,,	शिखरजी की यात्रार्थ जाने आने व दान धर्म में	५,०००)
१९८४	शिखरजी पर भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थ कमेटी के स्थायी फंड में	५,१००)
१९८५	डेली कॉलेज	२५,०००)
,,	इन्दौर के खेतीबाड़ी महकमे में स्कालरशिप के वास्ते और औद्योगिक शिक्षा वास्ते	४,०००)
,,	श्रीमती सौ. सेठानीजी के सफलतापूर्वक आपरेशन की खुशी में नेत्र अस्पताल को	९१,०००)
,,	प्रसूतिगृह में वार्ड बनवाने को	९,०००)
,,	गरीबों को अन्न-वस्त्र	५००)
१९८६	श्रीमती सौ. ताराबाई के मृत्यु समय एम. ए. एल-एल. बी. वार्ड के लिये	५,०००)
१९८६	अन्न-वस्त्र बांटा गया	१,०००)
,,	स्याद्वाद महाविद्यालय काशी को सालाना तथा फुटकर	४,०००)
,,	जैनबद्री, मूडबिद्री की यात्रा में	६,५००)
,,	थेन्कस् गिवींग फंड में	१,०००)
,,	जैन सिद्धांत विद्यालय मोरेना को ४ साल तक ६००) साल और सात साल तक ३००)	५,१००)
१९८८	पौत्र के जन्मोत्सव के समय संस्थाओं को दान	१,२५१)
१९६०	छोटी रकमें १००) से १०००) तक, जो समय समय पर दी गई	४,००,०००)
१९८९	व्रत उद्यापन के समय दान व उत्सव खर्च	१,३५,०००)
१९९०	श्रीमन्त महाराजा साहब के मार्फत किसानों को रिलीफ वास्ते दिये	२,००,०००)
१९९१-९८	विविध दान	५,००,०००)
१९९९	श्री भारतवर्षीय खण्डेलवाल दि. जैन महासभा को किशनगढ़ में और इन्दौर में	१२००२)
,,	तुकोगंज के मन्दिरजी में	२५००)
,,	कन्याश्रम भवन के मन्दिरजी को	२५००)
२०००	जवरी बाग की संस्थाओं को	६४५३०॥ॐ)
,,	श्री मक्सी जी को पालकी में	५१००)
,,	उज्जैन में	५००००)
,,	उदासीनाश्रम	३१००)
२००१	राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज को	१०००००)
,,	पालीताना शत्रुञ्जयजी की धर्मशाला को	५००१)
,,	युवराज श्री यशवंतराव के जन्म दिवस में गरीबों को सहायतार्थ	७०००१)
,,	भानुपुरा ज्ञानचन्द्रिका औषधालय में	४०००)

२००१	खण्डवा की दिगम्बर जैन धर्मशाला की पावडी में	१०००१)
२००२	लाडी की पावडी में	७१००)
,,	कलकत्ता में वीर शासन महोत्सव में	११००१)
,,	महासभा के उज्जैन अधिवेशन में	३५००)
,,	महासभा की पावडी में	७०००)
,,	ग्वालियर युवराज के नामकरण महोत्सव में	२१०००)
,,	उज्जैन में टी० बी० का अस्पताल बनाने में	४०००००)
,,	बम्बई के टी० बी० अस्पताल को	२१०००)
,,	सोनगढ़ में स्वाध्याय मन्दिर बनवाने को	२६००३)
,,	माण्टेसरी स्कूल बनने को	८२००)
,,	माण्टेसरी स्कूल में सेठानी साहब की तरफ से	४१००)
,,	श्री १०८ आचार्य कुन्थुसागरजी की स्मृति में	३५००)
	श्री कुन्द-कुन्द प्रवचन मण्डल सोनगढ़ को	११००१)
,,	स्वामी वत्सल को	५०१)
२००३	टी० बी० अस्पताल को	२०००००)
,,	उज्जैन के नरसिंगपुरा मन्दिरजी के जीर्णोद्वार में	११०००)
,,	राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज को	१०००००)
२००४	इन्दौर राज प्रजामण्डल की सहायता	२१०१)
,,	प्रतापगढ़ के यशकीर्ति दि० जैन छात्रावास को	३०००)
,,	नागपुर में जैन धर्मशाला को	२५००)
,,	सोनगढ़ के स्वाध्याय भवन को	३५१०६)
,,	बीछीया के स्वाध्याय मन्दिरजी को	५००१)
,,	अ० भा० देशीराज लोक परिषद् ग्वालियर को	५०००)
,,	जवरी बाग के स्कूल तथा बोर्डिंग बनाने को	५००००)
,,	संयोगितागंज के गर्ल स्कूल को	२१०१)
,,	श्री वर्णी विद्यालय सागर को	२७५००)
,,	बम्बई मेमोरियल फण्ड में	२०००)
,,	पंजाब शरणार्थी रिलीफ में	२५००)
,,	उज्जैन के महिला मण्डल को महारानी जी द्वारा	५०००)
२००५	मध्यभारत देशी राज लोक परिषद् को	३१००)
,,	सीकर में	८१०१)
,,	बनारस दि० जैन स्याद्वाद विद्यालय को	१०००१)
,,	श्री गोपाल दि० जैन विद्यालय मोरेना को	५०००१)
,,	गान्धी मेमोरियल फण्ड	१०००१)
,,	कांग्रेस कमेटी को	२०००)

२००५	बड़नगर अनाथालय को सेठजी और सेठानी सा० की ओर से	५२०२)
२००६	अ० भा० महिला कान्फ्रेंस को	५२०२)
,,	दि० जैन चौरासी मथुरा को	५०००)
,,	बम्बई में दि० जैन मंदिर की पानडी में	१५०००)
,,	श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा को	२१००)
,,	विविध छोटी-मोटी संस्थाओं का जोड़	१००००००)
		कुल ८० लाख

: ३ :

मानपत्र

सेठ साहब को अनेक अवसरों और अनेक स्थानों पर विविध संस्थाओं की ओर से अनेक भाषाओं में दिये गये मानपत्रों का संग्रह भी एक बड़ा ग्रन्थ बन सकता है। इन मानपत्रों से आपके सर्वप्रिय स्वरूप और व्यापक लोकप्रियता पर प्रकाश पड़ने के साथ-साथ आपकी विविध प्रवृत्तियों और आपके स्वभाव पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसीलिये उनका अध्ययन रुचिकर और उपयोगी भी है। हीरक जयन्ती के अवसर पर ही सम्वत् १९९७ में आपको लगभग तीन दर्जन मानपत्र दिये गये थे, जिसमें गुजराती, महाराष्ट्र, बोहरा आदि सभी समाजों, वर्गों, व्यापारियों, संस्थाओं आदि का समावेश था। यहां कुछ थोड़े से ही मानपत्र केवल नमूने के रूप में दिये जा सकते हैं।

(१)

हिन्दी साहित्य समिति की ओर से

श्रीमन्,

आज हम इन्दौर-निवासियों के लिए वह गौरवान्वित सुअवसर प्राप्त हुआ है, जिसके कारण हमारी अन्तरात्मा आनन्द के समुद्र में हिलोरें ले रही है। यह अवसर श्रीमान् की दानवीरता, परोपकारिता और उदारता ने ही उपस्थित किया है। देशहित के लिए श्रीमान् का आजतक १३५००००) का दान और ११००००००) की युद्ध-ऋण में सहायता करना ही उपर्युक्त सद्गुणों के प्रशंसनीय उदाहरण हैं। यही कारण है कि श्रीमान् का गौरव उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। भारत के प्रमुख समाचार पत्र "टाइम्स-आफ-इण्डिया" ने सन् १९१० में आप को "मर्चेंट-प्रिन्स-आफ-मालवा" अर्थात् "मालवे के वणिग्राज" कहकर आप की प्रशंसा की थी। सन् १९१५ में भारत सरकार ने आप को "रायबहादुर" की उपाधि से भूषित किया, सन् १९१६ में इस पुण्यधरा के परमकृपालु अधिपति श्रीमन्महाराजाधिराज राजराजेश्वर सवाई तुकोजीराव होलकर सरकार ने अपने वर्षग्रन्थि-महोत्सव के दरबार में आपको योग्य आसन से सम्मानित किया और एक उत्तम सजा हुआ हाथी सदैव उपयोग के लिए प्रदान किया। आप को इस प्रकार परम गौरव-पात्र जानकर भारत सरकार की दृष्टि फिर आप की ओर आकर्षित हुई और इसका दृश्य फल यह हुआ कि भारत सम्राट् श्री पंचम जार्ज के गत वर्ष-ग्रन्थि-महोत्सव पर आप "नाइटहुड" की उच्च उपाधि से विभूषित किए गए। आपके इस नूतन गौरव के उपलक्ष्य में आज हम मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति के पदाधिकारी तथा सभासद-गण आप को बधाई देने के लिए यहां एकत्रित हुए हैं। आप को बधाई देने में हमें सविशेष हर्ष है। कारण, आप का हिन्दी भाषा से परम अनुराग है। वह मध्य-

भारत-हिन्दी साहित्य-समिति आप की अध्यक्षता में प्रतिदिन सफलता की ओर बढ़ रही है। समस्त जैन ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करने का प्रबन्ध करने से भी आपका हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त इस वर्ष के अखिल भारतवर्षीय अष्टम-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत-कारिणी-समिति के सभापति का उच्च पद आपने जिस योग्यता के साथ भूषित किया, वह आप के राष्ट्र-भाषा-हिन्दी के प्रति परम श्रद्धास्पद अनुराग का परम प्रकाशमान प्रमाण है। भविष्य में राष्ट्र-भाषा हिन्दी की कीर्तिपताका समस्त भारतवर्ष में उड़ाने के प्रचण्ड संग्राम में आप अपने नूतन "नाइटहुड" का परम वीरता से परिचय देंगे :—ऐसी हमें पूर्ण आशा है। अब हम आपका अभिनन्दन करते हुए यही शुभकामना प्रदर्शित करते हैं कि आप निशिदिन परोपकार करते रहें और उत्तमोत्तम गौरवास्पद पदवियों से भूषित होते रहें।

भवदीय,
मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति
के
पदाधिकारी तथा सभासद्-गण

२८ जुलाई १९१८।

(२)

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा हीरक जयंती पर समर्पित मानपत्र

श्रीमन्

यह देखकर अत्यन्त हर्ष होता है कि इन्दौर की समाज ने आपकी हीरक-जयन्ती का उत्सव मनाने की आदर्श योजना करके न केवल कृतज्ञता का ही प्रकाशन किया है, बल्कि समाज के सामने धर्म और समाज की सेवा करने वालों का किस तरह बहुमान होना चाहिये, इस बात का उदाहरण भी उपस्थित किया है। इस महोत्सव में सम्मिलित होकर श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा को भी आपका अभिनन्दन करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है।

सौभाग्यशालिन्

केवल दृढ़, शुभ, सुन्दर, तेजस्वी और चारुलक्षण शरीर, अनेक गुणवती पतिभक्तिपरायणा धर्मपत्नी, विनीत, शिक्षित, सुन्दर कार्यपटु पुत्र, तथाविध होनहार पौत्र, गुणशीला पुत्रियां, सर्वथा अनुकूल बन्धुबान्धव, भोगोपभोग, अतुल वैभव और सत्संगति आदि ही नहीं; समाजमान्यता, जातिमान्यता, राज्यमान्यता और साम्राज्य मान्यता भी आपके पूर्वसंचित महान पुण्य के उदय से प्राप्त अनुपम सौभाग्य के प्रदर्शक हैं, जिससे हमारी सम्पूर्ण समाज अत्यन्त गौरव का अनुभव करती है।

विवेकशालिन्

समाज, जाति, राज्य और साम्राज्य द्वारा आपकी मान्यता के कारण वे गुण हैं, जो कि अत्यन्त दुर्लभ हैं। निःसन्देह आपने वैभव और गुणों का संग्रह करने में एकान्तवाद का किन्तु इनका उपयोग करने में मानो विरोधी धर्मों को आत्मसात् करने वाली स्याद्वादनीति का ही आश्रय लिया है। क्योंकि उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और दृढ़ अध्यवसाय के द्वारा जिस तरह आपने अपार सम्पत्ति का उपार्जन किया है, उसी तरह कला-कौशल्य, वाक् चातुर्य, दूरदर्शित्व, सत्यप्रियता, परहितपरायणता, क्षमाशीलता, निरभिमानता, सरलता, उदारता और नीतिपरायणता आदि अनेक गुणों का भी उपार्जन किया है। शास्त्रों में मेघेश्वर जयकुमार का नाम ब्रह्मचर्य और परिग्रहपरिमाणव्रत के लिये प्रसिद्ध है। किन्तु आपने आजीवन गृहस्थोचित अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करके और हाल ही में परिग्रहपरिमाणव्रत को भी लेकर इस युग में भी मानो उक्त जयकुमार के स्वरूप

को प्रत्यक्ष करके बता दिया है। इस तरह अनेक गुणों का आपने जहां संग्रह किया है, वहां स्वभुजोपार्जित लक्ष्मी का दान और भोगोपभोग में यथेष्ट व्यय भी किया है। प्रसन्नता का विषय यह है कि परस्पर में विरोधी सरीखे दीखने वाले भी दोनों ही आपके कार्य लक्ष्मी का त्याग और गुणों का अत्याग दिगम्बर जैन समाज के लिए असाधारण हैं और प्राचीन महान सद्‌गुणी श्रीमानों का स्मरण दिलाते हैं।

परोपकारिन्

आपने केवल द्रव्य का दान करके ही नहीं, शारीरिक, मानसिक और वाचिक आदि शक्तियों के दान द्वारा भी समाज का अब तक महान् उपकार किया है। सदा ही पंचायती के झगड़े मिटाकर उनमें शान्ति और प्रेम को व्यवस्थित रक्खा है, अनेकानेक संस्थाओं का संचालन किया है तथा अन्य रूपों में भी हितमय उपदेश सम्मति आदि देकर समाज का महान् हितसाधन किया है।

दानवीर

आपकी विवेकपूर्ण उदारता और दानवीरता का उल्लेख करना तो मानो सूर्य को दीपक बताने की चेष्टा करना है। जर्मन युद्ध के समय सरकार को सहायतार्थ एक करोड़ से भी अधिक का वार लोन, इन्दौर में आई हास्पिटल और पारमार्थिक संस्थाओं का उद्‌घाटन तथा इन्दौर और उसके बाहर की ओर भी अनेक जैन अजैन संस्थाओं को दिया हुआ हजारों लाखों रुपये का दान, आपके इस स्वाभाविक महान गुण को स्वयं स्पष्ट कर रहा है, जिसको कि वह कभी भुला नहीं सकती; क्योंकि इसके कारण ही आपने अनेक बार दी हुई सहायताओं के अतिरिक्त दस हजार की एकमुश्त सहायता देकर महासभा के प्रबन्ध विभाग की जड़ को सदा के लिये स्थिर बना दिया है।

तीर्थभक्त शिरोमणि

सचमुच में आपकी तीर्थभक्ति अनुपम है, क्योंकि आपने सदा और हर तरह से न केवल आर्थिक सहायता ही देकर, किन्तु मन, वचन और काय से अश्रान्त परिश्रम भी उठाकर शिखरजी, गिरनारजी, पावापुरजी, ऋषभदेवजी, मक्सीजी, पावागिरिजी आदि प्रायः सभी तीर्थों की रक्षा के लिए असाधारण भक्ति का परिचय दिया है। केवल अचेतन तीर्थों का नहीं, मुनिविहार रुकावट के समय अपूर्व स्वार्थत्याग करके तथा महान् लोकोपयोगी, *अत्यन्त दृढ और प्रायः सभी आवश्यक विषयों से सम्बन्ध रखने वाली पारमार्थिक संस्थाओं के निर्माण द्वारा* धार्मिक एवं लौकिक विद्वानों की सृष्टि उत्पन्न करके तथा असमर्थ सधर्मियों को साहाय्य करके सचेतन तीर्थों की भी रक्षा की है, जो कि आपके स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना अंग को प्रकाशित करती है।

महासम्मान्य

आपकी दानशूरता देखकर महासभा ने आपको दानवीर के पद से तथा अतुल तीर्थभक्ति को देखकर दि० जैन मालवा प्रान्तिक सभाने तीर्थभक्तशिरोमणि के पद से अलंकृत किया है। इसके सिवाय कोई एक जाति ही नहीं, सभी जातियां आपको संपूर्ण समाज का शिरोमणि समझती हैं। अपने उपर्युक्त अनेकों गुणों के कारण आप अनेकों राज्यों से भी सम्मान्य हैं। जिस तरह बीकानेर के महाराज ने आपकी प्रशंसा कर सम्मानित किया है, उससे कहीं अधिक ग्वालियर सरकार से भी आप सम्मानित रहे हैं। हाल में ही श्रीमंत आलीजा-बहादुर महाराजा साहिब ग्वालियर ने आपको अत्यन्त सम्मान के साथ खिल्लत अता फरमाई है। इन्दौर महाराजा साहिब को तो "राज्यभूषण" "रावराजा" का पद और अनेक सम्मानपूर्ण अधिकार देकर भी संतोष नहीं हुआ, तो हाल में अपनी इस वर्षगांठ के अवसर पर "राज्यरत्न" के महान् पद से आपको पुनः विभूषित किया है। ब्रिटिश सरकार ने भी रावबहादुर और सर नाईट जैसे असाधारण पद और सम्मान देकर आपको अलंकृत किया है।

आपके इस गौरव को यह श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा भी आदर के साथ देखती हुई अत्यन्त हर्ष प्रकट करती है और इस बात का अनुभव करती है कि आपने अपने इस हीरक जीवन में जो २ धार्मिक सामाजिक एवं देश की या राज्य की सेवाओं के महान कार्य किये हैं, उनसे न केवल समाज उपकृत ही हुई है, बल्कि उसका गौरव, प्रताप और प्रभाव भी वृद्धि को प्राप्त हुआ है। आपके निमित्त से प्राप्त हुए समाज के इस महान गौरव को ध्यान में रखकर महासभा इस गौरव की सम्मानन स्मृति के लिये आपको "जैन दिवाकर" के पद से पुनःविभूषित करने में अत्यन्त हर्ष का अनुभव करती है।

जैनदिवाकर

अन्त में हमारी यही भावना है कि आपके इसी तरह के अनेक महोत्सव सदा देखने को प्राप्त होते रहें। और आप—

वृषभा अजितोत्साहा:, शान्तिश्रेयोऽभिनन्दनाः । चन्द्रप्रभमुखा नित्यं वर्धमानसमृद्धयः ॥
सुमतयः शुभशीतलभावना, विनयकृद्वसुपूज्यगुणान्विताः । विमलधर्मप्रभावनभास्वरा विनतिहर्षितसन्मुनिसुव्रताः ॥
अनन्तयशसा युक्ताः पुत्रपौत्रादिभिः सह । तीर्थेश इव भूयासुः सुखिनश्चिरजीविनः ॥

श्री. भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्म–संरक्षिणी महासभा की ओरसे

विनीत

भागचन्द सोनी, रा. ब. एम. एल. ए सभापति महासभा

(३)

इन्दौर के ग्यारह पंच औद्योगिक तथा व्यापारी समाज की तरफ से हीरक जयंति पर भेंट

श्रीमन्!

हमारे आदरणीय नरेश श्रीमन्त महाराजाधिराज राजराजेश्वर सवाई श्री यशवन्तराव होलकर बहादुर जी. सी. आई. ई. ने श्रीमान् की राज्य, नगर, प्रजा और समाज की उदारतापूर्ण सेवा व सहायता से प्रसन्न होकर श्रीमन्त की २८ वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर आपको "राज्यरत्न" की उच्च उपाधि से विभूषित कर जो सम्मान प्रदान किया है, उसे हम अपनी व्यापारी समाज का ही सम्मान और आदर समझते हैं और आपका हृदय से अभिनन्दन करते हुए अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिये यह अभिनन्दन–पत्र समर्पित करते हैं।

मरचेंट प्रिंस ऑफ मालवा!

आपने केवल १६ वर्ष की अवस्था से ही व्यापार-क्षेत्र में प्रविष्ट होकर जिस प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति की है और इन्दौर को व्यापार का प्रमुख केन्द्र बनाने में जैसा प्रयत्न किया है, वह सबको विदित ही है। कलकत्ते में ज्यूट मिल, स्टील का कारखाना, बीमा कम्पनी आदि बड़े-बड़े व्यवसाय खोलना, भारतवर्ष में नहीं वरन् विदेशों में भी व्यापार द्वारा अपने नाम की छाप जमाना और करोड़ों की सम्पत्ति उपार्जन करना, इसी प्रकार मालवा के कई नगरों में रुई के जीन प्रेस, उज्जैन में आदर्श हीरा मील और खास इन्दौर में कपड़ों की बड़ी-बड़ी मीलें आदि आपके साहस, उद्योग, धैर्य तथा दूरदर्शिता के उदाहरण हैं। इनके साथ ही साथ व्यापारिक कुशलता और अनुभव आपका इतना बढ़ा चढ़ा है कि आपने वायदे के सौदों में भारतवर्ष में ही नहीं; किन्तु विदेशों में भी अपना आतङ्क जमा रखा है। पर, हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि आप उसकी अस्थिरता को भी अच्छी तरह समझते हैं,जैसा कि आपने अग्रवाल-महासभा के इन्दौर-अधिवेशन में सट्टे के विरोध का प्रस्ताव उपस्थित करते हुए अपने भाषण में कहा था।

आपकी औद्योगिक और व्यापारिक कुशलताओं को देखकर यदि सुप्रसिद्ध अंग्रेजी समाचार पत्र 'टाइम्स

आफ इंडिया ' आपको 'Merchant Prince of Malwa' घोषित करे, तो उसे हम उचित ही समझते हैं और इसमें अपना गौरव एवं सौभाग्य समझते हैं कि हमारे मालवा प्रान्त के व्यापारी समाज की आप सरीखे प्रतिभा-सम्पन्न नरर-त्न शोभा बढ़ा रहे हैं। आपके सम्बन्ध में आचार्य सर पी. सी. राय ने आपको सर्वश्रेष्ठ व्यापारियों में गणना कर जो उद्‌गार प्रगट किये हैं, उससे आपका गौरव तो बढ़ता ही है, पर हम भी उसे अपना गौरव समझते हैं।

राज्य-रत्न !

आप न केवल अपने ही व्यापार का किन्तु राज्य के अनेक प्रकार के व्यापार तथा व्यापारी वर्ग का ध्यान रखते हैं और उन्हें सुसंगठित बनाने तथा उनकी कठनाइयों को दूर करने में भी सदा प्रयत्नशील रहते हैं। इसी प्रकार राज्य की ओर से जब किसी व्यापारी समूह को कोई विशेष सुविधा दिलाने की आवश्यकता होती है, तब आप उसके अगुआ का भार ग्रहण कर अपने प्रभाव, राजमान्यता और चातुर्य से उसमें सफलता प्राप्त कर हमें विस्मयविमुग्ध कर देते हैं। आपकी इन अमूल्य सहायताओं को हम कभी नहीं भूल सकते। कॉटन मार्केट-कमेटी, सोना चाँदी सराफ एसोशिएशन, तुकोजीराव क्लाथ मार्केट, मिल ओनर्स एसोसियेशन आदि की स्थापना में प्रमुख भाग लेकर इन व्यापारों और उद्योगों को सुसंगठित करने के साथ ही साथ इन्हें सरकार से जो अनेक प्रकार की सुविधाएं दिलाई हैं, वे इन व्यापारों और संस्थाओं के इतिहास में सदा आदर की दृष्टि से देखी जायेंगी और श्रीमान् की सम्यक् सहायताओं के लिए हम आपके सदा कृतज्ञ बने रहेंगे।

राज्यभूषण !

इतने धनीमानी, प्रतिभाशाली एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हुए भी आपकी नम्रता, आपका सौजन्य, आपकी सरलता एवं आपकी मिलनसारिता अद्वितीय है। आपकी हर्ष एवं विषाद दोनों में सम भावना योगियों के सदृश है। जो व्यक्ति आपसे एक बार मिल जाता है, वह आपके उक्त गुणों से प्रभावान्वित होकर सदा के लिए आपका प्रेमी बन जाता है। यही कारण है कि नरेश, वॉइसराय, गव्हर्नर्स, रईस, देशनेता, पंडित, बाबू, गरीब और अमीर आदि सभी श्रेणी के व्यक्ति आपसे मैत्री एवं प्रेम रखते हुए आपको अपना ही समझते हैं और आपकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं।

दानवीर !

आप न केवल सम्पत्ति उपार्जन करना ही जानते हैं, किन्तु उसका सुचारु रूप से उपभोग करने में आप अनुकरणीय हैं। जहाँ आपके वैभव को प्रगट करने वाली राजसी ठाठ की अनेक इमारतें इन्दौर नगर की शोभा बढ़ा रही हैं, वहीं आपके द्वारा लाखों रुपयों के दान से स्थापित महाविद्यालय, प्रिंस यशवंतराव जैन औषधालय, प्रसूतिगृह, कंवरीबाग विश्रांति भवन, श्राविकाश्रम, अनाथालय, बोर्डिङ्ग आदि उपयोगी संस्थाएं आपके उदार हृदय एवं दानवीरता का परिचय देती हैं। इसी प्रकार लेडी हार्डिङ्ग हास्पिटल, सर हुकमचन्द आई हास्पिटल, किंग एडवर्ड हास्पिटल, कृषक फण्ड आदि संस्थाएं आपके लाखों रुपयों के दान से जनता को सदा के लिए कृतज्ञता की पाश में बांध लेती हैं और धनीमानियों के सम्मुख त्याग और उदारता का अद्वितीय एवं ज्वलंत उदाहरण उपस्थित करती हैं।

रावराजा !

आप न केवल धन-धान्य से ही परिपूर्ण हैं, किन्तु शरीर संगठन, पुत्र-पौत्र आदि सातों सुखों से भी आप पूर्ण रूपेण सुखी हैं। ऐसा सौभाग्य बहुत कम व्यक्तियों को प्राप्त होता है। साथ ही आपके पुत्र भी उच्च शिक्षा से सुशिक्षित, उदार एवम् समस्त जनता के प्रिय बन रहे हैं। इस तरह सभी प्रकार की वैभव विभूतियों

से श्रीमान को विभूषित देखकर श्रीमंत होलकर नरेश ने जो 'रावराजा' की उपाधि प्रदान की है, वह उचित ही है।

सर सेठ साहब !

यद्यपि आपकी कृपा से अनेक सामाजिक, धार्मिक और व्यापारिक संस्थाएं संस्थापित हैं और सुचारु रूप से चल रही हैं, तो भी हमें इस समय एक सुसंगठित 'चेंबर आफ कामर्स' की आवश्यकता प्रतीत होती है। हमें पूर्ण आशा है कि यह भी कभी आपके सहयोग से बहुत शीघ्र पूर्ण होगी और देश की प्रमुख चेंबर आफ कामर्स संस्थाओं के साथ हम भी अपनी संस्था के द्वारा सहयोग देकर अपने व्यापार उद्योग धन्धों की विशेष उन्नति कर सकेंगे।

अन्त में हम फिर आपका हृदय से अभिनंदन करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि आप सकुटुम्ब चिरायु होकर धन-धान्य, सुख समृद्धि, मान सम्मान आदि से उत्तरोत्तर वृद्धिंगत हों और आपके द्वारा सदैव समाज, देश, धर्म, राज्य तथा नगर की प्रगति उत्तरोत्तर उन्नति की ओर परिचालित होती रहे।

आपके इन्दौर के
ग्यारह पंच औद्योगिक तथा व्यापारी वर्ग

(४)

सौराष्ट्र की जनता की ओर से

यहां विराजमान आत्मस्वरूपस्थ सद्गुरु श्री कानजी स्वामी, सदुपदेश द्वारा वीतराग विज्ञानता का प्रचार करने में सतत प्रयत्न कर रहे हैं। यह बात आपको मालूम होते ही आप धर्मप्रेमी के नाते सहकुटुम्ब संवत् २००१ में पधार कर, सद्गुरुदेव श्री के प्रवचन श्रवण का लाभ लेकर प्रमुदित होते हुए उत्साहित होकर उसी समय आपने रु० १२५०१), आपकी सौ० धर्मपत्नी ने १२५०१), आपके स्वर्गस्थ बन्धु सेठ कल्याणमलजी साहब की धर्मपत्नी ने रु० ५००१) तथा साथ पधारे हुए माननीय सेठ फतहचन्दजी सेठी ने ५०१) प्रदानकर उदारता दिखाई और धर्म भावना में वृद्धि की।

एक विशाल प्रवचन मंडप १००×५० फीट का बनाने का निर्णय करके आपको शिलान्यास करने को यहां पधारने का आमन्त्रण दिया गया और आपने सहर्ष स्वीकार कर यहां पधारने का कष्ट कर शिलान्यास विधि की, उस मांगलिक प्रसंग पर भी आपने ११००१) रु० देकर धर्म-प्रेम प्रदर्शित किया। उसके बाद आप श्री सद्-गुरु देव के, यहां के जिज्ञासुओं के और यहां से फैलते हुए सत्य धर्म के प्रति सतत सद्भावना रखते हैं। आपको इन्हीं गुणों से आकर्षित हो 'भगवान श्री कुन्द-कुन्द प्रवचन मंडप' के उद्‌घाटन करने को आमन्त्रण दिया गया और उसे सहर्ष स्वीकार कर, वृद्धावस्था और अस्वस्थ होते हुए भी; बहुत दूर से आपने व श्रीमान् रायबहादुर राजकुमारसिंहजी साहब, आपके समस्त कुटुम्ब और मित्र वर्ग ने यहां पधारने का कष्ट किया. तथा कल आपने रु० ७००१), ७००१) आपकी धर्मपत्नी सौ० दा शी. कंचनबाईजी ने, ७००१) श्री राजकुमारसिंहजी ने, ७००१) आपके पौत्र राजाबहादुरसिंहजी ने, ७००१) आपकी पुत्रवधू सौ० प्रेमकुमारीदेवीजी ने प्रदान कर उदारता दिखाई। इससे हम सब आपका हृदय से उपकार मानते हैं।

आपने अपनी यात्रा को (सोनगढ यात्रा) नाम देकर सफल किया है और सोनगढ (सुवर्णपुर) को तीर्थ स्थान के समान प्रसिद्ध कर दिया है।

आप सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति निरन्तर हार्दिक भक्ति दर्शा रहे हैं और साथ ही आहारदान, शास्त्र-

दान, अन्नदान, औषधिदान में लाखों रुपया दे संस्थाओं की स्थापनाकर पुण्य कार्य कर रहे हैं, जो कि प्रसिद्ध है। विशेष क्या कहा जाय, आप इस समय पचहत्तर लाख रुपये से अधिकका राजाशाही बृहद्दान करके जैनधर्म की कीर्ति की ध्वजा फहरा रहे हैं।

अन्त में आप सदृश उदारचित्त सद्धर्मप्रेमी श्रीमान् की, श्री राजकुमारसिंहजी और आपके समस्त कुटुम्ब की सद्धर्म विषयक अभिरुचि तथा धर्म प्रभाव के कार्यों के करने की अभिलाषायें दिन प्रतिदिन वृद्धिंगत होती हैं, इसी हार्दिक शुभ कामना से फूल पांखड़ी रूप अभिनन्दन पत्र आपके कर कमलों में अर्पण करते हैं।

हम हैं आपके गुणानुरागी

सोनगढ़ स्वर्णपुरी — *दोशीरामजी माणेकचन्द तथा अन्य लोग*

(४)

नागपुर के रुई व्यापारियों की ओर से

मान्यवर,

आप प्रथम बार हमारे नगर में पधारे हैं, यह हम अपना सौभाग्य समझते हैं। आप भारत के प्रमुख ही नहीं, चोटी के व्यवसाइयों में से हैं। अतः हमारे यहां आगमन से हमें परम आनन्द हो रहा है।

भारतीय व्यवसाय में आपका क्या स्थान रहा है, यह इस देश में ही नहीं; बाहर भी विख्यात है। आप जिस वक्त क्रियात्मक रूप में काटन व्यवसाय में थे, "काटन किंग" इस नाम से विख्यात थे। किंवदंति प्रसिद्ध है कि उस वक्त "आज का भाव तो यह है, कल का भाव सेठ हुकमचन्द जाने" ऐसा लिखा जाता था। किसी व्यापारी के गौरव शिखर की इससे बड़ी क्या महिमा हो सकती है।

आप व्यवसाय में ही नहीं, उद्योग क्षेत्र में भी अगुआ हैं। जिस वक्त कलकत्ते में सारे उद्योग प्रायः अंग्रेजों के हाथ में थे, उस वक्त आप भारतीय व्यापारियों में से प्रमुख रूप से उद्योग क्षेत्र में उतरे। इन्दौर राज्य के आप सबसे बड़े उद्योगपति हैं। यह भी आपका महान् गौरव है।

सबसे प्रचण्ड व्यवसाय रहते हुये भी आपने यह प्रतिज्ञा भी की कि रुई का सट्टा कभी नहीं करेंगे। आपका यह उज्ज्वल उदाहरण सट्टेवालों के लिये अनुकरणीय है।

आपने जिस प्रकार अटूट धन सम्पत्ति अर्जित की, उसी प्रकार मुक्त हस्त से दान भी दिया। जैनधर्म एवं अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को लाखों का अगणित दान उदारता का साक्षात् प्रतीक है।

आपमें अनेक गुण व विशेषताएं हैं जिनसे सभी भारतीय व्यापारी परिचित हैं। इस छोटी सी जगह में उन सबका वर्णन संभव नहीं है।

आपके प्रति अपने आंतरिक आदर के साथ हम पत्र पुष्पांजलि आपकी सेवा में अर्पित करते हैं।

हम हैं आपके विनम्र

नागपुर के रुई व्यापारी

(६)

सीकर की जनता की ओर से

महानुभाव,

आज श्रीमान् लाला परसादीलालजी पाटनी द्वारा सुसम्पादित इस दिगम्बर जैन पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव मे समुपस्थित आपको पाकर हम समस्त सीकरनिवासियों को परम हर्ष हुआ है। हम आपके गुणपुंजों की एक लम्बे समय से प्रशंसा सुनते थे और चाहते थे कि आपका कुछ सम्पर्क प्राप्त करें।

अनेकों उपाधिविभूषित आपको जैनसमाज, इन्दौर राज्य तथा बड़ी सरकार ने भी अनेकानेक उच्चतम उपाधियों से विभूषित कर अपनी गुणज्ञता और कृतज्ञता का परिचय दिया है, जिसका प्रत्येक मानव क अभिमान है ।

इस समय आपकी अवस्था वृद्धत्व की ओर समुपस्थित है और इसी ने हमें आपका अभिनन्दन करने के लिये भी विवश किया है ।

आपकी योग्यता और प्रतिभा इस वृद्ध वय में भी इतनी है कि आप अपने तत्संपन्न व्यक्तित्व से गहन से गहन कार्यों को सुलझा देने की शक्ति रखते हैं । जहाँ तक हम समझते हैं, आपके इन गुणों से ही आपकी असाधारण लोकप्रियता है ।

महानुभाव,

यद्यपि आपने जैन समाज में जन्म पाया है और आप जैन कुल को ही अलंकृत करते हैं; परन्तु आप अपने सुन्दर गुणों से सभी समाजों के आदरणीय और प्रेमास्पद पुरुषोत्तम हैं । आपने जैन संस्थाओं में तो शिक्षा, स्वाध्याय, धर्म आदि के प्रचार के लिये लाखों रुपयों का दान दिया है । परन्तु हिन्दू विश्वविद्यालय आदि महान संस्थाओं में भी अपनी महान् सम्पत्ति का उपयोग कर सभी में अपनी असाधारण लोकप्रियता का परिचय दिया है ।

हम आपने में जो उत्साह और लगन देखी, उससे विदित होता है कि आप परोपकार और सामाजिक धार्मिक कार्यों में एक युवा से भी बढ़कर सहयोग देने वाले व्यक्ति हैं ।

आपकी निरभिमानता व सरलता आदि गुणों का प्रभाव सम्पर्क में रहने से पड़े बिना नहीं रहता । वास्तव में हम सभी लोग परम्परा से विश्रुत आपके गुणों से पर्याप्त प्रभावित हुए हैं ।

हमारी भगवान् से प्रार्थना है कि आप निरोग स्वस्थ रहते हुये शतायु हों और प्रत्येक दिशा में अधिक समुन्नति करते हुए देश के गौरव को और भी अधिक बढ़ावें।

१६ मार्च १९४८ ईस्वी,

हम हैं आपके
समस्त सीकर निवासी

: ४ :

सार्वजनिक भाषण

सेठ साहब के विचारों का वास्तविक परिचय आपके सार्वजनिक भाषणों से मिलता है । आपके सार्वजनिक भाषण भी इतने अधिक हैं कि उनका संग्रह भी एक सुन्दर ग्रन्थ का रूप धारण कर सकता है । सेठ साहब की सार्वजनिक प्रवृत्तियों का क्षेत्र कितना व्यापक और विस्तृत था,—यह यहां दिये जाने वाले भाषणों से भी प्रगट है । यहां केवल नमूने के रूप में चुने हुये कुछ थोड़े से ही भाषण दिये जा सके हैं ।

(१)

स्वदेशी धर्म

जनवरी १९३३ में इन्दौर में विशाल स्वदेशी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था । आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने उसका उद्घाटन किया था । तब सेठ साहब ने स्वागताध्यक्ष के नाते जो महत्त्वपूर्ण भाषण दिया था, वह यह है :—

हमारे इस नगर के लिए मैं इसे बड़े आनन्द और अभिमान की बात समझता हूँ कि स्वदेशी और स्वदेशी प्रदर्शिनी की जो एक जबरदस्त लहर इस देश में आई है, उसके कुछ हिस्से के भागीदार हम इन्दौरवाली भी हो रहे हैं। इन्दौर मध्यभारत का तथा आसपास के देशी राज्यों का केन्द्र है। विद्या और व्यापार के लिए भी यहां अनेक अनुकूलतायें और साधन हैं। यहां के लोग शिक्षित और कुछ आगे बढ़े हुए होने के कारण लोग स्वदेशी के महत्व को समझते हैं और अपने इन भावों को वाणी और आचार में लाने की कुछ कोशिश भी करते हैं। इसलिये भारतवर्ष के स्वदेशी व्यापार के यहां भी आकर्षित होने की बहुत भारी संभावना है। इन्दौर राज्य में और मध्यभारत में कच्चे माल का बहुत बड़ा खजाना है और हमारे आगे बहुत उज्ज्वल भविष्य मुसकुरा रहा है। मुझे आशा है कि यहां के नरेश, अधिकारी लोग, धनिक और जनता के अगुआ इस बात की ओर जरूर ध्यान देंगे कि कच्चे मालरूपी इस अखूट साधनसम्पत्ति का किस तरह अच्छे से अच्छा उपयोग किया जाय।

केवल भारतवर्ष ही नहीं, सारे संसार के लोग आज इस स्वदेशी की धुन में लगे हुए हैं। पर, उनकी 'स्वदेशी' की कल्पना में और हमारे स्वदेशी धर्म में बड़ा अन्तर है। वहां भी अनाज और अनेक प्रकार का कच्चा माल खूब पैदा होता है। इतना पैदा होता कि जिसकी उन्हें जरूरत नहीं। इस कच्चे माल की अनेक तरह की चीजें वे अपने कारखानों में बनाते हैं और फिर उन तैयार चीजों को और अपनी जरूरतें पूरी करने पर बचे हुए कच्चे माल को बेचने के लिये नये-नये बाजार ढूंढते हैं। इस पर उनमें चढ़ा-ऊपरी होती है और कई बार लड़ाई तक की नौबत आ पहुँचती है। पर कारखानों के इस युग में जहां बहुत से आदमियों का काम अकेली एक मशीन कर लेती है और जहां सारी दुनिया पैसे के पीछे पड़ी हुई है, माल की खूब पैदावार होने पर भी बहुत से लोगों को पेटभर खाना और तन पर कपड़ा भी नहीं मिलता। वे चीजें खरीदने के लिए उनके पास पैसा नहीं रहता। इस कारण पश्चिम के बहुत देशों में दिन ब दिन बेकारी बढ़ती जा रही है। लाखों लोग भूखों मर रहे हैं,जिनके पेट भरने की समस्या वहां के अधिकारियों को उलझाये हुए है। संसार की आर्थिक अवस्था डांवाडोल हो रही है। जिसके कारण समय समय पर सिक्के की कीमत भी बदलती रहती है। जिसके असर से व्यापार को गहरी हानि पहुँचती है। आज पश्चिम के अर्थशास्त्री और राजनितिज्ञ इन जटिल समस्याओं के सुलझाने में लगे हुए हैं।

हालत तो हमारे देश के व्यापार की भी ऐसी ही है। बाहर की परिस्थिति का कुछ असर तो है ही, परन्तु हमारे घर की समस्या उसे अधिक जटिल बना रही है। व्यापार और खेती की हालत गिर रही है। फी सदी करीब सत्तर आदमी खेती में लगे हुए हैं। इससे उस पर बहुत बोझा पड़ रहा है। फिर हमारे खेती करने के ढंग और औजार इतने पुराने हैं कि किसान को अपनी और अपने परिवार वालों की मजदूरी का मुआवजा तक नहीं मिल सकता। बेचारा यह नहीं जानता कि सालभर दो बार भरपेट खाना और तन पर पूरा कपड़ा पहनना कैसा होता है। ऐसा जीवन बिताने के लिये भी उसे कर्ज करना पड़ता है। अज्ञान और दुबले किसान की खेती पूंजी और शास्त्रीय ज्ञान के अभाव में कैसे फूले फलेगी? ऐसी हालत में बहुत से लोग रोजी के लिए शहरों में बसते जा रहे हैं और गांव उजड़ रहे हैं।

पहले जमाने में प्राय: हरएक गांव अपनी मामूली जरूरत की चीजें खुद ही पैदा कर लेता था। उनकी जरूरतें भी बहुत थोड़ी थीं। इससे गांवों का पैसा बाहर नहीं जाता था। अब तो गांवों में सारी चीजें बाहर से आती हैं। खेती की उपज सीधी राज के घर में जाती है। इसलिए अनाज, लगान, कर्ज और दूसरी चीजें खरीदने में किसान का घर धुल जाता है। एक पैसा नहीं बच पाता।

मध्यवर्ग के लोगों की हालत भी अच्छी नहीं। पटवारी, वकालत, मास्टरी और डाक्टरी के सिवाय कोई धन्धा उनके लिए खुला नहीं है। इन धन्धों में भी "मांग से ज्यादह माल" वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

बेकारी बेहद बढ़ रही है। सर विश्वेश्वरैया का अन्दाज है कि भारतवर्ष में चार करोड़ लोग बेकार हैं। पता नहीं इसमें उन्होंने उन बैरागी और भीख मांगने वाले लोगों को भी शरीक किया है या नहीं, जिनके अन्दर काम करने की ताकत होने पर भी जो काम नहीं करते।

एक ओर देश में कच्चे माल का अखूट खजाना है और दूसरी ओर देखिए इस हृदयद्रावक बेकारी को, जो देश में फैली हुई है। फिर भी बाजारों में दुकानों पर विदेशी माल बेहद भरा पड़ा है और धड़ाधड़ बिक रहा है, जिसकी वजह से करोड़ों रुपये दूसरे देशों में जा रहे हैं। साठ करोड़ रुपये केवल कपड़े के पीछे हम विदेशों में भेज देते हैं। दस बाहर करोड़ रुपये की विदेशी चीनी हम मंगाते हैं। इनके अलावा मशीनें, मोटरें, रंग, खिलौने, दवायें, रासायनिक चीजें और अन्य खाने के पदार्थों के पीछे करोड़ों रुपये का धन हम हर साल बाहर भेज देते हैं, जिसकी वजह से व्यापार के लिये पूंजी की हमेशा बड़ी तंगी रहती है। यहां के लोगों को काम न मिलने के कारण बेकारी तो रहती ही है, जिसकी वजह से संसार के और देशों की अपेक्षा यहां के लोगों की रहन-सहन बहुत नीची है। ऐसी हालत में भारतवर्ष का यह दारिद्रय और बेकारी हटाने का एकमात्र उपाय स्वदेशी ही है। यह आर्थिक सवाल है और बिना स्वदेशी का जोर-शोर से प्रचार किये कभी हल नहीं हो सकता। इसमें राजनीति की कोई बात नहीं। राजनैतिक आन्दोलन से उसका सम्बन्ध लगाने के कारण खामोख्वाह उसे राजनैतिक स्वरूप मिल जाता है। आज देश के सामने जीवन मरण की जंगी और जटिल समस्या खड़ी है। उसी का यह प्रत्यक्ष आर्थिक स्वरूप है। यह प्रदर्शिनी आज खुल रही है। उसे आप सब खूब ध्यान के साथ देखिये। इसके देखने से आपके ख्याल में आयेगा कि शास्त्रीय ज्ञान और नये-नये साधनों की सहायता से पहिले कच्चे माल की पैदायश में तरक्की होना चाहिये। ऊंचे दरजे की कपास, बढ़िया गन्ना, आला दरजे की तम्बाकू, खूब बड़े-बड़े आलू, मनमाना तेल देनेवाली मूंगफली पैदा करना जरूरी है। फिर इस कच्चे माल की अखूट संपत्ति का उपयोग करके तरह-तरह की चीजें बनाने में हमें तरक्की करनी चाहिये। हिन्दुस्थान के लोग जग उठे हैं। मगर अभी वैज्ञानिक साधनों का अच्छी तरह प्रचार यहां नहीं हो पाया है। जितने बड़े पैमाने पर पूंजी और शास्त्रीय ज्ञान का सहयोग होना हमारे देश के लिये जरूरी है, उसकी अभी बहुत कमी है। विदेशी बैंक और इन्श्युरेन्स कम्पनियां हमारे देश की गाढ़ी कमाई को खींच कर अपने व्यापार को पुष्ट कर रही हैं। इस तरफ भी हमें ध्यान देना चाहिये। मैं आशा करता हूँ कि इन बातों का शास्त्रीय ज्ञान बढ़ाने वाली योजनाएं अब से ज्यादा बड़े पैमाने पर काम में लाई जायंगी। दिन ब दिन ज्यादा इन्श्युरेन्स कम्पनियां खुलेंगी और वे देशी पूंजी द्वारा देशके उद्योगधन्धों में नई जान डालेंगी। पूंजी वाले अपने देश भाइयों के शास्त्रीय ज्ञान से पूरा लाभ उठावेंगे, उनकी कद्र करेंगे, उन्हें आगे बढ़ावेंगे, पूंजी और शास्त्रीय ज्ञान का सहयोग दिन ब दिन बढ़ता जायगा। यहां की कृषि सम्पति और वन सम्पति का हम अपने ही देशमें उपयोग करने लगेंगे और फिर चंद ही बरसों में हमारा यह प्यारा देश केवल स्वावलम्बी ही नहीं, बरन सुसम्पन्न भी बन जायगा।

खादी के बारे में मैं क्या कहूँ? उसका रहस्य तो आचार्य राय साहब की मूर्ति को देख लेने भर से ही आप जान सकते हैं। मैं तो एक मोटी सी बात जानता हूँ और उसे खास तौर पर आपसे कह देना चाहता हूँ। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि खादी इस देश का प्राण है। गावों के लोगों के लिये अपने खाली समय का उपयोग करके दो पैसे दूसरे देशों को जाने देने से रोकने और अपनी अधूरी नाकाफी कमाई में मदद पहुँचाने वाला ऐसा कोई दूसरा साधन नहीं। यही एक ऐसा उपाय है, जो दिन ब दिन उजड़ने वाले गावों की रक्षा कर सकता है और करोड़ों भूखों मरने वाले उनके निवासियों को बचा सकता है। मालूम होता है कि इसीलिये देश के बड़े-बड़े नेताओं ने इसे अपने कार्य में ऐसा प्रधान स्थान दे रखा है। इसीलिये खादी का ज्यादा से ज्यादा प्रचार

होना अत्यंत आवश्यक समझता हूँ ।

इससे स्वदेशी मिल के कपड़े को दूर करना और मिलों को हानि पहुंचाना ऐसा मतलब नहीं है। हिंदुस्थान की कपड़े की मांग देशमें पूरी होती नहीं । साठ करोड़ का कपड़ा बाहर से आता है और बिकता है। हमारे देश की रुई का बना हुआ सूत और उसका कपड़ा हमारे मिलों में बनता है । यह शुद्ध स्वदेशी है । इसे आम लोगों ने वापरना चाहिये और मील के उद्योग को बढ़ाना चाहिये ।

सिर्फ एक बात और कहके मैं अपने भाषण को समाप्त करूंगा। प्रदर्शिनी करना जनता में एक तरह का स्टीम भरना है। प्रदर्शिनी देखने से लोगों के दिलों में स्वदेशी वस्तुओं का प्रेम और अभिमान पैदा होता है। अपने ही देश की बनी हुई चीजें खरीदने की प्रेरणा थोड़ी ही देर के लिये ही क्यों न हो; लेकिन, पैदा अवश्य होती है । स्वदेशी वस्तुएं पैदा करने के विचार भी दिमाग में चक्कर खाने लगते हैं । पर, ये विचार भी थोड़ी ही देर तक कायम रहेंगे । इनको स्थिर करने के लिये व्यवस्थित प्रचार और आन्दोलनरूपी खुराक की सबमें बड़ी जरूरत है । मध्यभारत स्वदेशी संघ इसी कार्य के लिये स्थापित हुआ है और मुझे विश्वास है कि वह बहुत जल्दी इन्दौर की तरह मध्यभारत के दूसरे पड़ोसी राज्यों में भी अपना जीवनदायी कार्य फैलावेगा। इसको इन्दौर में स्थायीरूप देने के लिये यहां पर स्वदेशी चीजों का म्यूजियम (संग्रहालय) और स्वदेशी चीजें मंगाने के लिये स्वदेशी एजन्सी जैसी संस्था भी इसी सिलसिले में निर्माण होनी चाहिए और वह जरूरी होगी ही, ऐसी मुझे आशा है ।

अंत में मुझे हमारे कार्यकर्त्ता मित्रों के संतोष के लिये यह घोषित कर देना जरूरी मालूम होता है कि अब मैं आगे अपने घर में जहां तक बन सकेगा, वहां तक देशी ही चीजें काम में लाऊंगा। इस बात का मैं हमेशा पूरा ध्यान रखूंगा ।

ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि यह प्रदर्शिनी सफल हो और हमारी इस मातृभूमि में स्वदेशी धर्म की विजय हो ।

(२)

महासभा के मंच पर से

सन् १९३९ में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा के देवगढ़ अधिवेशन के सभापति पद से सेठ साहब ने निम्न लिखित महत्त्वपूर्ण भाषण दिया था :—

धर्म एक ऐसी वस्तु है, जिसमें जीवनमात्र के उद्धार करने की शक्ति निहित है । असल में धर्म का 'धर्म' नाम इसी कारण पड़ा है कि वह समस्त संसारी जीवों को दुःख समुद्र से निकाल कर उन्हें उत्तम सुख में धरता है। लेकिन, संसार की परिस्थिति आज बड़ी विकट हो गई है। 'धर्म' से लोगों को उपेक्षा होती जा रही है । धर्म विरोधी साहित्य का भी निर्माण और प्रचार आज साहित्य-संसार में बड़ी तेजी से हो रहा है । जीव और ईश्वर के अस्तित्व तक को मेटने के लिए साहित्य की सृष्टि हो रही है । धर्माचरण की ओर लोगों की रुचि मन्द पड़ती जा रही है । पाप प्रवृत्तियां प्रबल रूप धारण करती जा रही हैं और वे यहां तक बढ़ रही हैं कि उनका करना-कराना आज एक साधारण बात गिनी जाने लगी है ।

कुछ समय पूर्व जहां पर लोग धर्मायतनों और धर्म-मूलक संस्थाओं के निर्माण में ही अपनी संपत्ति और मन वचन काया की शक्ति का सदुपयोग किया करते थे, आज वहाँ अधर्मायतनों और धर्म-विरोधिनी संस्थाओं के निर्माण करने कराने में अपनी विभूति और वियोग का दुरुपयोग करते नजर आ रहे हैं । इन बढ़ी हुई पाप-प्रवृत्तियों के प्रभाव से भविष्य अन्धकारमय प्रतीत हो रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि दुष्षमा दुष्षमा काल

की प्रवृत्तियाँ अभी हाल में ही होना चाहती हैं। शास्त्र-आज्ञा के अनुसार तथा अपने अनुभवों के आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि पाप-प्रवृत्तियों का परिणाम कभी भी सुन्दर नहीं निकल सकता। उभय लोक हानिकारक इस विपरीत प्रवृत्ति का कारण यदि आप सोचेंगे, तो आपको प्रतीत हो जायगा कि इसके कारण दो हैं। एक तो धार्मिक ज्ञानशून्य कोरा शिक्षण और दूसरा धार्मिक संस्थाओं का शैथिल्य। समाज को चाहिये कि अपनी संतान को धार्मिक शिक्षा से शिक्षित करें और धर्मप्रचारक संस्थाओं के द्वारा धर्म का बड़ी तेजी से प्रचार करे। तभी अधर्म का प्रवाह रुक सकेगा।

धर्म शब्द को रूढ़िवाद मानने वाले और धर्म पर विश्वास न करने वाले बन्धु वास्तव में यह नहीं जान पाये हैं कि वे जिन जिन सामाजिक या राष्ट्रीय उन्नतियों की आकांक्षा रखते हैं, उन सबके उपाय 'धर्म' शब्द की व्याख्या में निहित हैं। मैं उन्हें दृढ़तापूर्वक विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि धार्मिक तत्वों की रचना इतनी विशाल पैमाने पर की गई है कि उसके अनुसार मनुष्य वर्ग यदि प्रवृत्ति करता चला जाय, तो उसे किसी भी काल में किसी भी अभाव का अनुभव न होगा। क्या सांसारिक और क्या पारमार्थिक सारी सुख-संपत्तियों के साधन धर्म प्रक्रिया में मौजूद हैं।

जीवमात्र जो सुख चाहता है, वह उसे केवल धर्माचरण करके ही प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार पांच पाप अपथ और अनर्थ-कारक होने के अतिरिक्त दुःख रूप भी हैं, उसी प्रकार धर्माचरण निःश्रेयसाभ्युदय का कारण और निर्दोष होता हुआ सुखस्वरूप भी है। इसलिए प्राणीमात्र को धर्माचरण करने में कभी भी पीछे न रहना चाहिये।

इस बढ़े हुए पापवेग के प्रभाव को रोकने और समाज की धर्माचरण में प्रवृत्ति कायम रखने के लिये ही इस "भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा' की स्थापना आज से ४५ वर्ष पूर्व समाज के अनुभवी हितचिन्तकों ने की थी। इसी बात को उद्योत करने के लिये इस संस्था के नाम में 'धर्म-संरक्षिणी' शब्द का विशेषण लगा हुआ है। इस महान उद्देश्य को सामने रखने के कारण तथा महान् पुरुषों द्वारा संसेवित होने के कारण 'महाव्रतों' के नाम की भांति इस संस्था के नाम में 'महा' शब्द का विशेषण भी लगा हुआ है।

यदि हम यह जानते और मानते हैं कि 'धर्म' "सुखस्य हेतुः" है, तो महासभा को हमें विशेष कर्त्तव्य-शील करना चाहिए। अन्य धर्मायतनों की भांति यह भी एक सक्रिय धर्मायतन है। इसको सजग रखना जैनधर्म का जयघोष है और इसको शक्तिशाली बनाना जैन समाज को धर्माभिमुख करना है। वर्तमान में महासभा के विभागीय कार्यों को चलाने के लिए द्रव्य की बहुत कमी है और कार्यकर्त्ताओं की भी कमी है। अगर यही हालत रहेगी, तो महासभा से जो लाभ समाज को पहुँचता था, उस से समाज वंचित रहेगी। इसलिए समाज को इस कमी की पूर्ति का विचार करना चाहिए।

महासभा के मुख्य विभाग महाविद्यालय, जैन गजट, उपदेशक विभाग हैं। इनका खास विचार किया जाना आवश्यक है।

महाविद्यालय

करीब १६ वर्ष से ब्यावर में चल रहा था, वहाँ की समाज के प्रमुख श्रीमान् रायबहादुर सेठ चंपालालजी, रामस्वरूपजी तथा ब्यावर दिगम्बर जैन पंचायत ने अब तक बराबर उसका संरक्षण किया। श्री रा० सा० सेठ मोतीलालजी तोतालालजी साहब ने कार्य संभाला; परन्तु कई विशेष परिस्थितियों के कारण उन्होंने बैसाख से उसका कार्य-भार स्वीकार नहीं किया है। अतः तभी से कार्य बन्द सरीखा ही है। आप महानुभावों को उसके स्थान का और कार्य चलाने के लिए द्रव्य का प्रबन्ध करना चाहिए।

जैन गजट

इसके बाबत भी विचार करना आवश्यक है। इसकी ग्राहक संख्या अधिक कैसे होवे और यह पत्र अपनी नीति पर दृढ़ रहता हुआ समाजप्रिय एवं विशेषोपयोगी कैसे बन सकता है, इसका विचार करें। यदि इसकी ग्राहक संख्या बढ़ जावे, तो इसमें घाटा नहीं रह सकता है और स्थाई चलता रह सकता है।

उपदेशक विभाग

इस विभाग द्वारा अच्छे-अच्छे विद्वानों, उपदेशकों का भारत के प्रत्येक प्रांत में गांव-गांव में भ्रमण करा कर धर्म का प्रचार करने की ज़रूरत है। इस विभाग को आर्थिक सहायता मिले, तो इसकी पूर्ति होती रहे।

प्रबंध विभाग

इसके कार्य संचालक मुख्य प्रधान मंत्री होते हैं। इसलिये आप महानुभाव इस समय एक अच्छे प्रधान मंत्री का चुनाव करें।

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए यह बात मुझे अवश्य कहनी पड़ती है कि महासभा के नाम के अनुसार उसकी व्यापकता अभी नहीं है। उसके "महा" शब्द की सार्थकता तभी हो सकती है, जब कि स्थानीय, प्रान्तीय और जातीय सम्पूर्ण सभाओं का संबंध महासभा से रहे। अब तक जिन सभाओं का संबंध महासभा से नहीं है, उन्हें उससे संबंध करना चाहिए और अभी तक जो प्रांत प्रांतीय सभाओं से खाली हैं, उन्हें उनकी पूर्ति करनी चाहिए। जिस प्रान्त में महासभा का यह ४२–४३ वां अधिवेशन हो रहा है, उस प्रांत की प्रांतिक सभा स्थगित पड़ी हुई है। उस सभा के कार्य को चालू करने का उक्त प्रांत के प्रतिनिधियों को प्रयत्न करना चाहिए।

दो बातें विशेष रूप से आपसे कहना चाहता हूँ। यह बात निर्विवाद है कि गृहदेवियों का सद्व्यवहार ही गृहस्थ जीवन को समुज्वल और समुन्नत बना सका है। जिन घरों में सुशील एवं विवेक रखने वाली स्त्रियां हैं, उन्हीं में पात्र दान, उत्तम आचार विचार, मर्यादित शुद्ध भोजन, मितव्ययिता, कुल मर्यादा आदि बातें पायी जाती है। जहाँ स्त्रियों में विवेक नहीं है, वहाँ उपर्युक्त सभी बातों में हीनता पाई जाती है। इसलिए स्त्रियों को सुशिक्षित बनाने की बड़ी ज़रूरत है। सुशिक्षित मातायें सन्तान को सुशिक्षित एवं होनहार आदर्श बना सकती हैं। मुझे भरोसा है कि स्त्री यदि समाज मे फैली हुई कुरीतियों को दूर करने का पूरा प्रयत्न करे, तो उनका नाम शेष भी न रहे। मिथ्यात्व सेवन, बालविवाह, कन्या विक्रय ये बातें भी ऐसी हैं, जिनका संबंध स्त्रियों से अधिक है। यदि वे इन भयानक कुरीतियों को न होने देने का दृढ़ संकल्प कर लें, तो समाज से ये कुरीतियां जल्दी दूर हो सकती हैं।

यह बड़ी खुशी की बात है कि आज जैन समाज में स्त्री शिक्षा की तरफ लोगों की दृष्टि पहुंची हुई है। बड़े बड़े स्थानों में स्त्री शिक्षालय और श्राविकाश्रम कार्य कर रहे हैं। महिला परिषद् व महिला मण्डलों ने स्थापित होकर स्त्रियों में शिक्षा की जागृति पैदा कर दी है। हमें आशा है कि इन संस्थाओं का संबन्ध भी महासभा से होकर और भी इनका कार्य समुन्नत हो सकेगा।

मैं अपने नवयुवकों को उन के हित की एक बात और समझाऊंगा। मुझे उन से शिकायत है कि आजकल पाश्चात्य शिक्षा में रंगे हुए युवक अपने सच्चे धर्म की श्रद्धा और धार्मिक मर्यादा को ढीला कर रहे हैं। जैन जनता, जिसे आज मैं इस बृहत अधिवेशन में देख रहा हूँ, भारत की अग्रवाल, खण्डेलवाल आदि अनेक जातियों का समुदाय है। इन सब जातियों का पारस्परिक व्यवहार जुदा जुदा है। इस प्रकार व्यवहार भेद होने पर भी सबका एक प्लेटफार्म पर एकत्रित होना किसी असाधारण विशेषता का सूचक है। इन सब जातियों में यह असा-

धारण विशेषता क्या है ? वह है जैन धर्म, जो सब जातियों में व्यापक है और जिसने सब जातियों को एक सूत्र में बांध रक्खा है । उसी जैन धर्म की श्रद्धा और चरित्र को ढीला करके आप अपने समाज के बंधन को ढीला कर रहे हैं । जो हमारे जैनियों के मोटे चिन्ह हैं, जैसे देव दर्शन, रात्रि भोजन त्याग, छना जल पान;—इन्हें पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर कुछ लोग फिजूल समझने लगे हैं । एक ओर हम पाश्चात्य शिक्षा के अवगुण दिखाते हैं, दूसरी ओर उसके प्रवाह में बह रहे हैं । यह एक दुःख की बात है । मैं अपने नवयुवकों को अनुभव से सलाह देता हूँ कि वे आर्य-प्रणीत जैन-धर्म पर श्रद्धान दृढ़ रखें । नित्य प्रति जैन मन्दिर आवें, खान-पान;—शुद्ध रखें, संयमी बनें, अपने व्यापार व व्यवहार में सचाई रखें। इन बातों में बड़ा रहस्य है और जैनियों का गौरव है। इनको फिजूल न समझें । इस छोटे से भाषण में इस संबंध में विशेष बतलाने के लिए मुझे अवसर नहीं है ।

सज्जनो ! बहुत सा द्रव्य अनावश्यक और अनुपयुक्त वस्त्रों आदि आडंबरों में स्वाहा कर दिया जाता है । आजकल समय की गति, वस्तुओं की मँहगाई, शिक्षादि कार्यों की आवश्यकता हमें ऐसे फिजूल के धन व्यय से सहसा रोकती है । हम लोग व्यापारोन्नति से वणिक कहलाते हैं । परन्तु फिजूलखर्चियों के देखने से कहना पड़ता है कि वास्तव में हम वणिक पद्धति से बिलकुल दूर हैं । ऐसे जल संग्रह से क्या लाभ होगा, जो अनावश्यक द्वार से प्रवाहित हो रहा हो । व्यापार की उथलपुथल में जब धनवृद्धि का मार्ग रुकता जा रहा है, ऐसे समयमें मितव्ययी पुरुष ही अपनी रक्षा कर सकता है । फिजूलखर्ची और धनोपार्जन के मार्ग को देखकर मुझे यह भी कहते हुए संकोच नहीं होता कि ऐसे व्यर्थ व्ययों के बढ़ जाने से आज द्रव्योपार्जन का मार्ग अनीतिपरायण हो गया है । समय की आवश्यकता और देश की दशा हमें पाठ पढ़ाती है कि अब हम बहुत दिनों से उपयोग में आई हुई चटकमटक को छोड़कर सादी जिंदगी बितावें । छलकपट-रहित और आडम्बर-शून्य सादे जीवन का महत्व बहुत बड़ा है । अब फैशन के रोग से हमें जितना जल्दी हो सके, मुक्त हो जाना चाहिए ।

मैं आप लोगों का अधिक समय न लेकर अन्तमें पुनः इतना कहकर अपना स्थान ग्रहण करूंगा कि आप इस धर्ममूलक पुरानी संस्था को तन मन धन की पूर्ण सहायता देकर इसको बलशाली बनाइये । मैं आशा करता हूँ कि आप श्रीमान् अपने धन से, धीमान् अपने ज्ञान बल से और कार्यकुशल व्यक्ति अपनी कर्तृत्व शक्ति से इसका भंडार भरेंगे ।

(३)

आत्मसाधना का संकल्प

जुलाई १९५३ में शान्ति विधान महोत्सव की समाप्ति पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजा ज्ञाननाथजी के सभापतित्व में हुई तीस हजार नरनारियों की विराट सभा में निम्न भाषण दिया था :—

इस उत्सव पर पधारे हुए आप सब सज्जन शायद यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि सेठ साहब संसार छोड़कर मुनिव्रत धारण करना क्यों चाहते हैं ? इस संबंध में कई तरह की बातें उड़ी हैं, वे बिना पाए की नहीं हैं । वास्तविक परिस्थिति क्या है, यह मैं आपके सामने रखता हूँ । मेरी आयु के बारे में ज्योतिषी लोग कुछ का कुछ कहते हैं । मैं खुद भी ज्योतिष देखने वाला हूं। परन्तु आयु के पूरे दिन तो भगवान ही जान सकते हैं । ज्योतिषी तो अन्दाजा लगाता है । उसपर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता । यह मैं जानता हूँ कि शायद ७० वें वर्ष में यह शरीर रहे या न रहे । कोई ज्योतिषी मेरी आयु के ३ वर्ष या ४ वर्ष बताते हैं, किन्तु मेरे को इस बारे में कतई चिन्ता नहीं है । यह शरीर दो वर्ष रहे, दो महीने रहे या दो दिन ही रहे । संसार में जो मनुष्य देह मिली है, जिस तरह दूध से मक्खन निकाला जाता है उसी तरह इससे जितना पुण्य या धर्म कार्य बन सके, उतना करना यही मेरा सदा ध्येय रहा है । परन्तु मैं ऐसी कोई बात नहीं करूंगा, जिससे पीछे मेरी हंसी हो । मैं जो पांच

बढ़ाऊंगा, वह बहुत सोच-समझ कर बढ़ाऊंगा और एक बार जो पैर आगे बढ़ाया, वह फिर आगे बढ़ता जायगा; पीछे नहीं हटेगा। मैं पहले से ज्यादा समय धर्मध्यान में लगाऊंगा। छापे में भी मैंने ऐसा ही लिखा है; जिससे लोगों में गलतफहमी पैदा न हो। उस दिन को मैं परम भाग्यशाली समझूंगा, जिस दिन आत्मा में लीन हो जाऊंगा और अपनी आत्मा का उद्धार कर मनुष्य जीवन सफल बनाऊंगा। किन्तु अभी मैं नियम कर लूं और बाद में वह भंग हो जाय; यह अच्छा नहीं। ऐसी जग हँसाई मैं कभी नहीं करूंगा।

आप सब समझते हैं कि मैं बड़ा आदमी हूं, मेरे पास धन है, इज्जत है; किन्तु पूछा जाय तो मैं उजाड़गाँव में कुमार मेहता जैसा हूं। अगर हम दूसरे समाज की ओर ध्यान दें, तो उसके मुकाबले में हमारे समाज में कोई नहीं हैं। हमारा समाज दूसरे समाजों के सामने बहुत पीछे है। मैं तो जाति का, इन्दौर शहर का और सारे देश का सेवकमात्र हूं और इनकी सेवा करना यही मेरा व्रत है। मेरे संसार छोड़ने के बारे में इन्दौर के भूतपूर्व प्राइम मिनिस्टर सर एस. एम. बापना साहब का तार मुझे मिला। आपने लिखा कि 'मैं प्रार्थना करता हूं कि आप संसार का त्याग न करें। संसार में रहकर आप अपना और लोगों का भला कर सकते हैं।' जिसके जबाव में मैंने तार दिया कि आपके समान हितचिंतक लोग इसी तरह की सलाह दे रहे हैं। लालसाहब, भैयासाहब और सेठाणी साहिबा भी यही सलाह देते हैं। इन सलाहों को ध्यान में रखकर मैं ऐसा कोई काम नहीं करूंगा, जिससे संसार के प्राणियों की सेवा न हो सके। मैं धर्म कार्य में ज्यादा समय खर्च करूंगा। अभी सौभाग्य संपत तो लूंगा नहीं। यद्यपि मैं आपकी सेवा में ही रहूंगा और जितनी बन सकेगी, उतनी आपकी, समाज की तथा देश की सेवा करता रहूंगा, तथापि थोड़ा बहुत दान हो जाय तो ठीक है। मौके मौके पर दान करते रहना यह अपना कर्तव्य है। इसीलिये मैं इस समय छः लाख रुपये का दान करता हूँ।

ब्याज की दर कम हो जाने से मेरी संस्थाओं [श्री स. हु. दि. जैन पारमार्थिक संस्थाएं इन्दौर] का पाया हिलने लगा तथा खर्च में तकलीफ पड़ने लगी। इस तकलीफ को मिटाने के लिये मैं पांच लाख रुपये इन संस्थाओं के जनरल फंड में देता हूँ। इसका ब्याज जिधर खर्च में कमी पड़ती होगी, उधर लगाया जायगा। मैं पहले २५०००) रु० जँबरीबाग में जगह की कमी पड़ने से जगह बनाने के लिये दे चुका हूँ। इसका अभी ब्याज आता है। बाद में ट्रस्टी उस रकम से मकान बनवा सकते हैं। पांच लाख रुपये के ब्याज में से १०००) प्रतिवर्ष उन खंडेलवाल दि० जैन भाइयों को १००) प्रति व्यक्ति के हिसाब से दिये जायंगे, जो इन्दौर में व्यापार के धंधे के लिये आवें; परन्तु उनके पास साधन की कमी हो। इन रुपयों के देने की व्यवस्था संस्था के सभापति और मन्त्रीजी के हाथ में रहेगी। शेष आमदनी मेरी चालू संस्थाओं के खर्च में लगेगी।

इन्दौर में एक आयुर्वेदीय कालेज नलिया बाखल में मेरे नौहरे में कई साल से चलता है। इस कालेज के पास कोई स्थाई फण्ड नहीं है, जिसके कारण इसके कार्यकर्ताओं को सदा चिन्ता बनी रहती है। उनकी इस चिन्ता को मिटाने के लिये मैं इस कालेज को २५०००) का दान देता हूं। इस रकम में से १००००) में मेरे बियाबाणी दवाखाने के पास एक जगह ली है। इस जगह के पीछे बोहरे मुसलमानों के लिये वार्ड की व्यवस्था रहेगी व आगे कालेज के लिये जगह रहेगी, जिसमें ७५-८० विद्यार्थी पढ़ सकें। बाकी १५०००) का ब्याज बिजली, नौकरों की पगार, विद्यार्थियों के लिये कागज पेंसिल आदि के लिए काम में लाया जायगा। कालेज अभी जिस नाम से चल रहा है, उसी नाम से आगे भी चलता रहेगा। कालेज का काम कभी न चल सका, तो वह फंड औषधालय को दे दिया जायगा।

मैं ५०००) जैन संघ मथुरा को, १०००) उदासीनाश्रम इन्दौर को देता हूँ। इसके अलावा बाकी बची हुई रकम सेठाणी साहब व भैया साहब की सलाह से खर्च की जायगी।

हमारे तीनों भैया साहब से मेरा यह कहना है कि आप लोगों को सट्टे का त्याग कर देना चाहिए और होशियारी से अपना कारोबार सम्हालना चाहिए।

(४)

हिन्दी प्रेमी के रूप में

११-१२ जून १९४४ को बागली में हुये मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन के सभापति के पद से सेठ साहब ने निम्न भाषण दिया था:—

मैं साहित्यज्ञ नहीं हूँ, विद्वान् नहीं हूँ, लेखक नहीं हूँ, केवल हिंदी-प्रेमी हूं; इस नाते मैं आज इस समय यहाँ उपस्थित हूँ। पहली बार जब मुझे इस पद के ग्रहण करने के लिए प्रोफेसर सिंहल साहब व मेरे कतिपय अन्य मित्र आये थे, मैंने इस पद के भार ग्रहण करने से इन्कार कर दिया था। परन्तु जब मेरे सहयोगी श्रद्धेय किबे साहब, पं० ख्यालीरामजी वैद्य, पं० रामनाथजी शर्मा और मेरे संबंधी सेठ कस्तूरचन्दजी टोंग्या ने आकर मुझसे आग्रह किया व बहुत जोर दिया, तो मैंने इस भार को विवशतावश उठाना स्वीकार कर लिया।

आपको विदित ही है कि यह मेरी वृद्धावस्था है और मैं सांसारिक कार्यों से एक प्रकार से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा हूँ। फिर भी हिंदी के हितों के संरक्षण का प्रश्न मेरे सामने जब-जब आता है, मैं अपनी इस उदासीन वृत्ति को भूल जाता हूँ और आज भी उन्हीं भावों से प्रेरित होकर यहाँ आपके समक्ष मैं उपस्थित हूं। मेरे सुहृद मित्र हिंदी-प्रेमी मुझे अपने इस कार्य में निभा लेंगे, ऐसी मेरी पूर्ण आशा है।

मध्य-भारत को गौरव है कि यहाँ दो बार अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन हो चुके हैं। जहाँ इन अधिवेशनों में तप व त्याग की प्रतिमूर्ति उपस्थित थी, वहाँ राजकीय वैभव व राज्याश्रय भी पूर्ण मात्रा में कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन दे रहा था। इन दोनों सम्मेलनों के आयोजन में जो थोड़ी बहुत सेवा मुझसे हो सकी थी, वह की थी और मध्यभारतीय-साहित्य-सम्मेलन की भी स्थापना से अब तक मैं उसका समर्थक व सहायक रहा हूँ और आज भी उस पवित्र नाते को निबाहना मैंने अपना कर्तव्य समझा है।

हिंदी का मार्ग अब तक कंटकाकीर्ण बना हुआ है। जहाँ तहाँ उसका विरोध होता है। उसकी प्रतिद्वन्द्विता होती है। यह बात अब भारत के कोने-कोने से मानी जा चुकी है कि देश की यदि कोई राष्ट्र-भाषा हो सकती है, तो वह हिंदी ही है। जब बंगाल, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात इत्यादि देशों के विद्वानों को हम यह कहते सुनते है कि हिंदी ही देश की सर्वव्यापक भाषा हो सकती है, तब हम लोगों को, जिनकी मातृ-भाषा हिंदी है, स्वभावत: हर्ष होता है और हम अपनी मातृ-भाषा हिंदी पर गर्व करने लगते हैं। परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि हम चाहते हैं कि हिंदी-भाषा राष्ट्र-भाषा के उच्च आसन पर आसीन हो, तो उसके लिये शतश: नहीं सहस्त्रों नि.स्वार्थ त्यागमूर्ति कार्यकर्ताओं की व प्रचारकों की आवश्यकता है। पंजाब, काश्मीर इत्यादि प्रान्तों में जो उपेक्षा हिंदी की हो रही है,वह तो समाचार-पत्रों की बात है,परन्तु उस प्रांत में जहाँ हिंदुओं के सब पवित्र क्षेत्र हैं और जहाँ हिंदी भाषाभाषियों की सब से अधिक संख्या है, वहाँ भी हिंदी के हितों का पूर्ण रूप से संरक्षण नहीं हो रहा है।

जिस प्रान्त में कि हम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का यह अधिवेशन मना रहे है, यह वह पवित्र भूमि है, जिसके कण-कण से प्राचीन संस्कृति की ध्वनि आती है। यह वही देश है, जिसने संसार के सब से बड़े साहित्यिकों, विद्वानों व अमर कलाकारों को जन्म दिया। यह वही भूमि है, जिसने भारत व भारत के साम्राज्य के दिन देखे। अवन्तिका, दशपुर, विदिशा के नाम आज भी भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। जिसके छोटे-से-छोटे

ग्रामों में भी आज भी सांस्कृतिक शब्दों का प्रयोग होता है, उसी मालवा देश में हम यदि हिन्दी की सेवा नहीं कर सके, तो यह बात हमारे लिये एक बड़े लांछन की होगी।

मैं कोई उपदेश देने के लिये यहाँ प्रस्तुत नहीं हुआ हूं। मेरा उद्देश्य केवल संकेत करने का है। हम यदि चाहते हैं कि मालवा में विशुद्ध हिन्दी का प्रचार हो और हिन्दी के सार्वजनिक हितों का संरक्षण हो सके, तो मैं अत्यन्त विनीत व नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि हम सब पारस्परिक वैमनस्य व द्वेष के भावों से अपने आपको बचावें। और प्रेमपूर्ण वातावरण उत्पन्न करके अपनी सारी शक्तियां निःस्वार्थ भाव से हिन्दी के हितों में लगावें। मेरी आत्मा को तब ही पूर्ण संतोष होगा और मेरी आत्मा पूर्ण सुखी होगी। प्रत्येक काम में विचारशैली भिन्न हो सकती हैं, इष्ट सिद्धि के उपाय भी भिन्न भिन्न हो सकते हैं, परन्तु हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि बहुमत की उपेक्षा न करें और संगठन की शक्ति का ह्रास न होने दें।

हिन्दी की बहुत-सी आवश्यकतायें हैं। हिन्दी में इस समय तक विज्ञान, व्यवसाय, कलाकौशल, इतिहास-भूगोल की सर्वांग पूर्ण पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। इसकी ओर विद्वानों को ध्यान देना चाहिये। बंगाली, मरहठी, गुजराती का साहित्य बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उनकी अच्छी पुस्तकों का भाषांतर हिन्दी में जिस प्रमाण में होना चाहिये, अब तक नहीं हुआ। उसी प्रकार हिन्दी की उत्तम पुस्तकों का बंगाली, गुजराती व अन्य लिपियों में भी प्रकाशित हो जाना आवश्यक है। इस आदान-प्रदान से हिन्दी का सम्बन्ध इन प्रान्तीय भाषाओं से अधिक स्थिर हो जावेगा।

हिन्दी सम्मेलनों की सफलता के लिये मेरा यह भी एक सुझाव है कि जिस-जिस प्रान्त में अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हों या प्रान्तीय सम्मेलन हों, वहाँ बंगाली, मराठी, गुजराती विद्वानों को अवश्य निमंत्रित किया जावे। इससे जो कहीं-कहीं हिन्दी में व प्रान्तीय भाषाओं में विरोध दृष्टिगोचर होता है, वह सहज ही में दूर हो जावेगा।

लेखों द्वारा, कोषों द्वारा व अन्य उपायों से हमें यह सिद्ध करने की आवश्यकता है कि हिन्दी व अन्य प्रान्तीक भाषायें एक ही जननी की पुत्रियाँ हैं और इनमें सहोदर भगिनियों जैसा वात्सल्य व प्रेम होना चाहिये। इसके लिये प्रत्येक प्रान्त में ऐसी स्थायी समितियां बनाई जावें, जो हिन्दी व प्रान्तीय भाषाओं में एकता स्थापित करने का सतत् प्रयत्न करें।

मैं इस समय एक बात और भी कह देना चाहता हूँ। वह यह है कि हम उन प्रान्तों में भी जहां की भाषा हिन्दी ही मानी जाती है, वहाँ उसका स्वरूप निश्चित करलें और उसके अनुसार उसी भाषा के स्वरूप का प्रचार करें। यदि हमने हिन्दी प्रान्तों में ही भाषा का स्टेंडर्ड (माप दण्ड) निर्धारित नहीं किया, तो हम किस मुँह से प्रान्तीय भाषाओं को हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लेने के लिये विवश कर सकते हैं।

आपको मुझसे किसी पाण्डित्य पूर्ण लम्बे चौड़े भाषण की आशा नहीं रखनी चाहिये। मैंने जो कुछ कहा है, वह मेरे अल्प अनुभव की बातें कही हैं और वह भी संकेत में कही हैं। मैं समझता हूँ कि यदि हम अब क्रियात्मक जीवन में उतर आवें, तो स्वयं प्रत्येक कार्यकर्ता को अपना रास्ता स्पष्ट प्रतीत होने लगेगा। मैं अब आप लोगों का अधिक समय न लूँगा और केवल यह कह कर अपना भाषण समाप्त करूँगा कि जिस प्रकार श्रीमन्त महाराज साहब ग्वालियर और महाराजा साहब होल्कर अपने राज्यों में वहाँ की प्राचीन संस्कृति, इतिहास व भाषा का संरक्षण कर रहे हैं, उसी प्रकार हमारे अन्य राजे महाराजे भी इन आवश्यक कार्यों को हाथ में ले लें, तो देश के अन्य प्राचीन इतिहास की बहुत सी सामग्री अब भी इन प्राचीन खंडहरों से मिल सकती है। संसार केवल आदर्शवाद के आधार पर नहीं चल रहा है। हमें सक्रिय होना चाहिए और सक्रिय भी उचित मार्ग में।

(५)

वीर शासन का महत्व

नवम्बर १९४४ में श्री वीर शासन महोत्सव कलकत्ता में समस्त जैन समाज की ओर से मनाया गया था। उसके सभापति पद से सेठ साहब ने जो भाषण दिया है, वह निम्न प्रकार है :—

श्री वीर भगवान्, जिनके दूसरे नाम "महावीर" "सन्मति" और "वर्धमान" भी हैं, बिहार प्रान्तीय कुण्डलपुर के महाराजा सिद्धार्थ के पुत्र महारानी प्रियकारिणी अपर नाम त्रिशलादेवी के नन्द थे। आपके जन्म से क्षत्रिय की लिच्छवि जाति पवित्र हुई। आपने पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये तीस वर्ष की अवस्था में अपना और लोक का साधन करने के लिये जिन दीक्षा धारण की। बारह वर्ष के घोर तपश्चरण और कड़ी योग साधना के बाद ४२ वर्ष की अवस्था में जब श्री वीर प्रभु को जृम्भिका ग्राम के बाहर ऋजु कूला नदी के तट पर वैशाख सुदी दशमी को उपरान्ह के समय केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई, तब आपके उपदेश के लिये समवशरण नाम की महती सभा जुड़ी, परन्तु वाणी के बीज पदों की यथार्थ व्याख्या करने में समर्थ योग्य गणधर के अभाव के कारण आपकी वाणी नहीं खिरी। इसलिये आपने पुनः मौनपूर्वक विहार किया। इस तरह ६६ दिन बीत जाने पर आप राजग्रह (राजगिरि) के विपुलाचल पर्वत पर स्थित थे, तब प्रधान गणधर पद के योग्य गौतम नाम का तत्कालीन महान् पण्डित ब्राह्मण अपने ५०० शिष्यों के साथ आपका शिष्य बन गया था। आपके सामने जिन दीक्षा लेकर महती क्षयोपशम लब्धि के बल पर बीज बुद्धि आदि ऋद्धियों का स्वामी हो गया था। तब श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को तत्कालीन समवशरण में सूर्योदय के समय अभिजित नक्षत्र में आपको वह दिव्य वाणी पहिले पहल खिरी और उससे वह कल्याणकारिणी अमृत वृष्टि हुई, जिसकी ओर पीड़ित, पतित तथा मार्गच्युत जनता बहुत समय से चातक की तरह मुँह उठाये देख रही थी। इस वाणी खिरने के साथ ही आपके शासन की वह तीर्थधारा प्रवाहित हुई है, जिसमें स्नान करके आज तक असंख्य जीवों का कल्याण हुआ है। वीर शासन के अवतार का यह समय वीर निर्वाण से तीस वर्ष से तीन महिने पूर्व का है। इसलिये वीर शासन को प्रवर्तित हुए २५०० वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। इसी की यादगार में गत श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को राजगृह (राजगिरि) में विपुलाचल पर एक उत्सव मनाया गया था।

वीर शासन का उपकार

वीर शासन में जन्म लेकर आपने इस २५०० वर्ष के जीवन काल में जगत के जीवों का जो अनन्त उपकार किया है, वह वर्णनातीत है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि यह स्वामी समन्तभद्र के शब्दों में सर्वोदय तीर्थ है। सभी भव्य जीवों के अभ्युदय-उत्थान और आत्मा के परम आकर्ष अथवा पूर्ण विकास का साधक है। इसने भूले भटके प्राणियों को उनके हित का वह संदेश सुनाया है, जिससे उन्हें दुःखों से छूटने का मार्ग मिला और उन्हें यह स्पष्ट प्रतिभासित होने लगा कि सच्चा सुख अहिंसा और अनेकांत दृष्टि को अपनाने में है, समता को अपने जीवन का अंग बनाने में है अथवा बन्धन से परतन्त्रता से छुटने में है। साथ ही इस शासन ने सब आत्माओं को द्रव्य दृष्टि से समान बतलाते हुए आत्म विकास का सीधा तथा सरल उपाय सुझाया और यह स्पष्ट घोषित किया कि अपना उत्थान और पतन अपने ही साथ में है। इसके सिवाय हिंसात्मक यज्ञों में होने वाले क्रूर बलिदानों का, जीवित प्राणियों को निर्दयतापूर्वक छुरी के घाट उतारने अथवा होम के बहाने धधकती हुई आग गिरा देने जैसे कुकृत्यों का जो अन्त हुआ और जिसमें मनुष्य समाज कुछ ऊँचा उठा, वह सब इस शासन की खास देन है। इसी से लोकमान्य तिलक जैसे धुरन्धर पण्डितों और महात्मा गांधी जैसे सन्त पुरुषों ने खुले शब्दों में वीर भगवान के अहिंसा धर्म (जैन धर्म) की हिन्दू धर्म पर अमिट छाप का होना स्वीकार किया है।

वीर शासन की विशेषताएं

वीर शासन ने अपने " अहिंसा " सिद्धान्त से संसार को सदा निर्भय और निर्वैर रह कर शांति के साथ स्वयं जीना तथा दूसरों को जीने देना सिखलाया है। समता सिद्धान्त से राग, द्वेश, अहंकार तथा अन्याय पर विजय प्राप्त करने और अनुचित भेदभाव को त्यागने की शिक्षा दी है। अनेकांत अथवा स्याद्वाद सिद्धान्त से जनता को समन्वय समाधान की दृष्टि प्रदान की है। विचार सहिष्णुता सिखलाई है तथा सत्य के निर्णय एवं विरोध के परिहार का समीचीन मार्ग सुझाया है और कर्म सिद्धान्त से सम्पूर्ण जगत को यह पाठ पढ़ाया है कि जीवों का अपना कर्म ही उनके सुख दुःख का प्रधान कारण है। अनेक उत्थान पतन का मूल साधन है। इसीलिये कर्म करने में उन्हें सदा सावधान रहना चाहिये। भूल कर भी अन्याय, अत्याचार, कुविचार तथा दुराचार, परपीड़न को लिये हुए ऐसा कोई कुत्सित कार्य न करना चाहिये, जो आत्मा के पतन का कारण बने। सदा ही *शुभ संकल्प को लिये हुये प्रशांत कार्यों* के करने में तत्पर रहना चाहिये। स्वामी समन्त भद्र ने अपने युक्त्यानुशासन की एक कारिका में वीर भगवान के शासन को नये प्रमाण से वस्तु तत्व को बिलकुल स्पष्ट करने वाला और सम्पूर्ण प्रवादियों से द्वारा अबाध्य प्रगट किया है। साथ ही दया अहिंसा), क्षमा (संयम) त्याग और समाधि की तत्परता को लिये हुये बतलाया है और अपनी इन विशेषताओं के कारण ही असाधारण ठहराया है। इन विशेषताओं में दया का पहला स्थान दिया गया है और वह ठीक ही है। जब तक दया और *अहिंसा की भावना नहीं और जब तक संयम में प्रवृत्ति नहीं होती, तब तक त्याग नहीं बनता और जब तक त्याग* नहीं, तब तक समाधि नहीं बनती। इसलिये धर्म में दया को पहला स्थान प्राप्त है। आत्मोद्धार अथवा आत्म-विकास के लिये अहिंसा की बहुत बड़ी जरूरत है और वह वीरता का चिन्ह है। कायरता का नहीं और इसीलिये महावीर के धर्म में उसे प्रधान स्थान प्राप्त है। जो लोग अहिंसा पर कायरता का कलंक लगाते हैं उन्होंने वास्तव में अहिंसा के रहस्य को समझा ही नहीं। वे अपनी निर्बलता और आत्म विस्मृति के कारण कषायों से अभिभूत हुये *कायरता को वीरता और आत्मा के क्रोधादिक रूप पतन को उसका उत्थान समझ बैठे हैं। ऐसे लोगों की* स्थिति निस्सन्देह बड़ी हीकरुणाजनक है।

वीर शासन का प्रभाव

वीर शासन की इस सब विशेषताओं और सुव्यवस्थाओं के कारण ही बड़े बड़े साधु संतों, ऋषि महर्षियों, महाविद्वानों, धन कुबेरों और राजा महाराजादिकों ने इस शासन के आगे सिर झुकाया है। राजा श्रेणिक (बिम्बसार) महावीर की समवसरण सभाओं में बराबर उपस्थित रहे हैं और वे इस शासन के परम भक्त थे। खारवेल और सम्पति जैसे महाराजा उनके खास उपासक रहे हैं। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने तो राज्यलक्ष्मी को भी लात मार कर शासन के मुनि धर्म की शरण ली है। राष्ट्रकूट महाराज अमोघवर्ष प्रथम ही राज्य छोड़कर शरण में आया है। इसके राज्यकाल में जैन धर्म को खूब राजाश्रय मिला है। वीरसेन और जिनसेन जैसे महान आचार्यों ने इसी के राज्याश्रय में धवल और जयधवल जैसे सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना की है। गंगवंश तो वीरशासन का बहुत बड़ा ऋणी रहा है। वीर शासन के उपासक सिंहनन्दी आचार्य ने इस राजवंश की प्रतिष्ठा में सहायता की है और इसीलिये गंगवंशी राजा इस शासन के बहुत बड़े उपासक रहे हैं, जिनके कारनामों और इस शासन की सेवाओं के अनेक शिलालेख भरे पड़े हैं। आबू पहाड़ पर वस्तुपाल और तेजपाल नामक राजमंत्रियों के बनवाये हुए करोड़ों की लागत के जो अपूर्व मन्दिर हैं, वे राजनिष्ठा और राजनीति के साथ साथ धार्मिक निष्ठा और धर्म नीति की सुसंगति को दिनकर प्रकाश की तरह व्यक्त करते हैं।

वीर शासन अथवा जैन धर्म की नीति राजकार्यों में बाधक नहीं है। उल्टा राज को सुचारु रूप से

चलाने में बहुत बड़ी साधक है। ऐसी हालत में कौन कह सकता है कि वीर के शासन से विश्व का शासन नहीं हो सकता अथवा जैन धर्म विश्व का धर्म नहीं बन सकता। विश्व को यदि सुख शांति की जरूरत है, आत्म कल्याण की इच्छा है, तो उसे वीर शासन की जैन धर्म की शरण लेनी होगी और उसके सुनहरे सिद्धांतों को आज नहीं तो कल अपनाना ही होगा; चाहे वह किसी भी रूप में उन्हें क्यों न अपनाये। इसके बिना यथेष्ट रूपमें सुख शान्ति का मिलना दुर्लभ है।

(६)

आत्मरत जीवन

अप्रैल १९४१ में मनाये गये 'आरोग्य कामना समारम्भ' पर सेठ साहब ने एक पत्र में अपने निम्न लिखित हार्दिक उद्गार प्रगट करते हुये आत्म-रत होने की इच्छा प्रगट की थी:—

"लगभग आठ माह से मैं बीमार हूं। इस बीच में एक बार पहिले इलाज के लिये बम्बई आया था। आप सबकी शुभ कामना से नीरोग हो कर लौट गया। मेरी पेट की बीमारी की जड़ उस समय भी नहीं मिटी थी। इसलिये फिर से वह उठ गई और दूसरी बार मुझे बम्बई आना पड़ा। अभी मैं यहां एक माह से उपचार करा रहा हूँ। इन्दौर की जैन समाज और तमाम भारतवर्ष में बहुत से स्थानों की जैन समाज ने मेरे प्रति वात्सल्य भाव रख कर मेरी आरोग्य कामना के लिये धार्मिक समारम्भ किये हैं। यह सब मेरी आत्मा और मन पर आत्मज्ञान को जागृत करने के लिये गहरा असर डाल रहे हैं। मैं समझ रहा हूँ कि मुझे अब आत्मरत होने में जरा भी देर नहीं करनी चाहिये। मेरे लिए यह पूरी पूरी चेतावनी है। आप सब को तो यह अभिलाषा है कि मैं दीर्घायु याने कई वर्षों तक इस पार्थिव शरीर से जीवित रह कर आपकी सेवा करता रहूँ। मेरा यह शुभोदय है कि आप सब का मेरे प्रति इतना अधिक धर्म प्रेम है और इस बदलते हुए वातावरण में भी मेरे लिए हृदय में पूरा पूरा आदर रखते हैं। आपने मेरी कमियों पर ध्यान न देकर केवल गुणों को ढूंढा और छोटी छोटी बातों को महत्व दिया। उसका परिणाम यह है कि आप सबने मिल कर यह आठ दिन का समारम्भ कर मेरे लिये मंगल कामना की। मैं जैन समाज के और सर्व साधारण याने मानवमात्र के चरणों का एक लघु सेवक हूं। मैंने जनता से ही सम्पत्ति कमाई और बहुत कम जनता की सेवा में लगाई। फिर भी आप मुझे बड़ी बड़ी पदवियों से सम्मानित करते आये हैं। मेरा शरीर जिसे मैं मेरा कहता हूं, वह मेरा यानी आत्मा का नहीं है। वह आपकी सेवा में लगे, यही भावना मेरी सदा रही है। यह शरीर, समाज को और धर्म की सेवा में काम आवे और आप मुझसे अंत तक काम लें, इसे मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ। इस क्षण नश्वर जीवन की सार्थकता इसी में है। मैं आपसे सच कहता हूँ कि मुझे सामाजिक, धार्मिक और जनसेवा का कार्य करने में बड़ा आनन्द आता है। मुझे दु:ख है कि मैं आपसे इतना दूर हूँ और अशक्त हूं कि आप सबकी प्रत्यक्ष सेवा नहीं कर पा रहा हूँ। इन्दौर के मंडप में बैठ कर समारोह के पहले आनन्दों की कल्पनायें मेरे हृदय में हिलोरें ले रही हैं।

मुझे जैन धर्म में अगाध श्रद्धा है। मैं किशोर अवस्था से ही ऐसे ढांचे में ढला हूँ कि मेरे इस विश्वास में थोड़ा भी परिवर्तन नहीं हो सकता। जैन शास्त्रों के स्वाध्याय, त्यागियों और विद्वानों के सत्संग और मेरे कुछ साधर्मी मित्रों की गोष्ठी ने मुझे ऊँचा ही उठाया है। मैं यह जानता हूं कि मुझे अब कोई सांसारिक काम करना बाकी नहीं रहा है। सब तरह का साधन और आनन्द तथा योग्य उत्तराधिकारी प्राप्त कर अब कुछ भी करने की इच्छा नहीं रही और यह शरीर, जो कि स्वभाव से प्रत्येक क्षण जीर्ण होता जा रहा है, अब ज्यादा टिक नहीं सकता। मेरी वृद्ध अवस्था है। वह जो मेरा शरीर रोग है, शरीर का वजन बढ़ जाने या साता का अनुभव हो जाने से शायद बिलकुल दूर होकर पूर्ण स्वास्थ्य लाभ हो जायगा, इसे भी मैं मानने को तैयार नहीं। मैं यहां बम्बई आया हूं, यह

भी कुटुम्ब प्रेरणा से और व्यवहार साधने के लिए। मेरा दिल तो यही कह रहा है कि मैं इन्दौर पहुँच कर अपना पूरा समय आत्मकल्याण में लगाऊं और परम समाधि से उस नि'य और शुद्ध दशा को प्राप्त कर लूं। मुझे विश्वास है कि मेरा होनहार अच्छा है और मैं इस दृढ़ निश्चय को पूरा कर इस पर्याय को सफल बनाऊंगा।

मैं इन्दौर की जैन समाज, समस्त पंचायतों एवं समस्त भाइयों और बहिनों का तथा समस्त जनता का मेरे प्रति किये गये प्रेम प्रदर्शन और महान कष्ट के हेतु हृदय से आभार मानता हूँ।"

देवास कम्पाउण्ड के राजकुमारसिंह पार्क में राज टाकीज के भवन के उद्घाटन के अवसर पर। इस भवन की आमदनी पारमार्थिक संस्थाओं को दी जाती है।

सन् १६०४ में तीस वर्ष की अवस्था।

(सन् १६१० में श्री सम्मेदशिखरजी में भा० दि० जैन महासभा के १४वें अधिवेशन के सभापति ।

सन् १६१४ में मथुरा में भा०दि० जैन महासभा के उन्नीसवें अधिवेशन के सभापति।

सन् १६१६ में इन्दौर नरेश ने आपको 'राज्य भूषण' और भारत सरकार ने 'सर' की उपाधि में सम्मानित किया

सन् १६२३ में देहली में हुई विम्ब प्रतिष्ठा के अवसर पर।

सन् १६२४ में स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर।
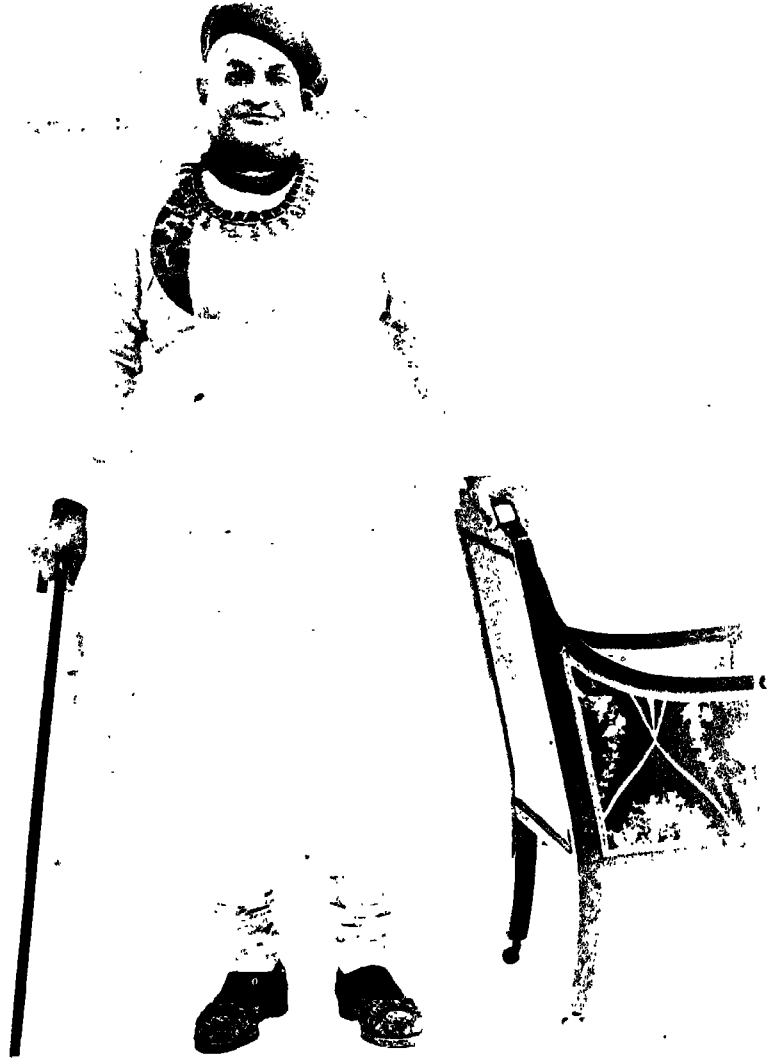
सन् १६२६ में सट्टे से विराग।

सन् १९२८ में ग्वालियर महाराजा के हाथों उज्जैन में हीरा मिल के उद्घाटन के अवसर पर।

सन् १६३० में इन्दौर नरेश द्वारा "रावराजा" की पदवी से सम्मानित किए जाने के अवसर पर।

सन् १९३० में हीरक जयन्ती के अवसर पर।

सन् १६३८ में बनेड़िया जी में भा० दि० जैन महासभा के १४ वें अधिवेशन के सभापति ।

सन् १६४४ में उज्जैन में भा० दि० जैन महासभा के अधिवेशन पर !

सन् १९४८ में सीकर में हुई बिम्ब प्रतिष्ठा के अवसर पर।

सन् १९४९ में ७६ वर्ष की आयु में (आरोग्य कामना के अवसर पर।)
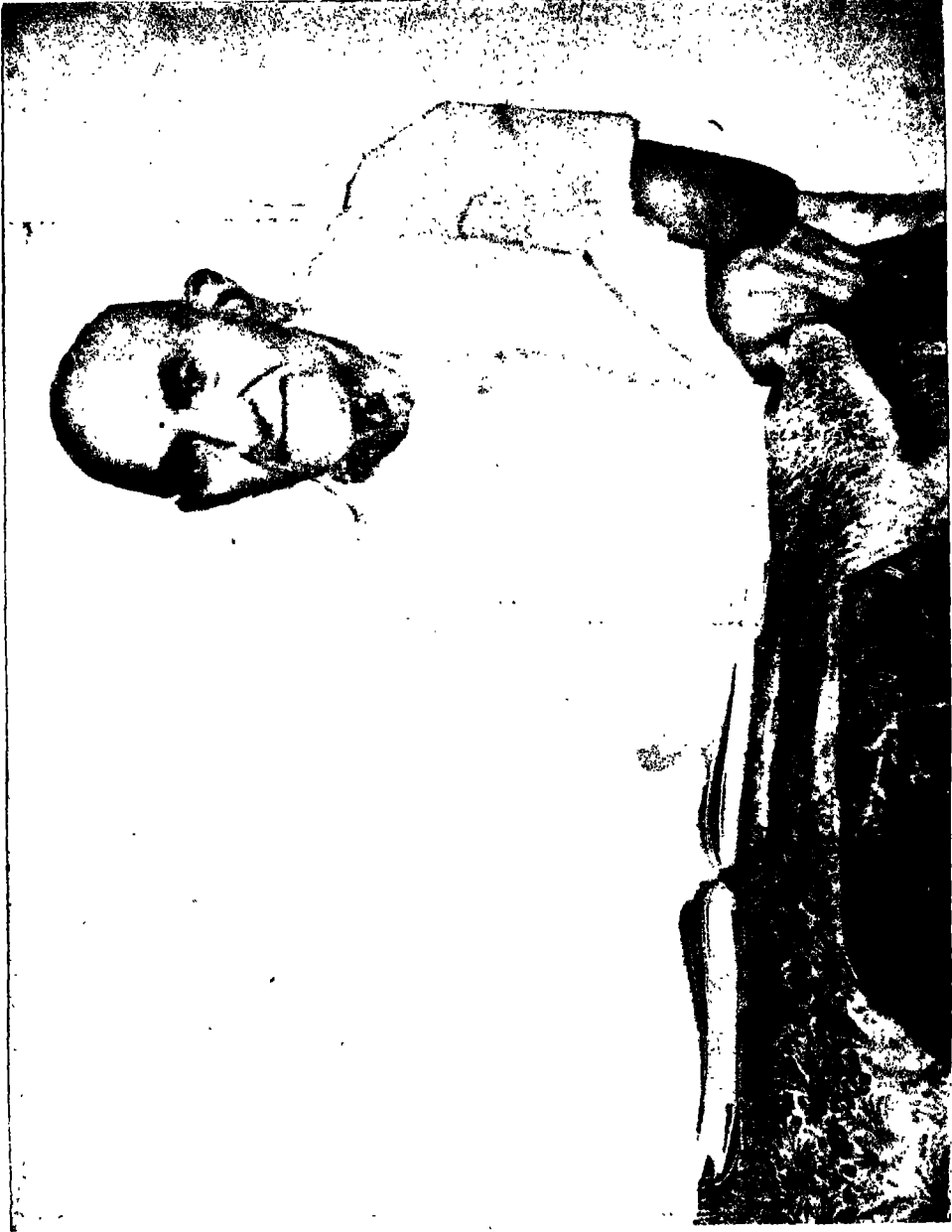
सन् १९५० में विरक्त जीवन।

विरक्त जीवन की साधना ३१ मार्च १९५१।

३
श्रद्धांजली व संस्मरण
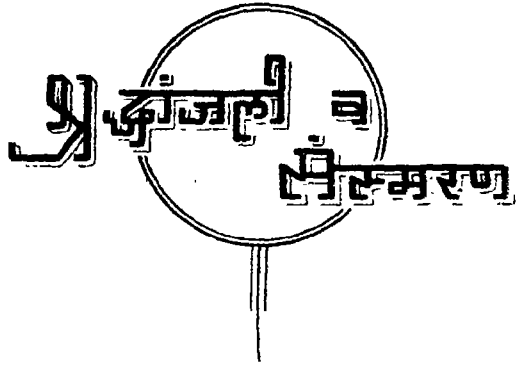
किसी भी व्यक्ति की लोकप्रियता का परिचय उसके प्रति दूसरों के विचार तथा उनकी भावना से ही मिल सकता है। निस्सन्देह,श्रद्धा तथा आदर के भावावेश में आकर सामान्य तौर पर विशिष्ट व्यक्तियों के लिये अत्युक्ति से काम लिया जाता है। इस ग्रन्थ के इस प्रकरण के लिए प्राप्त श्रद्धाँजलियों में भी कुछ भावुक महानुभावों ने ऐसा ही किया हो, तो आश्चर्य क्या है ? परन्तु उनके सम्पादन में ऐसे शब्द तथा वाक्यों को न देने का ही प्रयत्न किया गया है। इन श्रद्धांजलियों तथा संस्मरणों को देने का वास्तविक अभिप्राय तो यही है कि भिन्न भिन्न दृष्टिकोण और अनुभव के आधार पर सेठ साहब के व्यक्तित्व, चरित्र, जीवन और विशिष्ट गुणों पर कुछ विशेष प्रकाश डाला जाय । इसीलिए इन में कांट-छांट भी काफी करनी पड़ गई है। कुछ कांट-छांट स्थान और समय के सीमित होने के कारण भी की गई है। उसके लिए क्षमा-याचना है।

संस्मरण लिखने की प्रथा हिन्दी में प्राय: नहीं के ही समान है। संस्मरणात्मक साहित्य ही वस्तुत: किसी के चरित्र पर प्रकाश डालता है। इसीलिए श्रद्धांजलियों को भी संस्मरण-प्रधान बनाने का प्रयत्न किया गया है। जैसी चाहिये थी,वैसी सम्भवत: वे नहीं बन सकी हैं। फिर भी उनसे सेठ साहब के व्यक्तित्व, चरित्र, जीवन और विशिष्ट गुणों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। सम्भवतः इस ग्रन्थ की यह अपनी ही विशेषता है और यह पाठकों के लिए विशेष रूचिकर और मनोरंजक होगी।

जय विलास,
ग्वालियर.
दिनांक ३० मार्च, १९५१.

"दानवीर सेठ हुकुमचन्द अभिनन्दन ग्रंथ" के हेतु अपनी शुभ कामनायें प्रेषित करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है.

सेठ जी का व्यापारिक क्षेत्र में तो विशेष स्थान रहा ही है, साथ ही साथ उन्होंने राष्ट्र के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाने तथा मानव समाज की सेवा के लिये जो हित कर कार्य किये हैं वे वर्तमान व भविष्य की परिस्थितियों में भी आदर की भावना से स्मर्ण किये जावेंगे. इन्दौर नगर के निर्माण में और उसको औद्योगिक प्रधान प्रदेश बनाने में उनका बहुत बड़ा हाथ रहा है. अतएव आज मध्य भारत की जनता द्वारा उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना उचित ही है. वे हमारे प्रदेश के सब से वयोवृद्ध उद्योगपति, समाज सेवी और राष्ट्र सेवी हैं. मेरे परिवार से तो उनके बहुत पुराने सम्बन्ध रहे हैं, उनकी सौजन्यता, स्नेह और उदारता का मैं सदैव कायल रहा हूं.

परमेश्वर उन्हें चिरायु करे और वे अपना अवशेष जीवन शांति पूर्वक मोक्ष प्राप्त करने के हेतु व्यतीत करते रहें यही मेरी इस अवसर पर हार्दिक कामना है.

जिवाजीराव शिंदे.

"A LIFE FULL OF LESSONS."

His Exellency Dr. M.S. Aney, Governor of Bihar.

Seth Hukum Chand is one of the pioneer Indian industrialists. He is among those few capitalists who could see, even before the birth of Swadeshi movement of 1905, that industrialisation was the need of India and made a bold start in that direction. Modern Indore, which is one of the industrial cities of India, owes much of its importance to the initiative of Seth Hukumchandji. He is not only an industrialist but a great philanthrophist also. His charities have benefitted a large number of institutions, not only in Indore, but in other parts of India olso. He is known for devotion to his religion, Jainism. Scholars carrying on research in Jainism, Jain art and Jain history have generally been encouraged by him. His long life is full of lessons for all kinds of persons. I wish him to live for the full span of longevity vouchsafed to man by the Vedas, and sincerely desire that the publishers may have the fortune to celebrate his birthday centenary by presenting him with a centinary commemoration volume. I have no doubt that the preseut volume will be interesting and Instructive.

महामहिम डा० माधव श्रीहरि अणे राज्यपाल बिहार लिखते है कि "सेठ हुकमचन्द एक अग्रणी भारतीय उद्योगपति हैं। वे उन कुछ उद्योगपतियों में से हैं, जिन्होंने १९०५ के स्वदेशी-आन्दोलन से भी पहिले यह देख लिया था कि भारत की आवश्यकता उद्योगीकरण है और इस दिशा में उन्होंने साहसपूर्ण कदम भी उठाया। वर्तमान इन्दौर भारत के प्रमुख औद्योगिक नगरों में से एक है। उसके अधिकतर महत्व का श्रेय सेठ हुकमचन्दजी की सूझ-बूझ को है। वे न केवल एक उद्योगपति हैं, किन्तु बहुत उदार भी हैं। उनके दान से न केवल इन्दौर की, किन्तु भारत के अन्य स्थानों की संस्थाओं ने भी बहुत बड़ी संख्या में लाभ उठाया है। अपने जैनधर्म के प्रति अपनी श्रद्धा तथा निष्ठा के लिये वे सुप्रसिद्ध हैं। जैनधर्म, जैनकला तथा जैन इतिहास में खोज करने वालों को प्राय: उनसे प्रोत्साहन मिला है। सभी लोगों के लिये उनका महान जीवन शिक्षाप्रद है। मैं चाहता हूँ कि वे वेदों में प्रतिपादित मानव-जीवन की पूर्ण अवधि को प्राप्त करें और अन्तस्तल से यह चाहता हूँ कि इस अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशक उनकी सौ वर्ष की आयु में भी उनकी जयन्ती इसी प्रकार 'शताब्दी ग्रन्थ' भेंट करके मनाने का सौभाग्य प्राप्त करें। मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि यह अभिनन्दन ग्रन्थ भी रुचिकर और शिक्षाप्रद सिद्ध होगा।"

"A HOUSEHOLD NAME."

His Excellency Dr. Kailash Nath Katju,
Governor of West Bengal.
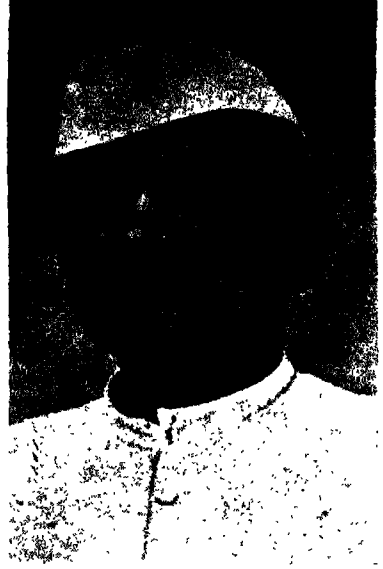
As a resident of Jaora I know the great place which Seth Hukumchandji has occupied in the life of the people of Malwa, and particularly of the city of Indore by his philanthrophy and a long life devoted to the social, economic and moral uplift of the comunity. He has endeared himself to all who have come into contact with him, and his name is household word not only in Indore, but the whole of Malwa. On this birthday anniversary of his greetings and good wishes will go to him from the whole of Malwa that he might have many more years of rest and happiness.

महामहिम डा० कैलाशनाथ काटजू राज्यपाल पश्चिमी बंगाल लिखते हैं कि "जावरा का निवासी होने से मैं यह जानता हूँ कि सेठ हुकमचन्दजी ने मालवा के लोकजीवन विशेषतः इन्दौर शहर में अपना कितना बड़ा स्थान बनाया हुआ है। इसका कारण आपकी उदारता और वहां की जनता के सामाजिक, आर्थिक और नैतिक जीवन के उत्थान में अपने महान जीवन का उत्सर्ग करना है। जो भी कोई उनके सम्पर्क में आया है, उसके हृदय में उन्होंने अपना स्थान बना लिया है और उनका नाम न केवल इन्दौर में, अपितु समस्त मालवा में घर-घर में सर्वविदित है। इस जन्म गांठ पर समस्त मालवा से ही उन पर बधाइयों और शुभ कामनाओं की वर्षा होगी कि उन्हें सुख-आराम और प्रसन्नता के और अनेकों वर्ष प्राप्त हों।"

शुभ कामना

राजा महाराजसिंहजी, राज्यपाल बम्बई

सेठ साहब के अस्सीवें जन्म-दिवस पर अभिनन्दन के लिये मैं भी अपनी शुभ कामना भेजता हूँ।

"A MERCHANT VING."

Hon. Syt. K. S. Firodia,
Speaker Bombay Lagislative Assembly.

I must confess that I had not many occasions of coming in close contacts with Sheth Hukumchand. Still I was fortunate in meeting him about twice or thrice and the short and the small contacts which I had had created a very pleasant and lasting impressions in my mind about his personality. He has been very rightly described as a Merchant King. He has led commercial activities for a very long time. Besides being a commercial and Industrial magnet his charities are magnenimous and very extensive.

His name has become famous not-only in India, but throughout the World. On this auspicious occasion I wish him long life and excellent health.

माननीय श्री० के० एम० फिरोदिया, अध्यक्ष—बम्बई धारासभा लिखते हैं कि "मुझे स्वीकार करना चाहिये कि मुझे सेठ हुकमचन्दजी के निकट सम्पर्क में आने का अधिक अवसर नहीं मिला। फिर भी दो-तीन बार उनसे मिलने का सौभाग्य मुझे अवश्य प्राप्त हुआ। उनके व्यक्तित्व का मेरे मन पर बहुत ही हर्षदायक और स्थायी प्रभाव पड़ा है। उनको ठीक ही 'वणिक-राजा' कहा गया है। बहुत लम्बे समय तक वे व्यापार-व्यवसाय में लगे रहे हैं। बहुत बड़े व्यापार-व्यवसाय और उद्योग-धन्धों को अपनी ओर खींचने वाले व्यवसायपति और उद्योगपति होने के साथ-साथ उनका उदारतापूर्ण दान भी बहुत ही विस्तृत और व्यापक है। केवल भारत में ही नहीं, किन्तु सारे विश्व में भी वे प्रसिद्ध हैं। इस शुभ अवसर पर मैं उनके दीर्घजीवी और स्वस्थ होने की कामना करता हूँ।"

भारत के 'रुई राजा'

श्री तख्तमलजी जैन,
मुख्य मन्त्री मध्यभारत

सर सेठ हुकमचन्द्रजी का नाम मध्यभारत में सभी जानते हैं। सेठ साहब यद्यपि पुरानी पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं, फिर भी उनका सार्वजनिक कार्य का उत्साह आज भी सर्वविदित है। अच्छे सफल उद्योगपति के नाते उन्होंने मध्यभारत में ही नहीं, किन्तु सम्पूर्ण देश में विशेष स्थान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की है। उनके मार्गदर्शन में चलने वाले कितने ही उद्योग मध्यभारत में फैले हुये हैं। इसी कारण एक समय उन्हें Cotton Prince of India 'भारत के रुई राजा' की उपाधि से समाचारपत्र गौरवान्वित किया करते थे।

आज सेठ साहब वृद्ध हो चुके हैं। पर, उनकी प्रतिभा आज भी कई प्रकार से प्रकट हुई दीखती है। उन्होंने खूब धन कमाया और उसका उपयोग सार्वजनिक हित के कार्यों में भी किया है। मेरी यही कामना है कि मध्यभारत के इस मत्र्यश्रेष्ठ वाणिज्य-व्यवसायी को भगवान अधिकाधिक आयु तथा आरोग्य प्रदान करें।

वांछनीय अभिनन्दन

श्री ईश्वरदासजी जालान, अध्यक्ष-पश्चिमी बंगाल-धारासभा

"सेठ हुकमचन्द से मिलने का पहले-पहल अवसर मुझे १६४३ में मिला, जबकि मैं इन्दौर गया था। उस समय भी काम करने की जो शक्ति मैंने उनमें देखी, उसे देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। जाड़े के महीनों में भी केवल कुर्ता पहन कर रहना, राजसी ठाट-बाट के साथ-साथ सादगी का होना, मिलनसारी और अभिमानशून्यता मैंने उनमें पायी। सेठ साहब ने सार्वजनिक कार्यों में लाखों रुपये दान किए हैं। सार्वजनिक संस्थाओं में भी आपकी काफी दिलचस्पी रही है। व्यापार क्षेत्र में भी आपका एक विशिष्ट स्थान है। इस समय सांसारिक झंझटों से पृथक् होकर धर्मसाधना में लगे रहते हैं। ऐसे सज्जन का अभिनन्दन वांछनीय है।"

समाज का हितैषी

श्री घनश्यामसिंह गुप्त, अध्यक्ष-धारासभा मध्यप्रदेश

मैंने जो कुछ सुना है, उससे यह मालूम होता है कि उनके जीवन और उनकी कमाई का बड़ा भाग समाज के हित में व्यय हुआ है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह उन्हें चिरायु बनायें, ताकि समाज की वे और भी अधिक सेवा कर सकें।

विशिष्ट व्यक्ति

लोकमान्य श्री जयनारायणजी व्यास,

मुख्य मन्त्री-राजस्थान

राजस्थानी होने से मैं उन के लिये सच्चा गर्व अनुभव करता हूँ, जिन राजस्थानियों ने देश की अभिवृद्धि में हाथ बटाया है। मारवाड़ को ऐसे अनेक विशिष्ट व्यक्तियों को जन्म देने का गौरव प्राप्त है। सेठ हुकमचन्दजी भी राजस्थानी और मारवाड़ी हैं। उन्होंने राजस्थान तथा मारवाड़ के मस्तक को बहुत ऊंचा किया है और उनसे भी यश तथा कीर्ति प्राप्त की है, जो राजस्थानियों के प्रति ईर्ष्या की दृष्टि रखते हैं। अस्सी वर्ष की आयु पाना कोई आसान बात नहीं है। यह सही है कि जिस स्थिति में सेठ साहब सरीखे लोग थे, उसमें उनके लिये उग्र राजनीति में सक्रिय रूप से विशेष भाग ले सकना संभव नहीं था; फिर भी साहित्य तथा कला आदि के विकास के अलावा 'स्वदेशी' की प्रगति में उन्होंने अपने जीवन में विशेष और सक्रिय भाग लिया है। पिछले दिनों में तो देशी राज्य लोक परिषद् को भी उन्होंने सहायता दी थी। मैं चाहता हूं कि वे दीर्घकाल तक हमारे बीच बने रहें, जिससे देश के सार्वजनिक जीवन और सार्वजनिक संस्थाओं को उनके सहयोग का उत्तरोत्तर अधिकाधिक लाभ मिलता रहे।

मध्यभारत का निर्माण

माननीय श्री रविशंकरजी शुक्ल, मुख्यमन्त्री मध्यप्रदेश-नागपुर

इन्दौर के प्रसिद्ध उद्योगपति एवं राष्ट्र-सेवी सर सेठ हुकमचन्द को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने की योजना का मैं स्वागत करता हूँ। हिन्दी साहित्य के प्रचार एवं प्रसार के लिए आपने असीम प्रयास और धन व्यय किया है। मध्यभारत के साहित्यिक तथा सार्वजनिक जीवन के निर्माण का बहुत कुछ श्रेय आपको ही है। ईश्वर से प्रार्थना है कि आप शतायु हों।

राज संन्यासी

श्री श्यामलालजी पाण्डवीय, उद्योगमन्त्री-मध्यभारत

सर सेठ हुकमचन्दजी भारत के सुप्रसिद्ध व्यवसायी एवं बड़े समाज-सेवी हैं। शुरू में उनकी स्थिति बहुत साधारण थी। लेकिन, अपने अनेक सर्वोत्तम गुणों के कारण आज वे इतने धनीमानी तथा प्रसिद्ध व्यक्ति बन गये हैं।

सेठ साहब स्वभाव के अत्यन्त सरल, रहन-सहन में रईस पर सादे और दिल के धनी हैं। उनका एक विशिष्ट गुण, जिससे लोग बहुत कुछ सीख सकते हैं, वह उनका शुद्ध और निर्मल चरित्र है। उनके पास इतना वैभव और धन-सम्पत्ति होते हुए भी उनमें अमीरों जैसी बुरी आदतें नहीं हैं। वे सुरा और सुन्दरी से सदैव दूर रहे, जो ऐसे धनीमानी रईसों के लिये बड़ा कठिन है। उन्होंने धन कमाने के साथ-साथ सबसे बड़ी जो दूसरी चीज कमाई, वह है उनका सुडौल व स्वस्थ शरीर। वे इसके लिये सदैव नियमित व्यायाम करते रहे हैं। उन्हें मरदानगी के खेलों में बड़ी रुचि है। यहां तक कि इसके लिये उन्होंने अपने भवन की पांचवीं छत पर एक अखाड़ा भी बनवाया था। पहलवानों का बड़ा मान-सम्मान करते और उन्हें समय-समय पर काफी सहायता देकर प्रोत्साहन दिया करते। सेठ साहब की लोकप्रियता के यों तो कई कारण हैं, पर एक विशेष कारण यह है कि वे इतने बड़े होने पर भी स्वभाव में सरल हैं। उन्हें अभिमान तो बिलकुल भी नहीं है। वे छोटे बड़े रईसों, राजे महाराजों, नेताओं, कार्यकर्ताओं अथवा साधारण जनों सभी से बड़े प्रेम और समान भाव से मिलते हैं। जहां बड़े-बड़े रईस, सरदार, जागीरदार व अनेक छोटे बड़े रजवाड़े सेठ साहब का काफी आदर करते हैं और नेता व कार्यकर्ता उन्हें अपना हितैषी समझकर उनका मान करते हैं, वहां व्यापारी वर्ग भी उनका काफी आदर करता है। बम्बई जैसे नगर में तो एक समय उनकी ऐसी धाक थी कि वहां का बाजार उनके नाम से ही खुलता और बन्द होता था। इसका मुख्य कारण है सेठ साहब की कार्यकुशलता, लगन और कठिन परिश्रम। इनके बल पर ही उन्होंने करोड़ों रुपये पैदा किये। धन के साथ-साथ अपने इस जीवन में नाम भी खूब कमाया। इसमें खूबी यह है कि वे केवल रुपया पैदा ही नहीं करते रहे, बल्कि उसका आपने सदुपयोग भी किया। अपनी कमाई का एक बहुत बड़ा अंश यानी ८० लाख उन्होंने दान में व्यय किये। यह दान जैन संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं को भी बिना भेदभाव के दिया गया और इसीके फलस्वरूप लोग आज उन्हें "दानवीर" कहकर पुकारते हैं। इस दान का जहां एक बड़ा भाग जैन मन्दिरों व संस्थाओं पर व्यय हुआ है, वहां महात्मा गांधीजी की प्रेरणा से हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा मालवीयजी की आकांक्षा से हिन्दू विश्वविद्यालय को भी काफी दिया गया है। सेठजी ने तो विश्वविद्यालय में अपने यहां की एक सीट भी सुरक्षित कराई है, जो उनकी एक सराहनीय कृति है।

वे स्वदेशी के अनन्य भक्त हैं। उन्होंने स्वदेशी का आरम्भ सबसे पहले किया, जब कि स्वदेशी कपड़ा उद्योग के लिए इन्दौर में कपड़े की मिल खोली। व्यापार जगत में तो सेठ साहब ने एक जादू-सा चमत्कार किया। उन्होंने इन्दौर जैसे नगर में ऐसे कठिन समय में कपड़े के उद्योग-धन्धे को पनपाया, जब किसी हिन्दुस्तानी का अंग्रेज शासकों व व्यापारियों के सामने टिकना आसान न था। लेकिन, सेठ साहब ने अपनी कार्यकुशलता, चतुरता, कठिन परिश्रम और लगन से वह कठिन कार्य भी सुगम बना दिया। अपितु आज के कपड़े के व्यापारियों के लिये भी उन्होंने मार्ग प्रदर्शित किया। यह तो उनकी एक सच्ची देशसेवा है। कपड़े के उद्योग के अतिरिक्त सेठ साहब ने फियूचर व गेहूँ आदि के व्यापार से भी लाखों करोड़ों पैदा किये और आज वे मध्य-भारत के ही नहीं, बल्कि देश के बड़े-बड़े धन-कुबेरों में गिने जाते हैं।

मेरा व सेठ साहब का परिचय नया नहीं है। हम दोनों समाज सेवा के अनेक कार्यों में बराबर मिलते रहे हैं और आज भी उसी प्रकार मिलते हैं। जैसे-जैसे मैं उनके सम्पर्क में आया, उनके गुणों की वैसे-वैसे मुझ पर छाप पड़ी। सेठ साहब की सूझ-बूझ गजब की है और उनका निर्णय प्रायः बहुत सही हुआ करता है। उनकी सफलता का सबसे बड़ा गुण तुरन्त निर्णय पर पहुँचने की शक्ति और निर्णय के अनुसार तुरन्त उस पर अमल करने की वृत्ति है। वे शीघ्र ही यह फैसला कर लेते हैं कि क्या करना है और फिर उसको तुरन्त अमल में ले आते हैं। यही उनका बहुत बड़ा गुण है।

दूसरे वे बड़े व्यावहारिक हैं और उनके हर निर्णय में बड़ी व्यावहारिकता होती है। इसी गुण ने उनको इतना बड़ा बनाया है।

तीसरा गुण उनमें यह है कि प्रत्येक आदमी से काम निकालना खूब जानते हैं। किससे किस प्रकार काम निकाला जा सकता है, इस कला में बड़े प्रवीण हैं। किसको किस समय मित्र बनाना चाहिए और किस समय उससे बिगाड़ करना चाहिए, इसे भी वे खूब जानते हैं। इन्हीं सब गुणों के कारण वे महान व्यक्ति बने हैं। लेकिन, आज सेठ साहब बाहरी दुनिया से अलग होकर केवल अपनी कोठी में ही रहते हैं। यह सब कुछ होते हुये भी विशेष बात यह है कि उनका वह पुराना टेलीफून, जो जीवन की सुनहली घड़ियों में सदैव उनकी छाती से लगा रहा, आज भी उसी प्रेमभाव से लोकसेवा के लिये उनका साथी है। उन्होंने उसका मोह अभी भी नहीं छोड़ा। आशा है वह भी छूट जायेगा और वैभवशाली धनीमानी को हम निकट भविष्य में ही सच्चे राजसंन्यासी के रूप में भी देख पायेंगे।

शुद्ध भारती आदर्श

श्री बलवंतसिंह महता, उद्योग तथा व्यवसायमंत्री राजस्थान

मैं सर सेठ हुकमचन्दजी के नाम को अपने बचपन यानी ४० वर्ष पूर्व से सुनता आ रहा हूं। राजस्थान और मध्यभारत ही में नहीं, बल्कि सारे भारतवर्ष में आपकी दान शीलता, सुन्दर स्वास्थ्य तथा औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिभा की चर्चा किसी समय आम जनता का विषय रहा है। अन्तिम आयु में आपने अपना जीवन आत्म साधना में लगा कर शुद्ध भारतीय आदर्श उपस्थित किया है। इस अवसर पर आपको बधाई देता हुआ परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि आपको दीर्घायु बना देश के और भी पुण्यवान बनावे।

मध्यभारत को अभिमान

सैयद हामिदअली साहब, उपमंत्री मध्यभारत

दानवीर सर सेठ हुकमचन्दजी मध्यभारत के सुप्रसिद्ध सफल व्यापारी हैं। स्वदेशी उद्योग-धन्धों, सोने-चांदी तथा रुई के व्यापार और उनके भावों के दाव-पेच में आपने विदेश में भी काफी ख्याति प्राप्त की है। इस दिशा में मध्यभारत को आप पर अभिमान होना स्वाभाविक है। सेठ साहब का सच्चरित्र और व्यवहार कुशलता प्रसिद्ध है। गृहस्थी के मामूली से मामूली काम और बड़े-से-बड़े उद्योगधन्धों में आपकी अहतियात, दूरदर्शिता और मामलेबन्दी व्यापारी वर्ग के लिये शिक्षाप्रद रही है। जहां सेठ साहब अपने असाधारण गुणों से काफी धन कमाते रहे, वहां अब तक आपने सार्वजनिक संस्थाओं और कार्यों में ७५ लाख रुपये से अधिक दान दिया है। मेल-जोल में आपका व्यवहार मनोरंजक और सरल है मुझे कई बार सेठ साहब से मिलने का अवसर मिला, इस ८० वर्ष की आयु में भी सेठ साहब में काफी जोश और संजीदगी है। हर बात आप सोच-विचार करके करते हैं। आजकल

आप सांसारिक वैभव से विरक्त होकर एकान्त धर्म साधना में समय व्यतीत करते हैं। मेरे मन में उनके लिये जो आदर है, उसे प्रकट करते हुये हर्ष महसूस करता हूँ।

अनुकरणीय साधुवृत्ति

श्री सुन्नूलालजी, उपमन्त्री-मध्यभारत

श्रीमान् सेठ साहब ने अनेक शैक्षणिक तथा जनहितकारी संस्थाओं को समय-समय पर आर्थिक सहायता देकर अपनी दानवीरता के साथ जनहित की भावना का जो परिचय दिया है, वह सराहनीय है। उद्योग क्षेत्र में भी लगन व तत्परता से कार्य करके प्रगति की है। इतना वैभव संपादन करने पर भी आपने सब वैभव एवं कारबार छोड़ कर विरक्ति भाव से जो साधुवृत्ति से शेष जीवन बिताने का संकल्प किया है, जिसके अनुसार आप जीवन यापन भी कर रहे हैं, वह अनुकरणीय है।

कृतज्ञता का प्रतीक

माननीय श्री फूलचन्दजी, आरोग्य-मन्त्री हैदराबाद

केवल धनवान होने के कारण कोई किसी का अभिनन्दन नहीं करता। पर, समाज के कल्याण के लिये, धर्म, शिक्षा तथा राष्ट्र के हित के लिये जो धनिक धन का व्यय करता है, वह अभिनन्दन के योग्य है। ऐसे धनवान का अभिनन्दन न करना उचित न होगा। इस कृतज्ञता के प्रतीक के रूप में अभिनन्दन-ग्रन्थ अर्पण करने का प्रबन्ध समयोचित है। इस समय पर मेरी शुभ कामनाएं भेजने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ, यह मेरा सद्भाग्य समझता हूँ और सेठ हुकमचन्दजी के लिये दीर्घायुष्य की और उनसे समाज और राष्ट्रकल्याण का कार्य अधिक से अधिक होता रहे, यह शुभ कामना प्रकट करता हूँ।

इन्दौर राज्य के भूषण

श्रीमन्त महाराज साहब तुकोजीराव होलकर इन्दौर

हमारा सर हुकमचन्दजी से परिचय बहुत ही दीर्घकाल से है और हम उनके श्रेष्ठ गुणों से पूर्ण रूप से परिचित हैं। इन्दौर राज्य के व्यापारिक और आर्थिक उन्नति की तरफ सर हुकमचन्दजी की भावना व प्रयत्न देखकर हमारे दिल में हमेशा उनके लिये आदर रहा है। इन्हीं गुणों के कारण इन्दौर राज्य से अनेक प्रसंगों पर उनका गौरव भी होता रहा है। इन्दौर राज्य के व्यापारिक व औद्योगिक उन्नति के आधारस्तंभ माने हुए जो थोड़े से व्यक्ति हैं, उनमें से सर हुकमचन्दजी का स्थान श्रेष्ठ है। जिस प्रकार सर हुकमचन्दजी अपने कार्यक्षेत्र द्वारा इन्दौर राज्य के भूषण साबित हुए, वैसे ही मध्यभारत राज्य के भी भूषण वह होंगे—ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है। इन्दौर राज्य के अतिरिक्त भारत सरकार में भी सर हुकमचन्दजी का गौरव होता आ रहा है। हमें अभिमान है कि हमारे यहां के एक सुयोग्य व्यक्ति बाहर सब जगह गौरव के पात्र साबित हुए हैं। उनका गौरव किया जा रहा है उसके लिये वे पूर्णरूप से सुयोग्य हैं।

सराहनीय सेवा

श्रीमन्त महाराणा साहब बहादुर-बड़वानी

मध्यभारत ही नहीं, किन्तु सारे देश में सर सेठ हुकमचन्द जी की सामाजिक और देशभक्तिपूर्ण सेवाओं का जाल बिछा हुआ है। उन्होंने बड़े श्रम और लगन से उपार्जित धन का बड़ा भाग इन सेवाओं में लगाया है। निस्सन्देह ये सेवायें सराहनीय हैं। राज्य की राजधानी के समीप ही बावनगजाजी का सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक तीर्थक्षेत्र है। इस क्षेत्र को अपना पुराना गौरव प्रदान कराने में रावराजा साहब ने जो प्रयत्न किया

है, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इसकी प्रसिद्धि का सारा श्रेय सेठ साहब को ही है।

महाराज धांगधा

अस्सीवां जन्मदिवस मनाने के अवसर पर मैं सेठ साहब को अपनी शुभ कामनायें बहुत प्रसन्नता के साथ अर्पित करता हूं। मध्यभारत की औद्योगिक प्रगति में उसका सहयोग सराहनीय है। जनता की शिक्षा और स्वास्थ्य रक्षा के लिये भी उन्होंने उदारता पूर्वक दान दिया है। अब उन्होंने संसार के सुख-वैभव का परित्याग कर विरक्त जीवन बिताना शुरू किया है। मेरी शुभ कामनायें हैं कि वे दीर्घजीवी हों और आत्मसाधना में सफल हों।

महाराज मैसूर

इस शुभ अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभ कामनायें सेठ हुकमचन्दजी के लिये भेजता हूँ। मैं आशा करता हूं कि मध्यभारत का यह महान् उदार देशभक्त अवश्य ही दीर्घायु प्राप्त करेगा, जिससे उसकी अनुकरणीय लोकसेवा और सराहनीय उदारता का लाभ देश के महान् कार्यों को मिलता रहे।

"GEREATEST PHILANTHROFIST AND BENEFACTOR."

Col. Dinanath, Ex-Prime Minister-Holkar State.

I have known Raoraja Sir Seth Hukamchand Ji for the last 36 years. During this long period I came into intimate contact with Sethji as a Minister and lastly as a Prime Minister of Holkar State and I have not come across a greater philanthrofist and benefactor not only in Indore, but in the whole of India than Sethji. It is due to him that Indore occupies such an important industrial and comercial Centre in Madhya Bharat. He is a Merchant Prince of the highest order, whose purse strings were always open for the cause of poor and needy. He is the founder and benefactor of many charitable and educational institutions in Indore and outside. I consider it a privilege and a pleasure to congratulate Sethji on his 80th Birthday wishing him many more years of religious study and meditation.

चालीस वर्ष के साथी

सर सिरेमलजी बापना, इंदौर के भूतपूर्व प्रधानमंत्री

मैं सेठ साहब को चालीस वर्षों से बहुत समीप से जानता हूँ। मेरी उनके सम्बन्ध में बहुत ऊंची राय है। उनकी उदारता सुप्रसिद्ध है। समाज और विशेषतया जैन समाज के लिये उनकी सेवायें अत्यन्त सराहनीय हैं। अनेक संस्थायें इन द्वारा संस्थापित या संपोषित हुई चल रही हैं। अब ये विरक्त जीवन बिता रहे हैं और अपना समय स्वाध्याय और ध्यान में ही बिताते हैं।

तीर्थङ्करों का आशीर्वाद

दानवीर सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला

सर हुकमचन्दजी देश के इनेगिने उन प्रतिष्ठित बड़े व्यापारियों में से हैं, जो धन उपार्जन के साथ समाज सेवा तथा धर्मोपार्जन भी करते रहे हैं और अब तो वह त्यागमय संन्यास आश्रम में प्रवेश कर गए हैं। इस समय उनकी अस्सी वर्ष की जयन्ती मनाने का जो आयोजन अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा कर रही है, उसे जानकर प्रसन्नता हुई। उन्हें परमानंद पद प्राप्त होने में तीर्थङ्करों का आशीर्वाद प्राप्त हो।

वाणिज्येन्द्र

मनस्वी सेठ रामगोपालजी मोहता, बीकानेर

(गीता के प्रवक्ता, मनीषी और सुप्रसिद्ध व्यवसायी)

देश के सुप्रसिद्ध और स्वनामधन्य श्रेष्ठि रावराजा सर श्री हुकमचन्दजी के प्रति अभिनन्दनात्मक भाव प्रगट करने में मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। वे मेरे घनिष्ट मित्र हैं। इसलिये बहुत अधिक क्या लिखूं ? उनकी विशेषताओं और महिमा से अधिकांश देशवासी अपरिचित नहीं हैं। उन्होंने देश की अनेक उपयोगी संस्थाओं को लाखों रुपया दान दिया है। ऐसा दान और भी अनेक उदारवृत्ति के धनिक देते रहे हैं। मुझे उनकी जो विशेषता अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होती रही है, वह है उनके वैभव की उपभोग प्रणाली। उनको देख कर अनेक प्राचीन जगत सेठों के वैभव और कीर्ति का स्मरण हो जाता है। कहते हैं कि भगवान बुद्ध के प्रसिद्ध अनुयायी अनाथपिण्डक महाश्रेष्ठि ने बौद्धों के निवास स्थान के लिये समस्त विहार भूमि पर सोने की मोहरें बिछा दी थीं। इन्दौर में उनके बनाये हुये देदीप्यमान जैन मंदिर (शीश मंदिर) की जगमगाहट देखकर आज भी वही भावना सेठ हुकमचन्द जी में मूर्तिमान दिखाई देती है।

धन अनेकों के पास होता है। लेकिन, अपने धन से देश के अत्यन्त कुशल शिल्पकारों, मूर्तिकारों, संगीतज्ञों, सुवर्णकारों, हीरे, पन्ने, मणि, माणिक, मोतियों के रत्ना-भूषण शिल्पियों का उपयोग करके लक्ष्मी की विभूति का सम्पूर्ण राजसी वैभव प्रदर्शन देखकर यह प्रतीत होता है कि इनकी ' राजरत्न ' उपाधि सर्वथा सार्थक है।

सेठ हुकमचन्दजी की गिनती देश के बहुत बड़े धनिकों में है। परन्तु यह धन भी उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा से ही उपार्जित किया है। जिन दिनों वे अपने व्यापार का स्वयं संचालन करते थे, तो इनके धुंआधार व्यापार की धाक केवल भारत में ही नहीं, बल्कि चीन, ब्रिटेन और अमेरिका के संसार प्रसिद्ध वाणिज्य केन्द्रों पर भी जमी हुई थी। विश्व वाणिज्य का नेतृत्व करने वालों में इनकी ख्याति भारत के ' वाणिज्येन्द्र ' " Merchant Prince " के रूप में विख्यात हो गई।

उत्तम स्वास्थ, सुन्दर स्वरूप, लक्ष्मी की परम कृपा, सफल व्यापारिक प्रतिभा, उदार और रसिक हृदय आदि अनेक दुर्लभ वस्तुओं का इनको सहज सुयोग रहा है। अब इनमें वानप्रस्थ अवस्था का समय है। सफल जीवन के संध्याकाल में समस्त वैभव से वृत्ति खींच कर अब वे उदासीन व सजग भाव से अत्यन्त सादगी की विरक्त जीवनचर्या अपना कर चित्त की शांति के लिये प्रयत्नशील हो रहे हैं। मेरी शुभ कामना है कि इस में भी इनको सफलता प्राप्त होवे।

"A PERSON OF GREAT MAGNANIMITY."

Seth Kasturbhai Lalbhai.

I know Sir Hukam Chand for the last twenty years and over as a person of great magnanimity, keen intellect and a prominent industrialist. During his career he has established many iudustries, as also donated much amount to works of public utilility for which he deserves well of his country.

I wish Sir Hukam Chand a quiet and peaceful life particularly when he is retired from business and is devoting himself to meditation.

मध्यभारत के निर्माता

श्रीमंत प्रताप सेठ, खानदेश के सुप्रसिद्ध उद्योगपति

रावराजा सर सेठ हुकमचन्द सुविख्यात दानी और समाजसेवी हैं। स्वकर्तृत्व से कमाये धन का विनियोग आपने बड़े औदार्य से और कुशलता से औद्योगिक उन्नति के लिये और सामाजिक विकास के लिये किया है। आपके दान का एक विशेष गुण यह है कि आपने जो सामाजिक संस्थायें निर्माण की हैं या जिन संस्थाओं को आर्थिक साहाय्य किया है, उनको स्वावलम्बी और पूर्ण बनाया है और आप स्वयं उन संस्थाओं से विरक्तभाव से रहे हैं। सेठ साहब आधुनिक मध्यभारत के निर्माता हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

असाधारण व्यक्ति

सेठ गुलाबचन्द हीराचंद सुप्रसिद्ध उद्योगपति

सेठ हुकमचन्दजी असाधारण व्यक्ति हैं। वे जैन समाज के द्वारा सर्व प्रकार की प्रशंसा और सन्मान के पात्र हैं।

अनुकरणीय आदर्श

धर्मप्राण गोभक्त सेठ चिरंजीलालजी लोयलका, बम्बई

मैं सर सेठ हुकमचन्दजी को वर्षों से जानता हूँ। आप बम्बई या मध्यभारत के ही नहीं, हिन्दुस्तान के बहुत बड़े और प्रथम कोटि के करोड़पति व्यापारी और उद्योगपति हैं। आपने अपनी आयु का बड़ा भाग व्यापार-व्यवसाय और उद्योग-धन्धों में बिताते हुये भी धर्म को कभी भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। धर्ममय जीवन आपके महान जीवन की अनुकरणीय विशेषता है। आप मिलनसार, सरल, सहृदय और धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति हैं। आपकी उदार दानशीलता भी अत्यन्त सराहनीय है। जो धनी-मानी लोग अपने जीवन की अन्तिम घड़ी में भी धन-पुत्र-कलत्र की मोहमाया के जाल में उलझे रहते हैं, उनके सामने आपने एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर दिया है। आप उन थोड़े से लोगों में से हैं, जिन्होंने धन के साथ धर्म का भी सम्पादन किया है और जीवन का अन्तिम भाग सम्पूर्ण रूप से धर्म-कर्म में ही व्यतीत कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि दूसरे धनीमानी व्यापारी भी आपका अनुकरण करें। आप शतायु हों और आपका आदर्श प्रकाशस्तम्भ की तरह हमारे सामने बना रहे।

समाज की विभूति

सेठ रामदेव आनंदीलाल पोद्दार—बम्बई के सुप्रसिद्ध शिक्षाप्रेमी उद्योगपति

सर सेठ हुकमचन्दजी से मेरा वर्षों का परिचय है। आप खास घराने के व्यक्ति होते हुये भी प्रारम्भ में साधारण व्यापारी थे। आप में अपूर्व साहस था। इसी कारण से आपने व्यापार में काफी मात्रा में धनोपार्जन किया। अच्छी मात्रा में धनोपार्जन कर लेने के बाद आपने औद्योगिक क्षेत्र में भी विकास किया और कई उद्योग कायम किये और उनमें भी खूब द्रव्योपार्जन किया। वह धन समाज के उपयोगी कार्यों में आपने काफी मात्रा में लगाया। आपने सामाजिक सेवायें भी बहुत-सी कीं। वह भी सराहनीय हैं। इस तरह सर्वाङ्गीण कार्यों में अटूट साहस से सदैव सहयोगी बने रहने के कारण आपने काफी गौरव प्राप्त किया है। आप मिलनसार प्रकृति के हैं। ऊंचे स्टैंडर्ड से रहते हुये भी व्यक्तिगत रूप से आपकी सादगी ने सोने में सुगन्ध का काम किया है। आप देश के खास व्यक्तियों में गिने जाते हैं। ऐसे आदमी बहुत कम होते हैं, जो इस तरह समाज की पंचमुखी सेवायें करते हैं। मेरी सदैव आपके प्रति श्रद्धा रही है। आप समाज की एक विभूति हैं।

सर्वप्रिय उद्योगपति

सेठ रामनारायणजी रुइया, बम्बई के सुप्रसिद्ध व्यवसायी

यदि आपको आधुनिक इन्दौर का विधाता कहा जाय, तो अतिशयोक्ति न होगी। यद्यपि आपका मध्यभारत के औद्योगिक और आर्थिक विकास में बहुत बड़ा हाथ रहा है, तो भी आपका व्यवसाय इसी प्रदेश तक सीमित नहीं है, अपितु समस्त भारतभूमि पर विस्तृत है। मैंने सेठ हुकमचन्दजी को भारत के उद्योग-धन्धों को पूर्ण करने में गतिशील ही पाया है। व्यावसायिक जीवन में अधिक व्यस्त होते हुये भी देश की अन्य प्रवृत्तियों में भी आप पूर्णरूप से सहयोग देते आये हैं। आपकी महान सेवाओं से यह देश अपरिचित नहीं है। यह हमारा सौभाग्य है कि भारतवर्ष में सेठ हुकमचन्दजी जैसे उद्योगपति, कर्मवीर, समाजसेवी तथा साहित्यप्रेमी आज भी मौजूद हैं। मेरी यह शुभ कामना है कि आप दीर्घायु हों और हम लोगों का मार्ग दर्शन करते रहें।

वे दीर्घजीवी हों

सर श्रीराम, दिल्ली क्लाथ मिल, नईदिल्ली

मुझे यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि पुराने उद्योगपति सर हुकमचन्द अपनी आयु के ८० वर्ष पूरे कर रहे हैं। वे बहुत ही सफल व्यापारी और अनेक सार्वजनिक संस्थाओं को बहुत उदारता के साथ दान देने वाले हैं। भारत के ऐसे अनेक महापुरुषों की आवश्यकता है। उनका महान जीवन दीर्घजीवी हो।

बिगड़ी को बनावे उसका नाम बानिया

राज्यभूषण, रायसाहब राज्यरत्न सेठ जगन्नाथजी, इंदौर

मेरे साथ श्रीमन्त रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी का सम्बन्ध लगभग पचास वर्षों से अधिक से है। यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहा है। इन्दौर के व्यापारिक समाज में जब भी कभी व्यापारिक कठिनाइयां उत्पन्न हुईं, तब सर सेठ साहब की सम्मति व सहयोगसे सहज ही सरकार व ग्यारह पंचों में निबटती रहीं। आपका साहस, धैर्य व समयोपयोगी सलाह सदैव सफलीभूत रही है। आपका मेरे व कुटुम्ब के प्रति अगाढ़ घरोवा व प्रेम है। वैसे ही यह सम्बन्ध भी ऐसे हैं कि समय-समय पर हर प्रकार से सर सेठ साहब का जो सहयोग व सद्‌भावना मिलती, वह हमारे लिये चिरस्मरणीय रहेगी। मैंने अपने जीवन व अनुभव में कभी ऐसा सत्पुरुष नहीं देखा, जो वैभव व ऐश्वर्य में किसी राजा से व प्रेम व नम्रता में किसी महापुरुष से कम नहीं है। साज-बाज व खानपान के शौकीन ऐसे पुरुष वैश्य जाति में कम देखने में आए हैं।

मेरे सम्मुख कई ऐसे भी प्रसंग उपस्थित हुए जब सेठ साहब के धैर्य्य व गाम्भीर्य को देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। "बिगड़ी को बनावे उसका नाम बानिया' यह लक्षण सेठ साहब में पूर्ण रूप से विद्यमान है और बिगड़ी को बनाने में उनका हर प्रकार से सहयोग रहा है।

सर सेठ साहब के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा व स्नेह है और आयुष्य में मेरे बराबर होते हुए भी मेरे हृदय में आपके प्रति सदैव पुनीत भावनाएं जगमगा रही हैं। अन्त:करण से अपने हृदय के उद्‌गार श्रद्धाञ्जलि रूप में आपके प्रति व्यक्त करता हूँ। परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह ऐसे परोपकारी एवं दयालु सज्जन को शतायु दें, जिससे वे जनता एवं व्यापारी समाज का और अधिक उपकार करते रहें।

आदर्श जीवन

श्री सेठ गजाधरजी सोमानी, बम्बई के प्रसिद्ध उद्योगपति और समाजसेवी

इस देश के औद्योगिक व आर्थिक क्षेत्र में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने सर सेठ हुकमचन्दजी

जी का नाम सुना न हो। आपने अपने दीर्घ जीवन में व्यवसाय और औद्योगिक क्षेत्र में बहुत ही ऊंचा स्थान प्राप्त किया है। आपकी औद्योगिक और व्यापारिक प्रतिभा सुप्रसिद्ध है। मध्य भारत में आपके व्यवसाय का केन्द्र होते हुये भी आपका नाम सारे भारत के व्यापारिक क्षेत्र में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। व्यापारिक प्रशस्ति के साथ-साथ आप में बड़ी उदारता भी है, जिसका आपके द्वारा स्थापित तथा पोषित अनेक सार्वजनिक संस्थायें ज्वलन्त प्रमाण हैं। आप बड़े ही मिलनसार मधुर प्रकृति के सज्जन हैं। छोटे-से-छोटे व्यक्ति के साथ भी आपको प्रेमपूर्वक मिलने में कभी संकोच नहीं होता। यह आपके विशाल हृदय का परिचायक है। अभी कुछ वर्षों से आप व्यापारिक प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर एकान्त एवं सरल जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आपके आदर्श जीवन से व्यापारिक जगत लाभ उठायेगा।

प्रमुख व्यापारी

श्री दुर्गाप्रसादजी मंडेलिया, जीवाजीराव बिड़ला काटन मिल-मुरार-ग्वालियर

रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी साहब का स्थान मध्यभारत के ही नहीं, हिन्दुस्तान के उद्योगपतियों व व्यापारियों में प्रमुख है। इन्दौर की व्यापारिक और औद्योगिक उन्नति का तो प्रायः सारा श्रेय सेठ साहब को ही है। सेठ साहब के अभिनन्दन के इस शुभ अवसर पर मैं उनकी दीर्घायु के लिये अपनी शुभ कामनायें अर्पित करता हूँ।

जीवन की अमिट स्मृतियां

लाला रामरतनजी गुप्ता, सुप्रसिद्ध उद्योगपति, कानपुर

जीवन के ८० कर्मठ वर्ष पार करके सर सेठ हुकमचन्दजी ने कर्म संन्यास ग्रहण किया है और वे अब वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर गये हैं। जो जन्म से साधु प्रवृत्ति का हो, जिसका जीवन सदैव परोपकार तथा समाज सेवा में बीता हो तथा जिसने कभी किसी का बुरा न सोचा हो, उस के लिये कर्म-संन्यास सदैव रहा है और रहेगा। उन्होंने जो कुछ किया, स्वान्तः सुखाय किया। यश, ख्याति, मान तथा कीर्ति की उन्होंने कभी भी परवाह नहीं की। अपने निश्चित मार्ग पर चलते जाना तथा निन्दा या स्तुति की बिना परवाह किये अपना कर्तव्य निभाना उनकी परिपाटी रही है और इस परिपाटी को स्वभावतः निभाने वाले पुराने कुलीन लोगों की इनी गिनी संख्या में से एक वे भी हैं।

मैं उनकी प्रशंसा में कुछ लिखूं तो असंगत होगा। वे मेरे पिता के मित्र थे। अतएव मुझे भी अपने बच्चे के बराबर समझते हैं। मैंने जीवन में उनका आशीर्वाद पाया है। उनकी छाया में हमारे ऐसे को उत्साह तथा संकल्प मिला है। कई बार वे हमारे निवासस्थान पर अतिथि रह चुके हैं और मैं भी उनका अतिथि रह चुका हूँ। निकट सम्पर्क के दो चार मौके मेरे जीवन की अमिट स्मृतियां हैं। जितना बृहत् उनका भोजन है, उतना ही बृहत् उनका पेट भी है। यानी उस में इतनी गम्भीरता है कि हरेक का दुःख सुख उसमें आसानी से समाया रहता है और वे किसी की समस्या को कभी भूलते ही नहीं।

धन के साथ सेवा की जो मर्यादा सेठजी ने कायम की है, वह हम सबके लिये आदर्श हैं। जितनी आत्मीयता वे सरलस्वभाव से सबको प्रदान करते हैं, वही आज के जमाने में अप्राप्य वस्तु है।

अक्षय आयु की कामना

श्री आर० सी० जाल, मैनेजिंग डायरैक्टर हुकमचंद मिल्स, इंदौर

यों तो मुझे अपने जीवन में देश के कई महान् व उच्चकोटि के व्यवसायी और उद्योगपतियों से संपर्क

में आने का प्रसंग आया है, परन्तु गत तीस वर्षों के अविरत संसर्ग से जो विशेषताएं मैंने श्रीमन्त सेठ साहब में पाईं, वे इस कोटि के धनिकों में दुर्लभ ही हैं। आपने अपने जीवन से यह सत्य करके दिखा दिया है कि लगनपूर्वक परिश्रम ही उन्नति का मूलमन्त्र है। लगातार रातदिन के अथक परिश्रम के पश्चात् भरपूर नींद से जगाकर भी यदि आप सेठ साहब से व्यापार या उद्योग सम्बन्धी सलाह चाहेंगे, तो भी आपको उनसे वही शान्तिपूर्वक सुलझी हुई बातें मिलेंगी। झुंझलाहट, चिड़चिड़ापन व क्रोध, जो इस परिस्थिति में स्वाभाविक है, उसका सेठ साहब में अभाव मिलेगा। कठिन परिस्थिति व विकट समस्या के उपस्थित होने पर भी आपके चेहरे पर हतोत्साह के भाव कभी भी दिखाई नहीं पड़ेंगे। विपत्ति का साहस व साधना के साथ सामना करना तथा उसमें से सफलतापूर्वक निकलना सेठ साहब के लिये सहज है। किसी भी नवीन उद्योग में हाथ डालना व साहस के साथ जोखिम उठा संलग्नतापूर्वक निभा ले जाना सेठ साहब के लिये साधारण सी बात है।

सेठ साहब अपनी धुनके धनी हैं, परन्तु त्रुटि ज्ञात होने पर बिना किसी हिचकिचाहट के उसे स्वीकार करने तथा उसी क्षण सुधार करने में विलंब भी नहीं करते। दुराग्रह तो आपके कोष में कोई शब्द ही नहीं है। अपने सम्पूर्ण कार्यभार में सेठ साहब अनुशासन के बड़े कायल हैं। यही कारण है कि वे हमेशा सामयिक शासनकर्ताओं को पूर्ण मानसन्मान की दृष्टि से देखते रहे हैं।

कपड़े की मिलें, ज्यूट की मिलें, स्टील व बिजली के कारखाने, तेल शक्कर व रुई के बड़े-बड़े कारखाने, बैंक, इन्शोरन्स कम्पनी आदि संस्थाएं देश के सभी महत्वपूर्ण उद्योग व व्यापार में सेठ साहब का प्रमुख हाथ रहा है। अतुल सम्पदा को स्वयं के प्रयत्नों द्वारा उपलब्ध कर उसका जो सदुपयोग सेठ साहब ने किया है, वह किसी से छिपा नहीं है।

अपने धर्म के पक्के श्रद्धानी होते हुए भी आपने अन्य धर्मों में अच्छाई ही देखी है। आपकी धार्मिक सहिष्णुता अद्वितीय है।

धन दुर्व्यसनों का एक प्रमुख कारण माना जाता है। परन्तु सेठ साहब का चारित्र बल महा प्रबल है दुर्व्यसनों से सेठ साहब सदा दूर रहे हैं। यही आपके हृदय की दृढता तथा विशालता का द्योतक है। आपका उच्च रहन सहन, परन्तु सादगी के साथ मिलनसारिता देखकर शत्रु भी बैर भाव भूल जाता है। आज सारा समाज सेठ साहब के इन गुणों का कायल है। अतः न केवल मध्यभारत, अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष के समस्त व्यापारी व व्यवसायी के स्वर में स्वर मिलता हुआ मैं भी अपने इस वयोवृद्ध तपस्वी की अक्षय आयु की कामना करता हूँ।

आध्यात्मिक जीवन की ज्योति

देशभक्त सेठ अचलसिंहजी, आगरा

वैसे तो मैं पत्रों द्वारा श्री सेठ साहब की सार्वजनिक संस्थाओं और अन्य कार्यों में दान की महिमा बहुत कुछ सुनता व पढ़ता रहता हूँ, पर आज से चन्द वर्ष पूर्व मुझे एक बार जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के दर्शनार्थ इन्दौर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तब मैं वहां राज्यभूषण रायबहादुर सेठ कन्हैयालालजी भंडारी के यहां ठहरा था। उस समय मेरी यह हार्दिक इच्छा हुई कि मैं सेठ हुकमचन्दजी के दर्शन करूं। मैं सेठ साहब से उनके निवास स्थान पर मिला। सेठ साहब मुझसे इस प्रेम और बन्धु भाव से मिले और बातचीत करने लगे, जैसे कि वह मेरे से पहिले ही से और काफी परिचित हैं। करीब आध घण्टे बातचीत होती रही। मुझे ऐसा स्मरण आता है कि उस समय सेठ साहब के भतीजे को इन्दौर महाराज की तरफ से कोई पदवी प्रदान की गई थी और सेठ साहब बड़े प्रसन्नचित्त थे। आपका भव्य और सुन्दर शरीर था। आप एक सफेद

अंगरखा, गले में पन्नों का कण्ठा और सिर पर पगड़ी पहिने हुये थे। आपसे बातचीत करने पर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। आपका नाम, वैभव, गौरव और प्रतिष्ठा अद्वितीय रही है। अब सेठ साहब ने दुनिया के कामधन्धों को छोड़कर आत्म सिद्धि करने में अपना जीवन व समय लगा दिया है। यही दुनिया में आने का मनुष्य जीवन का सार है। मेरी यह भावना व इच्छा है कि सेठ साहब चिरकाल तक जीवित रहें और जैन समाज को आध्यात्मिक जीवन की ज्योति प्रदान करते रहें।

उदार हृदय

श्रीकेशवदानजी पौराणिक, भूतपूर्व मैनेजर हुकमचन्द मिल, इन्दौर

मेरा श्रीमान् सर सेठ साहब से लगभग पचास वर्ष से संबंध रहा है। मालवा यूनाइटेड मिल जब इन्दौर में चालू करने का प्रसंग आया, तब वहां पांच वर्ष नौकरी करने पर जब मेरे वहां से कार्यनिवृत्त होने का समय आया, तब सेठ साहब ने हुकमचन्द मिल के नाम से बनने वाली काटन मील का कार्यभार मुझे सौंपा और मुझ सरीखे अकिंचन व्यक्ति पर विश्वास रख कर व पूर्ण अधिकार देकर एक जवाबदारी पूर्ण कार्य सौंपा और १२०) मासिक से कार्य शुरु करने वाले व्यक्ति को बारह वर्षों में १०००) रुपये मासिक तक तरक्की देकर उत्साहित किया। इतना ही नहीं; किसी राजा महाराजा की तरह आपने अपने आधीन अधिकारियों को कार्य कुशलता व ईमानदारी पर खुश होकर इनाम भी दिये। मुझे श्रीहुकमचन्द मील के १०० फुल्ली पेडअप शेयर, जिनकी कीमत उस समय पचास हजार रुपये की थी, इनाम में देने की कृपा की। जब मैंने सेवा निवृत होने की इच्छा प्रगट की, तो उस पर श्री सर साहब ने प्रेमपूर्वक मुझे कार्यभार चलाने को प्रेरित किया। ऐसे उदार हृदय के कई प्रसंग आये, जिनको वर्णित करना ग्रन्थमाला तय्यार करना है।

कार्य निवृत होने के पश्चात् भी सर साहब का आज तक मेरे साथ अत्यन्त प्रेमपूर्वक व्यवहार है और उनके यहां के समस्त प्रसंगों पर मुझे स्मरण किया जाता है।

उनका आशीर्वाद

बरारकेसरी श्री ब्रिजलालजी बियाणी

सेठ साहब का अभिनंदन मेरी दृष्टि में राजस्थान के उन सुपुत्रों का अभिनंदन है, जिन्होंने अपने अध्यवसाय श्रम, लगन और प्रतिभा से भारतमाता का मस्तक गौरव से उन्नत किया है। एक समय था, जब स्वराज्य की लड़ाई का प्रारम्भ आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी के नाम से किया गया था। वह १६०५ का बंग-भंग का समय था। उस समय में राजस्थान के जिन सुपुत्रों ने अंग्रेजों के आर्थिक साम्राज्य को चुनौती दी थी और औद्योगिक क्षेत्र में उनके एकाधिकार पर सफल हमला बोला था, उनमें उस समय के स्वदेशी-आंदोलन के आचार्य डा० प्रफुल्लचन्द राय ने भी सेठ हुकमचन्दजी को अगुआ माना है और उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। लेकिन, देश की राजनीति से अपने को सर्वथा अलिप्त रखकर सेठ साहब सरीखों ने अपने इस महान प्रयत्न का वह लाभ नहीं उठाया, जो उन्हें उठाना चाहिये था। उनके इस सत्प्रयत्न को शोषण का ही नाम दिया गया और प्रायः ईर्ष्या से ही देखा गया। उस भूल का प्रायश्चित अब इस रूप में किया जाना चाहिये कि राजस्थानी भाई राजनीति में दुगने उत्साह से भाग लें और गतकाल की कमी को भी पूरा करें। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि सेठ साहब इतने वृद्ध न हो गये होते और उन्होंने अपने को धर्म-ध्यान में न लगाया होता, तो वे आज राजनीतिक क्षेत्र में भी अगुआ होते। फिर भी उनका आशीर्वाद तो आज के युवकों को प्राप्त होना ही चाहिये।

सेठ साहब और सेठानी साहिबा ।

सेठ राजमलजी सेठी और उनका परिवार
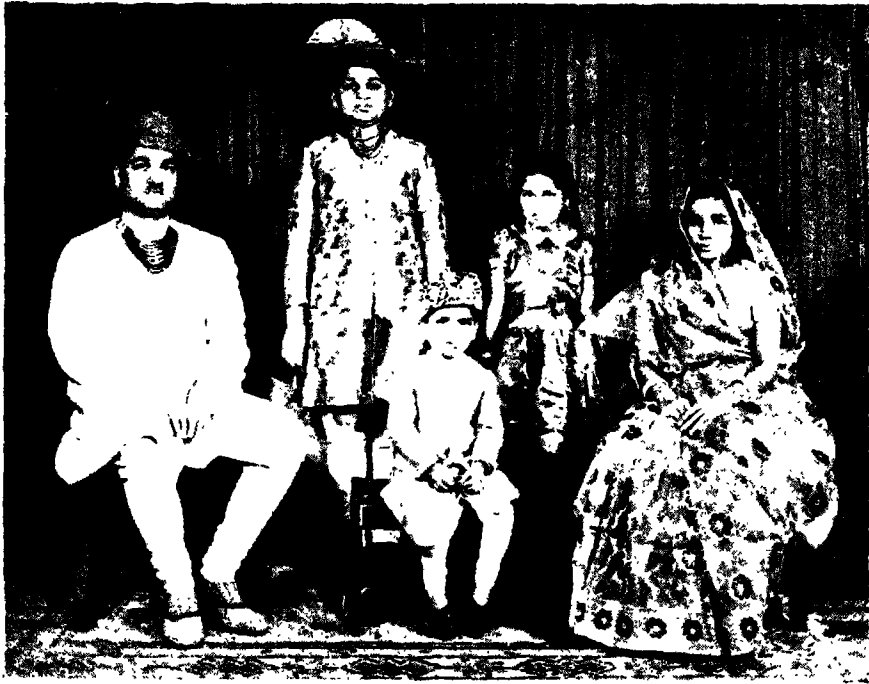
बाबू देवकुमारसिंहजी एम. ए. और उनका परिवार

सौभाग्यवती दानशीला सेठानी कंचनबाईजी साहिबा
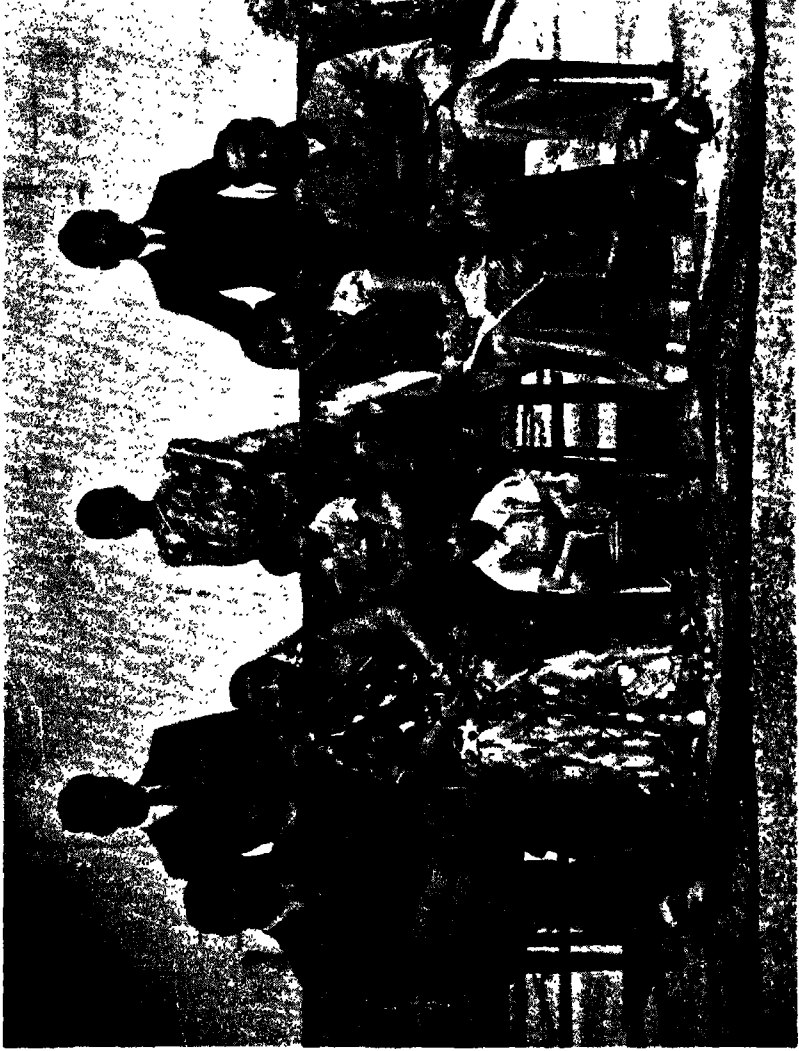
श्रीमान् रायबहादुर जैनरत्न मशीरबहादुर भैयासाहब राजकुमारसिंहजी और उनका परिवार।

श्रीमान् रायबहादुर राज्यरत्न रावराजा श्रीमन्त सेठ हीरालालजी साहब और उनका परिवार ।

बाबू रतनलालजी मोदी और उनका परिवार।

रायबहादुर राजकुमारसिंहजी की पौत्री जिसका कुछ दिन पूर्व जन्म हुआ है

सर सेठ भागचन्द जी सोनी के सुपुत्र श्री कुंवर प्रभाचन्द जी, सुशीलचन्द जी सोनी, निर्मलचन्द जी सोनी अपनी बहन के साथ

श्रीमान् रायबहादुर वाणिज्यभूषण सेठ लालचन्द जी सेठी और उनका परिवार ।

मालवाके धनकुबेर

श्रीत्र्यम्बक दामोदर पुस्तके, मध्यभारत के प्रमुख वयोवृद्ध नेता

सेठ हुकमचन्दजी मालवा के सबसे बड़े धनिक व कारखानदार हैं। इन्दौर में इनकी व इनके रिश्तेदारों की तीन मिलें हैं, जो 'हुकमचन्द ग्रुप' नाम से कही जाती हैं। इनके व्यापार का विस्तार भारत में ही नहीं, विदेशों में भी फैला हुआ है। वे मालवा के धन कुबेर हैं। जैनों के प्रायः सभी पवित्र स्थानों में आपके तरफ से दान धर्म चलता रहता है। आपने कई धर्मशालायें व मन्दिर बनाये हैं व सैकड़ों का जीर्णोद्धार किया है। इन्दौर में "नसिया" इस नाम की आपकी बनाई हुई धर्मशाला प्रसिद्ध है। आपका बनाया हुवा शीशमहल इन्दौर देखने वालों के लिये एक स्थान है। आपकी आयुर्वेद पर बहुत श्रद्धा है। हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद शिक्षण के लिये आपने एक बहुत बड़ी रकम दी है। इन्दौर में एक बहुत बड़ा आयुर्वेद अस्पताल आपकी तरफ से चल रहा है। आयुर्वेद की कीमती व शुद्ध दवाइयां आपके यहां हर किसी को लागत खर्च से मिलती हैं, जो अन्य कहीं मिलनी दुर्लभ हैं। आपकी राज्य में तो मान्यता है ही, जनता भी आपका बहुत आदर करती है। आप सच्चरित्र व्यक्ति हैं। धार्मिक कार्यों में आपका बहुत रस है। सार्वजनिक कार्यों में भी आप भाग लेते रहते हैं। सन् १९३३-३४ में सर पी० सी० राय की अध्यक्षता में इन्दौर में बहुत बड़ा स्वदेशी वस्तु प्रदर्शन व सम्मेलन हुआ। उसके आप स्वागताध्यक्ष थे। सन् १९३५ में पूज्य महात्मा जी अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिये इन्दौर आये। उस समय उनके स्वागत में भी आपने काफी हिस्सा लिया। उस समय एक विशाल खादी प्रदर्शिनी की गई थी, जिसका मुख्य दरवाजा आपके नाम से ही बना था।

अखिल भारत देशी राज्य लोक परिषद् का वार्षिक अधिवेशन १९४७ में लश्कर में हुआ। उसके लिये आर्थिक सहायता प्राप्त करने के हेतु लेखक कुछ अन्य मित्रों सहित आपके पास उपस्थित हुआ था। आपने बड़ी श्रद्धा से एक काफी बड़ी रकम इस कार्य के लिये दी। इन तीनों प्रसंगों पर सेठ साहब के संपर्क में आने का लेखक को अवसर मिला तथा गत चालीस वर्ष से उज्जैन में रहने के कारण सेठ साहब की गतिविधि का निरीक्षण करने का अवसर भी मिला। उनके व्यवहार चातुर्य, व्यापार कुशलता व चारित्र्य का लेखक पर बहुत प्रभाव पड़ा है। आज कल वृद्धावस्था के कारण सेठ साहब धर्मध्यान में ही अधिकतर समय व्यतीत करते हैं।

वैभव और उदारता की मूर्ति

ज्योतिषाचार्य पं० सूर्यनारायणजी व्यास उज्जैन

सेठजी मध्यभारत की शोभा हैं। उनके जीवन में वैभव ने उन्हें उदार होकर वरण किया है। परन्तु सेठ साहब ने उसी उदारता से उसका उपभोग किया है। इन्दौर में प्रमाणस्वरूप प्रत्यक्ष ऐसी अनेक जनोपयोगी संस्थाएं विद्यमान हैं, जिनका निर्माण सेठजी की अर्जित सम्पत्ति से हुआ है। उनकी दी हुई दान-राशि भी विपुल है। मुक्त हस्त हो बिना भेदभाव के उन्होंने वैभव वितरण किया है। अनेक संस्थाएं उनकी उदारता से पोषित और विकसित हुई हैं। मध्यभारत के ही नहीं, देश के वैभवशालियों में सेठजी अग्रणीय हैं। राजसी ऐश्वर्य को प्राप्त करने में भी सेठजी का चरित्र आदर्श रहा है। धार्मिक आस्था सुदृढ़ रही है। इस जीर्ण अवस्था में भी उनका युवक समान श्रमशील शरीर वर्तमान युग के तारुण्य को चुनौती देने वाला है। वे लक्ष्मी के कृपापात्र होकर भी सरस्वती के भक्त और विद्वज्जनों के आराधक हैं। सेठ साहब को प्राप्त करके मध्यभारत अपने को

धनी मानता है। वास्तव में सेठ साहब इस प्रदेश की शोभा हैं। हमारी यह शोभा चिरकाल बनी रहे, यही सभी की सद्भावना है।

दुर्लभ नररत्न

वयोवृद्ध वैद्य ख्यालीरामजी द्विवेदी, इन्दौर

श्रीमन्त रावराजा सर सेठ हुकमचन्द का सम्बन्ध, मेरे स्वर्गीय पिताजी के समय से इनके कौटुम्बिक औषधोपचार के कारण चला आ रहा है। श्रीमन्त और श्रीमन्त के वर्तमान कुटुम्ब में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जिसका मेरे द्वारा औषधोपचार न हुआ हो। मेरा और सेठ साहब का घनिष्ठ संबन्ध भी है। इसी प्रकार वे मेरे कथन का आदर भी करते आये हैं। श्रीमन्त सेठ साहब से चि० सौ० रतनप्रभादेवी के बाल्यकालीन औषधोपचार के समय से ही जब जब मेरा पारस्परिक वार्तालाप हुआ, मैंने सदा ही यह सुझाव रक्खा कि आपके द्वारा किसी ऐसे आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय की स्थापना होनी चाहिये, जो सर्वथा जैन धर्म व संस्कृति के अनुकूल हो एवं जिससे समस्त नागरिक जनता की औषधोपचार द्वारा सेवा की जा सके। मेरे व सर सेठ साहब के बीच इसी प्रकार की चर्चा होती रही। अन्त में सेठ साहब ने मेरे कथन का आदर किया। इसी के फलस्वरूप शीघ्र ही प्रिन्स यशवन्तराव आयुर्वेदिक जैन धर्मार्थ औषधालय की स्थापना हुई। श्री राजकुमारसिंह आयुर्वेदिक कालेज में सेठ साहब ने मेरा सहयोग रक्खा। नगर में और भी बहुत से सार्वजनिक कार्यों में सेठ साहब का मेरे साथ पूरा सहयोग रहा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन में जो कि इन्दौर में सर्वप्रथम हुआ था और जिसका सभापतित्व महात्मा गाँधी ने किया, १९३५ में महात्माजी द्वारा उद्घाटित अखिल भारतीय ग्रामोद्योग प्रदर्शनी, ३१ मार्च १९२० को होने वाले अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन में और भारतीय ज्योतिष सम्मेलन में भी सेठ साहब ने पूर्ण सहयोग दिया। इसी प्रकार इन्दौर में वर्तमान हिन्दू महासभा, जिसका मैं सभापति था और जिसकी ओर से श्रीमन्त महाराजाधिराज राजराजेश्वर श्री सवाई तुकोजीराव होल्कर बहादुर के करकमलों में नगर के प्रमुख पुरुषों द्वारा अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया था, उसमें भी सेठ साहब का सबसे प्रमुख हाथ रहा।

स्थानीय सरकारी बग्गीखाना में सम्पन्न हुई खद्दर प्रदर्शनी, जिसका मैं स्वागताध्यक्ष था और जिसका उद्घाटन स्वर्गीय देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाज द्वारा सम्पन्न हुआ था, उसमें भी सर सेठ साहब ने अच्छा सहयोग दिया।

इसी प्रकार मनीलेण्डर्स विरोधिनी सभा, व्हेजीटेबिल घी विरोधिनी सभा तथा वर्णाश्रम धर्म संरक्षिणी सभा-आदि में भी मेरे साथ पूरा हाथ बटाया। आपका इस सबके लिये मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

सेठ साहब इन्दौर तथा मध्यभारत के ही नहीं, अपितु समस्त भारत में देदीप्यमान व उज्वल गौरव रत्न हैं। ऐसे महान, उदार, पवित्र नेता, पवित्र विचारक, सब सामाजिक सत्कार्यों में निःस्वार्थ सहयोग देने वाले सज्जन नररत्न दुर्लभ हैं। आपके उदारता, धर्मनिष्ठा आदि सद्गुणों का मुझे जो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है, उनका वर्णन करना असम्भव सरीखा है। मैं हृदय से आपके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

वे एक नरसिंह हैं

श्री कन्हैयालालजी प्रभाकर संपादक "विकास" और नया जीवन"

देश में ऐसा शायद ही कोई शिक्षित हो, जिसने रावराजा सर सेठ हुकमचन्द का नाम न सुना हो। मेरे पिताजीने भी बचपन में उनकी बातें मुझे सुनाई थीं और यों मैं भी उनके नाम से परिचित था। कलकत्ता की वीर शासन जयन्ती के प्रधान सभापति चुने गये थे। मैं भी वहां गया था। वहां ही पहली बार मैंने उन्हें देखा।

सिर पर महाराष्ट्रियन ढंग की किश्तीनुमा लाल विशाल पगड़ी, गले में पन्नों का बहुमूल्य कण्ठा, सफेद अंगरखा, विशाल देह और तेजस्वी मुख मुद्रा। वे सबसे मिलते, सबको नमस्कार करते, हँसते पण्डाल में आए। उनकी भव्यता की पहली छाप मुझ पर पड़ी।

वे आसन पर बैठे, कार्यवाही आरम्भ हुई। स्वागताध्यक्ष साहू श्री शांतिप्रसादजी भाषण पढ़ रहे थे। तो एक प्रतिष्ठित मनुष्य सर साहब के कान में कुछ कहने लगे। उन्होंने उन्हें हाथ से अभी ठहरने को कहा और उंगली से साहूजी की तरफ इशारा किया। तीन बार ऐसा हुआ, तीनों ही बहुत प्रतिष्ठित आदमी थे। उनकी यह वृत्ति देखकर मैंने अपने नोट्स में लिखा—"सर सेठ को दूसरों की सुविधा का ध्यान रहता है और इसका अर्थ यह हुआ कि उनमें 'स्व' के साथ 'पर' की वृत्ति मूलरूप में विद्यमान है। यही वृत्ति है, जिसने उनके द्वारा सार्वजनिक जीवन में इतना काम कराया है।"

स्वागताध्यक्ष के बाद उनका भाषण आरम्भ हुआ। भाषण छपा हुआ था। वे पढ़ने लगे। पढ़ने की गति मन्द थी। लाग में कुलबुली हुई। कोई १२-२० मिनट बाद किसी ने उनसे कहा—"लाइये, आपका भाषण किसी और से पढ़वा दें।"

सर सेठ ने कहा—"नहीं।" इस नहीं में शान्त धीरता थी। ५-७ मिनट भाषण और चला, तो कुलबुली अकुलाहट का रूप लेने लगी। तब फिर उनसे कहा गया कि लाइये, भाषण किसी और से पढ़वा दें।

उत्तर मिला—"नहीं-नहीं!" इस डबल नहीं में बूढ़े आदमी की गम्भीरता ही नहीं, तरुण की हुंकार भी थी।

मेरे मन ने भीतर ही भीतर दोहराया—"सर सेठ सचमुच नर-सिंह हैं।"

साहूजी दूसरों की मनोवृत्ति समझने में आचार्य हैं। उन्होंने उठकर धीरे से सर सेठ को समझाया कि काम बहुत है। समय कम है। इसलिये भाषण को जल्दी जल्दी राजकुमारजी (सर सेठ के पुत्र) से पढ़वा दें, तो थोड़ा समय बच जायेगा।

सर सेठ साहब मान गये और भाषण राजकुमारजी को देते हुए बोले—"मैं थका नहीं हूँ, पर हाँ जलसे का फायदा है, तो दूसरी बात है।"

मैंने अपने नोटस में लिखा—"सर साहब की "नहीं-नहीं' में उनके जीवन की वह अडिगता है, जिसने उन्हें जीवनभर सफलता दी और परिस्थितियाँ कैसी भी हों, वे थक नहीं सकते, ऊब नहीं सकते। सचमुच वे नरसिंह हैं।

दूसरे दिन दोपहर को दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की बैठक थी। वे उसके बहुत वर्षों से सभापति हैं और सभापति क्या वे ही तीर्थ क्षेत्र कमेटी हैं। कमेटी का इतिहास उनका जीवन चरित्र है और उनका जीवन चरित्र ही उसका इतिहास है।"

इस कमेटी में वे घण्टों बोले और बताते रहे कि कैसे किस मुकदमे में सफलता मिली, कैसे किसमें कहाँ क्या किया, कहां क्या हुआ?

जो बातें उन्होंने वहां खुले आम कहीं, उन्हें इस तरह कहना हरेक के लिये सम्भव न था। मैंने अपने नोट्स में लिखा—"सर सेठ की कार्यनीति यह है कि विजय मिले; इसके लिये वे सीधे भी मोर्चे पर बढ़ सकते हैं और जरूरत हो, तो व्यूह रचना भी कर सकते हैं। पर व्यूहरचना के पण्डित होकर भी वे निजी जीवन में सरल हैं! यही नहीं कि वे अपनों में विश्वास चाहते हैं, अपनों का विश्वास भी करते हैं। अपनी युद्धनीति में वे

विरोधी को पुचकारना भी जानते हैं, घेरना भी और पूरी ताकत से एक साथ झपट्टा मारना भी !'

उसी दिन शाम को बाबू छोटेलालजी के घर हम सब निमन्त्रितों का भोजन था। सर साहब समय से पहले आए और बाद तक बैठे—सबके बाद की पंक्ति में उन्होंने भोजन किया।

पण्डित राजेन्द्रकुमारजी ने मेरा उनसे परिचय कराया और पिछले १६-२० वर्षों में मेरा जैन समाज और जैन साहित्य के साथ जो सम्पर्क रहा है, उससे उन्हें परिचित कराया। बड़े प्रसन्न हुए और पूरे जोर से मेरी कमर ही नहीं थपथपाई, मुझे लगभग गोद में खींच लिया। बहुत देर तक बातें करते रहे और अन्त में कहा—"खूब काम करो और कभी कोई काम हमारे लायक हो, तो हमें कह दो।"

मैंने अपने नोटस में लिखा—"सर सेठ में सिंह का व्यक्तित्व ही नहीं, पिता का हृदय भी है। वे विरोधियों को परास्त करने में ही कुशल नहीं, अपनों को छाती से लगाने में भी प्रवीण हैं और यहीं वे अपने में पूर्ण हैं।"

नरसिंह—नरों में सिंह, सर सेठ हुकमचन्द,जिसमें सचमुच 'हुक्म' की कठोरता और 'चन्द्र' की शीतलता है। बस, मैं उन्हें इतना ही जान पाया।

मध्यभारत के देदीप्यमान रत्न

श्री कालिकाप्रसादजी दीक्षित, सम्पादक 'जयहिंद' जबलपुर

मुझे इन्दौर में लगभग १७ साल रहने का सुअवसर 'वीणा' के प्रधान संपादक के नाते प्राप्त हुआ। जिस मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति की ओर से 'वीणा' प्रकाशित होती थी, उसके अध्यक्ष राज्यरत्न रावराजा सर सेठ हुकमचन्द थे। सेठ साहब की समिति के कार्यों में विशेष रुचि थी और उसको हर प्रकार का सहयोग दिया करते थे। प्रत्येक सार्वजनिक कार्य में आगे रहना आपकी विशेषता थी। कहा तो यह जा सकता है कि सेठ साहब से इन्दौर ही नहीं, समस्त मध्यभारत के गौरव में वृद्धि हुई है। आपने उस प्रान्त की केवल औद्योगिक प्रगति में ही सहयोग नहीं दिया, उसके सार्वजनिक जीवन को भी प्रगति प्रदान की।

अनेक अवसरों पर सेठ साहब का सहयोग आज भी याद आता है। जब इन्दौर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, तब सेठ साहब के नाम पर ही 'हुकमचन्द नगर' बसाया गया था। हिन्दी विश्वविद्यालय का प्रश्न उपस्थित होने पर भी आपने उसमें योग दिया और मध्यभारतीय साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के, जो मऊ में हुआ था, आप ही उद्घाटनकर्ता थे।

आपके कारण ही महामना मदनमोहन मालवीय को ज्योतिष सम्मेलन के अवसर पर अस्वस्थ होते हुए भी इन्दौर आना पड़ा। महात्मा गांधी आपका आतिथ्य स्वीकार कर आप के निवास स्थान 'इन्द्र भवन' में पधारे। सेठ साहब का प्रत्येक कार्य निजी हो या सार्वजनिक पूर्ण वैभव से अलंकृत रहता है। सत्य बात तो यह है कि आपने जीवन में वैभव को अपनाया और उसे केवल अपने लिए ही सीमित नहीं रखा। उसको जनता में भी वितरित किया। आज वे केवल जैन समाज के ही नहीं, पूरे मध्य भारत के देदीप्यमान रत्न हैं।

धनिकों के सम्बन्ध में चरित्र सम्बन्धी अनेक शिकायतें सुनी जाती हैं। परन्तु सेठ साहब के सम्बन्ध में इस ओर कोई अंगुली नहीं उठा सकता। उनका जीवन सदा व्यवस्थित और ऊँचा रहा। यही कारण है कि आज समाज में उनका इतना महत्वपूर्ण गौरवमय स्थान है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह ऐसे महान व्यक्ति को दीर्घजीवी बनावे।

मारवाड़ के दो उद्योग-महारथी

पं० सम्पतकुमार मिश्र, लक्ष्मनगढ़

पवनपुत्र हनुमानजी के दो कन्धों में से जैसे एक का प्यार भक्तवत्सल राम को और दूसरे का यतिराज लक्ष्मण को प्राप्त था, ठीक उसी प्रकार विशाल राजस्थान की भूमि-माता को गौरवमयी गोद के दो पार्श्वों में से एक का दुलार राजस्थान के रणवीरों को मिला है, तो दूसरे का उद्योगवीरों किंवा दानवीरों को सुलभ हुआ है। दूसरे शब्दों में इसे यों कहा जा सकता है कि राजस्थान का अतीत यदि रणवीर क्षत्रियों को प्रकट करने की सामर्थ्य रखता है, तो उसका वर्तमान उद्योगवीरों और दानवीरों को उत्पन्न करने में अद्भुत क्षमताशाली सिद्ध हुआ है। राजस्थान के अतीत और वर्तमान उद्योग पर्व की ये विभिन्न दोनों देन शुभमय भविष्य के लिये उज्ज्वल आशा का सन्देश देने वाली हैं।

हर्ष है कि अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा ने सेठ हुकमचन्दजी के अभिनन्दन के लिये सक्रिय कदम उठाकर, अभिनन्दन-ग्रन्थ के रूप में उनके साहित्यिक स्मारक को, जो ईंट और गारे के अस्थायी और विनाश-शील स्मारकों से कहीं अधिक स्थायी और अविनाशी है, तरजीह देकर साहित्यिक स्मारक स्थापना की पुरानी भारतीय परम्परा को सुदृढ़ किया है।

सर हुकमचंदजी की जन्मभूमि यद्यपि इन्दौर है, किन्तु उनकी पुण्य पितृ-भूमि विशाल राजस्थान के मारवाड़ उपप्रदेश के अन्तर्गत डीडवाना तहसील का एक ग्राम है, जो लाडनू के निकट है और जहां से सेठ साहब के पूर्वज मालवा जा बसे थे। मारवाड़ की डीडवाना तहसील ने व्यापारिक भारत को अनेक रत्न दिये हैं। उनमें व्यापारिक धार्मिक जगत को प्राप्त होने वाले दो परमोज्ज्वल नररत्न सर हुकमचन्दजी और सेठ मंगनीरामजी बांगड़ तो सर्व विदित हैं, जिनमें चरित्रनायक सर हुकमचंदजी ने राजस्थान के दक्षिण भाग में स्थित मालव महा-प्रदेश को अपनी व्यावसायिक प्रतिभा का पहला कार्य केन्द्र बनाया और बाद में तो उनके औद्योगिक चमत्कार की किरणें समग्र भारत में फैल गईं। आज सर हुकमचंदजी मालवा या मारवाड़ के न होकर समस्त भारतवर्ष के अपने उद्योगपति हैं। इसी प्रकार सेठ मंगनीरामजी बांगड़ ने डीडवाना से निकल कर सुदूर पूर्व की राजधानी कलकत्ता महानगरी को अपने व्यापारिक बुद्धिवैभव का कार्य-केन्द्र बनाया, जहां से वे अपने बुद्धिकौशल और अध्यवसाय द्वारा समग्र भारत में फैल गये। दोनों ही बहुत सी बातों में एक दूसरे के तुल्य हैं। दोनों में सफल उद्योगपतित्व का सुन्दर समन्वय तो पूर्ण रूप से विकसित हुआ ही है; अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार दोनों की दानशीलता भी अनुकरणीय रही है। दोनों ने अपने जीवन में कवि की उक्ति कि

"विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम्।"

के रहस्य को अच्छी प्रकार समझा है। पूर्व जन्म का तपस्वी वह नर-पुंगव है, जो सम्पत्ति पाकर उसके खर्च करने का उदार दिल रखता है। इसके अतिरिक्त व्यापारिक साहसिकता, संयमशीलता, धार्मिकता और सरल स्वभाव तथा सादगी आदि गुण भी दोनों को अभिन्न रूप से समान-शील बनाये हुए हैं। धन कुबेर होकर भी दोनों धनाभिमान से मुक्त रहे हैं। सन् १९४७ के फरवरी माह की बात है कि इन पंक्तियों का लेखक पूज्य महर्षि स्वामी माधवानंद जी महाराज के साथ जोधपुर से रतलाम जा रहा था। रास्ते के मावली जंकशन के प्लेट फार्म पर मुक्त आकाश के नीचे एक जाजम बिछी हुई थी, जिसपर सौम्यमूर्ति सत्कुलवान सज्जन बहुत से स्वागतार्थी व्यक्तियों से घिरे बैठे थे। हमारी गाड़ी के वहां रुकने पर वह सज्जन जब स्वामीजी के निकट आकर प्रणत हुए, तो लेखक की जिज्ञासा पर पूज्य स्वामीजी ने बताया कि ये ही इन्दौर के धनकुबेर सेठ सर हुकमचन्दजी हैं और

मेवाड़ के जैन तीर्थ श्री पारसनाथजी केशरियाजी जा रहे हैं। उस समय की उनकी सादगी का सजीव चित्र लेखक के हृदय-पटल पर आज भी अमिट रूप से अंकित है।

दूसरे किसी प्रदेश में ऐसे नरपुंगव हुये होते, तो उन पर कितना साहित्य प्रकाशित हुआ होता। इसीलिये महासभा का यह उद्योग सराहनीय और अनुकरणीय भी है।

सेठ साहब की गोभक्ति

श्री हरेन्द्रनाथ शर्मा, लोक सेवक-इन्दौर

सन् १६४३ में आर्यसमाज इन्दौर की ओर से सेठ कल्याणमलजी की धर्मशाला के मैदान में यजुर्वेद पारायण महायज्ञ का आयोजन किया गया था। महायज्ञ के योजकों का कथन था कि यज्ञशाला के साथ गौशाला का होना भी आवश्यक है। इन्दौर जैसे नगर में गौशाला की बात एक समस्या थी। यहां के आर्यों के घर में एक दो को छोड़कर किसी के घर गाय नहीं थी।

यज्ञ भूमि में एकत्रित आर्य बन्धुओं की चर्चा के दौरान में एक सज्जन ने सर सेठ हुकमचन्द जी का नाम लेते हुये कहा कि यदि हरेन्द्रनाथ जी प्रयत्न करें, तो सुन्दर नहीं सुन्दरतम गौशाला की व्यवस्था हो सकती है। उन्होंने अपनी बात को जारी रखते हुये सर सेठ साहब की गौशाला के प्रबन्ध व उनके गोप्रेम की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर डाली। उन महाशय के कथन का अन्य सज्जनों ने भी सिर हिलाकर समर्थन व अनुमोदन कर मेरी ओर आशाभरी दृष्टि से देखा और उनमें से एक वयोवृद्ध ने मुझे कहा कि शर्माजी यह काम तो आपको ही करना पड़ेगा-सो कहिये आप कब सर सेठ साहब से मिलेंगे?

मैं सर सेठ हुकमचन्दजी के स्वभाव से काफी परिचित था। आर्यसमाज इन्दौर की स्वर्ण जयन्ति पर चन्दा लेने वाले शिष्ट-मण्डल को सर सेठ साहब द्वारा दिया गया उत्तर भी उसी समय एकाएक आंखों के सामने नाच गया। फिर भी आर्य बन्धुओं की आज्ञा एवं यज्ञ भगवान की सेवा के अवसर को हाथ से न खोने के लालच से गौशाला की कमी की पूर्ति करने का प्रयत्न करने का मैंने वचन दे डाला।

सर सेठ भोजन करके इन्द्रभवन के सामने वाले बगीचे में अकेले बैठे थे। मुझे आता देख आप खड़े हो गये और पूछा क्यों भैया कैसे आये? मैंने पास पहुँच कर नमस्ते की और अपने आने का कारण उन्हें बता दिया। कुछ मिनिट शान्त रहने के बाद सेठ साहब ने मुझसे यज्ञ और गोशाला के विधान पर एक दो साधारण से प्रश्न किये, जिनके उत्तर सरलता व नम्रता से देते हुये मैंने कहा कि उस गौशाला पर हम एक बोर्ड लगायेंगे, जिसमें लिखा होगा कि यह गायें सर सेठ हुकमचन्दजी की गोशाला की हैं। सेठ साहब जी मुस्कराये और बोले कि दोस्त दूध की गाय कैसे वहां भेजी जाँय? मैंने कहा कि पांच गाय हमें चाहियें, जिनमें से एक दूध की व चार बिना दूध की भी हों, तो हमारा काम चल जायगा।

सेठ साहब मेरी बात से सहमत होगये और गोशाला वाले मुनीमजी को बुलाकर पांच गाय हमारे यज्ञ में गोशाला की पूर्ति के लिये भेजने व उनके चारे दाने की व्यवस्था करने का आदेश देकर बिदा किया। मुनीमजी कुछ ही दूर पहुंचे होंगे कि फिर उन्हें आवाज दी और कहा कि देखो, तुम भी एक आध बार वहां जाकर देख भाल कर आना और गोशाला पर जो बोर्ड लगे, उसे भी देख लेना।

मैं अपनी सफलता पर मन ही मन हंस रहा था कि सर सेठ साहब फौरन बोले कि भैया कल आकर गायें लेजाना। मैं खड़ा होकर सेठजी का धन्यवाद कर चलने को हुआ, तो उन्होंने बैठने का इशारा करते हुये मुझसे यहां ही गाय लेने के लिये आने की बात पूछी।

मैंने सेठजी को कहा कि इन्दौर में आपसे अधिक अच्छा शौकीन घी दूध खाने वाला मुझे दूसरा नहीं दीख पड़ा। कुछ समय से मैं आपकी डेरी की गाय व भैंस देखकर मुग्ध हूँ। हमारी यज्ञशाला में जो गोशाला हो, उसमें दर्शनीय गाय रखी जांय और उनके लिये आपके सिवाय मेरा ध्यान कहीं और नहीं गया। आशा-निराशा के बीच सोचता विचारता यहां तक आगया।

मेरे उत्तर से सेठ साहब बड़े प्रसन्न हुये और मुझे दूध पीकर जाने को कहा। मगर दूध से भी मूल्यवान दुधारियां प्राप्त करने की खुशी व अपने साथियों तक वह सन्देश शीघ्र पहुँचाने की धुन में मैंने सेठ साहब के मधुर आग्रह को टाल कर सधन्यवाद नमस्ते करके तुरन्त चल पड़ा।

हमारे यज्ञमन्डप पर आने वाले प्रायः सभी दर्शक गोशाला के दर्शन किये बिना नहीं लौटते थे। गौरी स्वस्थ एकसी गायों को देख कर हर दर्शक प्रसन्न हो जाता और गोशाला वाले बोर्ड को पढ़कर सर सेठ की तारीफ करता जाता।

सर सेठ हुकमचन्दजी एक चरित्रवान व अद्‌भुत व्यक्ति हैं। उनका सरल स्वभाव, धैर्य तथा ईश्वर के प्रति निष्ठा आदि गुणों ने उनकी महानता में चार चांद लगा दिये हैं। जैनी होते हुये भी सेठ साहब सहिष्णु वृत्ति के हैं और आर्यसमाज की कार्य शैली व सुधार नीति के प्रशंसक हैं।

—पूज्य स्वामी करपात्रीजी महाराज के मन्त्री लिखते हैं कि पूज्यपाद श्री स्वामी करपात्री महाराज की सब प्रकार की शुभ कामनाएं श्रीमन्त सर हुकमचन्दजी के साथ हैं। ईश्वर ऐसे दानवीर सेठ को शतशः चिरायु करें। मंगलमय भगवान ऐसे धार्मिक महापुरुषों को उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि करें, राष्ट्रोद्धार करने में प्रवृत्त करें; जिससे कि धार्मिक आध्यात्मिक वादों की सर्वतोन्मुखी उन्नति होकर देश का सब प्रकार से कल्याण हो सके।

—राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रमुख संचालक गुरुजी श्री माधवराव गोलवेलकर लिखते हैं कि अतीव प्रसन्नता की बात है कि आपने श्रीमान सर हुकमचन्दजी का यथोचित सम्मान करने का निश्चय किया है। सर हुकमचन्दजी के प्रत्यक्ष दर्शन व सम्भाषण का सौभाग्य मुझे इन्दौर में मिला है। मुझे अनेक व्यक्तियों को देखने का अवसर मिलता है। उनमें कई अति धनवान भी हैं। संपत्ति के होते हुए भी मुखमंडल, आंतरिक नम्रता, मृदुता, कारुण्य आदि श्रेष्ठ गुणों से सुशोभित जैसा श्रीमान हुकमचन्दजी को देखा, वैसे बहुत ही थोड़े धनिक हैं। किसी अन्य व्यक्ति के अपने धन पर गर्व करने का उल्लेख संभाषण में होते ही स्वभावसिद्ध सरलता से आपने कहा कि गर्व किस बात का हो? आखिर सब छोड़कर यह शरीर मिट्टी में ही तो मिल जायगा। यह सहज उद्‌गार सुनकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई और उन श्रीमान् के प्रति स्नेहपूर्ण आदरभाव उत्पन्न हुआ। इस आदर के कारण ही श्रीमान् के सम्मान का यह आयोजन मुझे अति प्रसन्नता दे रहा है। इस सम्बन्ध में श्रीमान् सर हुकमचन्दजी के प्रति अपना आदरभाव प्रगट करते हुए उन्हें दीर्घ काल पर्यन्त उत्तम जीवन प्राप्त हो, यह मनः पूर्वक प्रार्थना श्री प्रभु से करता हूँ।

—स्वातंत्र्यवीर श्री वि० दा० सावरकर लिखते हैं कि दानवीर श्रीमन्त हुकमचन्दजी के अभिनन्दन महोत्सव के शुभ समय पर मैं भी शुभ कामना प्रदर्शित करता हूँ।

—"हरिजन सेवक" के सम्पादक श्री कि० मा० मशरूवाला लिखते हैं कि "श्री हुकमचन्द जी चिरायु हों।"

—चीनी भवन शांतिनिकेतन के अध्यक्ष प्रोफेसर तान याण शा लिखते हैं कि "मेरी सर्व प्रकार की श्रेष्ठ शुभ कामनाएं हैं।"

—कनडी भाषा के कवि कर्णाटक साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री गोविन्द पै मनजेश्वर दक्षिण

से लिखते हैं कि "भगवान से मैं प्रार्थना करता हूँ कि उनके श्रेष्ठ आशीर्वाद श्री हुकमचन्दजी को प्राप्त हों तथा वे अतीव स्वस्थ, सुखी और अभ्युदयपूर्ण जीवन को प्राप्त करते हुए सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें। "शतं जीव शरदो वर्धमानः" एवं धर्म और मानवता की सेवा में वर्धमान रहें।

—श्री० आर० के० सिधवा, सदस्य भारतीय पार्लमेंट लिखते हैं कि 'यद्यपि सेठ हुकमचन्दजी के साथ मेरा प्रत्यक्ष परिचय कभी हुआ नहीं, फिर भी मैंने उनकी औद्योगिक और उदारतापूर्ण प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना है। मैं उनकी देशभक्तिपूर्ण भावना की सराहना करता हूँ। अपनी उपार्जित सम्पत्ति का बड़ा भाग उन्होंने लोकोपकारी कार्यों में लगाया है। प्रभु के उन्हें सम्पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त हों।

—देशभक्त श्री चांदकरणजी शारदा लिखते है कि "सेठ साहब को मैं १९२० से जानता हूँ। तब मैं उनके पास तिलक स्वराज्य फण्ड के लिये गया था, जिसमें उन्होंने अच्छी रकम प्रदान की थी। सरकार की वक्र-दृष्टि का आपने भय नहीं किया। लाखों रुपया सार्वजनिक कार्यों में लगाकर आपने अपनी सम्पत्ति को सफल बना लिया।

—प्रख्यात पुरातत्ववेत्ता डा० अनंत सदाशिव आलतेकर प्रोफेसर पटना विश्वविद्यालय लिखते हैं कि "मैं हृदय से चाहता हूँ कि श्रीमन्त सर हुकमचन्दजी को परमेश्वर दीर्घायु दें, जिससे उनकी धर्म, शिक्षा, राष्ट्र कल्याण आदि की असाधारण मंगल प्रवृत्तियों से राष्ट्र को अधिकाधिक लाभ हो।"

—श्री के. बोरडिया आचार्य विद्याभवन उदयपुर लिखते हैं कि सर सेठ हुकमचंदजी को मैं बचपन से जानता हूं। परन्तु मुझे उनके साथ अधिक सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। फिर भी उनकी दानशीलता से मैं परिचित हूँ। सन् १९१८ मे इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अष्टम अधिवेशन हुआ। सर हुकम-चन्दजी स्वागताध्यक्ष थे। उस समय पूज्य गांधीजी ने सम्मेलन के लिये चन्दे की अपील की और सेठ साहब ने तुरंत ही दस हजार रुपये प्रदान किये। मैं उस समय केवल ग्यारह वर्ष का था और सम्मेलन की स्वागत समिति के मंडप विभाग का मैं स्वयंसेवक था। परन्तु उस समय की जो भी धुन्धली स्मृति मेरे मन में है, उससे मैं कह सकता हूँ कि उस समय मेरे और मेरे जैसे दूसरे बाल हृदयों पर सेठ साहब की दानशीलता का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसके बाद मैंने सेठ साहब की उदारता के कई और उदाहरण देखे। मध्य भारत की शैक्षणिक तथा अन्य जनसेवी संस्थाओं को सेठ साहब से बहुत सहायता मिली है। वे हम सब के अभिनंदन के पात्र हैं।

—श्री बसन्तलालजी मुरारका सुप्रसिद्ध समाजसेवी और सदस्य पश्चिमी बंगाल-धारासभा लिखते हैं कि "सेठ हुकमचन्दजी उन प्रसिद्ध व्यापारियों और उन प्रसिद्ध दानियों में से हैं, जिनको देश का बच्चा-बच्चा जानता है। कलकत्ता में आज से अड़तीस वर्ष पहिले सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला के साथ मैंने उनके दर्शन किये थे। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव मेरे ऊपर विशेष रूप से पड़ा। उनका प्रभावशाली डीलडौल, खिला हुआ चेहरा हीराजड़ित हार जगमगा रहे थे। उनकी तेज आवाज से मालूम होता था कि उनमें आत्मविश्वास की भावना कितनी दृढ है? खतरा उठाने का वे विशेष साहस रखते थे। इसी कारण उन्होंने करोड़ों पैदा किये और लाखों दान किये। जैन समाज पर उनका अद्भुत प्रभाव है। जैन समाज उनको पाकर अपने को धन्य समझता है। मनुष्य जिस किसी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करके हलचल पैदा कर सकता है। यही उसकी महानता है। वस्तुतः ही सेठ हुकमचन्दजी व्यापार-उद्योग-क्षेत्र के एक महान् पुरुष हैं। ईश्वर उनको दीर्घायु करें। यही मेरी उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि है।

—कलकत्ता के समाजसेवी श्री गंगाप्रसादजी भौतिका लिखते हैं कि हर्ष की बात है कि रावराजा सर हुकमचन्दजी ने अपने जीवन काल में अपनी कमाई के एक बड़े भागका उपयोग जन-कल्याण के लिये किया।

उनका यह प्रशंसनीय कार्य हमारे देश के धनिक-समाज के लिये अनुकरणीय है। आज देश में धनियों के प्रति जो दुर्भावना फैली हुई है, उसका मुख्य कारण यही है कि वे महात्मा गांधीजी के शब्दों में अपने को जनता के धनका ट्रस्टी न समझकर अपने धनका दुरुपयोग अपने ऐश-आराम और फिजूलखर्ची में करते हैं। उनका कर्त्तव्य है कि वे रावराजा साहब जैसे महानुभावों का अनुकरण करते हुए अपने धनका सदुपयोग जन-हित के कार्यों में विशेष रूप से करें, जिससे शोषक वर्ग में उनकी गणना न हो। मुझे यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि सेठ साहब ने प्राचीन आदर्श के अनुसार सब वैभव और कारबार छोड़कर साधु वृत्ति से जीवन बिताने का संकल्प किया है।

—श्री रामगोपालजी माहेश्वरी, संचालक-सम्पादक 'नवभारत' नागपुर लिखते हैं कि श्रीमान् सेठ हुकमचन्दजी का जीवन और चरित्र अपने ढंग का अनोखा है और उसमें भव्यता के साथ दिव्यता भी है। व्यापारिक जगत् में आपने जिस अनोखे साहस का परिचय दिया, वह तो विख्यात ही है। आपकी सार्वजनिक सेवायें भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। विशेषतः आपका विपुल दान जो लक्ष्मी के सदुपयोग का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। आपने सार्वजनिक कार्यों के लिये मुक्तहस्त से दान देकर अपने लिये बड़ी श्रद्धा का स्थान बना लिया है। जीवन के चतुर्थ चरण में आपकी वीतराग वृत्ति सांसारिक माया से दूर रहने का एक और श्रेष्ठ उदाहरण हैं, जो आपकी ख्याति को वृद्धिंगत करने वाला है।

—बम्बई प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष, राजस्थान ग्रामोद्धार संघ के संस्थापक श्रीयुत वैद्य सीतारामजी मिश्र लिखते हैं कि "एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोपि" की सुप्रसिद्ध उक्ति भारतवर्ष के व्यापार-उद्योग की महान् परम्परा के अग्रणी स्वनामधन्य सर सेठ हुकमचन्दजी के जीवन में चरितार्थ होती है। हम प्रभु से सेठजी के दीर्घायु की कामना करते हैं, जिससे वे अधिकाधिक देश, समाज और धर्म की सेवा कर के यश और पुण्य के भागी बनें। सेठजी देश के कतिपय उद्योगपतियों में अग्रणी हैं, जिनसे राष्ट्र की वैभव-सम्पत्ति की वृद्धि हुई है। यह परम सन्तोष और आनन्द का विषय है कि सेठजी के जीवन में दूध-पूत-लक्ष्मी का सुन्दर समन्वय है। इस समय आपने धर्ममय जीवन व्यतीत करने का विचार किया है। हम आशा करते हैं कि आपका आध्यात्मिक जीवन "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय आत्ममोक्षजगद्हिताय" आशीर्वाद होगा।

—श्री रतनचन्द चुन्नीलाल जवेरी महामन्त्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ रक्षाकमेटी बम्बई से लिखते हैं कि स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजी जे०पी०, स्वर्गीय लाला देवीसहायजी और स्वर्गीय लाला जम्बूप्रसादजी ने तीर्थ क्षेत्रों पर अपने स्वत्व तथा अधिकार की रक्षा के लिये इस कमेटी न की स्थापनाकी थी, तभी से सेठ साहब का उसको सहयोग प्राप्त है। स्वर्गीय माणिकचन्दजी के बाद तो वे उसके स्थायी प्रधान और सर्वेसर्वा ही हैं। जहां भी कहीं कोई संकट उपस्थित हुआ, उसको दूर करने के लिये सेठ साहब दौड़े गये हैं। मामलों-मुकदमों में सलाह-मशविरा देने के लिये सदैव उपस्थित रहे हैं। तन-मन-धन लगाकर तीर्थों की सेवा और रक्षा की है। उदयपुर के ऋषभदेवजी, शिखरजी तथा दतिया के सोनागिर के मामले सर्वविदित हैं। आपकी प्रेरणा पर स्वर्गीय बाबू चम्पतरायजी बैरिस्टर और बाबू अजीतप्रसादजी एडवोकेट वर्षों बिना कुछ लिये मामले-मुकदमों की पैरवी करते रहे हैं। आज दिगम्बर जैन समाज का तीर्थों पर जो अधिकार है, उसका अधिकांश श्रेय सेठ साहब को ही है। पीछे मैंने एक बार इस कार्य से छुट्टी लेनी चाही थी, तो आपने मुझे लिख दिया कि 'अब तक मैं जीवित हूँ, तुम्हें भी तीर्थक्षेत्र कमेटी की सेवा करनी पड़ेगी। यदि हमारी बात नहीं माननी है, तो हमारा भी सभापति पद से स्तीफा समझो।' वे स्वयं सेनापति हैं और अपने सब साथियों से सैनिक के रूप में ही काम लेना जानते हैं। वीर सेनापति के चरणों में हमारी शतशः श्रद्धांजलियां हैं।

राजर्षि का महान आदर्श

दानवीर रायबहादुर केप्टिन धर्मवीर सर सेठ भागचंदजी सोनी
सभापति अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

महासभा की स्वर्ण जयंति के इस पुनीत अवसर पर श्रद्धास्पद पूज्य सेठ साहब हुकमचंदजी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पण करते हुये अतीव आनन्द का अनुभव हो रहा है। संसार में समय समय पर ऐसे महान् पुरुषों का उद्भव होता है, जिनके उच्च जीवन और आदर्शों का प्रभाव तत्कालीन समाज पर तो पड़ता ही है, अपितु आनेवाली पीढ़ियां भी उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करके अपने को धन्य मानती हैं। श्रद्धेय सेठ साहब जैन समाज की ऐसी ही महान् विभूति हैं। उनमें मृगराज का अटूट साहस एवं पक्षिराज की तीक्ष्णता एवं दक्षता है। वे अपने कौटुम्बिक एवं पारिवारिक जीवन में कुसुमादपि कोमल और समाज एवं धार्मिकता की रक्षा के हेतु वज्रादपि कठोर हैं। मैं दीर्घ काल से उनके जीवन के इतने निकट रहा हूँ कि मेरे लिये उनके विषय में कुछ कहना कठिन प्रतीत हो रहा है। वास्तव में मैं जब से उनके संपर्क में आया हूँ, तब से मेरा वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन उनके प्रेम, वात्सल्य एवं मार्गप्रदर्शन से इतना ओतप्रोत हो रहा है कि मेरे रोम-रोम में वह व्याप्त है।

इस न्यूनता का अनुभव करते हुये भी यदि उनकी भावनाओं को मैंने थोड़ा बहुत भी व्यक्त न किया और उन्हें मौन के आवरण में छिपा दिया, तो मैं समझता हूँ कि मैं अपने कर्तव्य से विमुख हो जाऊंगा।

श्रीमंत सेठ साहब जैसी महान् विभूतियां अपने ही जाज्वल्यमान आलोक से प्रकाशित रहती हैं और अन्य लोगों का मार्ग प्रदर्शन करती रहती हैं। उन्हें किसी दीपक के प्रकाश की अपेक्षा नहीं रहती। पूज्य सेठ साहब की प्रतिभा का आलोक भी सूर्य की भांति समग्र जैन समाज पर छाया है और उसे तेज, शक्ति तथा जीवन प्रदान करता रहा है। उनके पदचिन्हों पर चलकर कोई भी कल्याण के मार्ग को प्राप्त कर सकेगा, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है। महाकवि तुलसी के शब्दों में वे जैन समाज के " सेवक स्वामी सखा " सभी कुछ रहे हैं। अपनी लोकोत्तर प्रतिभा, कार्यों, दान, वैराग्य एवं प्रेम द्वारा इस भौतिक युग में राजर्षि का महान् आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत किया है। जल में रहते हुये भी उससे सदैव अलिप्त रहने की उक्ति को आपने अपने संयमी जीवन द्वारा चरितार्थ किया है।

प्रगति जीवन का चिन्ह है और यह आपके जीवन की घटनाओं से पद पद पर स्पष्ट होता है।

इस युग में आप जैन शासन व जैन संस्कृति के सतत एवं जागरूक प्रहरी रहे हैं। समाज की आपने जो निस्सीम तथा निस्वार्थ-सेवायें की हैं, उनके उस महान् ऋण से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकते हैं। महासभा के आप प्राण रहे हैं और महासभा समाज की जो भी सेवायें कर सकी है, उसका श्रेय आप के सफल नेतृत्व को ही है। इसलिये आपके इस पुनीत अभिनन्दन का आयोजन कर महासभा ने कुछ अंशों में ही सही, अपने कर्त्तव्य का ही पालन किया है।

मेरे ऊपर आपका वरद् हस्त सदैव छत्र की भांति रहा है और मुझे आप सदैव मेरे कर्त्तव्यों का ज्ञान देते रहे हैं। वीतराग भगवान् से प्रार्थना है कि वह हम सबको ऐसा बल दे कि हम श्रीमान् सेठ साहिब के जीवन से स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्राप्त करते रहें और आपके द्वारा निर्दिष्ट प्रशस्त पथ पर चल कर धर्म व समाज की उन्नति कर सकें। भगवान् महावीर से यह भी प्रार्थना है कि हमारे आदरणीय सेठ साहिब स्वस्थ्य रहें और सुदीर्घ काल तक हमारी उन्नति की प्रेरणा बने रहें और उनकी निर्मल यशपताका सदैव इसी प्रकार फहराती रहे।
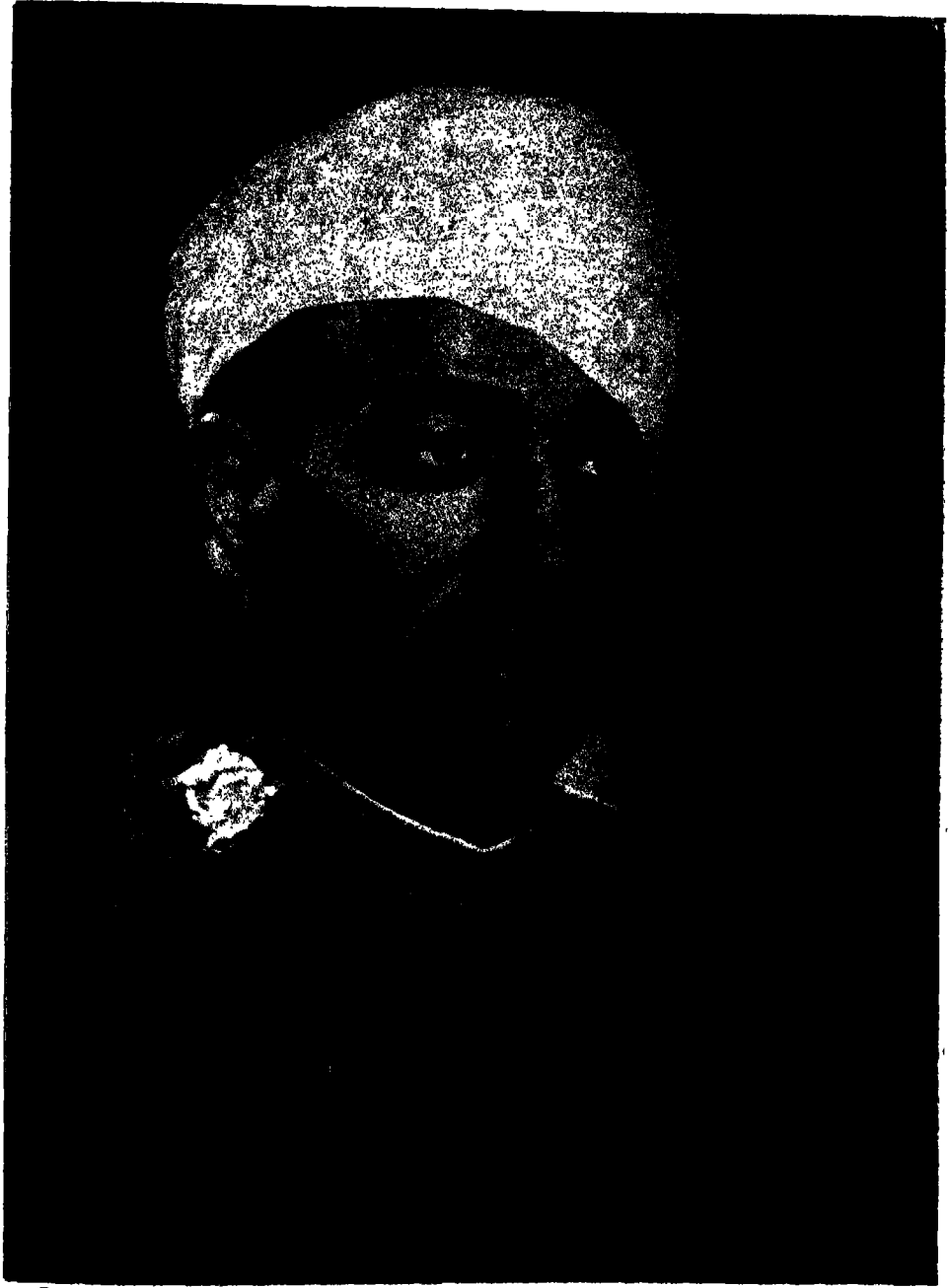
सर सेठ भागचंदजी सोनी सभापति भारत वर्षीय दिगंम्बर जैन महासभा।

सेठ साहब द्वारा की हुई धर्म और समाज की अपूर्व सेवा सदैव संसार में आदर की वस्तु रहेगी और उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रक्खेगी और उन्हें याद कर कर सब "करते रहेंगे लोक में तेरी सुजनता की कथा।"

लिखने को बहुत कुछ लिखा जा सकता है; लेकिन, मन के भाव भाषा में व्यक्त किया जाना अत्यन्त कठिन है और सत्य ही महाकवि शेक्सपियर के शब्दों में भी यही कहना चाहता हूं कि:—

This was the noblest Roman of them all.

... ...

His life was gentle, and the elements
So mixed in him that Nature might stand up,
And say to all the world, "This was a Man".

रचनात्मक सुधारक

दानवीर श्री साहू शांतिप्रसादजी जैन

भूतपूर्व अध्यक्ष-अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद,

श्रद्धेय सर सेठ हुकमचंदजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करने में समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है। समाज की कोई भी ऐसी प्रगति नहीं है, जिसमें सेठ साहब की सेवाओं की छाप न हो। उनका अपना एक विशेष व्यक्तित्व है। समाज की सेवाओं के सम्बन्ध में कभी वह छोटे या बड़े का विचार न कर क अपना सक्रिय सहयोग हरएक कार्यकर्त्ता को बहुत प्रसन्नतापूर्वक देते हैं। उनमें सेवा की लगन है। सेठजी अपने विचारों में एक पक्के रचनात्मक सुधारक हैं। वह ध्वंसता में विश्वास न कर समाज को केवल समय के अनुसार आगे बढ़ाने में संलग्न रहते हैं।

व्यावसायिक क्षेत्र में आपका अपना एक विशेष स्थान था। व्यवसायी वर्ग आपको व्यवसाय में एकाधिपति-सा समझता था। कई वर्षों से आपने व्यवसाय की ओर से रुचि हटा कर वैराग्य ले लिया है।

जाति व समाज सेठ साहब का ऋणी है और मेरी हार्दिक कामना है कि श्री जिनेन्द्र सेठ साहब को चिरायु करें तथा समाज के व्यक्तियों को उनका पथानुसरण करने की सुबुद्धि दें।

इन गुणों का शतांश भी पा सकूं

श्री देवकुमारसिंह एम० ए० इंदौर

एक बालक अपने पिता के प्रति जब श्रद्धा, भक्ति व प्रेम में विभोर हो जाता है, तब उसके सामने सारे संसार का शब्दकोष भी बहुत सीमित नजर आता है और वह मग्न होकर अपनी सारी भावनायें यही कह कर व्यक्त कर देता है कि "पिता जी, आप कितने अच्छे हैं।" इन्हीं शब्दों में मेरे हृदय के अन्तरतम में उत्पन्न श्रद्धा को पूज्य काका साहब के पुनीत चरणों में नतमस्तक हो समर्पण करता हूँ।

आज से करीब २१ वर्ष पूर्व जब मैं कुचामन से यहां आया था और आने के करीब छः माह पश्चात् ही मेरी पूज्य माताजी का स्वर्गवास हो गया था, मेरे सामने अन्धेरा छा गया था। परन्तु आपके सुखद निर्देशन में रह कर मैंने जो शिक्षा प्राप्त करने व अपनी फर्म का कार्य संभालने में समय बिताया, उसमें मुझे अपने स्वर्गीय पिताजी का अभाव कभी अनुभव नहीं हुआ। आपने मेरे यहां के कार्य को जिस दिलचस्पी के साथ सम्भाला, उसी का यह नतीजा है कि हम लोग आज सम्पन्न, सुखी व आनन्द हैं।

आपके पास से मुझे हमेशा स्फूर्ति व आशा ही मिली है। किसी भी कठिनाई को लेकर आपके पास आने पर हमेशा मुझे तो यही उत्तर मिला कि "बेटा, कुछ फिकर नहीं। अभी इस काम को उठाते हैं।" इन शब्दों में जो शक्ति रहती है, उससे हमें उसी समय विश्वास हो जाता है कि अपनी कठिनाई हल हो चुकी।

केवल कहनामात्र ही नहीं, कहते ही आप उस कार्य के पीछे इतनी लगन व सम्पूर्ण शक्ति से लग जाते हैं कि हमें आश्चर्य होता है। आप भले ही थके हुए हों, अस्वस्थ हों, परन्तु उसकी कुछ भी परवाह न करते हुए जब तक वह कार्य समाप्त नहीं हो जाता, चैन नहीं लेते। हम लोग कठिनाई उपस्थित करने वाले भले ही उसमें ढीले पड़ने की कोशिश करें; परन्तु आपका उत्साह कभी कम नहीं पड़ता और न हमारा ही उत्साह कम पड़ने देते हैं।

इसके साथ ही साथ हमें आपका प्रत्येक विषय में निर्णय इतना शीघ्र मिलता है कि देखकर आश्चर्य होता है। किसी विषय के बारे में मैंने यह तो कभी सुना ही नहीं कि "फिर विचार करेंगे।" कोई भी बात आप से पूछने के बाद जब तक उसका अन्तिम निर्णय नहीं होजाय, आप बराबर हम लोगों से पूछते रहते हैं तथा स्वयं देखते हैं कि उनके निर्णय का पालन हो चुका या नहीं।

आपके अथक परिश्रम, अनन्य लगन, शीघ्र निर्णय, अपार शक्ति व उत्कृष्ट आशावाद के सामने हम अपने आपको बहुत ही तुच्छ पाते और मेरी सच्ची श्रद्धांजली तो यही होगी कि मैं आपके इन गुणों का शतांश भी अपने आपमें पा सकूं।

मेरी तो जिनेन्द्र देव से यही करबद्ध प्रार्थना है कि आपका प्रेमपूर्ण हाथ हमारे सिर पर हमेशा बना रहे व हमें हमेशा आपसे मार्गदर्शन मिलता रहे।

बचपन का एक संस्मरण

पं० कैलाशचंदजी शास्त्री, बनारस

१९१० में सम्मेदशिखरजी की प्रतिष्ठा के अवसर पर ६ वर्ष की आयु में मैंने सबसे पहले सेठ साहब का नाम सुना था, किन्तु देखा मैंने उनको तब, जब वे सन् १९१६ में हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के समारोह में सम्मिलित होने के लिये काशी पधारे थे। स्याद्वाद महाविद्यालय के व्यवस्थापक स्वर्गीय ब्रह्मचारी ज्ञानानंदजी (पं० उमरावसिंहजी) पर सेठ साहब के आतिथ्य का सब भार था। रात्रि के पिछले पहर में वे वहां पधारे। कैसा गठीला उनका बदन था। चेहरे पर तेज था। नौकर-चाकरों में दो पहलवान साथ में थे और सामान में थी मुद्गरों की जोड़ी।

विश्वविद्यालय का शिलान्यास लार्ड हार्डिंग करने वाले थे। बनारस के कमिश्नर आगंतुकों का स्वागत कर रहे थे और सबको अपने नियत स्थान पर बिठा रहे थे। जब सेठ साहब पधारे, तो उनकी साजसज्जा देखते ही बनती थी। साथ में जर्कबर्क पोशाक से मंडित अरदली था। जैसे ही अरदली के पीछे रौबीले चेहरे वाले सेठ साहब ने शान से मंडप में प्रवेश किया, तो सहसा ही राजाओं-महाराजाओं की दृष्टि उन पर आकर्षित हुई। कई एक तो उनके स्वागत में खड़े भी हो गये।

स्याद्वाद महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव में सेठ साहब २-३ घंटे उपस्थित रहे। इतने ही में वहां तारों का तांता लग गया। तारघर का चपरासी एक तार देकर लौटता था कि दूसरा लाने के लिये टेलीग्राफ आफिस में तैयार मिलता था। वह आश्चर्य से पूछता था कि ये सेठ कब तक काशी में ठहरेंगे?

जैन समाज के वर्तमान युग की इस शानबान, उदारता और धर्मप्रेम की ऐसी मूर्ति "न भूतो न भविष्यति" है।

पिताश्री के पुनीत चरणों में

भैय्यासाहब श्री राजकुमारसिंहजी ऐम. ए. एल. एल. बी.

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा अपने स्वर्णजयन्ती समारोह पर पूज्य पिताश्री को एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने जारही है। इससे अधिक गौरव तथा हर्ष की बात मेरे लिये और क्या हो सकती है? इस शुभ अवसर पर मैं अपने हृदय के भावों को शब्दों में व्यक्त करने में अपने आप को बिल्कुल असमर्थ पा रहा हूँ। फिर भी इतना तो अवश्य कहूँगा कि जन्म से लेकर अब तक मेरे जीवन की समस्त भूमिका केवल पूज्य पिताश्री के वात्सल्य की ही रचना है। जो भी मेरे जीवन में सांस्कृतिक अल्प शक्तियाँ दिखाई दे रही हैं, वे उनके अनेकानेक अनुपम गुणों के अनुकरण का प्रयास मात्र हैं। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि मैं अनेक गुणों को कुछ अंश में भी अपने जीवन में उतार कर किसी भी रूप में जीवन को सार्थक कर सका, तो वही मेरी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। मेरी पूर्ण मान्यता है कि इस सत्य भावना की पूर्ति में उनका पवित्र आशीर्वाद ही एक मात्र सहायक हो सकेगा। इस हेतु पिताश्री के पावन चरणों में सादर, सप्रेम व पूर्ण श्रद्धा से नमन करता हूँ और परम पिता परमेश्वर से हृदय से यही चाहता हूँ कि उनकी स्नेहमयी गोद और आशीर्वाद रूपी छत्रछाया चिरकाल तक जन्मान्तर में भी मेरे साथ बनी रहे।

पुत्री की श्रद्धांजलि

सौभाग्यवती चन्द्रावतीबाई साहिबा-सुपुत्री सर सेठ साहब

१

जय-जय महाघोष से गूंजी,
दशों दिशाओं में विश्व महान।
पुण्य नाद से चकित इन्द्र ने,
सुना श्रीजिन का गुण गान॥

२

दिग्गज कंपे और दिग्पालों ने,
गुण गौरव गान किये।
पुण्यवान सर सेठ हुकमचन्द,
युग-युग, सौ सौ वर्ष जिये॥

३

नेत्र-हीन दीपक दिखलावे,
जग में दीपक वाले को।
और पंगु यदि छूना चाहे,
रत्न-ज्योति उजियाले को॥

४

नभ के तारे गिन जाने का,
पूर्ण हो सके यदि विज्ञान।
तो शायद कोई कर पावे,
पूज्य पिता श्री का गुणगान॥

५

किन्तु स्वयं की छोह लेखनी,
पर मेरा अधिकार नहीं।
नहीं पूर्ण होगी यश गाथा,
मौन रहूँ, स्वीकार नहीं॥

६

रोम रोम पुलकित मेरा,
नहीं मुझे अपना भी भान।
गाऊं अपनी हृदय बीन पर,
पूज्य पिता श्री का यश गान॥

७

त्याग किया जिसने इस जग में
उसकी कीर्ति ध्वजा फहरी।
राग और वैराग्य सभी में,
जिनकी जयति-ध्वजा लहरी॥

८

महिमामय कर्त्तव्य शील,
औदार्य दुंदुभी बाज रही।
सहज शीलता गुण ग्राहकता,
गजारूढ हो गाज रही॥

९

नीति कुशल चारित्रवान,
निर्भीक साहसी और विनीत।
उत्साही अभिमान रहित,
गंभीर विवेकी और पुनीत॥

१०

धर्म अर्थ औ काम मोक्ष,
सब एक साथ तुमने साधे।
साम दाम अरु दण्ड भेद से,
जन समूह रक्खा बांधे॥

११

पुण्य योग सब शुभ कर्मों के,
तव चरणों पर न्योछावर।
और विश्व की धवल कीर्ति ने,
तुम्हें वरा ए त्याग प्रवर॥

१२

भरत चक्रवर्ती सा वैभव,
पाकर आप अमल धवल हो।
और इन्हीं से पंचम युग में,
पंक-हीन जल भिन्न कमल हो॥

१३

ओ! दीनों के प्राण, पीड़ितों,
के रक्षक, आधार महान।
जैन-जाति मेरु दण्ड, औ,
विद्वद्वर के मित्र प्रधान॥

१४

अन्न, वस्त्र, औषधि, शिक्षा,
के मुक्त हस्त दानी विद्वान्।
धर्म दिवाकर औ कुल भूषण,
मूर्तिमान आदर्श महान्॥

१५

हम छोटे बालक सब,
तेरे श्री चरणों की छाया में।
निडर और निर्भीक रह रहे,
इन्द्र जाल सी माया में॥

१६

तव प्रसाद सी हीरा भैया,
हीरा सम हैं ज्योतिर्मान।
और हमारे छोटे भैया,
तुमसे ही हो कीरतिवान॥

१७

आत्म ज्योति की जगी दीपिका,
कंचन सी आभा पाकर।
आत्मलीन होगई आत्मा,
प्रेमामृत घन बरसा कर॥

१८

आज प्रार्थना करते हम सब,
यह आशीश हमें भी दो।
तेरे पद चिन्हों पर चलवें,
हममें इतना बल भरदो॥

१९

प्रभु से इतनी विनय हमारी,
ध्येय तुम्हारा प्राप्त तुम्हें।
तुमसी धवल कीर्ति औ गरिमा,
धर्म भावना प्राप्त हमें॥

२०

अवनि और अम्बर तक,छावे,
इस गुण यश गाथा की लय।
गगन गुंजावें हम सब मिलकर।
पूज्य पिता की जय जय जय॥

ज्योतित जीवन की झांकी

राज्यभूषण रावराजा सेठ हीरालालजी काशलीवाल, इन्दौर

आज मेरे हर्ष की सीमा नहीं है। संकोच से मेरी लेखनी रुक भी रही है। मैं महान व्यक्तित्व को किन शब्दों में अपने हृदय के श्रद्धा-स्नेह और प्रेम की पुष्पांजलि चढाऊं, जिनके चरणों में पिछले पचास वर्ष मैंने दुनिया में राजसी ठाट-बाट से जीवन का सुख उठाया और समाज की सेवा में भी यथाशक्ति योगदान दिया। पूज्य काका साहब की विशेषताओं को, उनमें जीवन की सफलताओं के रहस्यों को और उनको हमारे समाज ही नहीं, भारत में वैश्य समाज का यशस्वी अलौकिक व्यक्तित्व बनाने वाले गुणों को मुझसे अधिक जानने का कब किसे मौका मिला होगा? आधी शताब्दि का यह लम्बा इतिहास जैन समाज की नव-जागृति का स्वर्ण युग है और पूज्य सेठ साहब इस जागृति के जनक होने के नाते उनके जीवन की विविध घटनाओं का उल्लेख एक अलग ग्रन्थ का विषय है। अतः आज मन में उमड़ने वाली भावनाओं को दबाकर मैं उन चन्द संस्मरणों तक ही सीमित रहूँगा, जिनमें कि पाठकों को सेठ साहब की ज्योतित जीवन की चमकदार झांकी दिखला सकूं।

भारत में व्यवसायी अनेक हुए, धन भी अनेकों ने कमाया और दान धर्म में भी लगाया; किन्तु राव-राजा सर सेठ हुकमचंदजी जैसा व्यवसायी कलेजे वाला व्यापारी न तो मैंने देखा और न सुना, जिसने न केवल व्यवसाय क्षेत्र में प्रतापी प्रभाकर की तरह नाम कमाया, बल्कि ऐश्वर्य का रईसी रहन सहन, दान-धर्म, समाज-सेवा और राज-निष्ठा में उससे आगे बढ़ा हो। याद है मुझे वे दिन जब एक बार नहीं, अनेक बार अकेले और बेकलेजे काका साहब ने भारत के बाजारों का कार्नर किया था। देश ही नहीं, विदेशों तक में सनसनी फैली हुई थी कि सेठ हुकमचंद क्या कर रहा है? सेठ साहब फेल हो जायेंगे। लोग उनको डराने की तरह तरह की बातें करते। जीवन-मरण की उन उत्तेजना की घड़ियों में भी सेठ साहब हमेशा प्रसन्न मुख रहते। शांति के साथ सब से मिलते जुलते और सलाहकारों की सलाह पर हंस कर रह जाते। वे आधी-आधी रात में स्थिर मन आगामी कल का प्रोग्राम बनाते और तारबाबू बन कर मैं उनके नगर-नगर के बाजारों में तूफान बरसाने वाले खरीदी बिक्री के तारों के मजमून लिखता। कानों कान किसी को खबर लगे बिना रातों रात तार दूसरे दिन बाजारों में पहुँचते और सेठ हुकमचंद की अचानक खरीदी—बेचवाली से बाजार का संतुलन उलट पुलट जाता।

कमाल इस बात की है कि हर कार्नर के मौकों पर विजय श्री ने काका साहब के भंडार में करोड़ों की सम्पदा के साथ उनको यशस्वी बनाया, जब कि ऐसे 'कारनरों' में कभी किसी को भी पूरी कामयाबी नहीं मिली है।

उनकी सफलता का मुख्य कारण है, उनका तेजस्वी व्यक्तित्व। इस तेज में वे एक कोमलता भी लिये हुए हैं। जहां वे महसूस करेंगे कि उनकी धारणा गलत है, वे एक क्षण का समय लगाये बिना उसे स्वीकार कर लेंगे। जहां, उन्हें मालूम हुआ कि सामने वाला व्यापारी आर्थिक संकट में है और रुपया चुकाने की सामर्थ्य उसमें नहीं है, तो वे उसे बिगाड़ने को कभी तैयार न होंगे, बल्कि उसे माफ कर देंगे। किंतु जहां वे यह जानते हों कि वे सही मार्ग पर हैं, उनके विचार व कार्य में त्रुटि नहीं है, तो वे सामने वाले को बोलने का भी मौका नहीं देंगे। अपने व्यक्तित्व और आत्मबल तथा इच्छा के द्वारा वे दूसरे को निरुत्तर कर देंगे।

सेठ साहब को धन का लोभ कभी नहीं हुआ। हो भी क्यों? उन्होंने इतना कमाया और ऐसे कमाया कि वाह! तभी वे उसका उपभोग भी कर सके। धन ने उन्हें दबाया नहीं, बल्कि वे धन पर हावी रहे। वही

कारण है कि उन्होंने अपने जीवन में बीस बाईस लाख का एक बड़ा धार्मिक ट्रस्ट बना दिया। लाखों का दान-धर्म उन्होंने प्रकट-अप्रकट में किया, उसका पूरा-पूरा कोई हिसाब नहीं है। किसी भी शुभ कार्य के लिये देने में उनको हिचक नहीं होगी, किन्तु वे बिना जांचे समझे कभी नहीं देते। दान का उन्हें शौक रहा है और कुछ-कुछ मैं भी उनसे यह स्वभाव पा सका हूँ। मुझे इस बात का दुःख नहीं कि उस स्वभाव से अनेक बार मैं ठगा गया हूँ, किंतु मुझे तो इस में भी कुछ ऐसा मजा मिला है कि सेठ साहब की आज्ञा भी कई बार चाहते हुये भी पालन नहीं कर सका हूँ। सेठ साहब को ठगना टेढ़ी खीर है।

पूज्य काका साहब में जो एक अलौकिक गुण है, वह है किसी भी काम करने का विचार आते ही उसको पूरा करने की शीघ्रता। वे कल पर कोई काम छोड़ने को कभी प्रस्तुत न होंगे। आंधी, पानी, अंधेरी रात और भयंकर बाधाएं ही, क्यों न हों? एक दो नहीं, पच्चीस आदमियों को अंधेरी रात में जगाना पड़ता हो और कितने ही खाते बहियों की जांच पड़ताल क्यों न करनी पड़ती हो तो वह होगा और होकर रहेगा। सेठ तब तक चैन न लेंगे, जब तक कि काम पूरा न कर लेंगे। हम लोगों को सेठ साहब हमेशा उसके लिये उपदेश देते रहते हैं, किन्तु हम कहां हैं, उन जैसे दुर्धर इच्छा-कार्य शक्ति वाले? आज वृद्धावस्था में भी उस स्वभाव के कारण उनमें वही चंचलता है और जीवन शक्ति की प्रेरणा!

बहुत कम लोग जानते हैं कि पिताश्री के इस यशस्वी जीवन महल की नींव रखने का सौभाग्य किसे प्राप्त है? मुझे मालूम है, वह मन्दसौर वाली माताजी थीं, सेठ साहब की प्रथम स्वर्गीय पत्नी, जिन्होंने उनके व्यवसायी जीवन के पुण्य प्रभा में केवल सोलह वर्ष की आयु में ऐसा प्रकाश फैलाया कि जीवन का सारा ढांचा बदल गया। पतन की ओर से मुंह मोड़कर उत्कर्ष की ओर जो पग उठाया, तो पीछे को ओर मुड़कर कभी झांका भी नहीं।

१०-१२ लाख की अपनी जायदाद को अपनी व्यवसाय कुशलता से आपने १०-१२ करोड़ से भी अधिक बढ़ा लिया, किन्तु वे हमेशा इस बात को जानते रहे कि सट्टे से आने वाली सम्पदा कभी उसी तरह जा भी सकती है। सो उन्होंने अपनी सम्पत्ति को स्थायी उद्योग धन्धों में लगाया। मध्यभारत में उद्योगों के जन्म-दाता के नाते उनका नाम सदैव औद्योगिकों में आदर पूर्वक लिया जाता रहेगा। मिल ही नहीं अन्य विविध कार-खानों में और व्यवसायों में उन्होंने रुपया लगाया। स्वयं तो लगाया ही, अपने भाइयों और अन्य रिश्तेदारों तथा व्यापारियों को भी उद्योगों को अपनाने की प्रेरणा दी। हम लोगों को हमेशा यही सीख देते रहे कि हम सट्टे में न पड़ें। १६४६ में संयत जीवन का श्रीगणेश करते समय उन्होंने आम सभा में हमें फिर यही सलाह दी। उसे आज्ञा के रूप में मैंने माना और तबसे सट्टा मेरे जीवन से खत्म हो गया।

सेठ साहब समाज सुधार के काम में सदैव आगे रहे। अपने व्यस्त जीवन में भी उन्होंने समाज की सेवा के लिये सदैव समय निकाला। गरीब अमीर का भेद-भाव भूल कर सबका हर्ष-शोक में साथ दिया। दिगम्बर जैन समाज में जो कुरीतियां सेठ साहब के प्रयत्नों से हटीं, वह कौन नहीं जानता। देश के चारों कोने में जहां भी और जब भी समाज के हित या जैन धर्म के सिद्धान्तों, आचार्यों एवं धर्म-तीर्थों-मन्दिरों पर प्रहार हुए, तो सेठ साहब वहां दौड़कर पहुँचे। तार-टेलीफोन का तांता उन्होंने लगाया। अधिकारियों को न्याय के लिये प्रेरित किया और तब चैन लिया, जब उस अन्याय को जड़ से समूल नष्ट कर दिया। यदि यह कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी कि समाज का उनसे बड़ा हितैषी और सेवक कहीं नजर नहीं आता। अपने तेजस्वी व्यक्तित्व, धन की शक्ति और मिलनसारी स्वभाव के कारण सेठ साहब ने जिस काम को भी हाथ में लिया, पूरा किया। यह हमारा सौभाग्य है कि वे आज हमारे बीच मौजूद हैं और अमीरी से दूर रहते हुए भी समाज-सेवा के

किसी काम से स्वयं को दूर नहीं करते।

नंगे-पांवों, सिर खुला हुआ, देह पर एक धोती बांधे और दूसरी ओढ़े,—जब कुछ लोगों ने उन्हें हमारे प्रांत के सुयोग्य मुख्यमंत्री बाबू तख्तमलजी जैन की कोठीपर दिन में देखा, तो सहसा पहिचान न सके कि क्या यही श्रीमन्त रावराजा, दानवीर, राज्यरत्न, तीर्थभक्तशिरोमणि आदि अनेक पदवियों से विभूषित सर सेठ हुकमचन्द्र स्वरूपचन्द्र नाइट हैं, जो बढ़िया झब्बेदार सामन्ती जरी की पगड़ी में मखमल का अचकन और चुस्त पैजामा, गले में हीरों-पन्ना का कंठा और हाथ में अमूल्य हीरों की अनेक अंगूठियां धारण करने वाला—निराली आन-बान और शान का साहूकारों का बेताज का बादशाह कहलाता है?

सादगी की एक प्रतिमूर्ति बुढ़ापे के बोझ से कमर झुकाये; किन्तु सिंह की दबंग चाल वाले, जी हां यही वह सर सेठ हैं, जो आज साधुत्व को सर करने के लिये वैभवविलास को उच्छिष्ट आम की गुठली की तरह फेंके हुए हैं। कहां तो इन्द्रभवनों के राजसी पलंगों पर विहार करने वाला श्रीमंत और कहां साधु-संतों के बीच भगवत् भजन में लीन रहने और भगवान् के नाम की माला फेरने वाला यह संन्यासी व्यक्ति! कितना बड़ा परिवर्तन है यह। क्या कोई महसूस कर सकेगा इस व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई अगाधता को! जीवनभर जिसने माया को प्यार किया, दुलार किया और जिसके मनुहार में .ह मचलता रहा,—इठलाता और अठखेलियां करता रहा, अब उससे रूठे हुए हैं वह!

उनका मेरे प्रति जो प्रेम है, क्या उसका प्रतिदान मैं कभी दे सकूंगा? एक अत्यन्त गरीब घर से वे मुझे उठा लाये थे ६० वर्ष पूर्व, जब कि मैं सिर्फ तीन वर्ष का ही तो शिशु था। उन्होंने मुझे कभी यह महसूस न होने दिया कि मैं माता-पिता के प्यार से कभी एक क्षण के लिये भी वंचित हुआ। मुझे गोद लाये। बालक को उन्होंने अपने स्वयं के सुपुत्र से भी अधिक लाड प्यार से रखा। चि० राजकुमारसिंह के जन्म के बाद भी मेरा दुलार कम नहीं हुआ और जब पूज्य कल्याणमलजी साहब का स्वर्गवास हुआ, तो उनकी फर्म का वारिस बना दिया। इतना ही नहीं; अपनी सम्पत्ति का भी लगभग एक करोड़ रुपया मुझे और दिया। इस कार्य में भी सेठ साहब ने जिस दूरदर्शिता, मेरे हितका और समस्त परिवार की भलाई का ध्यान रखा, इसे कौन नहीं मानेगा? मैं उनके अहसानों कितना दबा हुआ हूँ?

आज एक पुत्र अपने पिता को उनकी मौजूदगी में किन शब्दों में श्रद्धांजलि दे, समझ नहीं पा रहा हूं। मुझे संकोच है, तो इतना ही कि हम उनकी उच्चता और गंभीरता को पा न सके, उनके वारिस होकर भी। आज जब अपनें भावों को उनके समक्ष प्रकट करने का सुअवसर मिला है, तो मैं तो परमेश्वर से यही प्रार्थना करूंगा कि सिर्फ मैं और मेरे परिवार के लिये, बल्कि समस्त जैन समाज एवं व्यापारिक समाज के लिये वे शतायु हों और हम सब पर उनकी सरपरस्ती बनी रहे।

आज सेठ हुकमचन्द्रजी हमारे बीच मौजूद हैं। अत: उनके प्रखर व्यक्तित्व का महत्व हम समझ नहीं पा रहे। मेरी मान्यता है कि भारत के व्यावसायिक एवं औद्योगिक गगनमण्डल में फिर कभी सेठ साहब जैसा प्रतापी सितारा प्रगट होना असंभव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। सो, भगवान उन्हें चिरायु रखें,-यही मेरी पुन: पुन: परमेश्वर से प्रार्थना है।

—इन्दौर से श्री रतनलालजी सोनी लिखते हैं कि इतने बड़े ऐश्वर्य के धनी होते हुऐ भी अभिमान सेठ साहब के पास फटक तक नहीं पाया। बाल-वृद्ध-युवा किसी भी समय आपके पास जाकर मिल सकते हैं और अपने उद्गार प्रकट कर सकते हैं। आप कार्यकर्ताओं को खूब परखते हैं। साहस और धैर्य आपका मुख्य गुण है। आपके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

इन्दौर के राजा

वयोवृद्ध सेठ भंवरलालजी सेठी, इन्दौर

स्वागताध्यक्ष—महासभा स्वर्णजयन्ती महोत्सव
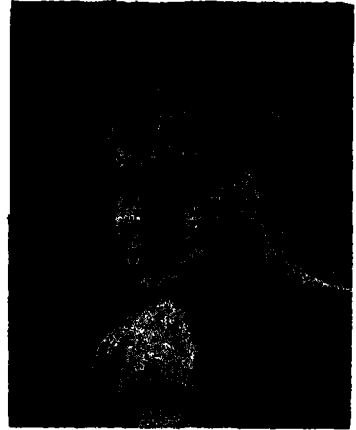
श्री श्रवणबेलगोला की यात्रा के समय मैं मैसूर, बंगलोर आदि दर्शनीय स्थानों पर गया था। उस यात्रा में छोटे-छोटे नगरों में भी लोग मुझसे पूछते कि "आप कहां से आये हैं ?" उत्तर सुनकर कहते "अच्छा आप सर हुकमचन्द के इन्दौर से आ रहे हैं ?" अथवा "वही इन्दौर जहां सर हुकमचन्द रहते हैं ?" मुझे बहुत आश्चर्य हुआ, जब बंगलोर में एक काफी शिक्षित व्यक्ति ने मुझसे कहा कि "इन्दौर के राजा तो सर हुकमचन्द हैं न ?" सर हुकमचन्दजी का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली तथा आकर्षक है कि जहां कहीं भी वे जाते, लोग उन्हें देखने को उमड़ पड़ते। मैसूर के दशहरे के समय उन्हें महाराजा मैसूर स्वयं पत्र और तार पर तार देकर बड़े आग्रह के साथ बुलाते। जब भी सेठ साहब वहां गये, लाखों की संख्या में लोग उपस्थित होते। मैसूर में लोग अब भी उन दशहरा-जलूसों को याद करते हैं, जिनमें सर सेठ साहब शरीक हुए थे। उनके अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण कई लोगों ने उन्हें इन्दौर का राजा ही समझ लिया था। उन्हें यदि कोई कहे कि सर हुकमचन्द इन्दौर के राजा नहीं है, तो एक बार तो वे विश्वास ही नहीं करते थे।

सोनगढ़ में आप उनके प्रमुख धर्मानुराग की कथा सुनेंगे, तो कलकत्ता में उनकी गणना देश के इने गिने प्रमुख उद्योगपतियों में होती देखेंगे। दक्षिण में अनेक स्वयं अर्जित धन तथा ऐश्वर्य के साथ उनके निरभिमान स्वभाव की चर्चा है, तो उत्तर में दृढ़ व्यक्तित्व त. ा दानशीलता की।

अपने जीवन में मैंने सर सेठ साहब सा दृढ़ एवं निडर व्यक्ति दूसरा नहीं देखा। किसी भी परिस्थिति में उन्होंने आत्मविश्वास नहीं खोया। बड़े से बड़े आफिसर, गवर्नर अथवा राजा-महाराजा के साथ धर्म के लिये उलझते वे कभी घबराये नहीं। उनके धर्मानुराग एवं उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व के सम्मुख अफसरों तथा राजाओं को अनेक बार झुकना पड़ा और उन्होंने सर सेठ साहब को सदा के लिये अपना मित्र बना लिया। जब भी तीर्थ अथवा धर्म पर संकट आया, सर सेठ साहब ने अकेले संघर्ष करके धर्म की पताका को ऊंचा रक्खा।

वास्तव में सर सेठ स्वयं अपने में एक संस्था है। उनका सहयोग सारे जैन समाज का सहयोग है। उनका विरोध सारे जैन समाज का विरोध, जिसके सम्मुख बड़े-बड़े शासनाधिकारी झुक चुके हैं।

अपनी बुद्धि और अपने परिश्रम से उन्होंने धनोपार्जन किया। एक साधारण व्यक्ति से वे अपने बुद्धिबल से हमारे प्रांत के सर्वश्रेष्ठ उद्योगपति बने। पर, इसका उन्हें कोई गुमान नहीं है। ऐश्वर्य और सत्ता का साथी

अभिमान होता है। पर, सेठ साहब को अभिमान छू भी नहीं गया। धनी और निर्धन दोनों उनके मित्र हैं। छोटे से छोटे परिचित के यहां वे शादी ब्याह में शामिल होते हैं।

आज प्रत्येक धर्मानुरागी जैन उन्हें अपना एकमात्र सेनानी मानता है। वास्तव में वे जैन समाज के सम्राट् हैं। उन्होंने तो सदा अपने को जैन समाज का सेवक ही माना। जैन समाज उनकी सेवाओं से कभी उऋण हो नहीं सकता। राजाओं, शासकों और विद्वानों ने उन्हें मान दिया; किन्तु उन्हें इसका कोई गर्व नहीं। सर सेठ साहब के निकट परिचित जानते हैं कि व्यापार में लाखों खो देने पर भी उतने ही प्रसन्न सुख एवं निश्चिन्त रहे हैं; जितने लाखों कमा लेने पर। दुःख और सुख में वे सदैव शांत रहते हैं। स्वभाव की सरलता, नम्रता एवं धैर्य उन्होंने कभी खोया नहीं। नित्य सामायिक में हम जिस माध्यस्थ भाव की याचना करते हैं, वह सेठ साहब के स्वभाव का सहज गुण है।

कुछ वर्षों पहिले सेठ साहब के पेट में तकलीफ हुई। बम्बई में डाक्टरों ने उन्हें कहा कि लन्दन जाकर आपरेशन करवाना चाहिये अन्यथा जीवन का भय है। सेठ साहब ने विदेश जाना स्वीकार नहीं किया। मित्रों तथा सम्बन्धियों ने बहुत आग्रह किया। अनुनय विनय किया। पर, वे अडिग रहे। डाक्टरों ने मृत्यु भय बतलाया। पर, वे विदेश जाने को तैयार नहीं हुए। इसके विपरीत उन्होंने इन्दौर आकर समस्त व्यावसायिक एवं पारिवारिक कार्यों का त्याग कर दिया तथा उदासीन वृत्ति धारण कर धर्म-अध्ययन एवं आत्म-चिन्तन में जुट गये। मित्रों ने उन्हें कई बार पारिवारिक कार्यों में लाने का प्रयास किया। पर, वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे।

जब हम सुनते हैं कि एक व्यक्ति ने अपने बुद्धि बल से खूब धनोपार्जन किया, दान दिया धर्म प्रभावना की तथा अनेक लोकोपयोगी कार्य किये और अधिक अवस्था होते देख आज वह उस समस्त ऐश्वर्य को क्षण भर में त्याग कर आत्म चिंतन में रत हो गया है, तो ऐसा लगता है कि किसी पुराणों में वर्णित चतुर्थकाल के महान धर्मप्राण व्यक्ति की गाथा कही जा रही है। आज से दो सौ वर्ष बाद सेठ साहब की जीवन कथा पढ़कर लोग विश्वास नहीं करेंगे कि ऐसा व्यक्ति पंचमकाल में हुआ भी था। आज यह हमारे सौभाग्य की बात है कि ऐसे महान व्यक्ति के हम समकालीन हैं।

मैं जिन प्रभु से यही प्रार्थना करता हूं कि धर्म, देश और समाज के लिये सेठ साहब अनेकों वर्ष और हमारे बीच में रहें। उनके अभाव में जैन समाज का क्या हाल होगा,—इसकी कल्पना भी दुःखप्रद है। भगवान करे समाज सेठ साहब जैसे तेजस्वी व्यक्ति की सेवाओं तथा नेतृत्व से कभी वंचित न हो।

—बिजनौर से भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् के उपाध्यक्ष श्री रतनलालजी जैन सदस्य उत्तर प्रदेशीय धारासभा लिखते हैं कि रावराजा सेठ हुकमचन्दजी जैन समाज के अग्रणी नेता हैं। आप उन धनकुबेरों में से हैं, जिन्होंने अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग किया है। आपकी लोकोपकारी संस्थाओं से लाखों व्यक्ति प्रति वर्ष लाभ उठाते हैं। मेरी हार्दिक भावना है कि सेठजी चिरंजीवी हों और उनके द्वारा धर्मप्रसारक समाज का कल्याण होता रहे।

—जयपुर से अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी कमेटी के मंत्री श्री बधीचन्दजी गंगवाल लिखते हैं कि सर सेठ साहब समाज व देश की प्रख्यात विभूतियों में से हैं। जीवनभर आपने समाज की भरसक सेवा की है। दिगम्बर जैन तीर्थों एवं क्षेत्रों की रक्षा के लिये आपने घोर व अथक परिश्रम किया है। धर्म के स्वरूप को आपने अपने जीवन में उतारा है। आप रूढ़िवादी नहीं है। समाजसुधार के आंदोलनों में आपने कितनी ही बार सफल नेतृत्व किया है।

युग-निर्माता

रायबहादुर जैनरत्न सेठ लालचन्दजी सेठी, उज्जैन

श्रीमंत सर सेठ हुकमचन्दजी साहिब उन प्रतिभाशाली पुरुषों में से हैं, जो युग-निर्माता कहे जाते हैं। सेठ साहब ने गत पचास वर्षों में जो काम समाज, धर्म, व्यापार और उद्योग के लिए किए हैं और उनमें जो यश व सफलता प्राप्त की है, वह बहुत कम भाग्यशाली पुरुषों को मिल सकती है। सेठ साहब का जीवन सभी दृष्टियों से सफल और महत्वपूर्ण रहा है। आपने पूज्य पिताजी से अपने हिस्से की पांच लाख की सम्पत्ति पाकर उसे आपने व्यापार-कौशल से सहस्रगुणा बढ़ाकर करोड़ों में परिणत कर दिया है। आपके व्यापार करने के तरीके बड़े साहस भरे होते थे, जिससे भारत ही नहीं, बाहर देशों के बाजार भी हिल जाते थे। आपकी साख भारत में ही नहीं यूरोप और अमेरिका में भी मानी जाती थी। सम्पत्ति का विस्तार करने के साथ ही आपने अपने जीवन में ७०-८० लाख से अधिक का दान देकर अपना नाम अमर कर दिया है, जिससे जैन समाज का काफी उपकार हुआ है।

आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। जैनधर्म में धर्म-अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं। चारों पुरुषार्थों में आपका जीवन बहुत ही उल्लेखनीय रहा है। जैनतीर्थों और जैनसमाज पर जब-जब आपत्ति आई, आपने अथाह परिश्रम करके तन-मन-धन, लगाकर उनका निवारण कर अपना जीवन सार्थक किया। जैनतीर्थों सम्बन्धी झगड़े निपटाने में शुरू से आपकी अभिरुचि रही है। परन्तु श्रीमान् सेठ माणकचन्द पानाचन्द की मृत्यु के बाद से तो आपने तीर्थसम्बन्धी झगड़े निपटाने का व्रत-सा ले लिया है। इसी से "तीर्थभक्तशिरोमणि" की पदवी जैन-समाज ने आपको सादर समर्पित की है।

इसी तरह समाज के आपसी झगड़े मिटाने के लिए आप आधी रात को भी कटिबद्ध रहते हैं और उन सब झगड़ों को मिटाकर आपने पारस्परिक प्रेम-भाव सब में स्थापित किया है। उज्जैन और बड़नगर के पुराने झगड़े तथा अव्यवस्था को आपने इसी तत्परता से निपटाया है। अतः दूसरों के लिए जो काम कठिन होता है, उसे आप बड़ी आसानी के साथ अपनी बुद्धिचातुरी से निपटा देते हैं।

आपका मेरा सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। जिस प्रकार आप गृह-शासक हैं, प्रसिद्ध व्यापार-कुशल हैं, उसी प्रकार पितृ-वात्सल्य भी आप में बड़ा अपूर्व है। मेरी धर्मपत्नी आपकी प्रथम सेठानीजी से हैं, जिन्हें वे तीन दिनकी छोड़कर स्वर्गस्थ हो गई थीं। तभी से मेरी धर्मपत्नी पर आपका विशेष प्रेम रहा है, जिसमें आज भी कोई कमी नहीं है। सम्वत् १९२८ में मेरी सगाई हो गई थी, विवाह हुआ सम्वत् १९६७ में। तभी से मेरे पर आपका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता आता है। मुझे बचपन में पितृ सुख बहुत थोड़ा मिल पाया, परन्तु सेठ साहब के वात्सल्य ने बहुत अंशों में उसकी पूर्ति कर दी है।

सन् १७२८ में कुप्रबन्ध के कारण विनोद मिल की स्थिति बड़ी डांवाडोल हो गई थी। १०० रु० के शेयरों के भाव केवल ३० रु० के रह गये थे। यह समस्या हमारे सामने बहुत उग्ररूप में थी और हम सबको परेशान कर रही थी! उस समय सेठ साहब ने बड़े ही जोरों से मुझे और मेरे भाइयों को प्रोत्साहन दिया और मुझे कारोबार सम्हालने में पूरी मदद पहुँचाई और मिलका काम हमारे सिपुर्द कराया। उसी का परिणाम है कि विनोद मिल में जहां उस समय ४६० लूम थे, वहां आज १३०० लूम्स होकर वह अग्रगण्य मिलों में गिना जाने लगा है। यदि आप और श्री आर-सी-जाल साहिब उस समय इतना सहयोग न देते, तो यह दिन नसीब नहीं होता।

सन् १९२० में मेरी तबीयत बहुत बिगड़ गई थी। उस समय सेठ साहब मामलेश्वर में थे। गरमी बहुत

रायबहादुर, वाणिज्यभूषण सेठ लालचन्दजी साहब सेठी उज्जैन।

सर सेठ हुकमचन्दजी साहब के बायें हाथ की रेखाओं के चित्र
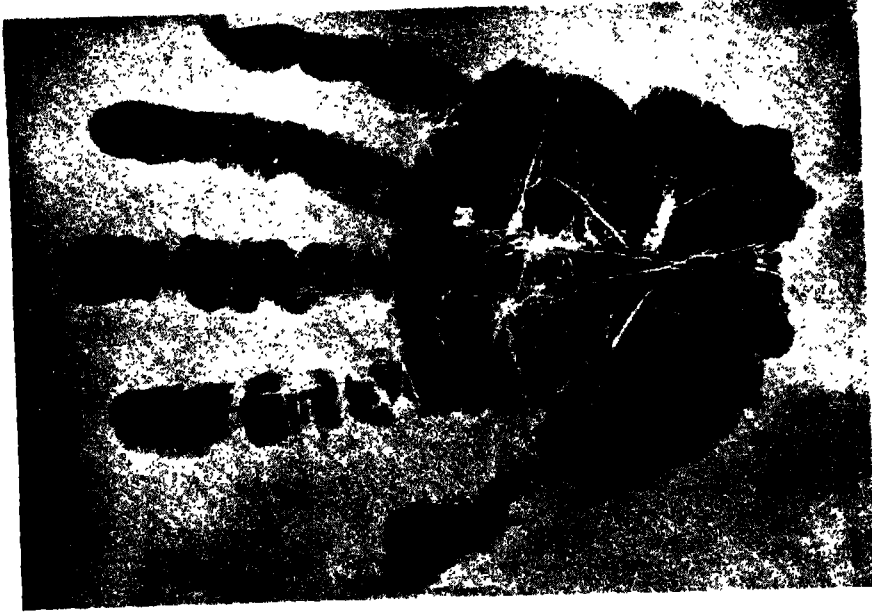
सर सेठ हुकमचन्दजी साहब के दायें हाथ की रेखाओं के चित्र

सर सेठ साहब का स्टेच्यु। इन्दौर में ता: १२मई को पब्लिक गार्डनमें अनावरण होगा।

रावराजा श्रीमन्त सेठ हीरालालजी साहब काशलीवाल इन्दौर ।

पड़ती थी। तार पहुँचते ही, यानी दो बजे तार मिला और तीन बजे आप एकदम वहां सबको छोड़कर, भयंकर गरमी में रवाना हो गये, जिससे आपकी स्वयं की तबीयत बिगड़ गई। जब तक मुझे डाक्टरों ने संतोष-जनक स्वस्थ नहीं बताया, तब तक आप वापस नहीं गये। ऐसे कई प्रसंग मेरे और मेरी संतान के लिये भी आये हैं। इस वात्सल्य का मेरे हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि मैं भी सेठ साहब की कुछ सेवा करके उऋण होना चाहता हूँ।

६७ वर्ष पूर्णतया गृहस्थाश्रम का निर्वाह करते हुए आज कल आप वानप्रस्थ जीवन बिता रहे हैं। डाक्टरों और कुटुम्बीजनों के आग्रहपूर्वक मना करने पर भी आपने संसार की क्षणभंगुरता को जान कर उससे मन को हटा लिया है। अब आप घंटों स्वाध्याय किये बिना नहीं रहते और सुन्दर-सुन्दर भजन बोलने में तल्लीन हो जाते हैं। आपने अब ऐसा उदासीन रूप धारण कर लिया है कि जहाँ आप चौबीसों घंटे हीरा-मोती-पन्ना के जेवर पहने रहते थे, वहां अब आपके हाथ में बींटी भी दिखाई नहीं देती। इस कदर का त्याग बिरले ही पुरुष कर सकते हैं।

भगवान् की कृपा से आपकी श्रीमती सेठानीजी साहिबा भी इतनी पतिपरायणा, विवेकवती, लक्ष्मीस्वरूपा और धर्मप्राणा हैं कि वैसी स्त्री-रत्न जैनसमाज में मिलना दुर्लभ है। सेठ साहब की प्रसन्नता में ही उन्होंने अपना जीवन न्यौछावर कर दिया है।

मैं चाहता हूँ कि आपकी छत्रछाया हम पर सदा बनी रहे और जैनधर्म तथा समाज की सेवा आपके द्वारा खूब होती रहे। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ यह श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—ब्यावर से पंडित पन्नालालजी सोनी लिखते हैं कि सेठ साहब ने धर्म की अनुपम सेवा की है। उन्होंने श्रेष्ठातिश्रेष्ठ धर्मस्थान का निर्माण कराया है। उनके कार्य से समाज का मस्तक ऊंचा है। वे नर पुंगव हैं, परस्पर विरोधी लक्ष्मी और सरस्वती का उनमें समावेश हुआ है। जिन पूजा में, सामान्यविशेष व्रतविधान, विद्वानों का समागम, तीर्थस्थानों की सेवा में लक्ष्मी का विनियोग उनके किये सुकृत्य के उत्तम फल हैं।

—श्रीमान् सिंघई कुंवरसेनजी भूतपूर्व अध्यक्ष अखिल भारतीय परवार महासभा सिवनी लिखते हैं कि जब स्वर्गीय राजा लक्ष्मणदासजी के नेतृत्व में अखिल भारतवर्षीय दिगंबर जैन महासभा ने जन्म धारण किया था, तब से सेठ हुकमचंदजी के साथ मेरा सम्बन्ध प्रारंभ हुआ। सेठ साहब का व्यक्तित्व असाधारण है। जिस किसी समारंभ में शुभागमन होता है, उसकी शोभा और आकर्षण बढ़ जाता है। आप जैन समाज के सफल और प्रभाव-शाली नेता हैं। आपके सुख तथा ऐश्वर्य के भोग में न दानांतराय, न लाभांतराय, भोगांतराय, न उपभोगांतराय और न वीर्यान्तराय की बाधा है। सूक्ष्मतत्त्व चर्चा करते हुये सेठ साहब बड़े भारी पंडित सरीखे मालूम होते हैं। सम्यक्त्व के आठों अंग आपके जीवन में सुन्दरता से झलकते हैं।

—अजमेर से श्री हीराचन्द्जी बोहरा बी०ए० विशारद लिखते हैं कि मालवा प्रान्त के विशिष्ट महापुरुष, जैन-समाज के अनभिषिक्त सम्राट, जैनधर्म के अनन्य उपासक, जैन तीर्थों के संरक्षक भारत के इस महान नरपुंगव के प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं। समाज व देश का मस्तक ऐसे कर्मठ, यशस्वी एवं महा-पुण्यवान आदर्श नेता को पाकर सर्वोन्नत है। इस महान अध्यात्मा द्वारा समाज व देश को चिरकाल तक लाभ प्राप्त होता रहे, यही श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है।

—सीकर के दीवान भंवरलालजी लिखते हैं कि सेठ साहब सरीखी महान् आत्मा के प्रति हमारा यही कर्तव्य है कि हम उनका अभिनन्दन करें; उनकी सेवाओं से अपने को उऋण करें।

जैन समाज के सुहाग

श्री जोहरीलालजी मितल ऐम. ए. एल. एल. बी.

(अध्यक्ष प्रांतीय कांग्रेस चुनाव न्यायालय मध्यभारत)

सर सेठ हुकमचंदजी मालवे के ही नहीं; किन्तु भारतवर्ष के प्रख्यात व्यक्तियों में से हैं, आप सफल व्यापारी, उद्योगपति एवं कुशल निष्ठावान समाज नेता हैं।

सेठ साहब के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है व लिखा जाता रहेगा। मैं तो यहां उनके सम्बन्ध की दो एक छोटी मोटी उन बातों की ओर ध्यान आकर्षित करता हूँ, जो उनका थोड़ा-बहुत असली परिचय देने वाली है।

सेठ साहब अपनी धुन के पक्के हैं। किसी भी कार्य को बिना अंत तक पहुँचाये वे पीछा नहीं छोड़ते। न कुछ बात के लिये भी, यदि वह उनके दिमाग पर चढ़ गई, तो जमीन आसमान एक कर लेते हैं। यों जिस बात के लिये वे दो पैसे का पोस्टकार्ड खर्च नहीं करते, उसके लिये कुछ घण्टों में पचासों रुपया ट्रक, टेलीफोन, तार व मोटरें दौड़ाने में बड़े उत्साह से खर्च कर देते हैं।

किसी की गलतफहमी को बिना उसकी तह तक पहुँचे और बिना उसका पूरा समाधान किये सेठ साहब को चैन नहीं पड़ती। एक ही बात के लिये आधे आधे मिनट में टेलीफोन पर टेलीफोन करना, रातभर जगकर सामने वाले को भी सोने न देना। सेठ साहब की इस आदत को वे लोग खूब जानते हैं, जिनका उनसे निकट सम्पर्क रहा है।

अपना काम निकालने और अपनी मनचीती बात को पूरा कराने में सेठ साहब के समान दृढ़ और धुन के पक्के बिरले ही मिलेंगे। साधारण से काम के लिये भी वे अपनी प्रतिष्ठा व पोजीशन का मिथ्याभिमान न रख बड़े से बड़े छोटे से छोटे को भी येन केन प्रकारेण पटा लेने में सिद्धहस्त हैं। अपने विरोधियों को मिनटों में अपने अनुकूल कर लेने में उन जैसे सफल नीतिज्ञ बहुत कम मिलेंगे।

सेठ साहब की बुद्धि तीक्ष्ण और विवेक अपरिमित है। उनकी लम्बी सूझ किसी को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहती। सेठ साहब छोटे बालक के समान सरल प्रकृति के व योग्य रीति से समझाने पर तुरन्त अपनी हठ छोड़कर उचित बातों को तत्क्षण मान लेने के अभ्यासी हैं।

सेठ साहब ऐसे बुद्धिमान, कार्यकुशल, अनुभवी, सफल, प्रतिभाशाली, नेता, उद्योगपति व समाजसेवी, देश की शान बढ़ाने वाले, चुने हुये व्यक्तियों में से हैं, जिन पर देश और समाज को गर्व होना चाहिये। अब तक सेठ साहब जीवित हैं, तभी तक जैन जाति का सुहाग समझना चाहिये। जैन धर्म व जैन समाज के लिये सेठ साहब ने जो कुछ सेवा व श्रम किया है, वह उन्हें अमर बनाने वाला है। मध्यभारत को तो ऐसा कर्मठ व्यापारी और कार्यकुशल व्यक्ति शायद ही अगले दस बीस वर्ष में उपलब्ध हो सके।

सेठ साहब की संस्थाओं व उनके भव्य भवनों आदि ने इन्दौर की शान बना रखी है। उनकी सेवायें अनुपम हैं। सेठ साहब चिरायु हों और वर्षों स्वस्थ रहकर समाज का कल्याण व मार्गदर्शन करते रहें,-यही प्रार्थना है।

—उज्जैन से श्री जवाहरलालजी गंगवाल लिखते हैं कि सेठ साहब ने महान् पुण्य द्वारा उपलब्ध सांसारिक सुख वैभव के उपभोग में भी धर्म को कभी विस्मृत नहीं किया। इसीलिये सांसारिक सुख-वैभव का त्याग कर आपने धार्मिक जीवन व्यतीत करने का आदर्श उपस्थित कर दिया है।

उनके जीवन से शिक्षा

राज्यभूषण रायबहादुर सेठ कन्हैयालालजी भण्डारी, सुप्रसिद्ध उद्योगपति, इंदौर

पूर्व जन्म के संचित पाप और पुण्य का समन्वय ही वर्तमान जीवन एवं इस जन्म की आधारशिला है। इसके ज्वलन्त उदाहरण श्रीमान् दानवीर रईसुद्दौला, रावराजा, राज्यभूषण, राज्यरत्न, रायबहादुर सर सेठ हुकमचन्दजी हैं। उनके जीवन विकास में पूर्व संचित कर्मों के ही फल अधिकांश दृष्टिगत होते हैं। मैं अपनी बाल्यावस्था से ही सर सेठ साहब से निकट रूप से परिचित हूँ; क्योंकि आपके हृदय में मेरे पिताश्री के लिए बड़ा आदर था।

आपके जीवन से हमें यह शिक्षा मिलती है कि केवल विद्या ही भाग्योदय, पराक्रम और लौकिक कीर्ति का कारण नहीं होती। पुण्यात्मा व्यक्ति में जन्मजात कुछ ईश्वर प्रदत्त गुण होते हैं, जो किंचितमात्र अवसर प्राप्त होते ही जीवन की किसी धारा विशेष में पूर्ण विकसित हो जाते हैं। लक्ष्मी उपार्जन करना यह फिर भी आसान हो सकता है, परन्तु उसे सम्हालना और उसका सद्व्यय करना बहुत ही कठिन है। लक्ष्मी के लिये तीन मार्ग कहे हुवे हैं—दान, भोग और नाश। सेठ साहिब ने अपने सौभाग्य से लक्ष्मी का उपभोग लिया और दान से अनेक पारमार्थिक संस्थाएं जनहित के हेतु स्थापित करके उसका सदुपयोग किया।

आपके स्वभाव में एक और विशेषता है। वह है आपकी सरलता। आपको अपनी आवश्यकता से एवं काम के समय छोटे से छोटे व्यक्ति से भी कभी मिलने में संकोच नहीं होता। मनुष्य जीवन के भयंकर शत्रु क्रोध जैसे मनोविकार को मैंने आपमें कभी भी नहीं देखा। आपकी धार्मिक एवं पारमार्थिक भावनाएं इतनी उच्च हैं कि सर्वसाधारण व्यावहारिक प्राणी में प्राप्त होना कठिन है।

अपने से बड़ों का आदर कैसे करना इसके मूर्तिमान उदाहरण श्री सेठ साहब हैं। मुझे याद है कि जब आपकी बिरादरी में तड़ें (मतभेद) पड़ीं थी और वे कई वर्ष तक कायम रहीं, उन्हें मिटाने के कई असफल प्रयत्न भी हुए। परन्तु जब मेरे पिता श्री ने अवसर पाकर आपसे कहा कि बहुत अवधि होगई है। बिरादरी के आपसी सम्बन्ध बहुत ही तन गये हैं। मनोमालिन्य व रंजिश बढ़ती जाती है। यह अनुचित है। अतः आज ही तड़ें मिटाना चाहिये। आपने मेरे पिता श्री का कहना आदर पूर्वक माना और उसी क्षण तड़ों का मनोमालिन्य मिटा डाला। बिरादरी को इस प्रकार एक प्रेम-सूत्र में बांध देने के ऐसे उदाहरण क्वचिद् ही देखने में आवेंगे। यह सेठ साहब की विचारशीलता एवं अपने किसी भी हितैषी की सदिच्छा को मानकर हृदय में स्थान देने का ही परिणाम था।

कुछ अवधि पूर्व सेठ साहब का स्वास्थ खराब था और वे बम्बई इलाज के लिये गये थे। वहां उन्हें कदाचित ऐसा अनुभव हुआ हो कि वे इस कठिन बीमारी से मुक्त होंगे या नहीं, तो उन्होंने इन्दौर वापिस आने के लिए अपने कुटुम्बियों से आग्रह किया उन्हें कहा गया कि आपके दूर और निकट के सभी कुटुम्बीजन धर्मपत्नी, पुत्र, पौत्र, पौत्रियां आदि समस्त आत्मीक जब यहां ही हैं और बंबई जैसा इलाज इन्दौर में नहीं हो सकता। उत्तर में सेठ साहब ने कहा कि मेरा इतना छोटा कुटुम्ब नहीं है। सारे इन्दौर की जनता मेरे कुटुम्बी हैं। किसी की बात न मानते हुए आप इन्दौर ही लौट आये। श्री सेठ साहब के लिए हजारों व्यक्तियों की सद्भावनाएं और शुभाशीष थे ही। यहां आने पर प्रभु कृपा से आपका स्वास्थ्य सुधरने लगा। यह अनुभव हुआ कि केवल दवाएं काम नहीं करतीं, दुआएं भी चाहिए, जो लोकप्रिय व्यक्ति के लिए सुलभ है। लोकप्रिय होने के लिये मान अभिमान जो महान शत्रु हैं, उन पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। मान कैसा शत्रु है उसके लिए संत महात्मा

कह गये हैं कि:—

"माया तजी तो क्या भया, मानहिं तजा न जाय ।
मान बड़ी मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥"

आपका समयोचित व प्रिय भाषण नैसर्गिक स्वभाव है साथ ही स्पष्टवादिता आपके भाषण की विशेषता है ।

सृष्टि अपूर्ण है और उसमें उत्पन्न मनुष्य-मात्र अपूर्णता लिये हुए होता है । इस दृष्टि से सेठ साहब में भी कुछ अपूर्णता है और वह है आपके चित्त की चंचलता अथवा अस्थिर-चित्तता । यदि यह मनोभाव आपके स्वभाव में न होता, तो आप संपूर्णता के निकट पाये जाते । सर्वांगीण दृष्टि से संपूर्णता होना तो मनुष्य के लिए सर्वथा असंभव है, क्योंकि आखिर मनुष्य मनोविकारों का ही पुतला है । ज्ञान और बुद्धि द्वारा उन मनोविकारों पर विजय पाकर संपूर्णता के निकटतम लक्ष की ओर अग्रसर हो सकता है, किन्तु स्वयं संपूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकता । विश्वकवि महात्मा टागोर ने तो अपने तत्वज्ञान में यहां तक कह दिया है कि स्वयं ईश्वर भी अपूर्ण है, फिर सांसारिक जीवों का क्या कहना । मनुष्य जीवन में धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों फलों की प्राप्ति की साधना करना यह परम कर्तव्य है, इनमें मोक्ष-साधना सबसे कठिन है, किन्तु सेठ साहब ऐसे भाग्यशाली हैं कि—आप यह साधना कर रहे हैं । जिन्हें सातों सुखों की प्राप्ति हो ऐसे मनुष्य विरले ही मिलते हैं:—

"पहिला सुख निरोगी काया,
दूसरा सुख घर में माया ॥
तृतीय सुख पुत्र हो आज्ञाकारी ।
चौथा सुख पतिव्रता नारी ॥
पांचवां सुख सुस्थान में वासो ।
छठा सुख राज में पासो ॥
सातवां सुख बैकुंठ में वासो ॥"

बड़े सौभाग्य की बात है कि सेठ साहब को आपके पूर्व जन्म के सत्कर्मों के प्रभाव से सभी सुखों की प्राप्ति तथा सातवें सुख पारलौकिक सुधार एवं मोक्ष के लिए आप साधनाशील हैं । आपके जीवन से हम में से प्रत्येक को बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है ।

हम वीर प्रभु से यह प्रार्थना करते हैं कि, सेठ साहब को पूर्ण आरोग्य के साथ शतायुष प्रदान करें ।

—नांदगांव से बाबू तेजपालजी काला लिखते हैं कि सेठ साहब का जीवन चारों पुरुषार्थों का सुन्दर समन्वय है । आपने धर्म को ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य बना रखा है और उसको अपनी आत्मा का अंग बना लिया है । जैनाचार्यों की अमूल्य कृतियों को केवल प्रकाश में ही नहीं लाये, किन्तु स्वयं भी घन्टों उनका स्वाध्याय, अनुशीलन और मनन भी करते हैं । विविध प्रवृत्तियों से भरा हुआ आपका अलौकिक जीवन "सत्यं शिवं सुंदरम्" का एक आदर्श नमूना है ।

—कलकत्ता से बंगाल बिहार उड़ीसा दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के मन्त्री श्री जयचन्दलालजी बगड़ा लिखते हैं कि आपकी दानशीलता, कर्मण्यता, धर्मवीरता, परोपकारिता एवं व्यापार कुशलता जगत् प्रसिद्ध है । आप जैन धर्म की प्रभावना और समाज सेवा के लिये सदैव अग्रसर रहते हैं ।

मालवा का सौभाग्य

श्री हुकुमचन्दजी पाटनी, बी० ए० एल० एल० बी०, इंदौर

उन्नत शरीर पर विशाल भाल, आजानु बाहु, गति में मयन्द की मस्ती लेकर चलने वाले सर सेठ हुकमचन्दजी को जिसने भी एक बार देखा होगा, मुग्ध हो गया होगा। आजके इस जर्जर युग में जब मानव सभी दृष्टि से पतन की ओर अग्रसर हो रहा है, सर सेठ साहब का व्यक्तित्व आगामी पीढ़ी के लिए आश्चर्य एवं आदर्श की वस्तु सिद्ध होगा।

बहिरंग के पूर्णतः आकर्षक होने के बाद भी एक साधारण व्यक्ति में उस महत्ता के दर्शन नहीं हो सकते, जिसका प्रभाव जातीय जीवन के इतिहास में स्थायी और अमिट होता है। उसके लिए तो व्यक्तिविशेष की अन्तःप्रवृत्तियों का पूर्णतः विकसित होना अनिवार्य है। यही नहीं इस विकास की गति का लोकहित की सीमाओं से परावृत्त होना भी उतना ही आवश्यक है। तनिकसा भी व्यतिक्रम होने पर विकास का विगति अथवा विकृति की ओर उन्मुख हो जाना स्वाभाविक है। जिस जीवन में उक्त क्रम अपने सन्तुलित रूप में दिखाई देता है, वह जीवन यथार्थ में आदर्श है, सम्माननीय है एवं अनुकरणीय भी है। सर सेठ साहब का व्यक्तित्व इसी प्रकार का आदर्श है और यही कारण है कि उनके लिए देश-विदेश में कीर्ति का एक विचित्र विश्व निर्माण हो सका है। बाह्य व्यक्तित्व को भव्यता जीवन-क्षेत्र में कितनी ही सफलताओं का पथ प्रशस्त करती है। सुगठित व्यक्तित्व का निर्माण सुदृढ़ चरित्र की अपेक्षा करता है। सर सेठ साहब के व्यक्तित्व में यही सब मूर्तिमान हो उठा है।

सेठ साहब स्वभावतः वणिक हैं। वाणिज्य क्षेत्र में समय-समय पर आपने जो प्रतिभा प्रदर्शित की, उसने भारतीय व्यवसाय क्षेत्र को अनेक मौलिक प्रयोग सिखाये। सेठ साहब मालवे के प्रथम व्यापारी हैं,जिन्होंने आधुनिक युग की देन यन्त्र-प्रबलता को पहिचाना और इन्दौर को एक उच्च कारखानों से युक्त नगर बनाने का श्रेय प्राप्त किया। भारत के सुविख्यात देशभक्त वैज्ञानिक पी० सी० राय ने सन् १६३३ में इन्दौर शहर की एक औद्योगिक प्रदर्शनी का उद्घाटन किया था। श्री सेठ साहब उसके स्वागताध्यक्ष थे। आचार्य राय ने अपने भाषण में किस मुक्त कण्ठ से आपकी सराहना की थी।

व्यापारी के नाते आपकी दूसरी विशेषता है—'वस्तु-विशेष का एकत्रीकरण।' यही एकमात्र कारण रहा है कि सर सेठ साहब ने पिछले तीस वर्षों तक सम्पूर्ण भारत के अच्छे-अच्छे अध्यवसायियों के अपने सामने घुटने टिकवा दिये थे। जिन्दगी में उन्होंने कितने ही दाव जीते और हारे। परन्तु प्रसन्नता से खिले हुए उनके मुख पर चिन्ता की छाया कभी भी प्रदर्शित नहीं हुई। व्यवसाय के क्षेत्र में सेठजी की इस सर्वांगीण कुशलता का कारण उनका मंजा हुआ व्यवसायविवेक है। किस वस्तु को कब खरीद कर कब बेचना उन जैसे व्यवसायपुरुष को वणिकपुत्र को भली-भांति ज्ञात रहता आया है और यही कारण हैं कि वे प्रत्येक कार्य में सदा सफल हुये।

जो असाधारण है, वे ही आनन्द के धाम होते हैं। हमने सेठजी को कई बार कई सभा स्थलों पर सभापतित्व करते देखा है। जिन मनोरंजक ढंग से वे अपने दायित्व का निर्वाह करते हैं, सचमुच वह बड़े आनन्द की वस्तु है। इन्दौर में पहली बार जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ था, तब सेठ साहब ने महात्मा गांधी आदि महापुरुषों के सम्मुख कुछ अधिक न बोलते हुए अपने जेब में से एक रुपया निकाला और उपस्थित जन-समुदाय से मार्मिक अपील करते हुए कहा कि इधर देखिये इसमें अंग्रेजी, उर्दू आदि सभी भाषायें तो दिखाई देती हैं, किन्तु हिन्दी का कहीं पता नहीं। तब आपने भविष्य की ओर संकेत करते हुए कहा था कि जब तक इस अंग्रेजी

का स्थान हिन्दी नहीं ले लेती, तब तक हम सब हिन्दी के कार्यकर्ताओं को अपना-अपना कार्य करते रहना है। आज सेठजी की भविष्यवाणी सफल हुई। हिन्दी ने राष्ट्रभाषा के साथ ही साथ भारतीय गणराज्य की राज्यभाषा का भी गौरवमय स्थान सम्पादित कर लिया।

इसी प्रकार उनके रंजन को एक और घटना याद आती है। मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति में भारतीय प्रथम गवर्नर जनरल माननीय राजाजी के स्वागत का आयोजन किया गया था। राजाजी ने अपने भाषण में हिन्दी न जानने पर खेद प्रगट किया था। सर सेठ साहब ने अपनी मनोरंजक शैली में कहा कि राजाजी तो बड़े विद्वान् हैं। उन्हें कई भाषायें याद हैं, तो फिर हिन्दी जैसी सरल भाषा उनके लिए सीखना कोई बड़ी बात नहीं है।

नगर में विभिन्न उत्सवों के अवसर पर सेठ साहब को हमने हर्ष से समाज के साथ प्रसन्नता बटोरते देखा है। उन्हें अपनी आर्थिक विशेषता पर कोई गर्व नहीं है। वे जाति के साधारण से साधारण व्यक्ति के सुख-दुःख में भाग लेते हैं।

सेठ साहब बड़े उत्सवप्रिय हैं। जिनमें जीने का चाव होता है, इस काल-क्षेत्र विश्व में वे ही शतायु हो पाते हैं। सेठजी ने अपने जीवन काल में लाखों रुपयों का व्यय विवाह, धार्मिक समारम्भ, जातीय सम्मेलन आदि शुभ कार्यों में केवल अपनी उत्सव-प्रियता की भावना के सन्तोषके लिए किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सेठ साहब ने अपने धन का दान भी खूब किया और उपभोग भी खूब किया।

सेठजी हृदय से कला-प्रेमी हैं। उन्हें वास्तु कला के प्रति विशेष अभिरुचि है। उन्होंने स्वयं की देख-रेख में तथा अन्य कई स्थलों पर भव्य इमारतें बनवाई हैं, जिनकी बनावट अपना सानी नहीं रखती। आज भी 'हावल्या कावल्या' (राजस्थानी जनता इस पीढ़ी को इसी सम्बोधन से समझती है) के इन्द्र भवन, रंग-महल, भगवान का स्वर्ण-मन्दिर एवं शीश-महल देखने प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में यात्रियों का समूह उमड़ा करता है। इन इमारतों का निर्माण सेठजी ने विभिन्न प्रान्तों के कारीगरों को बुलवा कर करवाया था।

इस प्रकार अपने राजसी वैभव के मध्य हृदय की उदारता के कारण वे इतने लोक-प्रिय हो चुके हैं कि मालवे का प्रत्येक समाज इनके सम्मुख पलकें झुकाने में एक मधुर गौरव का अनुभव करता है। राज्यमान्य सर सेठ जनमान्य भी हैं। बीच में जब वे बीमार हुये थे तब भारतवर्ष के सम्पूर्ण जैन समाज व सारा मध्य-भारत उनकी हृदय से आरोग्य कामना करता था। ऐसे श्रेष्ठ पराक्रमी उदार व्यक्तित्व को पाकर मालव-भूमि स्वयं को सौभाग्यशाली अनुभूत करती है।

—अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् के प्रधान साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन बम्बई से लिखते हैं कि सेठ साहब ने जैनधर्म, जैन जाति और जैन तीर्थस्थानों की अद्वितीय सेवा की है। वह जैन इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। वे बिना संदेह जैन जाति के माने हुये 'अहमिंद्र' हैं। उनकी सेवा और कार्यप्रणाली समाज-सेवकों के लिये हमेशा आदर्श व प्रेरक रहेगी। उनका मृदुल, मधुर स्वभाव, अकृत्रिम वात्सल्यता और अकृत्रिम सेवा भावना उनके सम्पर्क में आने वालों पर एक सरल मोहनी डाल देती है।

—पं० हरिप्रसादजी जैन शास्त्री उदासीन श्राविकाश्रम इन्दौर लिखते हैं कि सेठ साहब के महान गुणों का दिखाना सूर्य को दीपक से दिखाने के समान है। ये गुण ही पारलौकिक सुख के कारण माने गये हैं। सर सेठ साहब धर्म अर्थ काम मोक्ष का सेवन करते हुये चिरायु हों।

प्रथमानुयोग का प्रत्यक्ष

श्री पं० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ, सम्पादक-वीर

प्रथमानुयोग-कथा ग्रंथों में कई कथायें पढ़ीं थो कि अमुक सेठ था, उसका महान् वैभव था, उसका बहुत बड़ा व्यवसाय था, उसने दुनिया भर के दंदफंद में भाग लिया, लाखों-करोड़ों दीनार कमाये, मन्दिर बनवाये, बड़े-बड़े धार्मिक कार्य किये, सांसारिक माया में भी बाजी ले गया; किन्तु अन्त में सांसारिकता के मोह का त्याग करके विरक्त हो गया और अपना जीवन त्याग-तप में व्यतीत करके संसार के समक्ष एक आदर्श उपस्थित कर गया।

इन कथाओं को पढ़कर ऐसा लगता था कि दुनियादारी दंदफंद में फंसा हुआ व्यक्ति अपना करोड़ों का वैभव छोड़कर कैसे विरक्त हो जाता होगा? श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्दजी का जीवन देखकर प्रथमानुयोग की कथा प्रत्यक्षवत् होगई।

लोगों ने यह भी देखा कि सर सेठजी सांसारिक माया में एकदम लवलीन हैं। अर्थोपार्जन में लगे हुये हैं। उनकी सट्टेबाजी के कारण बाजार मे तहलका मचा हुआ है। चाँदी-सोने का बाजार उनकी मुट्ठी में है। फिर यह भी देखा कि वे इन तमाम झंझटों से एकदम विरक्त होकर बैठ गये हैं। सहसा विश्वास नहीं होता था कि करोड़ों की उथल-पुथल करने वाला व्यक्ति उस मोह माया को इस प्रकार कैसे छोड़ सकता है, किन्तु जब यह प्रत्यक्ष देखा कि सेठजी एक दिव्रती या देशव्रती की भांति अपने भवन में ही निवास करते हुये अपना सारा समय केवल धार्मिकता में ही व्यतीत करने लगे हैं और इन्द्रभवन का टेलीफोन भी दुनियादारी के लिये नहीं किन्तु धार्मिक कार्यों के ही उपयोग में आने लगा है; तब विश्वास हुआ कि सचमुच ही सर सेठ साहब के मन और क्रिया दोनों में ही सांसारिकता के प्रति विरक्ति आगई है।

कई सामाजिक-धार्मिक मामलों में सर सेठजी के साथ मेरा निकटतम सम्पर्क स्थापित हुआ है। उनके साथ लम्बा-चौड़ा पत्रव्यवहार हुआ है। आधे आधे घन्टे टेलीफोन पर सूरत-इन्दौर से बातचीत हुई है। २००-२०० शब्दों तक के कई तार सेठजी ने भेजे हैं। इनसे मैं इस निश्चय पर पहुंचा कि सचमुच ही सेठ साहब धार्मिक मामलों में भी परीक्षाप्रधानी हैं। साथ ही उनकी कोमल भावुकता भी देखी, जो उनके निश्चयों को बदल देने में कभी बाधक नहीं हुई। इस प्रकार सर सेठजी के विविध रूप देखने में आते हैं; किन्तु अब उनका यह अन्तिम रूप, है जो किसी भी श्रीमान् के लिये आदर्श बनकर रह जायगा और जो उनके अभी तक के तमाम रूपों से लाख गुना बढ़कर कल्याणकर सिद्ध होगा।

सर सेठजी अपने इस अन्तिम रूप में अब सुदृढ़ प्रतीत होते हैं। अभी कुछ समय पूर्व मैंने उन्हें एक पत्र लिखकर एक धर्ममिश्रित सामाजिक मामले में उनकी सम्मति मांगी। उन्होंने उत्तर में स्पष्ट लिख भेजा कि आपकी बात न केवल सामाजिक है, किन्तु धार्मिक भी है। लेकिन, मैंने सामाजिकता से अपने को कतई दूर कर लिया है और इधर मेरी कोई रुचि नहीं रही है। इसलिये मैं अपनी कोई सम्मति नहीं दे सकता।

उनके इस पत्र ने मेरे मन पर अच्छा प्रभाव डाला और साश्चर्य विचार किया कि जो व्यक्ति कुछ ही वर्ष पूर्व एक विषय को लेकर कई सौ शब्द के तार देता था और आध-आध घण्टे तक टेलीफोन का रिसीवर हाथ से नहीं छोड़ता था, वही आज एक पत्र के उत्तर में कुछ ही पंक्तियां लिखकर अपने को एक दम विरक्त बतला रहा है। बतला ही नहीं रहा है, सचमुच विरक्त होगया है। यह कैसे?

मैं समझता हूं, यह उनकी सतत स्वाध्याय-प्रवृत्ति का परिणाम है। उन्होंने वर्षों अपने निकट अच्छे

से अच्छे विद्वानों को रखा है, और उनके निकट बैठकर केवल जिज्ञासुभाव से स्वाध्याय किया है। इसीका यह शुभ परिणाम है कि आज वह महान् वैभवशाली श्रीमान् उदासीन भाव से अपना धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहा है। भोग और योग के इस तारतम्यमय जीवन को देखकर बहुतों को आश्चर्य हो सकता है, किन्तु जब हम अपने प्रथमानुयोग के किसी आदर्श सेठ की कथा को देखते हैं, तो सर सेठजी के जीवन का यह परिवर्तन भी कोई आश्चर्य का विषय नहीं रह जाता। अब, आज हम कह सकते हैं कि सचमुच ही सर सेठ साहब का जीवन धन्य है।

सेठ साहब की साफ़दिली

महात्मा भगवानदीनजी

सेठ हुकमचंदजी से हमारी सबसे पहली पहचान दिल्ली में हुई। जब वो किसी सभा में शामिल थे जिसके सभापति डिप्टीचम्पतराय थे उस सभा में उन्होंने कुछ ऐसी बात कह दी थी जिसपर डिप्टी साहब बिगड़ उठे पर सेठजी जवाब में बिगड़ने की जगह मुस्करा दिये और झट माफी मांग ली इस माफी मांगने का असर औरों पर क्या पड़ा इससे हमें सरोकार नहीं। हमारे दिल पर यह असर पड़ा कि सेठ साहब दिल के बहुत साफ हैं और इस दिलकी सफाई के लिये तो बड़े बड़े साधु तरसते हैं। सचमुच दिल की सफाई साधुता है। इसी को कुछ ऋषियों ने मन्दकषाय नाम से पुकारा है। इस लिहाज़ से सेठ साहब को अगर मंदकषायी कहा जाय, तो यह कुछ बढ़ कर कहना नहीं होगा। मंदकषाय कुछ ऐसा गुण है जो हमारे ख्याल से हर बच्चा मां के पेट से लेकर आता है पर माता-पिता, रिश्तेदार और दुनिया के दूसरे आदमी अपने फायदे के लिये बच्चे की इस मंदकषाय को तीव्रकषाय में बदल देते हैं और सेठ साहब के साथ भी बचपन में इस तरह का व्यवहार जरूर हुआ होगा और इसी वास्ते तो यह सेठजी के लिये तारीफ की बात है कि वो अपने इस गुण को इस वक्त ज्यों का त्यों बनाये रख सके जब कि इसको बिगाड़ने की हर तरह कोशिश हो रही थी।

बस दिल्ली के सेठ साहब के उस परिचय पर हम अपने मन में यह कहने लगे थे कि काश हम भी सेठ साहब जैसे दिल के साफ होते। इस बात का हमारे मन पर गहरा असर पड़ा था, तभी हमको यह बात याद है। मामूली बातें याद नहीं रहा करतीं। हो सकता है सेठ साहब को भी यह बात याद न हो। उनके लिये साफदिली स्वभाव बन जाने की वजह से याद रखने की चीज़ नहीं।

ऋषभ ब्रह्मचर्य आश्रम यानि गुरुकुल हस्तिनापुर को खुले अभी कुछ महीने ही हुये थे कि सेठ पंडित दरियावसिंह को साथ लिये हस्तिनापुर आ धमके। वहां भी दो बड़ी मार्के की बातें हुईं।

एक यह कि जिस वक्त आश्रम के ब्रह्मचारी खाना खा रहे थे, उस वक्त सेठ साहब रसोईघर के पास खुद आ खड़े हुये और यह देखकर कि ब्रह्मचारियों को न दाल में घी दिया गया और न रोटियां हीं घी–चुपड़ी दी गईं, बिगड़ खड़े हुये और हमसे बोले कि हम लोग आश्रम को इतना रुपया देते हैं, फिर क्या वजह कि इनको रूखा खाना खिलाया जा रहा है। हमने शब्दों में जवाब न देकर एक कटोरी में रसोइये से थोड़ी सी दाल ली और सेठ साहब को दिखाई। उसका एक एक दाना घी से भरा हुआ था। उस दिन, सेठजी के दिखाने के लिये, यूं ही तीन सेर दाल तीन सेर घी में बनाई गई थी और यह रसोइये की कारीगरी ही थी कि उसने यह सब घी दाल को पिला दिया था। सेठ साहब यह देखकर बड़े खुश हुये और अपने बिगड़ने को ऐसा भूल गये, मानों कभी बिगड़े ही न थे और यह साफदिली का दूसरा सबूत मिला।

हम इस साफदिली पर यूं ही लट्टू नहीं हैं। ज़रा हमारे पढ़ने वाले सोचें कि आज कोई सेठ यानि

भैयासाहब राजकुमारसिंहजी एम.ए.एल.एल.बी

समाज का बड़ा आदमी इस तरह की बात देखकर बिना कुछ कहे चुपचाप चला जाता और फिर समाज के लोगों के सामने इसी बात को थोड़ा नमक मिर्च लगाकर रखता, तो उसने समाज को कितना नुकसान पहुँचाया होता और कितना धक्का नई उठती हुई संस्था को दिया होता और कितना बदनाम हमें किया होता और इससे भी ज्यादा सोचने की बात यह है कि उसने जो कुछ किया होता या जो कह दिया होता वो न बुरी नियत से किया होता और न झूट बोला होता। यह सेठ साहब की साफदिली ही थी, जिसने सेठ साहब को मजबूर किया कि वो अपनी आँखों पर ही भरोसा करके न रह जायें। भीतर बैठी हुई बुद्धि को भी सलाह लें और आत्मा तक भी पहुँचे मंदकषाय वाले ही अपने आप को इन्द्रियों पर नहीं छोड़ा करते। समझदारी से काम लिया करते हैं और फिर उनका आत्मा उनकी ठीक ठीक मदद किया ही करता है।

इस दाल वाली घटना के दिन ही एक और मार्के की बात हो गई और वह इस तरह है:—

उन दिनों हस्तिनापुर गुरुकुल इतना छोटा था कि उसके सब ब्रह्मचारी अध्यापक, लाला गेन्दनलालजी और हम, सेठ साहब और उनके साथी पंडित दरियावसिंह सब एक कोठरी में आसानी से आ जमे। वो कोठरी बारह फुट गुणित बारह फुट के करीब रही होगी। बस अब पंडित दरियावसिंहजी की तरफ से ब्रह्मचारियों पर तरह तरह के सवालों की बौछार होने लगी और ब्रह्मचारी भी फटाफट उन सवालों के जवाब देने लगे। वो सबके सब सवाल और जवाब कहीं लिखे होते तो आज हम उनको प्रश्नोत्तरी के नाम से जरूर छपवा देते और वो सचमुच समाज के लिये बड़े काम के होते। हां, तो इन सवालों में से एक सवाल यह था कि एक इन्द्रीजीव के कौन सी इन्द्रिय होती है। ब्रह्मचारियों ने जवाब दिया स्पर्शन इन्द्रिय फौरन ही पंडितजी की तरफ से दूसरा प्रश्न उठा 'क्यों?'। ब्रह्मचारियों में से एक ब्रह्मचारी ने इस तरह उत्तर देना शुरू किया :—

(१) इन्द्रियां पांच हैं—सुनने की, देखने की, सूंघने की, चाखने की और छूने की।

(२) सुनने की इन्द्रिय बहुत जबरदस्त है। उस पर काबू करना बहुत मुश्किल है। अगर हम किसी बात को न सुनना चाहें तो दोनों कानों में दो उंगली ठूंस कर भी सुनने से मुश्किल से ही बच सकते हैं।

(३) आंख कान से जल्दी काबू में आती हैं। फिर भी उसको काबू में करने के लिये पपोटे और पलक-नाम के दो अलग अंगों की मदद लेनी पड़ती है। तब आंख को देखने से रोका जाता है और पूरी सफलता मिल जाती है।

(४) गन्ध से बचने के लिये सांस रोकने से ही काम चल जाता है। किसी और अंग की मदद की जरूरत नहीं होती।

(५) चाखने की इन्द्रिय जीभ तो इतनी कमजोर हैं कि जब कोई चीज उस पर रख दी जाय, तब भी वह उसका स्वाद नहीं जान सकती। जीभ के किसी खास हिस्से पर रखने और घुलने पर ही जीभ उसका स्वाद बता सकती है।

(६) स्पर्श का तो यह हाल है कि पीठ के किसी हिस्से पर अगर सुई चुभा दी जाय, तो जिसके चुभाई गई है, वह उसकी ठीक जगह भी नहीं बता सकता।

बस, इसी वजह से कमजोर इन्द्रियां कमजोर आत्माओं को मिलती हैं और जोरदार जोरदारों को।

यह जवाब सुनकर पंडित दरियावसिंह बोल उठे कि यह सब तुमने किस ग्रन्थ में पढ़ा। ब्रह्मचारी इस सवाल का जवाब कुछ दें कि मैं बोल उठा कि यह सवाल ब्रह्मचारियों से पूछने का नहीं। यह मुझसे पूछिये और अगर आप मुझसे पूछते हैं, तो मेरा जवाब है कि यह सब आदमी की अक्ल के ग्रन्थ में लिखा है। यह जवाब सुनकर पंडित दरियावसिंह बिगड़ खड़े हुये और कह बैठे कि क्या आप ब्रह्मचारियों को धर्म विरुद्ध बातें सिखाते

हैं। मैं कुछ जवाब दूं कि सेठ साहब बोल उठे कि इसमें धर्म विरुद्ध सिखाने की क्या बात है? यह तो उसी बात को सिद्ध किया जाता है, जो आर्ष ग्रन्थ में लिखा हुआ है। सेठ साहब के इस समझदारी से भरे जवाब का हमारे ऊपर बहुत गहरा असर पड़ा। पर, उसी दिन से पण्डितों की तरफ से और समाज की तरफ से हमारे मन में खटक पैदा हो गई। हम सोचने लगे कि हमें इस तरह के पंडितों और इस तरह के समाज से काम पड़ेगा। देखें, समाज की गाड़ी अब किस तरह आगे चलती है?

साफदिली आत्मा की सफाई में मदद देती है और आत्मा की सफाई समझदारी के रूप में बाहर आती है। साफदिली का सचाई से भी बहुत पास का नाता है। इसीलिये तो हम सेठ साहब की साफदिली को शब्दों में रख रहे हैं।

ऊपर की घटना के बाद सेठ साहब से फिर हमारा मिलना उन्हीं के शहर इंदौर में हुआ। उन दिनों हम अपने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के साथ मध्य हिंदुस्तान के दौरे के लिये निकले थे और शायद नीमच छावनी से सीधे इंदौर पहुँचे थे। यह सन् १९१४ की बात है। पहली बड़ी लड़ाई शुरू हो चुकी थी। हम ब्रह्मचारियों समेत सेठजी की नशियां की धर्मशाला में ठहरे थे। रास्ते भर पंडित गोपालदासजी को छोड़कर हमने न खुद किसी के घर जाकर खाया था और न किसी ब्रह्मचारी को खाने के लिये भेजा था। लोग हमारी जगह पर ही सामान भेज देते थे और हमारे रसोइये वहीं खाना तैयार कर लेते थे जहां हम ठहरे हुये होते थे। किसी के घर जाकर न खाने का हमने नियम बना लिया था। इस नियम की जड़ में कोई दिखावा या शान नहीं थी। न कोई मान-अभिमान की बात थी। यह सब ब्रह्मचारियों को ऐसी चीजों के खाने से बचाने के लिये किया जाता था, जिससे उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ जाने का डर था। हां, इस काम में इतनी दूरन्देशी भी थी कि न हर मामूली आदमी को घर पर खिलाने के लिये बुलाने की सूझेगी और न वह अपनी शान दिखाने की खातिर बेमतलब दिक्कत में पड़ने की सोचेगा। सेठ हुकमचंद उन दिनों भी काफी बड़े सेठ थे और उनके दिल में यह बात उठी कि वो हम सबको अपने घर पर खाने के लिये बुलायें और उन्होंने न्यौता देने का काम अपने पंडित दरियावसिंह सोधिया के सुपुर्द किया। इन्होंने तरह तरह की दलीलें देकर हमें न्यौता स्वीकार करने के लिये राजी करना चाहा। हम किसी तरह राजी न हुये। उनके फेल हो जाने पर सेठजी खुद आये। उन्होंने हमारे सामने दलीलें नहीं रक्खीं। सीधा खरा सवाल पूछा कि आप किस वजह से दूसरे के यहां जाकर खाना पसंद नहीं करते। हमने सीधी बात का साफदिली से जवाब दिया। जिसके जवाब में वे बोले कि आप जो हिदायत कर देंगे, वही खाना बनेगा और जैसा आप चाहेंगे वैसा ही इन्तज़ाम कर दिया जायेगा। हमारे पास इन्कार करने के लिये अब कोई वजह न थी। इसलिये हमने यह कहकर न्यौता मंजूर करने से कुछ इस तरह इंकार किया, जिसमें पूरी इन्कारी नहीं कहा जा सकता था। कहा ये कि अगर हम आपकी खातिर ये नियम तोड़ते हैं, तो हम दूसरों को किस मुंह से इन्कार कर सकेंगे? जिसके जवाब में सेठजी ने यह कहा कि हां, अगर दूसरे भी मेरी तरह से इंतजाम कर सकें, तो हमें उनको भी इंकार नहीं करना चाहिये। अंत में हमारे यह कहने पर कि हमें सोचने के लिये थोड़ा मौका दीजिये, सेठ साहब चले गये। एक तरह से उनको हमारी आधी रजामंदी मिल ही गई। अभी कुछ मिनट भी न बीते होंगे कि पण्डित दरयावसिंह आ धमके और लगे हमें समझाने कि सेठ आपको दस हजार रुपये की रकम देने की बात सोच रहा है। अगर आपने उसके यहां खाना खाने से इन्कार कर दिया, तो वह आपको एक पैसा भी न देगा। हम उन दिनों जवान थे और त्यागी तो थे ही। जवानी के जोश और त्याग के घमण्ड में हम आगबबूला बन गये और हम पूरी जानकारी हासिल किये बिना कि ये शब्द सेठजी के भेजे हुये हैं या पण्डितजी की अपनी सूझ है, हम उबल पड़े कि क्या सेठ दस हजार में हमारे नियम मोल लेना

चाहता है। रखे अपने दस हजार। हम तो उसके यहां जाकर खाने की सोच रहे थे। पर, अब वैसा न होगा। हमारे ये शब्द सेठ साहब के कानों तक पहुँचने ही थे और पहुँच गये। रात को सेठजी के मकान के सामने ही हमारी सभा का इन्तजाम किया गया था। हम तो चुटीले शेर थे ही। जैसे ही बोलने को खड़े हुये, नालीधे ढंग से उसी बात पर सारा व्याख्यान दे गये। पर, हम यह दावे के साथ कहते हैं कि हमारे इस व्यंग को सिवाय सेठ साहब के कोई और समझ नहीं पाया। सबसे पीछे सेठ साहब भी बोले और उन्होंने भी हमारी सारी बातों का जवाब इस ढंग से दिया कि हमारे सिवाय उसका ठीक ठीक मतलब कोई और समझ न पाया। हमारी तसल्ली हो गई और हमने उसी समय सबके सामने सेठजी का न्यौता स्वीकार कर लिया। पर उस दिन के बाद से हमने दूसरों के यहां जाकर न खाने का नियम काफी ढीला कर दिया। इसका असर सेठ साहब की खातिरदारी पर क्या पड़ा होगा, यह पढ़ने वालों का काम है, वे खुद समझ लें।

यह घटना भी दिल की सफाई के बगैर अगर घटती, तो न जाने कितना बुरा रूप ले लेती।

औद्योगिक जगत में उनका महत्व

श्री युधिष्ठिरजी भार्गव, एम. एस. सी.

(उद्योग-व्यापार-रसद सचिव-मध्यभारत)

इन्दौर के प्रसिद्ध व्यवसायी तथा उद्योगपति सेठ हुकमचंद का नाम वर्तमान भारत विशेषतः मध्य-भारत की व्यापारिक तथा औद्योगिक प्रगति के साथ सम्बद्ध है। जनसाधारण सेठ साहब को धन कुबेर के रूप में जानते हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि लक्ष्मी का उन पर वरद हस्त रहा है और उन्होंने यदि अपने जीवन में मिट्टी को भी हाथ लगाया है, तो वह सोना होगया। उन्होंने करोड़ों रुपया कमाया, खुले हाथों करोड़ों का खर्च किया। अपने समाज, अपने प्रदेश और जन साधारण की उन्होंने सेवा की।

सेठ साहब ने जाति और वंश की पर्याप्त सेवा की और इस अर्थ में अपना जीवन सार्थक किया। परन्तु उनके जीवन पर दृष्टिपात करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि उन्हें केवल एक धनकुबेर कहना अथवा जैन जाति का उज्ज्वल रत्न मानकर चलना अथवा इन्दौर नगर का केवल एक प्रमुख व्यवसायी मानना उनके प्रति एक अन्याय होगा। सेठ हुकमचंद का पूर्ण महत्व समझने के लिये हमें अपने आप को उस काल और उस परिस्थिति में ले चलना होगा, जब कि भारतवर्ष में औद्योगीकरण का सूत्रपात हो रहा था और जब कि पूंजीपति इस क्षेत्र में पदार्पण करने में काफी हिचकिचाते थे। उस समय देश में विदेशी सत्ता राज्य कर रही थी, जिसका काम यह था कि भारत के उद्योगधन्धे पनप न पावें, जिससे विदेश के कार-खानों को भारत में खुला बाजार मिलता रहे।

सेठ हुकमचंद ने भाग्यलक्ष्मी की अनुकम्पा से और अपनी तीखी बुद्धि के सफल प्रयोग से एक विशाल धनराशि एकत्रित की। प्रारम्भ में चाहे वह राशि अफीम के बाजार को सफलतापूर्वक समझने अथवा सट्टों के सौदे से एकत्रित हुई हो; परन्तु बाद में उसका उपयोग देश की प्रगति के लिये हुआ। सन १६०६ में सेठ साहब के प्रयत्न से मालवा मिल की स्थपना हुई और उसमें १५ लाख पूंजी लगाई गई। इस प्रयत्न ने सेठ साहब को धन भी दिया और अनुभव भी। इस कारखाने के स्थाई डायरेक्टर के रूप में रहकर आपने जो अनुभव प्राप्त किया था, उसका यह फल था कि सन १६१३ में सेठ साहब स्वयं मैनेजिंग एजेंट बन सके, और हुमकचंद मिल्स की स्थापना १५ लाख की पूंजी लगाकर कर सके। यह दो कारखाने जल्दी ही अपने

साथी भी ले आये। सन १९१९ में हुकमचंद मिल्स के मुनाफे से एक और मिल खोली गई और १९२२ में २० लाख की पूंजी लगाकर राजकुमार मिल्स का प्रारम्भ हुआ। अब तक सेठ साहब का कार्यक्षेत्र अधिकतर इंदौर तक ही सीमित था। परन्तु १९२८ में तत्कालीन ग्वालियर राज्य के प्रोत्साहन के कारण उज्जैन में हीरा मिल्स की स्थापना हुई। इसी बीच कलकत्ते में जूट व्यवसायमें पर्याप्त प्रगति का क्षेत्र देखकर सेठ हुकमचंद की तीक्ष्ण व्यवसाई बुद्धि ने यह निश्चय किया कि एक जूट मिल्स में बहुत बड़ी पूंजी लगाना लाभदायक होगा। १९१९ में ८० लाख रुपये की पूंजी से कलकत्ता में एक जूट मिल तथा अगले दो साल कलकत्ते में एक स्टील के कारखाने का भी कार्य प्रारम्भ कर दिया गया।

इस सिंहावलोकन का तात्पर्य यह नहीं है कि सेठजी द्वारा स्थापित औद्योगिक कारखानों की अच्छी सूची बना दी जाय। निष्कर्ष यह निकलता है कि सेठ हुकमचन्दजी चाहते, तो वे रूई के व्यवसाय या सट्टे से उपार्जित रुपया ब्याज-बट्टे में फैला कर तथा साहूकारी के पुरतैनी धन्धे को चला कर अपनी शेष आयु बड़े आराम से बिता सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा न करके उस औद्योगिक क्षेत्र में कदम रखा, जिसमें न तो सफलता ही निश्चित थी और न यह ही इत्मीनान था कि विदेशी प्रतिस्पर्धा में यह व्यवसाय बन्द नहीं करना पड़ जायगा। काम सीखे हुए भारतीयों की कमी थी और यह बिलकुल अनिश्चित था कि जो विदेशी टेकनीशियन रखे जायेंगे, वह किस हद तक ईमानदार और भारतीय व्यवसाय को स्थाई उन्नति पहुँचाने के उद्देश्य से काम करेंगे। ऐसे समय में सेठ हुकमचन्द ने आराम से मिलने वाली आमदनी को छोड़ कर औद्योगिक क्षेत्र में रुपया लगाने का जो साहस किया, वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। उनकी जिस व्यवसायबुद्धि ने व्यापार के क्षेत्र में सफलता प्राप्त की थी, वही औद्योगिक क्षेत्र में भी उतनी ही सफल रही। किसी नये औद्योगिक क्षेत्र में प्रयोग करने में उन्होंने हमेशा एक व्यापारिक दृष्टिकोण को अपनाया। हाल ही में लगभग छः लाख रुपये लगा कर रेजर ब्लेड बनाने की फेक्टरी जो उन्होंने उज्जैन में खोली है, वह औद्योगिक साहस और दूरदर्शिता का नमूना कहा जा सकता है। मालवे की और विशेषतः इन्दौर की जो आर्थिक समृद्धि गत चालीस वर्ष में हुई, उसका अधिकांश श्रेय सेठ साहब द्वारा स्थापित उद्योगों को देना चाहिये, क्योंकि न केवल उन उद्योगों ने कई हजार व्यक्तियों को रोजी दी, परन्तु अनेक छोटे-बड़े पूंजीपतियों को उद्योगधन्धों की ओर आकर्षित किया और यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय प्रयत्न और संचालन में बड़े-बड़े कारखाने सफलतापूर्वक चल सकते हैं।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह सेठ हुकमचन्द के वंशजों और सम्बन्धियों को शक्ति दे कि वे उन औद्योगिक कारखानों को जनहित के लिये चलाने में समर्थ हों, जो कि यशस्वी सेठ साहब ने स्थापित किये हैं और उनकी धन और जनशक्ति का उपयोग देश की समृद्धि बढ़ाने वाले रचनात्मक कार्यों में हो।

—श्रवणबेलगोला (मैसोर) के जैनमठ के भट्टारक श्री चारुकीर्तिजी पण्डिताचार्यवर्य स्वामीजी लिखते हैं कि श्री १००८ भगवान् बाहुबली स्वामी सर सेठ साहब को दीर्घायु, आरोग्य, ऐश्वर्य आदि सकल सन्मंगल परंपरा को प्रदान करें।

—शोलापुर से पं० वंशीधरजी शास्त्री लिखते हैं कि सर सेठ हुकचन्दजी के सत्कृत्यों को जैन और अजैन जनता बड़े आदर के साथ देख व मान रही है। बहुत दिनों से मैं देखता हूं कि सेठ साहिब की अध्यक्षता में शास्त्र चर्चा अखंड चलती रहती है। आपकी धर्मात्माओं में अत्यधिक प्रीत है। आपका लोकचातुर्य और सौजन्य अनुकरणीय हैं। आपने दान और भोगों में अपनी संपत्ति को ठीक विनियुक्त किया है। आज तो आपके सामने एक धर्म ही आराध्य हो रहा है। दुर्लभ नर-रत्नों में से आप हैं। आप समय को ठीक समझते हैं। आपको सदा ही कीर्ति वरमाला पहराती रहती है। आप और भी सौ वर्ष जियें।

—लाला रघुवीरसिंहजी मन्त्री श्री भारतवर्षीय अनाथ जैन रक्षा सोसाइटी दिल्ली लिखते हैं कि ऐसे महान नर-रत्न का जितना भी सम्मान किया जाय, थोड़ा है। सर सेठ साहब चिरजीवी हों।

—श्री जैन बाला विश्राम धर्मकुंज आरा की संचालिका, शिक्षिकायें एवं छात्रायें लिखती हैं कि हम सेठजी की दीर्घायु की कामना करती हुई हार्दिक अभिनन्दन करती है।

—अखिल भारतीय दिगम्बर जैन पद्मावती पुरवार महासभा के रायसाहब नेमीचन्द्र जैन अलेसर-एटा लिखते हैं कि मैं भी अ० भा० दि० जैन पद्मावती पुरवाल महासभा की ओर से श्री सेठ साहब की अपूर्व सेवाओं के लिये सादर श्रद्धांजलियां समर्पित करता हूं और प्रभु से उनके दीर्घजीवन की कामना करता हूँ, ताकि जैन समाज उनसे और भी लाभ उठा सके।

—श्री सिद्धवरकूट प्रबन्ध कमेटी की ओर से उसके पदाधिकारी और सदस्य लिखते हैं कि वि० स० १९३२ में इन्दौर के भट्टारक महेन्द्रकीर्ति को हुए स्वप्न के अनुसार १९४० में बड़े मन्दिरजी के जीर्णोद्धार का कार्य सेठ भूरजी इन्द्रमल मोदी मल्हारगंज इन्दौर की ओर से आरम्भ हुआ और बिम्ब प्रतिष्ठा होकर क्षेत्र ख्याति में आया। सेठ साहब ने भी हजारों रुपयों की लागत से विशाल मन्दिर और धर्मशाला बनवाईं। प्रारम्भ में जितनी भी उलझनें आईं, उन सबको सेठ साहब ने सुलझा दिया। सन् १९३८ में बड़वाहा में क्षेत्र कमेटी का पहला चुनाव हुआ और सेठ साहब ही सभापति चुने गये। तब से आपही सभापति हैं। आपकी ही निगरानी में क्षेत्र की सारी व्यवस्था, क्षेत्र का सारा हिसाब और कमेटी की वार्षिक बैठक आदि होती हैं। गत १३ वर्षों में एक लाख पन्द्रह हजार आय और करीब इतना ही खर्च हुआ। ध्रुव फण्ड में भी बारह हजार रुपया जमा हो चुका है। कमेटी के समस्त सदस्यों और सम्बन्धित व्यक्तियों की यही कामना है कि हमारे तीर्थ-भक्तशिरोमणि दीर्घायु हों।

—दिल्ली के पं० महबूबसिंहजी लिखते हैं कि ऐसा कौन सज्जन होगा, जो सेठ साहब के उपकारों से उपकृत न हो। समाज में आप जैसे प्रमुख पुरुष होने दुर्लभ हैं।

—दिल्ली से लाला सिद्धोमलजी कागजी लिखते हैं कि सेठ साहब जैन समाज के सच्चे हितैषी हैं। आपकी समाज और धर्म की सेवा अनुकरणीय है। जैन समाज आपके नेतृत्व में दिन प्रतिदिन उन्नति करता रहे।

—हाथरस से श्री मिश्रीलालजी सोगानी लिखते हैं कि सेठ साहब समाज के महान प्रभावशाली नेता और अनभिषिक्त राजा हैं। आप द्वारा धर्म की महती प्रभावना और समाज का महान् उपकार हुआ है। वृद्धावस्था में उदासीन वृत्ति धारण करके भी आप धर्म और समाज के संरक्षण के लिये पूरे उत्साह के साथ उद्यत रहते हैं।

—शोलापुर से "जैन बोधक" के संपादक पं० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री विद्यावाचस्पति लिखते हैं कि सर सेठ साहब समाज के अनभिषिक्त सम्राट, धर्म के यथार्थ आधारस्तम्भ, तीर्थों के यथार्थभक्त और समाज के गौरव स्वरूप हैं। उनके द्वारा जैन धर्म की यथार्थ प्रभावना हुई है। समाज में जब कभी धर्म संकट से चिंता उत्पन्न हुई, तो उसी समय सर सेठ साहब के प्रति सबकी दृष्टि जाती। सर सेठ साहब ने हर संभव प्रयत्न एवं अपने प्रभाव से उन धर्मसंकटों को दूर किया है। वे दीर्घजीवी हों। उनकी धवल कीर्ति दिगन्त व्यापी हो।

—गिरिडिह से सेठ रामचंद्र जी सेठी लिखते हैं कि सेठ साहब समाज के दृढ़ स्तम्भ हैं। उनके कार्य और विचार गति शील होने के साथ साथ शास्त्र और आचार से विशुद्ध हैं। उन्होंने मानवता की परिभाषा को ठीक रूप में समझा है। इसीलिये वे जन कल्याण के लिये सदैव तत्पर रहे हैं। तीर्थ, शिक्षा तथा निवृत्तिमार्ग के वे प्रबल प्रेरक रहे हैं। तन, मन, धन से उन्होंने जो समाज को जागृत तथा उन्नतशील बनाने का प्रयत्न किया है, वह अनिर्वचनीय है। जैन समाज आपकी सेवाओं का सदैव ऋणी रहेगा।

—उज्जैन से जैनजातिभूषण सेठ कल्याणमलजी लिखते हैं कि सेठ साहब इस युग में जैन समाज की अद्वितीय विभूति हैं। जैन समाज के लिये जो सेवायें में आपने की हैं, वह अकथनीय एवं अनुकरणीय हैं। मुझे कई बार सामाजिक व तीर्थों के कार्यों में आपके संसर्ग में रहने का सौभाग्य मिला है। समाज व धर्म की सेवा की जो लगन आप में मुझे देखने को मिली, वह कहीं भी नहीं देखी गई।

—अजमेर से श्री सुजानमल सोनी लिखते हैं कि सेठ साहब समाज के अनभिषिक्त हृदय-सम्राट हैं। चिरकाल तक हमारे बीच में रहकर समाज की सेवा करते हुये धार्मिक धर्म में दृढ़ता प्राप्त करते रहें।

—नातेपूते (शोलापुर) से श्री रामचंद्र धनजी लिखते हैं कि यह परम आश्चर्य की बात है कि सेठ साहब में अविरोध रूप में रहने वाली सरस्वती और लक्ष्मी दोनों का वास है। आपने अपनी संपत्ति का सप्तक्षेत्रों में विनियोग करके उसे सफल बनाया है।

—इन्दौर से सेठ गुलाबचंद जी टोंग्या लिखते हैं कि मैं तो श्रीमन्त सेठ हुकमचन्दजी साहब की गोद में खेला हुआ एक बालक हूं। जितने नजदीक से मैंने उन्हें समझा, परखा और निरखा, उससे मेरी अल्प बुद्धि से यही कह सकता हूं कि;—

हर व्यक्ति उनसे खुश रह सकता है।

हर वर्ग के व्यक्ति से वे किसी भी प्रकार समय निकालकर मिल ही लेते हैं।

किसी को कभी भी असमंजस में नहीं डालते हैं।

आज का कार्य कल पर छोड़ना उन्होंने नहीं सीखा है। उन्होंने अपनी कुशल वाणिज्यव्यवसायबुद्धि से करोड़ों रुपये उपार्जित कर सिर्फ धन बटोरकर रखना कभी नहीं सीखा। वे तो:—

"जब जल बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
चारों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।"

की कहावत को चरितार्थ करते रहे हैं। उनकी प्रख्याति में चांद लगाने वाला उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व है।

—बड़नगर से श्री फूलचंदजी अजमेरा लिखते हैं कि श्रीमंत सर सेठ साहब जैन समाज के तो सर्वस्व हैं ही, वे भारत की भी महान विभूति हैं। दिगम्बर जैन मालवा प्रांतिक सभा के महामन्त्री के नाते मुझे उनके संग में रह कर काम करना ही होता है, किन्तु अविकल रूप से भी मुझ पर उनकी अपार कृपा है। मुझ में समाज सेवा की जो भावना जागृत हुई है, वह उनकी ही देन है। मैं उनके सरल स्वभाव, धर्मनिष्ठा, स्पष्टवादिता आदि गुणों पर सदैव नत मस्तक हूं। जैन समाज का यह वयोवृद्ध हृदयसम्राट युग युग चिरजीवी हो।

—जयपुर से सेठ गोपीचन्दजी ठोलिया लिखते हैं कि रावराजा सर हुकमचन्दजी साहब ने दिगम्बर जैन समाज की बहुत बड़ी सेवा की है। दिगम्बर जैन समाज के तीर्थक्षेत्रों की रक्षा में भी बड़ा भारी सहयोग दिया है। इस वृद्धावस्था में भी वे बराबर धर्मकार्यों में सचेष्ट अभिरुचि ले रहे हैं। मैं चाहता हूं कि सेठ साहब दीर्घ काल तक जीवित रह कर इसी प्रकार जैन समाज की सेवा करते रहें।

—सहारनपुर से महासभा के उपसभापति रायबहादुर लाला हुलाशरायजी लिखते हैं कि सर साहिब के समाज पर अनगिनत उपकार हैं। उनके प्रति कृतज्ञ होना समाज का कर्तव्य है। उनकी हंसमुख प्रकृति की मेरे हृदय पर अमिट छाप है। उन्होंने धार्मिक कार्यों में सर्वदा प्रमुख रूप से भाग लिया है। ऐसे धर्मधुरंधर महान व्यक्ति चिरकाल तक जीवित रहकर धर्म की उन्नति करते रहें।

—सहारनपुर से रायसाहब लाला प्रद्युम्नकुमारजी लिखते हैं कि मेरा परिचय सेठ साहब से पूज्य लालाजी के समय से ही चला आ रहा है। दोनों का कितना दृढ़ धार्मिक स्नेह तथा आदर भाव था, वह समाज से छिपा नहीं। मुझे बहुधा सर सेठ के सन्निधान में रहने का सुअवसर मिला है और मैंने उस स्नेह को यथावत रूप से अनुभव किया है। अनेक हर्षविषाद के प्रकरण आते हुए भी कोई कषाय भाव प्रगट नहीं होता। सदैव ही मुखाकृति सौम्य बनी रहती है। अपने निश्चित उद्देश्य पर दृढ़ बने रहते हैं। उनकी प्रकृति अलौकिक है। धार्मिक तथा सामाजिक लगनता इस वृद्ध अवस्था में भी उन में उत्साह का संचार कर देती है। सर सेठ साहब वास्तव में जैन समाज के भूषण हैं।

—जयपुर से रायसाहिब सेठ बेगरचन्दजी गोधा लिखते हैं कि सर सेठ हुकमचन्दजी समाज के ही नहीं, किन्तु समस्त भारत के अनमोल रत्न हैं। आप में सबसे बड़ा गुण लक्ष्मी के साथ विवेक का होना है। लक्ष्मी की शोभा विवेक से ही है। आपने अपना शेष जीवन सांसारिक विषयों से हटाकर प्रायः धर्म-साधना में ही लगा दिया है। ऐसे लोकोत्तर महापुरुष ही संसार में शुभमार्ग के दिखलाने के लिये अनुकरणीय और आदर्श होते हैं।

—रांची से सेठ चांदमलजी पांड्या लिखते हैं कि इन दो-तीन शताब्दियों में आपके समान धर्मप्रेमी, साधर्मी, वात्सल्यधारी, समाज हितैषी और जैन धर्म का दृढ़ श्रद्धानी दूसरा नहीं हुआ और न सन्निकट भविष्य में होने की आशा है।

—श्रीमंत सेठ ऋषभकुमारजी बी०ए० सभापति भारतवर्षीय दिगंबर जैन परवार सभा खुरई लिखते हैं कि रावराजा श्रीमन्त सेठ दानवीर सर हुकमचन्दजी का नाम जैन समाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में बड़े गौरव के साथ अंकित किया जायगा। सेठ साहब मर्यादाशील, धर्मनिष्ठ, निर्व्यसनी, विद्याप्रेमी, देवगुरुशास्त्र के अनन्यभक्त तीर्थरक्षक, समाजसेवी, परदुःखकातर व्यक्ति हैं। इन गुणों का उनमें पूरा-पूरा सद्भाव पाया जाता है। वे अपव्यय और अतिरेक से दूर रहने वाले जिन भक्त, स्वाध्याय प्रेमी, समुचित उदार, मनस्वी पुरुष हैं।

—खंडेलवाल दिगंबर जैन पंचायत कलकत्ता के मंत्री सेठ लक्ष्मीनारायणजी छाबड़ा लिखते हैं कि सेठ साहब सरीखे प्रभावशाली महापुरुष तथा रक्षक नेता का होना जैन समाज अपने लिये गौरवपूर्ण समझता है। समस्त जैन समाज को आपका अनुकरण करना चाहिये।

—कोडरमा (बिहार) से सेठ जगन्नाथजी पांड्या लिखते हैं कि मुझे अपने जीवन में भक्त सेठ साहब के संपर्क में आने का अवसर मिला। मैंने उनके व्यक्तित्व और सरल, सरस एवं निश्चल व्यवहार से बहुत कुछ सीखा है। मैं चाहता हूं कि वे हमारे बीच में रहकर इसी प्रकार समाज की शोभा बढ़ाते रहें।

—पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर से लिखते हैं कि सेठ साहब वह पुरुष हैं,जिनके हृदय में समाज के प्रति दर्द है। कहीं किसी सधर्मी व्यक्ति पर संकट उपस्थित हुआ नहीं कि आप उसके संरक्षण में सदा प्रस्तुत रहे हैं। धर्म, धर्मायतन और धर्म के धारक सभी के प्रति आपके हृदय में अगाध श्रद्धा और अप्रतिम वात्सल्य है। वात्सल्य ही तो सम्यग्दर्शन का परिचायक है।

—पलाशवाड़ी से सेठ अमरचन्दजी लिखते हैं कि सेठ साहब की अनन्य तीर्थभक्ति,धर्मनिष्ठा और समाज सेवा के लिये हम कृतज्ञ हैं। सर सेठ साहब चिरायु हों, यही मेरी सद्भावना है।

—श्री दिगम्बर जैन मालवा प्रान्तिक सभा की ओर से महामन्त्री श्री फूलचन्दजी अजमेरा लिखते हैं कि श्री मालवा प्रान्तिक दिगम्बर जैन सभा भी अपना सुवर्ण जयन्ती उत्सव मनाती हुई श्रीमन्त सर सेठ साहब का अभिनन्दन करती है।

—जम्बू स्वामी की निर्वाण भूमि चौरासी मथुरा में विक्रमी सम्वत् ११८७ में अ० भा० व० दि० जैन महासभा के तृतीय अधिवेशन के अवसर पर चार प्रांतिक सभाओं की स्थापना हुई थी। उनमें मालवा प्रांतिक सभा भी एक थी। श्रीमन्त सर सेठ साहब और नीमचनिवासी स्वर्गीय लाला दौलतरामजी डिप्टी कलक्टर फर्रुखाबाद उसके सभापति और उपसभापति निर्वाचित हुये थे। प्रारम्भ से ही श्रीमन्त सेठ साहब इस सभा के स्थायी सभापति पद पर रहकर सभा की और इसके अन्तर्गत संचालित विभागों के सुचारु-संचालन एवं संवर्द्धन में संलग्न हैं। कुछ समय बाद द्रव्याभाव से सभा का कार्य शिथिल सा होता हुआ देखकर सर सेठ साहब ने वीर सम्वत् २४३१ में इन्दौर में एक कमेटी बुलाई। सभा का आफिस बड़नगर में स्थापित कराकर महामंत्री जैन जाति भूषण भगवानदासजी साहब को निर्वाचित किया तथा कार्य चलाने के लिये सेठ साहब ने स्वयं २५००) उपदेशक विभाग के लिये तथा ११००) प्रबन्ध विभाग के लिये प्रदान कर सभा की नींव जमाई। इस सभा का औषधालय वीर सम्वत् २४४० और अनाथालय २४४६ में स्थापित हुआ था। तब से आज तक दोनों संस्थाएँ बड़नगर में चल रही हैं। औषधालय से अब तक इतने वर्षों में दैनिक संख्या क्रम अनुसार लगभग ३० लाख स्थानीय रोगियों ने लाभ लिया है। भारत भर में २००० शाखाएं काम कर रही है, जिनसे लाखों रोगी लाभ उठा रहे हैं।

यहां सर्व औषधियां बिना मूल्य वितरण की जाती हैं। अनाथालय से समाज के करीब ४४० छात्रों ने लाभ उठाया है। सर सेठ साहब स्थाई सभापति होने के साथ ही कोषाध्यक्ष भी है। वर्तमान में सभा का ध्रुव फण्ड व जायदाद आदि ७२०००) के लगभग है। वार्षिक व्यय १५०००) के लगभग होता है। सन् १६१६ से ग्वालियर सरकार ने ३०) मासिक ग्रांट औषधालय को हमेशा के लिये नियुक्त फरमाई है और एक हजार नगद और सनद भी प्रदान की हैं। सभा के स्थापनकाल से आज तक सम्पूर्ण कार्यों में श्रीमन्त का तन, मन और धन से पूर्ण सहयोग रहा है, जिसके लिये यह सभा अत्यन्त आभारी है और इस मंगलमय अवसर पर अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए श्रीमन्त सर सेठ साहब के स्वास्थ्य एवं चिरायु की १००८ जिनेन्द्र भगवान से कामना करती है।

—पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ लिखते हैं कि सेठ साहब जैन समाज की महान निधि एवं गौरव हैं। उनका यश अप्रतिद्वन्दी है। जैनों के धार्मिक और सामाजिक इतिहास में उनकी सेवायें सदा ही अमर रहेंगी। वे सचमुच अजात शत्रु हैं। उन्होंने ऐसा कोई काम कभी नहीं करना चाहा, जो किसी को सह्य न हो। जैन धर्म पर आपकी आस्था प्रशंसनीय है। कोई ऐसा धार्मिक क्षेत्र नहीं है, जहां आपकी सेवाएं किसी न किसी रूप में न पहुँची हों। आपकी दान की राशि इतनी विशाल है कि जैन समाज का कोई धनिक उसकी तुलना में खड़ा नहीं हो सकता। आपके विचार उदार और दृष्टिकोण आग्रहहीन है। जैन समाज आपके आदर में जो कुछ करे, वह थोड़ा है। मैं भगवान महावीर से आपके शतजीवी होने की प्रार्थना करता हूँ।

—जैनमित्र के सम्पादक श्री मूलचन्द किशनदास कापड़िया सूरत से लिखते हैं कि सारे जैन समाज में अनेक पदविभूषित सर सेठ हुकमचन्दजी की सानी का कोई व्यक्ति नहीं है। आपने अपने ही बाहुबल से करोड़ों रुपया पैदा किये और उनका उपयोग दान व धर्म व भोग उपभोग में किया। जैन धर्म और जैन समाज की रात दिन सेवा करने ही के कारण आपको जैन सम्राट कहा गया। धर्म पर संकट आने पर न आप रात देखते हैं न दिन। उसको दूर करके ही सांस लेते हैं। आजकल आप राजशाही ठाटबाट छोड़कर धर्म-ध्यान में ही तत्पर हैं। फिर भी आपने समाजसेवा और धर्म को नहीं छोड़ा। आप शतायु हों और जैन धर्म व जैन समाज की अधिकाधिक सेवा कर सकें,-यह भी जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है।

—कलकत्ता के प्रमुख व्यवसायी बाबू छोटेलालजी लिखते हैं कि सेठजी सारी जैन समाज की विभूति व आदर की प्रतिमूर्ति है। इतनी बड़ी विभूति से सम्पन्न होते हुये भी उनमें निरभिमानता और सरलता अनुपम गुण हैं। मैंने देखा है कि बड़ी-बड़ी सभाओं में साधारण सी बात के लिये भी वे क्षमायाचना करते हुये संकोच नहीं करते। ये मार्दव और आर्जव गुण उनमें कृत्रिम न होकर स्वभाव से हैं। चरित्र ग्रन्थों में राजाओं के त्यागी बनने के सहस्रों उदाहरण मिलते हैं। ऐतिहासिक काल में भी मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त और कलिंग चक्रवर्ती श्री खारवेल के अन्तिम जीवन को हम त्यागी के रूप में पाते हैं। वर्त्तमान में सेठजी ने उस आदर्श को पुन: जागृत किया है और आपका जीवन धर्मध्यानाध्ययन में संलग्न हम देख रहे हैं। सेठजी चिरकाल तक हमारे बीच आत्मोद्धार के साथ-साथ समाजहित भी करते रहें,—यही मेरी शुभ कामना है।

—श्र सरूपचन्द हुकमचन्द जैन पारमार्थिक संस्थाओं के ट्रस्टी और प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्य श्री जिनेन्द्र भगवान् से यह प्रार्थना करते हैं कि सेठ साहब सपरिवार चिरायु हों। हमारी आपको श्रद्धांजलि स्वीकार हो।

—आगरा से रा० सा० मटरूमल बैनाडा उपसभापति महासभा लिखते हैं कि स्वर्गीय पूज्य पिताश्री पद्मचन्द्रजी बैनाडा से सर सेठसाहब से बहुत ही घनिष्ट मित्रभाव था। इसी कारण मुझे सर सेठ साहब के सम्पर्क से अनेक बहुमूल्य अनुभवों का लाभ हुआ। मैंने अपने स्वर्गीय पूज्य पिताजी की स्मृति में नेत्र चिकित्सालय को स्थायी और सार्वजनिक विस्तार के साथ स्थापना के हेतु प्रान्तीय सरकार से अपनी योजना स्वीकार कराई और *''मथुरादास पद्मचन्द जैन नेत्र चिकित्सालय'' के शिलान्यास के लिये पिताजी की कामना और भावना के प्रतिनिधि* धर्मनिष्ट, उज्वलचरित महापुरुष सेठ साहब से प्रार्थना की और सर सेठ साहब ने बड़े प्रेम के साथ हमारा अनुरोध स्वीकार कर लिया। सेठजी के गम्भीर और उदार भावों की छाप मेरे हृदय पर उस समय विशेष रूप से अंकित हुई,जब मुझे ज्ञात हुआ कि सर सेठ साहब का प्रिय पौत्र गम्भीर रुग्णावस्था में है। फिर भी तार पर तार देकर हमें आश्वासन देते रहे कि कुछ भी हो मैं निश्चित कार्यक्रम और वचन के अनुसार आगरा पहुँच कर अपने स्वर्गीय *मित्र का स्मारक परम पारिमार्थिक संस्था का शिलान्यास करके अवश्य पुण्यभागी बनूंगा।* ग्रीष्म ऋतु मे लम्बी यात्रा का कष्ट उठाकर भी आप मोटर से निश्चित समय पर आगरा पधारे। २२ जून सन् १९४१ को शिलान्यास करते समय आपने विशाल जनसमूह के सामने महामन्त्र का उच्चारण किया तथा यह संस्था प्राणिमात्र की सेवा में समर्थ हो, ऐसी शुभ कामना की। आपकी सेवा में बैनाडा परिवार, समस्त दिगम्बर जैन स्कूल (जो अब विशाल कालिज के रूप में परिणत हो गया है) बड़े समारोहपूर्वक मानपत्र समर्पित किये गए। श्रीमन्त सेठ साहब ने *मानपत्रों के उत्तर में गद्गद होकर यह उद्गार प्रगट किये* ''स्व० सेठ पद्मचन्द्रजी साहब मेरे खास मित्रों में से थे। यह आंख का अस्पताल उनकी परोपकारिता का प्रत्यक्ष नमूना है। उनके सुपुत्र चि० मटरूमलजी ने इसके स्थायित्व की जो दूरदर्शितापूर्ण योजना की है, वह अनेक दृष्टियों से हितकर है। एक सुपुत्र के कर्तव्य के नाते इन्होंने अपने पिता की भावना और कीर्ति को अधिक यशस्वी बनाया। इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है।'' सर सेठ साहब के वृद्ध तन-मन में अब भी नवीन भावना और ज्योति जागृत है, जो हमें धार्मिक और सांस्कृतिक विश्वासों के साथ सर्वस्व समर्पण करने और प्राणपण से कटिबद्ध रहने के लिये प्रेरित करती है।

—श्री छगनलालजी मित्तल आनररी मन्त्री मध्यभारत चैम्बर आफ कामर्स इन्दौर लिखते हैं कि सेठ साहब इसके तभी से अध्यक्ष हैं, जब इन्दौर राज्य के चैम्बर के रूप में इसकी स्थापना की गई थी। मध्यभारत का निर्माण होने पर जब चैम्बर को भी सारे मध्यभारत का बनाया गया, तब भी आप ही उसके अध्यक्ष हुये। परमेश्वर हमारे कुशल मार्गदर्शक को चिरायु करे।

—इन्दौर के कांग्रेसी नेता और गांधी स्मारक भवन तथा मध्यभारत कस्तूरबा महिला सेवा सदन के उन्नायक श्री कन्हैयालालजी खादीवाला लिखते हैं कि मैंने कई बार देखा है कि विकट से विकट और उलझे हुये प्रश्न को भी वे दोनों दलों के गले में हाथ डालकर इस खूबी से निपटा देते थे कि दोनों ओर के ही लोग खुश हो जाते थे। आज भी सेठ साहब के लिये इन्दौर की हर कौम काफी आदर रखती है और उनको अपने कुटुम्ब का ही बड़ा मुखिया मानती है।

—भेलसा से श्रीमन्त सेठ लखमीचन्दजी लिखते हैं कि इनसी मिलनसार और सीधे तथा सरल स्वभाव की आत्मा मुझे जैन जाति में आप ही दिखाई देते हैं। मैंने जब भी यहां के धार्मिक कार्यों के बारे में पूज्य श्रीमन्त सर सेठ साहब से सलाह ली, मुझे हर समय सुपथ की ओर ले जाने वाली सलाह मिली, जिससे मैंने सेवा कार्य में विजय प्राप्त की। उनसे जिसने भी अपनी मनोभावना प्रगट करके सलाह ली, उसके लिये वह आजन्म आपकी सराहना करता रहा।

—श्री रतनचन्द हीराचन्द एम० ए० जे० पी० प्रमुख्य उद्योगपति बंबई से लिखते हैं:—" I whole-heartedly join in the celbrations of Sir Hukam Chand ji. He has rerdered great service to our community and is an ideal example of jain aristocracy. May he live long and his family should prosper in all aspets in future."

—श्री ताराचन्दजी रपरिया आगरा से लिखते हैं कि सेठ साहब से मैं पहली बार सन् १९३८ में इन्दौर में मिला। मैं बड़े संकोच से उनके पास गया, किन्तु वहां जाने पर आश्चर्य हुआ कि मेरे एकाएक जाने पर भी और कार्य में व्यग्र होने पर भी उन्होंने यह कहकर मेरा स्वागत किया कि " आओ, ताराचन्दजी आओ " और उठकर मुझे अपने पास बिठा लिया। यह पता ही हमें न दिया कि वह पहिली मुलाकात थी। एक ही साथ मेरे ठहरने की व्यवस्था और स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में सब कुछ पूछ गये। उनकी वह आत्मीयता, सरलता और मिलनसारिता मैं जीवनभर भूल नहीं सकता। यदि सभी धनिकों का ऐसा ही व्यवहार हो, तो उनके विरुद्ध जनता को शायद इतनी शिकायत न रहे।

—बम्बई के सुप्रसिद्ध समाजसेवी सेठ भाईचन्दजी रूपचन्दजी दोसी लिखते हैं कि जिस महापुरुष ने महासभा की नींव तैयार की, उसके स्वर्णजयंति उत्सव से अधिक उपयुक्त अवसर उसके सम्मान का दूसरा नहीं हो सकता। सेठ साहब का धैर्य, साहस और दूर दृष्टि उसके लिये स्फूर्ति रही है, जिन्होंने उनका अनुकरण करते हुये अपने को धर्म और समाज की सेवा में लगाया है। उनकी सरलता उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है, पिछले ५० वर्षों मे उनका जीवन जैन समाज के लिये प्रकाशस्तंभ रहा है और महासभा पर तो उनका बहुत बड़ा ऋण है। आपने अनेकों युवकों के जीवन का निर्माण किया है। आपने समस्त भारत के जैनमन्दिरों के निर्माण और जीर्णोद्धार में खुले हाथों पैसा खर्च किया है। इन्दौर का जैनमंदिर तो शीशे का एक चमत्कार ही है। जैन साहित्य के प्रकाशन में भी आपने बहुत बड़ी सहायता की है। अनेक संस्थाओं के आप संरक्षक और पोषक हैं। जैनसमाज के हृदय में आपने अपना स्थायी स्थान बना लिया है। आपका शानदार जीवन हमारे लिये सदैव आदर्श रहे।

—हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री सुखसंपत्तिरायजी भंडारी अजमेर से लिखते हैं कि सर सेठ हुकमचन्दजी व्यापारी जगत् की एक विभूति हैं। उन्होंने अपनी गंभीर सूझ बूझ, दूरदर्शिता और साहस से करोड़ों की सम्पत्ति कमाई और लाखों का दान भी किया। उनको अभिमान छू तक नहीं गया। छोटे से छोटे आदमी से भी बड़े प्रेम से मिलते हैं।

—वयोवृद्ध समाजसेवी सेठ गजराजजी गंगवाल लाडनूं लिखते हैं कि सबसे बड़ा सौभाग्य यह है कि जन्म से आज तक कोई भी दाग आप पर लगाया नहीं जा सकता है। सौ टंच सोने की तरह कलंक रहित भोग भोगा है। धर्म-अर्थ-काम में सन्तोष न मान कर मोक्ष की अभिलाषा भी छोड़ी नहीं है। ऐसी बुद्धि भगवान् सभी को दें।

—कटनी से भा० व० दिगम्बर जैन परवार सभा के मन्त्री पं० जगमोहनलाल जैन शास्त्री लिखते हैं कि सेठ साहब का दरबार सदा त्यागियों और विद्वानों से भरा रहता है। उनकी दृष्टि में ज्ञान व तप का महत्त्व विशेष है। उन्हें योगीपद प्राप्त होना चाहिये। उनमें गुणों का समावेश इतना है कि दुर्गुणों की छाया भी दीख नहीं पड़ती। अपने समाज में ऐसे नररत्न को पाकर किसे गर्व न होगा?

—रायबहादुर राज्यभूषण सेठ हीरालालजी पाटनी किशनगढ़ से लिखते हैं कि सर सेठ साहब और मेरा सम्बन्ध बहुत गाढ़ा और पुराना है। उनके संघर्ष और उत्कर्ष दोनों में मैंने एक महान व्यक्तित्व की झांकी देखी है। वाणिज्य और वैभव में घिरे रहने पर भी उन्हें सदा धार्मिक या सामाजिक संकट पर अग्रणी ही पाया है। राज्य, और समाज सबमे अति सम्मानित इनकी जोड़ का दूसरा व्यक्ति अपनी समाज में नहीं है। ऐसे योग्य अनुभवी व उच्चकोटि के पुरुष हमारे बीच युगों तक रहें।

—लाला हीरालालजी और लाला कपूरचन्दजी जौहरी दिल्ली लिखते हैं कि हम दोनों भाइयों और हमारे परिवार पर सेठ साहब का विशेष वात्सल्यभाव है। आपने कितनी ही बार दिल्ली पधारने पर हमारे आतिथ्य को बड़े प्रेम के साथ स्वीकार किया है। वे 'जौहरी' न होते हुये भी रतन तथा जवाहर के ऐसे पारखी हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। इस पारखी बुद्धि के ही कारण आपने अपने जीवन में अपूर्व सफलता प्राप्त की है।

—कलकत्ता के वयोवृद्ध समाजसेवी सेठ बैजनाथजी सरावगी लिखते हैं कि मुझे सेठ साहब को बहुत समीप से देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। हिन्दू विश्वविद्यालय में जैन मंदिर और बोर्डिङ्ग हाऊस बनाने के लिये आपकी आतुरता को देखकर मुझे पता चला कि आप में धर्मप्रभावना कितनी प्रबल है। लगभग आठ हजार रुपया खर्च करके हवाई जहाज से आप काशीजी पधारे थे और जब यह कार्य सफल हुआ, तब आपको परम सन्तोष हुआ। धर्म व समाज सेवा के अवसर पर आप न तो स्वयं चैन लेते हैं और न दूसरों को ही लेने देते हैं। जैन समाज को सदियों तक ऐसा अथक् सेवक मिल सकना दुर्लभ है।

—रायबहादुर सेठ हरकचन्दजी पाण्ड्या रांची से लिखते हैं कि हमारे घर के साथ सेठ साहब का संबंध पूज्य पितामह रायबहादुर सेठ रतनलालजी के समय से है। शिखरजी की रक्षा और सेवा के लिये सेठ साहब ने जिस साहस से काम लिया था, उसकी स्मृति मेरे हृदय पर अमिट बनी हुई है। अब तो आपकी यह सेवा भावना सारे देश में व्याप चुकी है। ऐसे महापुरुष किसी समाज को भी उसके पुण्य से ही प्राप्त होते हैं।

—ब्यावर से रायसाहब सेठ मोतीलालजी रानीवाला ने लिखा है कि मेरे हृदय में सेठ साहब के प्रति जो श्रद्धा पैदा हुई, वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई है। इस युग की जैन पीढ़ी आपके उपकारों को कभी भूल नहीं सकती।

—डेली कालेज इन्दौर के प्रिंसिपल ी डी० ऐफ० जैक लिखते हैं कि सेठ साहब की महान् उदारता का शिक्षण संस्थाओं को विशेष लाभ मिला। शिक्षा के महत्व को उन्होंने खूब समझा। अपने सुपुत्र को उन्होंने इसी कालेज में भरती कराया, जब कि यहां केवल राजाओं और सरदारों के लड़के ही भरती किये जाते थे। अब वह सभी के लिये खुला कर दिया गया। उनका पौत्र भी इसी का विद्यार्थी है। डेली कालेज सेठ साहब का चिर ऋणी और कृतज्ञ है।

१

जिनपतिपदपद्मामोदितस्वान्तसद्मा
श्रुतिवचनविचाराचारचारुप्रचारः।
प्रतिजनशुभसङ्गापास्तमोहप्रसङ्गो
जयति हुकमचन्द्रः श्रेष्ठिवर्योऽस्ततन्द्रः॥

२

जगति विदितकार्यं यास्त्वया लोकहेतो-
र्विपुल विभवदानात्स्थापिताः श्लाघ्यसंस्था।
दिशि विदिशि शशिशुभ्रकीर्तिराशिप्रसारा-
स्तव मनस उदारां भावनां व्यञ्जयन्ति॥

३

क्वचिदपि जिनतीर्थे केचनाप्यस्तबोधा-
विदधति यदि नामोपद्रवान्मर्त्यपाशाः।
तदिह सपदि रक्षां संविधातुं समर्थ-
स्त्वमिव नहि जनोऽन्यो दृश्यतेकश्चनापि॥

४

गुणिषु मुनिषु जैनेष्वन्यतः पीडितेषु
कलुषचयविपाकादामयाद्वार्दितेषु।
निजजन इव शीघ्रं तत्प्रतीकारहेतु-
स्त्वमिति जगति को नो मानवो वेत्ति सम्यक्

५

निखिल विषयतृप्तः किन्तु शास्त्रेष्वतृप्तः
कृतबुद्धजनसङ्गोऽप्यस्तसङ्गप्रसङ्गः।
त्वमसि वयसि वृद्धोऽथापि तेजस्ववृद्धः
सुकृत कृतमहिम्ना निर्द्वितीयो विभासि॥

६

श्रीमन्! मान्य! मनीषिभूषितसदा! श्रेष्ठिन्! प्रतिष्ठाश्रय।
दाने कर्णसहोदर! श्रुतमहाशास्त्र! प्रशस्याशय!।
त्वत्तो लब्धबलोऽतिमञ्जुलयशः शीतांशुरम्योदयः
सोऽयं त्वामभिनन्दति प्रणयतः स्याद्वादविद्यालयः॥

—काशीस्थ श्रीस्याद्वाददिगम्बर-जैन महाविद्यालयतः

श्रीमद्धर्मपरायणो गुणभृतामग्रेसरो नायकः
प्राप्तानेकपदप्रशस्तगरिमा सम्मानितो राजभिः॥
सेवाधर्मसमाजयोर्विरचयन् दानप्रभावैःसदा
जीयाद्वर्षसहस्रशः सुसुखतः श्री हुकमचन्द्रः सरः।

—मक्खनलाल शास्त्री, विद्यावारिधि, न्यायालंकार
(आचार्य-श्री गो० दि० जै० सिद्धांतविद्यालय, मोरेना)

—इन्दौर 'ईसाई' कालेज के आचार्य लिखते हैं कि हमारे कन्या विद्यालय का बड़ा हालसेठ साहब के २५ हजार के उदार दान से हो बना है। कालेज में एम० ए० की पढ़ाई शुरू होने पर आपने पुस्तकालय के लिये दो हजार रुपये प्रदान किये। जंवरीबाग में आपने कालेज के विद्यार्थियों के निशुल्क रहने का प्रबन्ध किया है। सेठ साहब का शिक्षाप्रेम सराहनीय है।

—महात्मा गांधी मैडिकल कालेज इन्दौर के आचार्य ने भी कालेज को पहिले दिये गये ४० हजार और बाद में दिये गये २५ हजार के लिये आभार प्रदर्शन किया है और शतायु होने की कामना की है।

—पण्डित भगवानस्वरूप जैन फरिहा मन्त्री अतिशय क्षेत्र मरसलगंज लिखते हैं कि तीर्थक्षेत्रों के सम्मान की रक्षा के लिये सेठ साहब ने जो महान सेवा की है, वह इतिहास में सोने के अक्षरों में लिखी जायेगी।

—पण्डित शिखरचन्दजी विशारद 'सत्तावतपुरीय' दिल्ली लिखते हैं कि श्री हुकमचन्द महाविद्यालय का छात्र होने और महासभा में डेढ़ दो वर्ष काम करते हुये मैं आदरणीय सेठ साहब की लगन-धुन और धर्मपरायणता से अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ और मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा है। उनके उपकारों से उऋण होना संभव नहीं है।

"MY OLD FRIEND."

Sir Kenneth Fitze

(Hon'ble Agent—General to the Governor General in Central India in 1912)

Teal Hatch, Cross in Hand, Sussex, England.

"It was good to learn that my old friend Sir Hukam Chand is still flourishing and about to reach the age of 80 years. My connec,ion with Indore, where I spent the happiest years of my life, goes back 1912 and I well remember Sir Hukamchand as being, even in that time, a towering figure among the local personolities. In subsequent years I frequently had the pleasure of meeting him and appreciating his never failing cheerfulness and geniality, which so often expressed itself in levish hospitality. I I imagine that few octogenarian of today could look back on a more strenuous and fruitful career and I hope that he will still have many years in which to enjoy the consciousness of great achievements and the respect and affection of his admirers.

May I, in conclusion, thank you for affording me this opportunity to associate myself with the tribute, which you are organising, which I feel sure will be most widely and enthusiastically supported.

"जैन गजट" के प्रकाशक पं० बाबूलालजी शास्त्री देहली लिखते हैं कि पिछले ६-१० वर्षों में महासभा के साथ अविरत संबंध होने और उससे भी पहले इन्दौर में शिक्षाध्ययन करने का अवसर मिलने के कारण मुझे सेठ साहब को बहुत समीप से देखने और समझने का अवसर मिला है। उनके बहुत से वे तार और पत्र मेरे हाथों में से गुजरे हैं, जिनसे उनके जैन धर्म के प्रति अटूट प्रेम और अगाध श्रद्धा का परिचय मिलता है। ऐसे साहसी, धर्मवीर और उदार नेता का प्राप्त होना जैन समाज का सबसे बा सौभाग्य है। यह सौभाग्य सदा ही बना रहे।

—श्री गुट्टनलालजी देहली लिखते हैं कि सर सेठ हुकमचन्दजी साहब ने धर्म, समाज, जाति की जो सेवा की है एवं तीर्थरक्षा की है, वह जैन समाज में स्वर्णाक्षरों में सदैव अंकित रहेगी। सेठ साहब के सन् १६३६ में महासभा की प्रबन्धकारिणी में देहली पधारने पर तथा अन्य अवसरों पर भी मुझे उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आपकी अलौकिक प्रतिभा है। मैं श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता हूँ कि सेठ साहब का वरद् हस्त सदैव जैन समाज पर बना रहे।

—वैद्यराज आयुर्वेदभूषण श्री कन्हैयालालजी जैन कानपुर लिखते हैं कि सेठ साहब के दर्शन मैंने पहली बार बम्बई में आज से तैतालीस वर्ष पहले किये थे। उस समय उनकी धर्म चर्चा सुनने का लाभ मिला था। इन्दौर जाने पर उनके साहस और प्रबन्ध को देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। इन्दौर के अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष रायबहादुर पं० सरजूप्रसादजी त्रिपाठी सिविल सर्जन के अस्वस्थ होने से उनका भाषण आपने पढ़ा। अंत में आपने घोषणा की थी कि महामना मालवीयजी की तरह देश के कोने कोने में घूम कर रुपया इकट्ठा करके जब तक वैद्य-समाज आयुर्वेद कालेज नहीं खोलेगा. तब तक आयुर्वेद की उन्नति नहीं होगी। मैं भी आपका साथ देने को तय्यार हूं। एक बार वे जिससे मिललें, उसको कभी भी भूलते नहीं। किसी भी समस्या को हल करने में आप जिस प्रत्युत्पन्नमति से काम लेते हैं वह कमाल की है। राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज को उत्तर प्रदेश के मेडिसन बोर्ड से सम्बन्धित कराने में आपने जिस लगन-धुन और तत्परता का परिचय दिया, उसको देखकर मैं दंग रह गया। श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है कि सर सेठ साहब और उनके पुत्र पौत्रादि चिरंजीवी हों।

—जैनजातिभूषण लाला हजारीलालजी जैन, मन्त्री पारमार्थिक संस्थायें इन्दौर से लिखते हैं कि सेठ

सेठ साहब से पचास वर्ष से सम्बन्ध चला आ रहा है। उनकी असाधारण प्रतिभा, अनुपम स्मरण-शक्ति, व्यापार कुशलता, सदाचार परायणता, दृढ़ता और धर्म एवं समाज की सेवा में तत्परता आदि गुणों का परिचय मुझे उनके [illegible] जीवन में निरन्तर मिलता रहा। वे पूर्व जन्म के समीचीन संस्कारों से भली प्रकार सुसंस्कृत हैं। उनका पुण्य वैभव भी अपूर्व है। सेठ साहब स्वस्थ रहकर चिरायु हों और हमें उनका शतवर्षीय जयन्ति उत्सव देखने का भी सुयोग मिले।

—श्री कन्हैयालालजी महाशय सेठ साहब के व्यापार व्यवसाय की प्रगति का विस्तृत विवरण करते हुए लिखते हैं कि सेठ साहब ने १४ वर्ष की आयु से ही अफीम के सट्टे में लाखों रुपया कमाना शुरू कर दिया था। अनेकों बार सट्टे के बाजार में देश विदेश के सभी सटोरियों का मुकाबला किया और उन्हें 'सट्टे का राजा' कहा जाने लगा था। उनकी सफलता का कारण यह था कि वे देश विदेश के सटोरियों से सम्पर्क बनाये रखते थे और अफीम की फसल पर हवामान से पड़ने वाले असर की जानकारी प्राप्त करने के लिये अफीम के उत्पादन के केन्द्रों पर तथा हाजरमाल के स्टाक आदि की जानकारी प्राप्त करने के लिये गुप्तचर रखा करते थे अपने लक्ष पर बहुत दृढ़ रहते थे। उनकी यह उदारता भी कमाल की थी। आप मालवा के पहले करोड़पति हैं। ईश्वर आपको चिरायु करे।

—वैद्यराज कन्हैयालालजी आयुर्वेदाचार्य देहली लिखते हैं कि सेठ साहब के सम्पर्क में मैं वर्षों रहा। आप समाज की महान् विभूति हैं। आपकी व्यापार व्यवसाय की प्रतिभा अनूठी है। दान धर्म में प्रवृत्ति आपकी विशेष है। हमारी वीर प्रभु से प्रार्थना है कि आपकी छत्रछाया जैन समाज पर चिरकाल तक बनी रहे।

—अजितप्रसाद लखनऊ से महासभा के पुराने सेवक व नेता बीकानेर के भूतपूर्व जज श्री अजितप्रसादजी लिखते हैं कि सर सेठ हुकमचन्द्र जैन समाज में एक अद्वितीय, आदर्शरूप, महान् पुरुष हैं। भरत चक्रवर्ती के समान वैभव का त्याग, अनुकरणीय व्रती श्रावक का सदाचार, संसार के भोगों से उदासीनता उनके असाधारण गुण हैं। प्रातः अपराह्न और सायंकाल घंटों अध्यात्म रस का पान करते हैं। माला तो निरन्तर फेरते ही रहते हैं। इन्द्र भवन के राजकीय चकाचौंध से मन मोड़ कर केवल तीन कमरों में ही रहते हैं। कहीं भी किसी प्रकार जैन-धर्म पर संकट-सम्वाद सुनते ही अपनी पूर्ण शक्ति लगा कर धर्म और धर्मायतन की रक्षा में सफलता प्राप्त कर जैन समाज को गौरवान्वित करते हैं। सम्यक्दर्शन, ज्ञान-चारित्र रूपी मोक्ष मार्ग के शीघ्रगामी पथिक हैं। मेरा निकट परिचय सर सेठ महोदय से जनवरी १६२४ में हुआ, जबकि मैं दिगम्बर समाज के पक्षमें श्री चम्पतरायजी के साथ वकील था और सर सेठ महोदय की गवाही इन्जंकशन केश में चार पांच दिन तक हजारीबाग में होती रही।

१६२१ की गर्मियों में सर सेठ महोदय श्री ऋषभदेव केशरियानाथ के हत्याकांड के अवसर पर एक डेपुटेशन की सरदारी स्वीकार करके उदयपुर पधारे। डेपुटेशन के पंच सदस्यों में मैं भी था। महाराणा उदयपुर से न्याय प्रार्थनार्थ स्थान और तिथि निश्चित कराके शिकारगाह के निर्जनस्थान पर मुलाकात प्राप्त की। महाराणाजी को मामला समझाया। महाराणाजी का आदेश हुआ कि "न्याय होगा"। केशरियाजी पर ध्वजादण्ड के मामले में भी सर सेठ महोदय ने उचित परामर्श दिया तथा सहायता की। सन् १६३३ में हैदराबाद (दक्षिण) के भूपति ने जैन दिगम्बर मुनि श्री जयसागर के नगर विहार में प्रतिबन्ध लगा दिया। उस अवसरपरभी सर सेठ महोदय ने कलकत्ता पहुंचकर उपसर्ग निवारण कोषमें प्रचुर दान दिया।

—श्री रतनलालजी मादीपुरिया देहली लिखते हैं कि आप जैन समाज के नर पुंगव हैं। महान् विभूति के प्रति मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि है।

੪
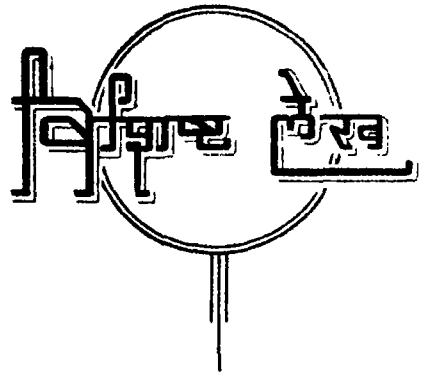
इस ग्रन्थ का प्रकाशन बहुत थोड़े समय में किया गया बहुत शीघ्रता में इस विभाग की सामग्री जुटाई गई। लेखक महानुभावों से बहुत जल्दी में लेख मंगाये गये। उन्हें न तो लेख का विषय चुनने और न उसकी सामग्री जुटाने के लिए ही पर्याप्त समय मिल सका। कुछ लेख तो अप्रैल मास के तीसरे सप्ताह में ही प्राप्त हुए हैं। फिर भी इतने अधिक लेख प्राप्त हो गये कि उन सबका समावेश कर सकना संभव न हो सका। कदाचित् पृष्ठ संख्या बढ़ा दी जाती; किन्तु इतना समय न था कि उन सबका मुद्रण हो सकता।

सम्पादक समिति का यह निर्णय रहा कि एक लेखक का एक लेख दिया जाय, अमुद्रित लेख दिए जांय और यथासंभव विवाद रहित लेख दिये जांय। इसीलिए जिन महानुभावों के जो लेख नहीं दिये जा सके हैं, उनके लिए विनीत भाव से क्षमा-याचना है। लेखकों के समस्त विचारों का दायित्व न तो ग्रन्थ की प्रकाशक अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभा पर है और न सम्पादक समिति पर। उनके लिए एक मात्र लेखकों पर ही उत्तरदायित्व है।

श्री चन्द्रप्रभस्तोत्रम्

—स्या० वा० वि० वा० पं० खूबचंदजी शास्त्री
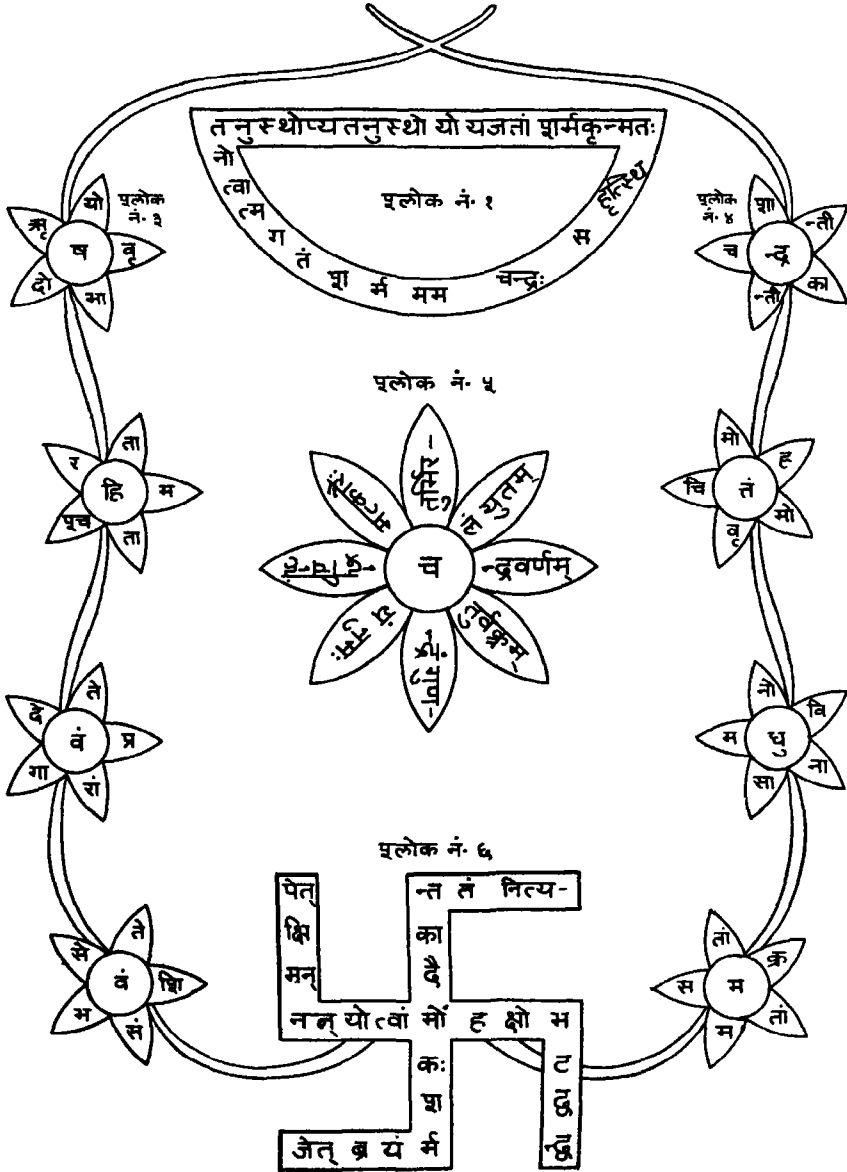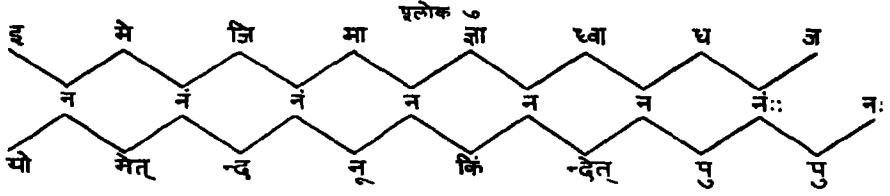
तनुस्थोऽयतनुस्थो यो यजतां शर्मकृन्मतः।
तनोत्वात्मगतं शर्म मम चन्द्रः स हृत्स्थितः ॥१॥

सुधर्मं यः सतः शास्ति सुसमं यममात्मनः।
शिवोत्तमाङ्गसंसेव्यः भुजङ्गानपसारयन् ॥२॥

ऋषयो वृषभा दोषरहिताः महिताश्च हि।
देव ते प्रवरां गावं सेवन्ते शिवसम्भवम् ॥३॥

चन्द्र शान्तीन्द्र कान्तीन्द्र चित्तं मोहतमोवृतम्।
मधुनो विधुना साधु-समतां क्रमतां मम ॥४॥

चन्द्रवर्णं चतुर्वक्त्रम् चन्द्रं गुणचयं नुमः।
चन्द्रचिन्हं चमत्कारैश्चतुभिरचलं युतम् ॥५॥

मोहक्षोभभटद्वन्द्वमों त्वां यो नन्नमन् क्षिपेत्।
मोदैकान्ततत्तं नित्यमोकः शर्ममयं व्रजेत् ॥६॥

इनमेनं जिनं मानज्ञानध्वानधनं जनः।
यो नमेन्नन्दनं नूनं किं नन्देन्न पुनः पुनः ॥७॥

वक्ष आलिङ्गते लक्ष्मीः पद्मा पतति पादयोः।
कृपाणी कर्मणां वाणी तस्य यस्य भवान् हृदि ॥८॥

तस्यैव सफलं जन्म तस्यैव धवलं यशः।
तस्यैव सफला वाचो येन संस्तूयते भवान् ॥९॥

तस्यारयः प्रणश्यन्ति वश्यतां यान्ति दुर्हृदः।
तुष्यन्ति देवताः सर्वाः त्वां स्रजाऽर्चति यो जनः ॥१०॥

जिनके प्रति

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

यह तनु तो है रक्त-मांस मय,
उस तनु में है केवल दुग्ध;
बाल्यभाव से ही जिन, यह जन,
आ सकता है वहाँ विमुग्ध।

आत्म-जागरण

डा० रामकुमार वर्मा एम. ए. डी. लिट.

आत्म-जागरण हो जीवन में,
साधन का हो मार्ग प्रशस्त।
सत्य अहिंसा के बल पर ही,
सुखी बने जीवन संत्रस्त॥ १॥

सहज समन्वय में श्रद्धा हो,
संयम-रवि हो कभी न अस्त।
षट् द्रव्यों में आत्म-तत्व,
निज पद में रहे सदा आश्वस्त॥२॥

अै काल जका सिणगार बण्या

श्री कन्हैयालालजी सेठिया-सुजानगढ़

झर-झर पाका पान झड़ै।
अै देखी आँध्याँ खेंचाती
अै भिड्या रूँख रा बण साथी;
पण रूत रो धीमूँ सो धक्को
अै सह लै आँ री के छाती?
होलै सी सैन करी करताँ
अै डरता उपरा थली पड़ै।

अै काल जका सिणगार बण्या,
बै आज रूँख रा भार बण्या,
दिन माठा आवै जकी बगत,
बा भेलप राखै इण्या गिण्या,
धरती तो भैलै नहीं किस्यै,
बा बिल में भेली हू'र बड़ै।

ओ जीणूँ मरणूँ सालीणूँ
सुख दुख रो जाबक तथ भीणूँ
के हँसणूँ आँ पर के रोणूँ?
पण समझै कोनी मन हीणूँ।
बो तोड़ै पीला पान जको
बो सागी कूँपल नुँई घड़ै।

झर झर पाका पान झड़ै।

भारतीय इतिहास में जैनकाल

लेखक—श्री कामताप्रसाद जैन, एम० आर० ए० एस०, डी० एल०

भारतीय इतिहास का आलोडन करते हुये विद्वानों ने जिस काल में धर्म अथवा राजवंश का प्राबल्य देखा, उसी के अनुरूप उस कालविशेष का नामकरण कर दिया। धर्म की अपेक्षा जो नामकरण किये गये, वे मौर्यकाल से पहले की शताब्दियों तक ही सीमित हैं। मौर्यकाल के उपरान्त सभी कालविशेषों का नामकरण प्रायः राजवंशों की अपेक्षा से किया गया है। नन्दों और मौर्यों के पहले ही हमें वैदिककाल, रामायणकाल, महाभारतकाल, बौद्धकाल आदि नामों का प्रयोग भारतीय इतिहास में किया गया मिलता है। पाठकों को एक बात मार्के की दीखेगी कि 'जैनकाल' जसा कोई नामकरण भारतीय इतिहासज्ञों द्वारा प्रयुक्त नहीं हुआ। इसका कारण यह नहीं है कि जैन धर्म का प्राबल्य भारत-वसुन्धरा में कभी रहा ही न हो; बल्कि कारण यह है कि जैन सम्बन्धी इतिहास का ठीक से अध्ययन और अन्वेषण ही नहीं किया गया। थोड़ा बहुत जो किया भी गया, वह अजैन विद्वानों द्वारा और उसमें भी बहुत-सा पुरातत्व जैन होते हुए भी बौद्ध घोषित किया गया। इस अज्ञस्थिति का दोष अजैन विद्वानों पर नहीं; अपितु स्वयं जैनों पर है। उन्होंने जैन पुरातत्व का उद्धार करने के लिये जब कभी एकाध प्रस्ताव तो पास किया, परंतु उस ओर अपनी लक्ष्मी का उपयोग करना उचित न समझा। समूचे जैन समाज में एक भी तो पुरातत्व-मंदिर नहीं है और न कोई शोध अथवा पुरान्वेषण की उल्लेखनीय संस्था है। ऐसी दयनीय स्थिति में कदाचित् भारतीय इतिहास में "जैनकाल" का उल्लेख और दर्शन नहीं मिलते हैं, तो कोई अचरज की बात नहीं। इसका एकमात्र परिशोध यही है कि जैन समाज अपनी भूल को पहिचाने और उसका सुधार करे। अपार जैन कीर्तियां भारत के और भारत के बाहर बिखरी हुई पड़ी हैं; परन्तु उनकी सुध लेने वाला कोई नहीं है। स्व० श्री विन्सेन्ट स्मिथ ने बहुत पहले ही जैनों का ध्यान इस आवश्यक कार्य की ओर आकृष्ट किया था। उन्होंने लिखा था कि "खोज के लिये बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा है। आजकल जैनमतावलम्बी अधिकतर राजपूताना और पश्चिमी भारतवर्ष में रहते हैं; परन्तु हमेशा यह बात नहीं रही है। प्राचीन काल में महावीर स्वामी का धर्म आजकल की अपेक्षा दूर-दूर तक फैला हुआ था।"

प्रस्तुत लेख में हमें यही देखना अभीष्ट है कि भारतीय इतिहास परम्परा में कोई काल ऐसे भी हो सकते हैं, जिनमें जन धर्म ने राष्ट्र की गतिविधि को सर्वोपरि अनुप्राणित और अनुशासित किया हो, जिस प्राबल्य के कारण वह समय 'जैन काल' कहा जा सके।

ऋषभ-नेमि पर्यन्त जैनकाल

आज जब हम भारतीय इतिहास की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो उसका इतिवृत्त भ० महावीर और म० बुद्ध से बहुत पहले तक पहुँचता पाते हैं। अब भारतीय इतिहास का प्रारंभ शिशु नागवंश से भी पहले पहुंच जाता है; क्योंकि सिन्धु उपत्यका और नर्मदा तट से उपलब्ध पुरातत्व ईस्वी सन् से लगभग चार-पांच हज़ार वर्षों पुरानी घटनाओं का परिचय कराता है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा का पुरातत्व इस बात की साक्षी उपस्थित करता है कि उस

प्राचीनकाल में वैदिक संस्कृति से भिन्न प्रकार की संस्कृति सिन्धु उपत्यका, सौराष्ट्र और नर्मदा प्रदेश में प्रचलित थी। वह संस्कृति योगाचारनिरत संतों द्वारा अनुप्राणित हुई थी। वैदिक संस्कृति की परम्परा के समकक्ष में जो दूसरी सांस्कृतिक परम्परा इस देश में प्राचीनकाल से प्रचलित मिलती है, वह श्रमण परम्परा है। इस श्रमण परम्परा का प्रतिनिधित्व आज यद्यपि जैन और बौद्ध—दोनों ही करते हैं, परन्तु इनमें बौद्ध से जैन प्राचीन हैं। अतएव सिन्धु आदि प्रदेशवर्ती परम्परा के उत्तराधिकारी जैन ही हो सकते हैं। उस संस्कृति को अभारतीय कहना निरी मूर्खता होगी। उसके निर्माता वे जैन श्रमण प्रतीत होते हैं, जिनकी चर्या योगमयी थी और जो अहिंसा-संस्कृति के परिष्कृत उपदेष्टा थे। मोहनजोदड़ो के पुरातत्व से यह स्पष्ट है कि वह वैदिक मान्यताओं से अछूता और निराला था। मूर्ति का बाहुल्य और यज्ञकुण्ड का सर्वथा अभाव उसे वैदिक सिद्ध नहीं करता। वैदिक ऋषियों ने योगियों की पूजा करने का न तो विधान ही किया और नहीं ही कभी उनकी मूर्तियां बनाईं। इसके विपरीत श्रमण परम्परा में केवल जैन संस्कृति में ही हम को योगनिष्ठ साधुओं की पूजा का विधान मिलता है और जैनी योगियों—पंच परमेष्ठयी की मूर्तियां बनाकर उनकी पूजा प्राचीनकाल से करते आये हैं। इस मान्यता की पुष्टि साहित्य और पुरातत्व—दोनों से होती है। जैन साहित्य में उल्लेख है कि सर्वप्रथम ऋषभपुत्र भरत ने ऋषभ एवं अन्य तीर्थंकरों की मूर्तियां बनाईं थीं। श्री सोमदेवसूरि और जिनप्रभ सूरि ने मथुरा में भ० सुपार्श्व की मूर्ति और स्तूप बनाने का उल्लेख किया है, उसकी पुष्टि कंकाल टीला से उपलब्ध बौद्धस्तूप के लेख से होती है, जिसमें उसे 'देवों द्वारा निर्मित' बताया गया है। मूलतः वह भ० पार्श्वनाथ के समय में बनाया गया था। इसी प्रकार राजा करकण्डु द्वारा निर्मापित गुफामंदिरों और मूर्तियों का अस्तित्व तेरापुर में आज भी मिल रहा है। इन मूर्तियों का निर्माणकाल ईस्वी सन् से पहले आठवीं शताब्दी तक पहुँचता है। उपरान्त सम्राट् खारवेल के हाथीगुफा वाले शिलालेख से भी स्पष्ट है कि जिन-मूर्तियां नन्दराजाओं के बहुत पहले से निर्माण की जाने लगी थीं,—यदि ऐसा न होता तो नन्दराज कलिङ्ग भग्न जिन की मूर्ति कैसे मगध ले जाता? उस पर लोहानीपुर पटना से जो भग्न दिगम्बर जिन प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं, उनमें से एक की पालिश मौर्यकालीन है। इस कारण जायसवालजी ने उसे मौर्यकालीन प्रतिमा माना था और उसकी तुलना हड़प्पा से प्राप्त भग्न मूर्ति से की थी, जिसका केवल धड़ ही मिला है। उन्होंने दोनों को समान पाया था। इसका अर्थ यह हो सकता है कि मोहनजोदड़ो व हड़प्पा के लोग भी वैसी ही मूर्तियां बनाते थे, जैसे कि जिन-मूर्तियां हैं। प्रो० रामप्रसाद चन्दा ने तीर्थंकर ऋषभ की मूर्ति की तुलना मोहनजोदड़ो की मुद्राओं पर अंकित आकृतियों से की थी और उनको ऋषभ-प्रतिमा का पूर्णरूप माना था। मारशल साहब कीपुस्तक 'मोहनजोदड़ो' में प्लेट नं० १३ पर जिस मूर्ति नं० १५-१६ का चित्र दिया है, उसे कोई भी जैन देखते साथ ही कहेगा कि वह तीर्थंकर सुपार्श्व वा पार्श्व की मूर्ति है। नागफणमंडित पद्मासन ध्यानमग्न मूर्तियां केवल जिनेन्द्र सुपार्श्व और पार्श्व की ही मिलती हैं। प्रो० डॉ० प्राणनाथ का यह मत है कि मोहनजोदड़ो में जिन देवताओं की पूजा होती थी, उनमें जैन देवता भी हैं। मुद्रा नं० ४४६ पर उन्होंने 'जिनेश्वर' (जिनइइसरः) वाक्य भी पढ़ा है। सर्वोपरि मोहनजोदड़ों की मुद्राओं पर अंकित मूर्तियां दिगम्बर योगियों की हैं, जो प्रायः सभी कायोत्सर्ग मुद्रा और नासाग्रदृष्टियुक्त ध्यानरत योगियों की हैं। जैन योगियों में जहाँ ऋषभदेवजी का वर्णन आया है, वहां उनके कायोत्सर्ग आसन में खड़े रहकर छै महीने तक तप करने का उल्लेख है। वे न तो नेत्रों को पूरा-पूरा खुला रखते थे और न उन्हें पूरा बंद ही रखते थे—अर्धोन्मीलित नेत्रों से वे नासिका के अग्रभाग पर अपनी दृष्टि लगाये रखते थे। जैन संघ में ज्ञान-ध्यान का यह आसन और विधि तीर्थंकर ऋषभ के समय से ही प्रचार में है। मोहनजोदड़ो के योगी ऋषभ भगवान के बताये हुये योगधर्म का अभ्यास करते हुये प्रतीत होते हैं। 'भागवत' में भी ऋषभदेव को योगधर्म का आदि प्रचारक लिखा है।

ऋषभादि तीर्थङ्कर काल्पनिक नहीं हैं

कोई विद्वान् तीर्थङ्करों की बड़ी-बड़ी आयु-काय का वर्णन जैन पुराणों में पढ़कर उन्हें काल्पनिक कहने लगते हैं, परन्तु वे भूलते हैं। प्राणीशास्त्रविदों का यह मत है कि पूर्वकाल के प्राणियों कीआ यु-काय उत्तरोत्तर बढ़ी-चढ़ी थी। ऐसे-ऐसे अस्थिपिंजर मिले हैं, जिनकी तुलना आज के किसी भी जीव-जन्तु से नहीं की जा सकती! जैन पुराणकारों ने प्राणीशास्त्र के इस वैज्ञानिक नियमानुकूल तीर्थङ्करों की आयुकाय का विशेष वर्णन किया, तो वह ठीक ही है। उस पर जैन अंकगणना के अनुसार वह उल्लेख किये गये हैं, जो लौकिक और अलौकिक रूप में मिलती हैं। पूर्व और सागर की संख्या लौकिक-गणना से परे अलौकिक उपमा-गणित के अङ्क हैं। जैनाचार्यों को उन उपमाओं से किस प्रकार के वर्षों को ध्वनित करने का भाव था, यह अन्वेषण करने की चीज़ है। इतना तो निर्विवाद सिद्ध है कि पूर्व और सागरों की गणना साधारण अङ्कगणना से विशेष और निराली थी। ठीक वैसी ही वह विचित्र अङ्क-गणना थी, जैसे कि आज वैज्ञानिकों द्वारा प्रकाश-वर्षों (Light years) आदि का प्रयोग किया जाता है। तीर्थङ्करों की नियत संख्या २४ है और वह इस कारण कि एक कल्पकाल में ज्योतिषमंडल की चक्रगति में सर्वोत्कृष्ट कालयोग २४ ही आकर पड़ते हैं, जिनमें धर्म चक्रवर्तियों का जन्म हो सकता है। अतएव २४ नियत संख्या पर आशङ्का करना भी व्यर्थ है। उसपर प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थकाल की घटनायें भी जैन पुराण में वर्णित की गई हैं। यदि यथार्थ में तीर्थङ्करों की कल्पना ही की गई होती, तो प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थकाल की घटनायें कहां से उटाली गई? वे घटनायें इस बात की साक्षी हैं कि अलग-अलग काल में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुरूप प्रत्येक तीर्थङ्कर का जन्म हुआ था, जिन्होंने लुप्त-से हुये धर्म का उद्धार किया था। सर्वप्रथम दसवें तीर्थङ्कर शीतलनाथ के समय में कुदान की प्रवृत्ति रूप मिथ्या मत का प्रचार किया गया—ब्राह्मणों ने स्वर्ण-कन्या, गो आदि दान लेना भी स्वीकारा। यद्यपि इससे भी पहले भ० ऋषभ के समय में ही मरीचि द्वारा सांख्य सदृश किसी दर्शन और मत का प्रचार किया जा चुका था, परन्तु ऋषभादेशना के होते ही वह टिक न सका। इसके पश्चात् सबसे बड़ी घटनायें बीसवें तीर्थङ्कर मुनि सुव्रतनाथ के तीर्थकाल में घटित हुई थीं। पर्वत-नारद का प्रसंग इसी समय घटित हुआ, जिसके कारण पशुबलि, गो-अश्वमेधादि यज्ञों का प्रचलन होगया। अहिंसा-संस्कृति के अनन्य भक्तों ने इस हिंसक प्रथा को मिटाने का प्राण-पन से उद्योग चालू रक्खा। निम-नेमि-पार्श्व और महावीर तीर्थङ्करों की सतत अहिंसा-देशना का यह सुफल हुआ कि भारतवर्ष से इन रक्ताभिषिक्त हिंसक यज्ञों का अन्त होगया और प्राचीन शालिधानों से यज्ञ करने की प्रथा का प्रचलन पुनः भारतभू पर हुआ। हिंसक यज्ञों की विच्छित्ति एक देव के सहयोग से हुई बताकर जनपुराणकार ब्राह्मणों के देव-दैत्य संघर्ष के प्रति ही इशारा कर रहे हैं। जहां अनेक राजा लोग इस हिंसक पशु-बलि प्रथा के अनन्य संरक्षक और प्रचारक थे, वहां रावण-हनूमान आदि विद्याधरवंश के जैन सम्राट् अहिंसा धर्म के नेता और रक्षक थे। रावण आदि विद्याधर राजाओं ने उन हिंसक यज्ञों का विनाश किया था और उनके शासन को भारी धक्का पहुँचाया था—यह बात 'पद्मपुराण' आदि प्राचीन जैन ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होती है। कदाचित रावण धर्मच्युत न होता और सीताजी का अपहरण न करता तो अहिंसा-संस्कृति का प्राबल्य बहुत पहले ही होगया होता। सारांशतः जैन तीर्थङ्करों के व्यक्तित्व और अस्तित्व में शङ्का करना व्यर्थ है। आज से ढाई हज़ार वर्षों पहले के लोग भी उनके अस्तित्व में विश्वास रखते थे; क्योंकि हम देख चुके हैं, उस प्राचीन समय में ऋषभ, सुपार्श्व, पार्श्व आदि तीर्थङ्करों की मूर्तियां बन चुकीं थीं। अतएव यह मान्यता निराधार नहीं है कि मोहनजोदड़ो की सिंधु संस्कृति को अनुप्राणित करने वाले योगी जैन श्रमण ही थे।

प्राचीनकाल में जैनवादीगण अपने धर्म-चिन्हों से लक्षित मुद्राओं का प्रयोग वाद प्रसंगों और अर्थव्यवहार में करते थे। किसी को शास्त्रार्थ के लिये ललकारने के समय वह सार्वजनिक स्थान, किसी चबूतरा आदि पर अपना

दुपट्टा (पीतवस्त्र) और धर्ममुद्रा रख देते थे । साथ ही ऐसे सिक्के भी मिले हैं, जिनपर जैन चिन्ह अङ्कित हैं। यह चिन्ह जैनों के अपने हैं और इनका प्रचलन जैन समाज में एक अत्यन्त प्राचीन काल से चला आरहा है । तीर्थङ्कर मूर्तियों को पहिचानने के लिये विशेष चिन्हों का प्रयोग जैनों ने किया है । कुछ विद्वान किन्हीं प्राचीन मूर्तियों पर चिन्ह न पाकर यह अनुमान करते हैं कि मूर्तियों को चिन्हित करने की प्रथा बाद में चली है ; परन्तु यह धारणा निर्भ्रान्त नहीं है । तेरापुर में करकुंड द्वारा निर्मित गुफाओं में जो जिनमूर्तियां हैं, उन पर चिह्न मिलते हैं। पार्श्वनाथ की मूर्तियां सर्पफण मंडित हैं, तो महावीर मूर्ति सिंहचिह्न द्वारा लक्षित है। एक पार्श्वमूर्ति के आसन में हिरण-सिंह आदि पशुओं को अङ्कित करके भगवान के अहिंसक प्रभाव को ही प्रदर्शित किया गया है । मथुरा के कंकालीटीला से जो कुशान आदि काल की जिन प्रतिमायें मिलीं हैं, उन पर भी चिह्न उकेरे हुये मिले हैं । कुमारमिता की बनवाई हुई एक मूर्ति पर जहां कोई चिह्न नहीं है, वहां की स्थिरा द्वारा निर्मित पार्श्व प्रतिमा पर सर्प का आकार है । इससे भी पहले की एक भग्न प्रतिमा कंकालीटीला से प्राप्त हुई थी, जिसके आसन पर दो सिंह और दो वृषभ अंकित हैं । वृषभ चिह्न की स्थिति इस प्रतिमा को वृषभ या ऋषभदेव की सिद्ध करती है । ऐसी ही कई मूर्तियां हैं, जिनसे यह सिद्ध है कि कुशाणकाल से भी पहले की जिन मूर्तियों पर चिह्न अङ्कित किये जाते थे । मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य जैन इमारतों पर भी स्वास्तिक, त्रिशूल, वज्र, शंख, वृषभ, हस्ति, कलश, हंस, हरिण इत्यादि चिह्न मिलते हैं । दूसरी शती पूर्वेसा की बनी हुई अनन्त गुफा (ओड़ीसा) की दीवाल पर त्रिशूल और स्वस्तिक के चिह्न तथा आंगन में जन मूर्तियां मिलती हैं । दक्षिण भारत में भी चिह्नाङ्कित जिन मूर्तियां मिली हैं, जिनपर उकेरे हुये लेखों की लिपि ईस्वी पूर्वकाल की ब्राह्मी लिपि है । इन उदाहरणों से जैन मान्यता की पुष्टि होती है और जैन चिह्नों की प्राचीनना का बोध । ठीक वैसे ही चिह्न और ध्यानी दिगम्बर योगियों की आकृतियाँ मोहनजोदड़ो से उपलब्ध मुद्राओं पर भी मिलती हैं । अत: यह मानना अनुचित नहीं है कि सिंधु उपत्यकाकी योगाचार विशिष्ट संस्कृति के निर्माता ऋषभ तीर्थङ्कर परम्परा के जैन श्रमण ही थे ।

सिंधु में वैदिक आर्यों से भिन्न सुसंस्कृत अध्यात्मवादी समाज

अधुना विद्वानों का यह मत है कि वैदिक आर्य मध्य एशिया से आकर भारत में बसे थे । उनके मुख्य देवता इन्द्र, वरुण, मरुत् आदि थे । बेबीलोनिया की संस्कृति में भी इन्द्र, वरुण, मरुत आदि की मान्यता का प्राबल्य था । 'संभमवतः मूल में वैदिक संस्कृति का उद्गम इस बेबीलोनियन संस्कृति से हुआ है'—ऐसा भी अनुमान किया जाता है । निस्सन्देह भारतीय पुरातत्व से यह स्पष्ट है कि इन वैदिक आर्यों के आगमन के बहुत पहले से भारत में एक सुसंस्कृत अध्यात्मवादी समाज का अस्तित्व था । विद्वज्जन उनको द्रविड़ अथवा सुमेर या सु जाति का अनुमान करते हैं और मोहनजोदड़ो के निर्माता भी वे ही द्रविड़ और सु लोग माने गये हैं। सौभाग्यवश इन दोनों जातियों के लोगों का सम्पर्क भी जैन धर्म से मिलता है । सु लोगों का आवासस्थान आज भी सौराष्ट्र कहलाता है, जो जैनों का प्रमुख क्षेत्र है । प्राचीनकाल में सु-राष्ट्र के जैन लोग बेबीलोनिया गये और वहां उन्होंने जैन संस्कृति का प्रचार किया था । काठियावाड़ से जो एक ताम्रपत्र मिला है, उससे भी इस बात की पुष्टि होती है । इस ताम्रपत्र को प्रो० प्राणनाथ ने पढ़कर प्रगट किया कि सु जाति का नृप नभचन्द्र राज (Nebuchadnazzar I, circa 1140 B. C.) रेवा-नगर का भी स्वामी था, वह रैवत (गिरिनार) तीर्थ पर नेमिजिन की वंदना करने आया था । अतएव यदि सुलोग ही मोहनजोदड़ो की सभ्यता के निर्माता हों, तो वह भी जैनधर्म से सिक्त थे । द्रविड़ों के विषय में भी यही सिद्ध होता है । ब्राह्मणों ने उनको वृषल क्षत्रिय इसी कारण कहा है कि वे वैदिक क्रियाकाण्ड को नहीं मानते थे । मनु उनको व्रात्य क्षत्रिय कहते हैं और यह व्रात्य प्राचीन जैन थे, यह सिद्ध किया जा चुका है । जैन मान्यता के अनुसार प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव के पुत्र द्राविड़ की सन्तान द्राविड़ कहलाई थी । द्राविड़ों में अनेक राजा जैन मुनि हुये थे,

जिनको आज भी जैन लोग सिद्ध परमात्मा के नाम से पूजते हैं । इसके अतिरिक्त आज भी द्राविड़ों में एक जाति 'माकल' कहलाती है, जिसे विद्वज्जन 'मर्कट' का अपभ्रष्ट रूप मानकार उसे वानरवंशियों की सन्तान मानते हैं । यह वानरवंशी जैन धर्मानुयायी थे । वाल्मीकि रामायण में साम्प्रदायिकता के कारण उनका चित्रण पशु रूप में किया गया है । तामिल भाषा के प्राचीन व्याकरण ग्रन्थ 'ठोल्कपय्यम्' से सिद्ध है कि द्राविड़ लोग आर्यों के समान ही सुसंस्कृत थे और जैन सिद्धान्त के ज्ञाता भी थे । निस्सन्देह द्राविड़ों में जैनधर्म की मान्यता अत्यधिक रही है । मेजरजनरल जे० जी० आर० फरलाना सा० का यह लिखना ठीक ही है कि ईस्वी पूर्व १५०० से ८०० वर्षों जैसे प्राचीन काल से समस्त पश्चिमीय, उत्तरीय और मध्य भारत पर द्राविड़ों का शासनाधिकार था । यद्यपि द्राविड़ों में वृक्ष, सर्प और फलिक पूजा का प्रचलन था, किन्तु उनमें एक योग निरत धर्म अर्थात् जैन धर्म का भी प्रचार था । इस अवस्था में मोहन-जोदड़ो की मुद्राओं और मूर्तियों पर जिन योगियों की आकृतियां अङ्कित हैं, वे जैन श्रमण थे । पाश्चात्य विद्वान भी इस मान्यता को तथ्यपूर्ण मानने लगे हैं ।

सचमुच वदिक आर्य मूलतः भारत के निवासी हैं ही नहीं—वे तो मध्य एशिया से आकर भारत में बसे हैं । उनके आगमन के पहले से ही भारत में द्राविड़ और विद्याधर आर्यों का निवास था, जिनमें जैनधर्म प्रचलित था ! इस प्रकार भारतीय इतिहास का आदिकाल 'जैन' ही प्रमाणित होता है । विद्वज्जनों को इस पर और अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है ।

द्वितीय जैनकाल

प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव के उपरान्त बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत नाथ, किंवा बाईसवें तीर्थंकर नेम्नाथ के समय तक भारत की विचारधारा जैन तीर्थंकरों और श्रमणों द्वारा ही अनुशासित रही । अतएव भारतीय इतिहास का आदिकाल जहाँ "जैनकाल" है, वहाँ ही दूसरा "जैनकाल" पूर्वसा की पहली-दूसरी शताब्दियों से प्रारम्भ होता है । भ० पार्श्वनाथ के उत्तरावर्ती काल को यद्यपि "बौद्धकाल" कहने की प्रथा है, परन्तु यह निभ्रान्त नहीं है; क्योंकि उस काल में एक ओर वैदिक परिव्राजकों का प्राबल्य था, तो दूसरी ओर श्रमणों में निर्ग्रन्थ-अचेलक-जन, आजीविक आदि संघनायक लोक का नेतृत्व कर रहे थे । बौद्ध संघ तो नवजात शिशु के समान उठता आ रहा था । स्वयं बौद्ध-ग्रन्थों से इस बात का बोध होता है कि बौद्ध संघ का निर्माण तीर्थक अर्थात् जैन संघ के नियमों के आधार से हुआ था । स्वयं म० गौतम बुद्ध एक समय पार्श्वपरम्परा के जैन मुनि रहे थे । अतः उस समय बौद्धों की अपेक्षा जन प्रबल हो रहे थे । अनेक भारतीय शासक गण जैन मुनि हुये थे और जिनको बौद्ध कहा गया है, वे भी जैनों का आदर और संरक्षण करते थे । नन्दवंश के प्रमुख शासक जैसे नन्द वर्द्धन जैन ही थे—उनके मंत्री भी जैन थे । मौर्यों में चन्द्रगुप्त, सम्प्रति और सालिसूक पूर्णतः जिनेन्द्र भक्त थे । सम्राट अशोक ने अकबर के समान समुदार नीति को अपनाया था । अतएव यह कुछ ठीक नहीं जंचता कि यह काल "बौद्ध" कहा जावे,—इसे "अहिंसा-काल" कहना अधिक युक्तिसंगत है ।

"अहिंसाकाल" में दयाधर्म भारतभूमि के कण-कण में व्याप्त हो गया । वैदिकी पुरोहितों को यह अखरा और प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई, जिसने संघर्ष का रूप धारण किया । मौर्य सेनापति ने विद्रोह का झंडा ऊंचा किया । कण्ववंश अधिकृत होकर आगे आया, जिसने वैदिक क्रियाकाण्ड को पुनर्जीवित किया । राजसूय—अश्वमेधादि पशुयज्ञ रचे गये । कलिङ्गसम्राट् ऐल खारवेल जैनधर्म के स्तंभ थे । उनको यह असह्य हुआ । उन्होंने मगधविजय करके अहिंसाधारा के वेग को स्थिर रखने का प्रयत्न किया । किन्तु यह संघर्ष इतने से मिटा नहीं । आन्तरिक द्रोह बढ़ता गया—जैन जीवन दूभर हो गया—जैनों पर अत्याचार होने लगे । गर्दभिल्ल जैसे दुष्ट राजाओं ने जैन साध्वियों का बलात् अपहरण करना प्रारम्भ किया । भारत के क्षत्रियों को काठ मार गया । किसी का यह साहस न था कि

तत्कालीन सम्राटों के अत्याचारों का विरोध करने के लिये आगे बढ़ता! साम्राज्यवाद की नृशंसता का अन्त करना अनिवार्य था। जन साधु कालक ने इस का बीड़ा उठाया—अहिंसक वीर अत्याचार को कैसे सहन करता? कालक महाराज शकस्थान गये और वहाँ के शकशाही सरदारों को अपना शिष्य बना लाये। वे शकराजा जैन धर्म के संरक्षक हुए—उन्होंने साम्राज्यवाद की नृशंसता का अन्त किया। वे भारत में भारत के होकर ही रहे। अहिंसा संस्कृति फिर एक बार चमक उठी! जैनाचार्यों ने प्राणीमात्र को अहिंसाधर्म का अनुयायी बनाया। ब्राह्मणों के पुरोहितवाद का गढ़ टूट गया। उनकी कुलीनता का मद दयामय समता में बदल गया। देशी-विदेशी सभी लोग धर्म-कर्म करने में लीन हो गये। जैनधर्म पुनः एक बार चमक उठा। भारतीय इतिहास में यह दूसरा "जैनकाल" था।

इस द्वितीय "जैनकाल" में जैन नियमों का समादर भारत के सभी लोगों ने किया। 'जैनं जयतु शासनं' लक्षित विजय-वैजयन्ती पुन: फहराने लगी। वैदिकी पुरोहितों ने इसे अपने धर्म का ह्रास माना; साम्प्रदायिक और वर्गगत विषमता का नाश जो इसमें हुआ था। आंध्र, शक, भार, पुलिन्दादि राजाओं ने जैन और बौद्ध धर्मों में दीक्षित होकर श्रमणपरम्परा को आगे बढ़ाया था। इसी कारण गुणाढ्य ने लिखा कि म्लेच्छों ने ब्राह्मणों को नष्ट किया और उनके यज्ञयाग क्रियाओं में बाधायें उपस्थित की थीं।' (कथासरित्० १८) किन्तु इसका अर्थ ब्राह्मणों के भौतिक नाश की अपेक्षा सांस्कृतिक नाश मानना अधिक उपयुक्त है। 'महाभारत' (वनपर्व अ० १८८ व १९०) के अनुसार स्व० मम० डा० जायसवाल ने सन् १५० से २०० ई० तक भारत में म्लेच्छ राज्य होना लिखा है, जिसमें वर्णाश्रमी वैदिकधर्म का ह्रास हुआ बतलाया है। इस काल के पुरातत्व में जायसवाल जी को हिन्दू धर्म के अवशेषों का अभाव खटका और उन्होंने माना कि उस समय हिन्दू पूजा (Orthodox Worship) का प्रचलन नहीं था। इस समय का जैन पुरातत्व कलिंग, मथुरा, गिरि नगर, सांची आदि स्थानों से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुआ है। अतएव इसकाल को द्वितीय "जैनकाल" लक्षित करना इतिहास सिद्ध प्रतीत होता है।

इस काल के उपरान्त यद्यपि उत्तरभारत में जैनधर्म इतना प्रबल फिर न हो पाया कि वह भारतीयों पर अनुशासन करता, परन्तु उसकी अहिंसा संस्कृति भारत के कण-कण में व्याप्त हो गई। परिणामतः प्रयत्न करने पर भी वैदिकी हिंसा को प्रोत्साहन न मिला। भारत का शिष्ट समाज प्राय: समूचा का समूचा अहिंसक और शाकाहारी रहा। गुप्त काल में जैनमठों की बहुलता रही, जिनमें आचार्यों और उपाध्यायों द्वारा धर्म एवं अहिंसा संस्कृति का प्रचार किया गया। उपरान्त १२ वीं से १५ वीं शती के मध्यवर्ती काल में जैन धर्म पुनः गौरवशाली हुआ। जैन मन्दिरों में इस काल की प्रतिष्ठित हुई मूर्तियां अत्यधिक हैं और इस काल का रचा हुआ जैन साहित्य भी काफी मिलता है। राजपूतों में जैनधर्म की प्रगति हुई थी। उनमें से कोई-कोई शासक जैनी हुये और उनके मंत्री तो अधिकांश जन ही थे। किन्तु मुसलमानों के आक्रमण और अत्याचारों ने जैन को हतप्रभ बना दिया। जैनों पर वैदिकी हिन्दुओं के रीति-रिवाजों का प्रभाव पड़ा। जैन आधे वैष्णव-से हो गये। कहीं-कहीं जैन और वैष्णवों में विवाह सम्बन्ध भी होने लगे। इस सम्बन्ध को दृढ़ करने में प्रेरक कारण जैनों के अहिंसा सिद्धान्त की सार्वभौम प्रबलता और मुसलमानों का आतंक था।

दक्षिण भारत के जैनकाल

दक्षिण भारत द्राविड़ लोगों का घर रहा है; यद्यपि एक समय द्राविड़ सारे भारत में फैले हुये थे। इन लोगों में जैनधर्म की मान्यता अति प्राचीन काल से रही है। जैन मान्यता के अनुसार भ० ऋषभदेव के द्वारा ही जन धर्म का प्रचार और सभ्यता का प्रसार दक्षिण भारत में हो गया था। इतिहास भी इस मत का पोषण करता है, क्योंकि दक्षिण के प्राचीन राजवंश (१) चेर, (२) चोल, (३) पांड्य जैन ही थे और उन्होंने जनधर्म के अभ्युदय में पूरा योग

दिया था। यही कारण था कि उस समय के साहित्य की धारा को जनाचार्यों ने सुचारु रीति से प्रवाहित किया था। विद्वानों ने तामिल और कन्नड़ साहित्य के आदि प्रणेता जैन ही माने हैं और उन साहित्यों के प्रारम्भिक काल को 'जन' नामांकित किया है। अतएव राजनैतिक दृष्टि से भी उस ऐतिहासिक काल को "जैन" कहना असंगत नहीं है। किन्तु यह सुन्दर स्थिति बहुत समय तक स्थिर न रही। ब्राह्मण और बौद्धों के प्रचार से प्रतिक्रिया प्रारंभ हुई—जैन हतप्रभ हो गये।

दक्षिण भारत में जैनों की यह दयनीय स्थिति श्री सिंहनन्दि आचार्य को सहन न हुई। उत्तर भारत में कण्वादि राजवंशों के प्राबल्य से आतंकित होकर कई राजपुत्र दक्षिण भारत को चले गये थे। सिंहनन्दि आचार्य ने इन्हीं में से एक भ्रातृ-युगल को राजनिष्ठ बनाया। ददिग और माधव राजा हुये, जिन्होंने गंग वंश की स्थापना की और जैन धर्म के लुप्त गौरव को पुनः प्रतिष्ठापित किया। "गंग साम्राज्य का स्वर्णकाल" दक्षिण भारत में द्वितीय "जैनकाल" सिद्ध हुआ।

किन्तु प्रकृति उत्थान-अवसान का झूला है। भ० महावीर की भविष्यवाणी में उसका निर्देश पहले ही हो चुका था। जैनधर्म का क्रमशः ह्रास अन्यवर्ती क्रमिक ह्रास के साथ-साथ होता ही चलेगा। जहाँ वीर निर्वाण से एक हज़ार वर्षों के अन्तर से ह्रास होता चलेगा, वहाँ ही प्रति पांच सौ वर्षों की अवधि में धर्मोत्कर्ष का योग भी जुटेगा—यह वीर देशना सच होती आ रही है। ह्रास की अपेक्षा उत्थान के सुअवसर अधिक हैं। अतएव जैन नेतागण कभी भी हताश नहीं हुये। गंगों के पश्चात् दक्षिण में जैनों का महत्व लुप्त हो गया। किन्तु सुदत्ताचार्य ने वीरवर सल को आगे बढ़ाकर 'होयसल' राजवंश की स्थापना की और जनधर्म के अवसान का मार्ग ही रोक दिया। होयसलकाल में जैनधर्म पुनः चमका। यह भी स्वर्णिम "जन युग" था। उत्तरभारत में भी इन युगों में जैन गौरवशाली हुये प्रतीत होते हैं।

आशा है, विद्वज्जन इस विषय पर समुचित ऊहापोह करके इतिहास को परिष्कृत करेंगे।

———

भक्तियोग और स्तुति-प्रार्थनादि रहस्य

लेखक—पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार

जैनधर्म के अनुसार, सब जीव द्रव्यदृष्टि से अथवा शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा परस्पर समान हैं—कोई भेद नहीं, सबका वास्तविक गुण-स्वभाव एक ही है। प्रत्येक जीव स्वभाव से ही अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त-सुख और अनन्तवीर्यादि अनन्त शक्तियों का आधार है—पिण्ड है। परन्तु अनादि काल से जीवों के साथ कर्म-मल लगा हुआ है, जिसकी मूल प्रकृतियाँ आठ, उत्तर प्रकृतियाँ एकसौ अड़तालीस और उत्तरोत्तर प्रकृतियां असंख्य हैं। इस कर्म-मल के कारण जीवों का असली स्वभाव आच्छादित है, उनकी वे शक्तियाँ अविकसित हैं और वे परतन्त्र हुए नाना प्रकार की पर्यायें धारण करते हुए नज़र आते हैं। अनेक अवस्थाओं को लिए हुए संसार का जितना भी प्राणिवर्ग है वह सब उसी कर्म-मल का परिणाम है—उसीके भेद से यह सब जीव जगत् भेदरूप है, और जीव की इस अवस्था को 'विभाव-परिणति' कहते हैं। जबतक किसी जीव की यह विभाव-परिणति बनी रहती है तब तक वह संसारी कहलाता है और तभी तक उसे संसार में कर्मानुसार नाना प्रकार के रूप धारण करके परिभ्रमण करना तथा दुःख उठाना होता है। जब योग्य साधनों के बल पर यह विभाव-परिणति मिट जाती है—आत्मा में कर्म-मल का सम्बन्ध नहीं रहता—और उसका निज स्वभाव सर्वाङ्ग-रूप से अथवा पूर्णतया विकसित हो जाता है, तब वह जीवात्मा संसार-परिभ्रमण से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है और मुक्त, सिद्ध अथवा परमात्मा कहलाता है, जिसकी दो अवस्थाएं हैं—एक जीवन्मुक्त और दूसरी विदेहमुक्त। इस प्रकार पर्याय दृष्टि से जीवों के 'संसारी' और 'सिद्ध' ऐसे मुख्य दो भेद कहे जाते हैं। अथवा अविकसित, अल्पविकसित, बहुविकसित और पूर्ण-विकसित ऐसे चार भागों में भी उन्हें बाँटा जा सकता है। और इसलिये जो अधिकाधिक विकसित हैं वे स्वरूप से ही उनके पूज्य एवं आराध्य हैं, जो अविकसित या अल्पविकसित हैं, क्योंकि आत्मगुणों का विकास सबके लिए इष्ट है।

ऐसी स्थिति होते हुए यह स्पष्ट है कि संसारी जीवों का हित इसी में है कि वे अपनी विभाव-परिणति को छोड़कर स्वभाव में स्थिर होने अर्थात् सिद्धि को प्राप्त करने का यत्न करें। इसके लिये आत्म-गुणों का परिचय चाहिये, गुणों में वर्द्धमान अनुराग चाहिए और विकास-मार्ग की दृढ़ श्रद्धा चाहिए। बिना अनुराग के किसी भी गुण की प्राप्ति नहीं होती—अननुरागी अथवा अभक्त-हृदय गुण ग्रहण का पात्र ही नहीं, बिना परिचय के अनुराग बढ़ाया नहीं जा सकता और विकास मार्ग की दृढ़ श्रद्धा के गुणों के विकास की ओर यथेष्ट प्रवृत्ति ही नहीं बन सकती। और इस लिये अपना हित एवं विकास चाहने वालों को उन पूज्य महापुरुषों अथवा सिद्धात्माओं की शरण में जाना चाहिये—उनकी उपासना करनी चाहिये, उनके गुणों में अनुराग बढ़ाना चाहिये और उन्हें अपना मार्ग-प्रदर्शक मानकर उनके नक़शे क़दम पर—पद-चिह्नोंपर—चलना चाहिये अथवा उनकी शिक्षाओं पर अमल करना चाहिये, जिनमें आत्मा के गुणों का अधिकाधिक रूप में अथवा पूर्णरूप से विकास हुआ हो, यही उनके लिये कल्याण का सुगम मार्ग है। वास्तव में ऐसे महान् आत्माओं के विकसित आत्म-स्वरूप का भजन-कीर्तन ही हम संसारी जीवों के लिए अपने

आत्मा का अनुभव और मनन है। हम 'सोऽहं' की भावना द्वारा उसे अपने जीवन में उतार सकते हैं और उन्हीं के—अथवा परमात्मा-स्वरूप के—आदर्श को सामने रख कर अपने चरित्र का गठन करते हुए अपने आत्मीय गुणों का विकास सिद्ध करके तद्रूप हो सकते हैं। इस सब अनुष्ठान में उन सिद्धात्माओं की कुछ भी ग़रज़ नहीं होती और न इसपर उनकी कोई प्रसन्नता ही निर्भर है—यह सब साधना अपने ही उत्थान के लिये की जाती है। इसीसे सिद्धि (स्वात्मोपलब्धि) के साधनों में 'भक्ति-योग' को एक मुख्य स्थान प्राप्त है जिसे 'भक्ति-मार्ग भी कहते हैं।

सिद्धि को प्राप्त हुए शुद्धात्माओं की भक्ति द्वारा आत्मोत्कर्ष साधने का नाम ही 'भक्ति-योग' अथवा 'भक्ति-मार्ग' है और भक्ति उनके गुणों में अनुराग को, तदनुकूल वर्त्तन को अथवा उनके प्रति गुणानुरागपूर्वक आदर-सत्कार रूप प्रवृत्ति को कहते हैं, जोकि शुद्धात्मवृत्ति की उत्पत्ति एवं रक्षा का साधन है। स्तुति, प्रार्थना, वन्दना, उपासना, पूजा, सेवा, श्रद्धा और आराधना ये सब भक्ति के ही रूप अथवा नामान्तर हैं। स्तुति, पूजा, वन्दनादि के रूप में इस भक्तिक्रिया को 'सम्यक्त्ववर्द्धिनी' क्रिया बतलाया है, 'शुभोपयोगि चारित्र' लिखा है और 'कृतिकर्म' भी लिखा है, जिसका अभिप्राय है 'पापकर्म-छेदन का अनुष्ठान'। सद्भक्ति के द्वारा औद्धत्य तथा अहंकार के त्यागपूर्वक गुणानुराग बढ़ने से प्रशस्त अध्यवसाय की—कुशल परिणाम की—उपलब्धि होती है और प्रशस्त अध्यवसाय अथवा परिणामों की विशुद्धि से संचित कर्म उसी तरह नाश को प्राप्त होता है, जिस तरह काष्ठ के एक सिरे में अग्नि के लगाने से वह सारा ही काष्ठ भस्म हो जाता है। इधर संचित कर्मों के नाश से अथवा उनकी शक्ति के शमन से गुणावरोधक कर्मों की निर्जरा होती या उनका बल-क्षय होता है तो उधर उन अभिलषित गुणों का उदय होता है, जिससे आत्मा का विकास सधता है। इसीसे स्वामी समन्तभद्र जैसे महान् आचार्यों ने परमात्मा की स्तुति रूप में इस भक्ति को कुशल परिणाम का हेतु बतलाकर इसके द्वारा श्रेयोमार्ग को सुलभ और स्वाधीन बतलाया है और अपने तेजस्वी तथा सुकृती आदि होने का कारण भी इसी को निर्दिष्ट किया है, और इसीलिये स्तुति-वन्दनादि के रूप में यह भक्ति अनेक नैमित्तिक क्रियाओं में ही नहीं, किन्तु नित्य की षट् आवश्यक क्रियाओं में भी सम्मिलित की गई है, जोकि सब आध्यात्मिक क्रियायें हैं और अन्तर्दृष्टि पुरुषों (मुनियों तथा श्रावकों) के द्वारा आत्मगुणों के विकास को लक्ष्य में रखकर ही नित्य की जाती हैं और तभी वे आत्मोत्कर्ष की साधक होती हैं। अन्यथा, लौकिक लाभ पूजा-प्रतिष्ठा, यश, भय, रूढ़ि आदि के वश होकर करने से उनके द्वारा प्रशस्त अध्यवसाय नहीं बन सकता और न प्रशस्त अध्यवसाय के बिना संचित पापों अथवा कर्मों का नाश होकर आत्मीय गुणों का विकास ही सिद्ध किया जा सकता है। अतः इस विषय में लक्ष्य शुद्धि एवं भाव शुद्धि पर दृष्टि रखने की खास ज़रूरत है, जिसका सम्बन्ध विवेक से है। बिना विवेक के कोई भी क्रिया यथेष्ट फलदायक नहीं होती, और न बिना विवेक की भक्ति सद्भक्ति ही कहलाती है।

स्वामी समन्तभद्र का यह स्वयम्भूग्रन्थ 'स्तोत्र' होने से स्तुतिपरक है और इसलिये भक्तियोग की प्रधानता को लिये हुए है, इसमें सन्देह के लिये कोई स्थान नहीं है। सच पूछिये तो जबतक किसी मनुष्य का अहंकार नहीं मरता तबतक उसके विकास की भूमिका ही तय्यार नहीं होती। बल्कि पहले से यदि कुछ विकास हुआ भी हो तो वह भी 'किया कराया सब गया जब आया हुँकार' की लोकोक्ति के अनुसार जाता रहता अथवा दूषित हो जाता है। भक्तियोग से अहंकार मरता है, इसी से विकास-मार्ग में सबसे पहले भक्तियोग को अपनाया गया है और इसी से स्तोत्र-ग्रन्थों के रचने में समन्तभद्र प्रायः प्रवृत्त हुए जान पड़ते हैं। आप्त पुरुषों अथवा विकास को प्राप्त शुद्धात्माओं के प्रति आचार्य समन्तभद्र कितने विनम्र थे और उनके गुणों में कितने अनुरागी थे यह उनके स्तुति-ग्रन्थों से भले प्रकार जाना जाता है। उन्होंने स्वयं स्तुति-विद्या में अपने विकास का प्रधान श्रेय भक्तियोग को दिया है (पृ०११४) भगवान जिनदेव के स्तवन को भव-वन को भस्म करनेवाली अग्नि लिखा है, उनके स्मरण को क्लेश समुद्र से पार करने वाली नौका बतलाया है (पृ० ११५) और उनके भजन को लोह से पारस मणि के स्पर्श समान बतलाते हुए यह

घोषित किया है कि उसके प्रभाव से मनुष्य विशद ज्ञानी होता हुआ तेज को धारण करता है और उसका वचन भी सारभूत हो जाता है (६०)।

अब देखना यह है कि प्रस्तुत स्वयम्भू ग्रन्थ में भक्तियोग के अंगस्वरूप 'स्तुति' आदि के विषय में क्या कुछ कहा गया है और उनका क्या उद्देश्य, लक्ष्य अथवा हेतु प्रकट किया है।

लोक में 'स्तुति' का जो रूप प्रचलित है उसे बतलाते हुए और वैसी स्तुति करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए स्वामी जी लिखते हैं—

गुण-स्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्बहुत्व-कथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥८६॥
तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामाऽपि कीर्तितम् ।
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥८७॥

अर्थात् 'विद्यमान गुणों की अल्पता को उल्लङ्घन करके जो उनके बहुत्व की कथा की जाती है—उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाता है—उसे लोक में 'स्तुति' कहते हैं। यह स्तुति (हे जिन !) आप में कैसे बन सकती है ? नहीं बन सकती। क्योंकि आपके गुण अनन्त होने से से पूरे तौर पर कहे ही नहीं जा सकते हैं—बढ़ा-चढ़ाकर कहने की तो बात ही दूर है। फिर भी आप पुण्यकीर्ति मुनीन्द्र का चूँकि नाम कीर्त्तन भी—भक्तिपूर्वक नाम का उच्चारण भी—हमें पवित्र करता है, इसलिये हम आपके गुणों का कुछ—लेशमात्र—कथन (यहां) करते हैं।'

इससे प्रकट है कि समन्तभद्र की जिन-स्तुति यथार्थता का उल्लङ्घन करके गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर कहने वाली लोकप्रसिद्ध स्तुति जैसी नहीं है, उसका रूप जिनेन्द्र के अनन्त गुणों में से कुछ गुणों का अपनी शक्ति के अनुसार आंशिक कीर्त्तन करना है। और उसका उद्देश्य अथवा लक्ष्य आत्मा को पवित्र करना। आत्मा का पवित्रीकरण पापों के नाश से—मोह, कषाय तथा राग-द्वेषादिक के अभाव से होता है। जिनेन्द्र के पुण्यगुणों का स्मरण एवं कीर्त्तन आत्मा की पाप परिणति को छुड़ा कर उसे पवित्र करता है, इस बात को निम्न कारिका में व्यक्त किया गया है—

न पूजार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ ! विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥५७॥

इसी कारिका में यह भी बतलाया गया है कि पूजा-स्तुति से जिनदेव का कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि वे वीतराग हैं—राग का अंश भी उनके आत्मा में विद्यमान नहीं है, जिससे किसी की पूजा, भक्ति या स्तुति पर वे प्रसन्न होते। वे तो सच्चिदानन्दमय होने से सदा ही प्रसन्नस्वरूप हैं, किसी की पूजा आदिक से उनमें नवीन प्रसन्नता का कोई सञ्चार नहीं होता। इसलिये उनकी पूजा, भक्ति या स्तुति का लक्ष्य उन्हें प्रसन्न करना तथा उनकी प्रसन्नता द्वारा अपना कोई कार्य सिद्ध करना नहीं है और न वे पूजादिक से प्रसन्न होकर या स्वेच्छा से किसी के पापों को दूर करने में प्रवृत्त होते हैं, बल्कि उनके पुण्य-गुणों के स्मरणादि से पाप स्वयं दूर भागते हैं, और फलतः पूजक या स्तुतिकर्त्ता की आत्मा में पवित्रता का सञ्चार होता है। इसी बात को और अच्छे शब्दों में निम्न कारिका द्वारा स्पष्ट किया गया है—

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः।
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायसपथे,
स्तुयान्नत्वा विद्वान्सततमपि पूज्यं नमिजिनम् ॥

इसमें बतलाया है कि 'स्तुति के समय और स्थान पर स्तुत्य चाहे मौजूद हो या न हो और फल की प्राप्ति भी चाहे सीधी (Direct) उसके द्वारा होती हो या न होती हो, परन्तु आत्म-साधना में तत्पर साधु स्तोता की विवेक के साथ भक्ति-भावपूर्वक स्तुति करने वाले की स्तति-कुशल परिणाम की पुण्यप्रसाधक या पवित्रताविधायक शुभ भावों की कारण जरूर होती है, और वह कुशल परिणाम अथवा तज्जन्य पुण्यविशेष श्रेय फल का दाता है। जब जगत् में इस तरह से स्वाधीनता से श्रेयोमार्ग सुलभ है—स्वयं प्रस्तुत की गई अपनी स्तुति के द्वारा प्राप्त है—तब हे सर्वदा अभि पूज्य नमि जिन ! ऐसा कौन विद्वान्—परीक्षापूर्वकारी अथवा विवेकी जन—है, जो आपकी स्तुति न करे ? करे ही करे।

अनेक स्थानों पर समन्तभद्र ने जिनेन्द्र की स्तुति करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए अपने का अज्ञ (१५), बालक (३०). अल्पधी (५६) के रूप में उल्लेखित किया है। परन्तु एक स्थान पर तो उन्होंने अपनी भक्ति तथा विनम्रता की पराकाष्ठा ही करदी है, जब इतने महान् ज्ञानी होते हुए इतनी प्रौढ़ स्तुति रचते हुए भी वे लिखते हैं—

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम प्रलाप-लेशोऽल्पमतेर्महामुने !
अशेष-माहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्श इवाऽमृताम्बुधेः ॥७७॥

(हे भगवन्) आप ऐसे हैं, वैसे हैं—आपके ये गुण हैं, वे गुण हैं—इस प्रकार स्तुति रूप में मुझ अल्पमति का—यथावत् गुणों के परिज्ञान से रहित स्तोता का—यह थोड़ा सा प्रलाप है। (तब क्या यह निष्फल होगा ? नहीं।) अमृत समुद्र के अशेष माहात्म्य को न जानते और न कथन करते हुए भी जिस प्रकार उसका संस्पर्श कल्याणकारक होता है उसी प्रकार हे महामुने ! आपके महात्म्य को न जानते और न कथन करते हुए भी मेरा यह थोड़ा सा प्रलाप आपके गुणों का संस्पर्श रूप होने से कल्याण का ही हेतु है।'

इससे जिनेन्द्र-गुणों का स्पर्शमात्र थोड़ा सा अधूरा कीर्त्तन भी कितना महत्व रखता है, यह स्पष्ट जाना जाता है।

जब स्तुत्य पवित्रात्मा, पुण्य-गुणों की मूर्ति और पुण्य-कीर्त्ति हो, तब उसका नाम भी, जो प्रायः गुण प्रत्यय होता है, पवित्र होता है और इसी लिये ऊपर उद्धृत ८७वीं कारिका में जिनेन्द्र के नाम कीर्तन को भी पवित्र करने वाला लिखा है तथा नीचे की कारिका में अजित जिन की स्तुति करते हुए, उनके नाम को 'परम-पवित्र' बतलाया है और लिखा है कि आज भी अपनी सिद्धि चाहने वाले लोग उनके परम पवित्र नाम को मङ्गल के लिये—पाप को गालने अथवा विघ्नबाधाओं को टालने के लिये—बड़े आदर के साथ लेते हैं:—

अद्यापि यस्याऽजितशासनस्य सतां प्रणेतुः प्रतिमङ्गलार्थम्।
प्रगृह्यते नाम परमपवित्रं स्वसिद्धि-कामेन जनेन लोके ॥ ७ ॥

जिन अर्हन्तों का नाम-कीर्तन तक पापों को दूर करके आत्मा को पवित्र करता है, उनके शरण में पूर्ण हृदय से प्राप्त होने का तो फिर कहना ही क्या है—वह तो पाप-ताप को और भी अधिक शान्त करके आत्मा को पूर्ण निर्दोष एवं सुख-शान्तिमय बनाने में समर्थ है। इसीसे स्वामी समन्तभद्र ने अनेक स्थानों पर 'ततस्त्वं निर्मोहशरणमसि नः शान्तिनिलयः' (१२०) जसे वाक्यों के साथ अपने को अर्हन्तों की शरण में अर्पण किया है। यहां इस विषय का एक खास वाक्य उद्धृत किया जाता है, जो शरण-प्राप्ति में कारण के भी स्पष्ट उल्लेख को लिए हुए हैं—

स्वदोष-शान्त्या विहितात्म-शान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भव-क्लेश-भयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥

इसमें बतलाया है कि 'वे भगवान् शान्ति' जिन मेरे शरण्य हैं—मैं उनकी शरण लेता हूँ—जिन्होंने

अपने दोषों की—अज्ञान, मोह, तथा राग-द्वेष, काम, क्रोधादि विकारों की शान्ति करके आत्मा में परम शान्ति स्थापित की है—पूर्ण सुखस्वरूपा स्वाभाविकी स्थिति प्राप्त की है—और इसलिये जो शरणागतों की शान्ति के विधाता हैं—उनमें अपने आत्मप्रभाव से दोषों की शान्ति करके शान्ति-सुख का सञ्चार करने अथवा उन्हें शान्ति-सुखरूप परिणत करने में सहायक एवं निमित्तभूत हैं। अतः (इस शरणागति के फलस्वरूप) वे शान्ति जिन मेरे संसार परिभ्रमण का अन्त और सांसारिक क्लेशों तथा भयों की समाप्ति में कारणीभूत होवें।'

यहां शान्ति जिन को शरणागतों की शान्ति का जो विधाता (कर्त्ता) कहा है, उसके लिये उनमें किसी इच्छा या तदनुकूल प्रयत्न के आरोप की ज़रूरत नहीं है, वह कार्य्य उनके 'विहितात्मशान्ति' होने से स्वयं ही उस प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार कि अग्नि के पास जाने से गर्मी का और हिमालय के पास या किसी शीतप्रधान प्रदेश के पास पहुँचने से सर्दी का सञ्चार अथवा तद्रूप परिणमन स्वयं हुआ करता है और उसमें उस अग्नि या हिममय पदार्थ की इच्छादिक जैसा कोई कारण नहीं पड़ता। इच्छा तो स्वयं एक दोष है और वह उस मोह का परिणाम है, जिसे स्वयं स्वामीजी ने इस ग्रन्थ में 'अनन्त दोषाशय-विग्रह' (६६) बतलाया है। दोषों की शान्ति होजाने से उसका अस्तित्व ही नहीं बनता और इसलिये अर्हन्त देव में बिना इच्छा तथा प्रयत्नवाला कर्तृत्व सुघटित है। इसी कर्तृत्व को लक्ष्य में रखकर उन्हें शान्ति के विधाता कहा गया है—इच्छा तथा प्रयत्नवाले कर्तृत्व की दृष्टि से वे उसके विधाता नहीं हैं। इस तरह कर्तृत्व-विषय में अनेकान्त चलता है—सर्वथा एकान्त पक्ष जैन शासन में ग्राह्य ही नहीं है।

यहाँ प्रसङ्गवश इतना और भी बतला देना उचित जान पड़ता है कि उक्त पद्य के तृतीय चरण में सांसारिक क्लेशों तथा भयों की शान्ति में कारणीभूत होने की जो प्रार्थना की गई है, वह जैनी प्रार्थना का मूल-रूप है, जिसका और भी स्पष्ट दर्शन नित्य की प्रार्थना में प्रयुक्त निम्न प्राचीनतम गाथा में पाया जाता है—

दुक्ख-खओ कम्म-खओ समाहि-मरणंच बोहि-लाहो वि।
मम होदु जगद्बंधव ! तव जिणवर चरण-सरणेन ॥

इसमें जो प्रार्थना की गयी है उसका रूप यह है कि—हे जगत् के (निर्निमित) बन्धु जिनदेव ! आपके चरण-शरण के प्रसाद से मेरे दुःखों का क्षय, कर्मों का क्षय, समाधिपूर्वक मरण और बोधिका-सम्यग्दर्शनादिका—लाभ होवे।' और इससे यह प्रार्थना एक प्रकार से आत्मोत्कर्ष की भावना है और इस बात को सूचित करती है कि जिनदेव की शरण प्राप्त होने से—प्रसन्नतापूर्वक जिनदेव के चरणों का आराधन करने से—दुःखों का क्षय और कर्मों का क्षयादिक सुख-साध्य होता है। यही भाव समन्तभद्र की प्रार्थना का है, इसी भाव को लिये हुए ग्रन्थ में दूसरी प्रार्थनाएं इस प्रकार हैं—

"मति-प्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ !" (२५)
"मम भवताद् दुरितासनोदितम्" (१०५)
"भवतु ममाऽपि भवोपशान्तये" (११५)

परन्तु ये ही प्रार्थनाएं जब जिनेन्द्र देव को साक्षात् रूप में कुछ करने-कराने के लिये प्रेरित करती हुई जान पड़ती हैं, तो वह अलंकृतरूप को धारण किये हुए होती हैं। प्रार्थना के इस अलंकृतरूप को लिए हुये जो वाक्य प्रस्तुत ग्रन्थ में पाये जाते हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

१. पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनः (५)
२. जिन श्रियं मे भगवान् विधत्ताम् (१०)
३. ममाऽऽर्य देयाः शिवतातिमुच्चैः (१५)

४. पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे (७०)

५. श्रेयसे जिन वृष ! प्रसीद नः (७५)

ये ही सब प्रार्थनाएं चित्त को पवित्र करने, जिनश्री तथा शिवलाति को देने और कल्याण करने की याचना को लिए हुए हैं। आत्मोत्कर्ष एवं आत्मविकास को लक्ष्य करके की गयी हैं, इनमें असंगतता तथा असंभाव्य जैसी कोई बात नहीं है—सभी जिनेन्द्रदेव के सम्पर्क तथा शरण में आने से स्वयं सफल होने वाली अथवा भक्ति-उपासना के द्वारा सहज साध्य हैं—और इसलिए अलंकार की भाषा में की गई एक प्रकार की भावनायें ही हैं। इनके मर्म को अनुवाद में स्पष्ट किया गया है। वास्तव में परम वीतराग देव से विवेकी जन की प्रार्थना का अर्थ ही देव के समक्ष अपनी भावना को व्यक्त करना है अर्थात् यह प्रकट करना है कि वह आपके चरण-शरण एवं प्रभाव में रहकर और कुछ पदार्थ-पाठ लेकर आत्म-शक्ति को जागृत एवं विकसित करता हुआ अपनी उस इच्छा, कामना या भावना को पूरा करने में समर्थ होना चाहता है। उसका यह आशय कदापि नहीं होता कि वीतराग देव भक्तकी प्रार्थना से द्रवीभूत होकर अपनी इच्छाशक्ति एवं प्रयत्नादि को काम में लाते हुए स्वयं उसका कोई काम कर देंगे अथवा दूसरों से प्रेरणादिक के द्वारा करा देंगे। ऐसा आशय असम्भाव्य को सम्भाव्य बनाने जैसा है और देव-स्वरूप से अनभिज्ञता व्यक्त करता है। अस्तुः प्रार्थनाविषयक विशेष ऊहापोह स्तुति-विद्या की प्रस्तावना में "वीतराग से प्रार्थना क्यों ?" इस शीर्षक के नीचे किया गया है और इसलिये उसे वहां से जानना चाहिये।

इस तरह भक्तियोग में, जिसके स्तुति, पूजा, वन्दना, आराधना, शरणागति, भजन-स्मरण और नाम कीर्तनादि अंग है, आत्म-विकास में सहायक हैं। इसलिये जो विवेकी जन अथवा बुद्धिमान पुरुष आत्मविकास के इच्छुक तथा अपना हित-साधन में सावधान हैं, वे भक्तियोग का आश्रय लेते हैं। इसी बात को प्रदर्शित करनेवाले ग्रन्थ के कुछ वाक्य इस प्रकार हैं—

१. इति प्रभो ! लोक-हितं मतो मतं ततो भवानेव गतिः सतां मतः (२०)

२. ततः स्वनिश्रेयस-भावना-परैर्बुधप्रवेकैःजिन शीतलेड्यसे (५५)।

३. ततो भवन्तमार्या प्रणताहितैषिणः (६५)।

४. तस्माद्भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः,
स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकतानाः (८५)।

५. स्वार्थ-नियत-मनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षयः (१२४)!

स्तुति विद्या में तो बुद्धि उसी को कहा है जो जिनेन्द्र का स्मरण करती है, मस्तक उसी को बतलाया है जो जिनेन्द्र के पदों में नत रहता है, सफल जन्म उसी को घोषित किया है जिसमें संसार परिभ्रमण को नष्ट करनेवाले जिन चरणों का आश्रय लिया जाता है, वाणी उसी को माना है जो जिनेन्द्र का स्तवन (गुण कीर्त्तन) करती है, पवित्र उसी को स्वीकार किया जो जिनेन्द्र के मत में रत है और पण्डित-जन उन्हीं को अंगीकार किया है जो जिनेन्द्र के चरणों में सदा नम्रीभूत रहते हैं। (११३)

इन्हीं सब बातों को लेकर स्वामी समन्तभद्र ने अपने को अर्हज्जिनेन्द्र की भक्ति के लिये अर्पण कर दिया था। उनकी इस भक्ति के ज्वलन्त रूप का दर्शन स्तुति-विद्या के निम्न पद्य में होता है, जिसमें वे वीरजिनेन्द्र को लक्ष्य करके लिखते हैं— हे भगवन् ! आपके मत में अथवा आपके विषय में मेरी सुश्रद्धा है—अन्ध श्रद्धा नहीं, मेरी स्मृति भी आपको ही अपना विषय बनाये हुए है—सदा आपका ही स्मरण किया करती है, मैं पूजन भी आपका ही करता हूँ, मेरे हाथ आपको ही प्रणामाञ्जलि करने के निमित्त हैं, मेरे कान आपकी ही गुण-कथाओं को सुनने में लीन रहते हैं, मेरी आँखें आपके सुन्दर रूप को देखा करती हैं, मुझे जो व्यसन है वह भी आपकी सुन्दरस्तुतियों के

रखने का है और मेरा मस्तक भी आपको ही प्रणाम करने में तत्पर रहता है। इस प्रकार चूंकि मेरी सेवा है—मैं निरन्तर ही आपकी इस तरह आराधना करता हूँ—इसलिये हे तेजःपते! (केवल-ज्ञान स्वामिन्!) मैं तेजस्वी हूँ, सुजन हूँ और सुकृती (पुण्यवान) हूँ—

> सुश्रद्धा मम ते मते स्मृतिरपि त्वय्यर्चनं चाऽपि ते।
> हस्तावञ्जलये कथा-श्रुतिरत: कर्णोऽक्षि सम्प्रेक्षते ॥
> सुस्तुत्यां व्यसनं शिरोनतिपरं सेवेदृशी येन ते।
> तेजस्वी सुजनोऽहमेव सुकृती तेनैव तेजःपते ॥११४॥

यहां सबसे पहले सुश्रद्धा की बात कही गई है, वह बड़े महत्व की है और अगली सब बातों अथवा प्रवृत्तियों की जान—प्राण—जान पड़ती है। इससे जहां यह मालूम होता है कि समन्तभद्र जिनेन्द्रदेव तथा उनके शासन (मत) के विषय में अन्ध-श्रद्धालु नहीं थे, वहाँ यह भी जाना जाता है कि भक्ति योग में अन्ध श्रद्धा का ग्रहण नहीं है—उसके लिये सुश्रद्धा चाहिये, जिसका सम्बन्ध विवेक से है। समन्तभद्र ऐसी ही विवेकवी श्रद्धा से सम्पन्न थे। अन्धी भक्ति वास्तव में उस फल को फल ही नहीं सकती, जो भक्तियोग का लक्ष्य और उद्देश्य है।

इसी भक्त्यर्पणा की बात को प्रस्तुत ग्रन्थों में एक दूसरे ही ढंग से व्यक्त किया गया है—और वह इस प्रकार है—

> अतएव ते बुधनुतस्य चरित-गुणामद्भुतोदयम्।
> न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम् ॥ १३० ॥

इस वाक्य में स्वामी समन्तभद्र यह प्रकट करते हैं कि हे बुधजन स्तुत जिनेन्द्र! आपके चरित गुण और अद्भुत उदय को न्याय-विहित—युक्तियुक्त—निश्चय करके हम बड़े प्रसन्नचित्त से आप में स्थित हुए हैं—आपके भक्त बने हैं और हमने आपका आश्रय लिया है।'

इससे साफ़ जाना जाता है कि समन्तभद्र ने जिनेन्द्र के चरित-गुण की और केवल ज्ञान तथा समवसरणादि विभूति के प्रादुर्भाव को लिए हुए अद्भुत उदय की जाँच की है—और उन्हें न्याय की कसौटी पर कसकर ठीक एवं युक्ति-युक्त पाया है तथा अपने आत्मविकास के मार्ग में परम सहायक समझा है, इसीलिये वे पूर्ण हृदय से जिनेन्द्र के भक्त बने हैं और उन्होंने अपने को उनके चरण-शरण में अर्पण कर दिया है। अतः उनकी भक्ति में कुलपरम्परा, रूढ़िपालन और कृत्रिमता (बनावट-दिखावट) जैसी कोई बात नहीं थी—वह एकदम शुद्ध विवेक से चालित थी और ऐसा ही भक्तियोग में होना चाहिए।

हाँ, समन्तभद्रका भक्ति-मार्ग, जो उनके स्तुति-ग्रन्थों से भले प्रकार जाना जाता है, भक्ति के सर्वथा एकान्त को लिए हुए नहीं है। स्वयं समन्तभद्र भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग-तीनों की एक मूर्ति बने हुए थे—उनमें से किसी एक ही योग के एकान्त पक्षपाती नहीं थे। निरी या कोरी एकान्तता तो उनके पास तक नहीं फटकती थी। वे सर्वथा एकान्तवाद के सख्त विरोधी थे और उसे वस्तुतत्व नहीं मानते थे। उन्होंने जिन खास कारणों से अर्हज्जिनेन्द्र को अपनी स्तुति के योग्य समझा और उन्हें अपनी स्तुति का विषय बनाया है, उनमें उनके द्वारा, एकान्त दृष्टि के प्रतिषेध की सिद्धिरूप न्यायबाण भी एक कारण है। अर्हन्त देव अपने इन एकान्तदृष्टि-प्रतिषेधक अमोघ न्याय-बाणों से—तत्वज्ञान के सम्यक-प्रहारों से—मोहशत्रु का अथवा मोह की प्रधानता को लिए हुए ज्ञानावरणादिरूप शत्रु-समूह का नाश करके कैवल्य विभूति के—सम्राट् हुए हैं, इसीलिये समन्तभद्र उन्हें लक्ष्य करके प्रस्तुत ग्रन्थ के निम्न वाक्य में कहते हैं कि 'आप मेरी स्तुति के योग्य हैं—

> एकान्त दृष्टि-प्रतिषेध-सिद्धि-न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य।

असि॒स्म कैवल्यविभूति-सम्राट् ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवार्हः ॥२१॥

इससे समन्तभद्र की परीक्षाप्रधानिता, गुणज्ञता और परीक्षा करके सुभद्रा के साथ भक्ति में प्रवृत्त होने की बात और भी स्पष्ट हो जाती है। साथ ही यह भी मालूम हो जाता है कि जब तक एकान्त दृष्टि बनी रहती है तब तक मोह नहीं जीता जाता, जब तक मोह नहीं जीता जाता तब तक आत्म-विकास नहीं बनता और न पूज्यता की ही प्राप्ति होती है। मोह को उन न्याय-बाणों से जीता जाता है जो एकान्त दृष्टि के प्रतिषेध को सिद्ध करने वाले हैं—सर्वथा एकान्त दृष्टिदोष को मिटाकर अनेकान्त दृष्टि की प्रतिष्ठारूप सम्यग्दृष्टित्व का आत्मा में सञ्चार करने वाले हैं। इससे तत्वज्ञान और तत्त्व श्रद्धानका महत्व सामने आजाता है, जो अनेकान्त दृष्टि के आश्रित है, और इसी से समन्तभद्र भक्तियोग के एकान्त पक्षपाती नहीं थे। इसी तरह ज्ञानयोग तथा कर्मयोग के भी वे एकान्त पक्षपाती नहीं थे—एक का दूसरे के साथ अकाट्य सम्बन्ध मानते थे।

अहिंसा

लेखक—महात्मा भगवानदीनजी

अहिंसा में, अहिंसा के व्रत में, आदमी को इतनी कठिनाई क्यों ? कोई भले ही यह समझे कि जीव का आधार जीव है, इसलिये अहिंसा का व्रत किसी तरह नहीं पाला जा सकता। फिर भी उसे किसी न किसी रूप में अहिंसा–व्रत का सहारा लेना ही पड़ता है। अहिंसा–व्रत को समझने के लिये हम कभी कभी बिलकुल दूसरी तरफ चले जाते हैं। अहिंसा–व्रत के सम्बन्ध में यह खोज करने बैठ जाना कि आदमी जन्म से आमिष भोजी है या निरामिष भोजी, एकदम अहिंसा से दूर पड़ जाना है। खोज तो हमें यह करनी चाहिए कि आदमी जन्म से हिंसक है या अहिंसक। अगर हमारी खोज से यह साबित हो जाय कि आदमी जन्म से हिंसक है, तब भी इसका यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि हिंसक होने के नाते उसे आमिषभोजी नहीं होना चाहिये या अहिंसक होने के नाते उसे निरामिषभोजी होना चाहिए। जब भी हम इस तरह की खोज करने बैठते हैं, तो हमारी जांच की कसौटी होती है प्रकृति। प्रकृति के पास हम सीधे तो पहुँच नहीं सकते। हमें उस तक पहुँचना पड़ता है उन प्राणियों के रास्ते, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि वे प्राकृतिक जीवन बिता रहे हैं। आइये उन प्राणियों तक चलें।

प्रकृति का रूप

हाथी, घोड़ा, सुअर अपने बचाव की खातिर आदमी को ही नहीं मार डालते और जानवरों को भी मार डालते हैं। इसलिए यह तो मानना ही पड़ेगा कि यह तीनों जन्म से हिंसक हैं। पर यह आमिषभोजी तो नहीं है। जन्म से हिंसक होना आमिषभोजी होने का सबूत नहीं हो सकता। ठीक इसी तरह से जन्म से आमिषभोजी होना हिंसक होने का सबूत नहीं हो सकता। गिद्ध जन्म से आमिषभोजी है। पर, वह न हिंसक है, न जानवरों का शिकार करता फिरता है।

अगर इस बात पर गहराई से विचार किया जाय, तो हम इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि आदमी जन्म से हिंसक है। पर, जन्म से न आमिषभोजी है और न शिकारी। आमिषभोजी और शिकारी उसे उस सभ्यता ने बनाया, जिसके आज बेहद गीत गाए जाते हैं। मानव समाज अपने बचपन में जब भी हिंसा पर उतारू होता था, तब उसकी नींव अपनी जान बचाने की होती थी। न कि अपनी मारने की इच्छा को पूरा करना। आज मनुष्य प्राकृतिक नहीं रह गया। इस लिए आज उस में जो शिकार की और मांस भोजन की इच्छा होती है, उसकी तह में न कोई सद्भाव रहता है और न कोई बचाव। इस लिये आज का शिकार और मांस भोजन ऐसा नहीं रह गया कि उसे यूं ही उड़ा दिया जाय। उस पर खूब सोचने की ज़रूरत है और गहरे जानने की भी जरूरत है।

आज का मानव समाज

आम लोगों ने मानव समाज को दो हिस्सों में बांट रखा है, एक जंगली, दूसरे शहरी। फिर शहरी भी दो तरह के होते हैं, एक ग्रामीण और दूसरे नागरिक। आम तौर से हम जंगली उन को कहते हैं, जो पूरे पूरे तो नहीं,

पर बहुत अंशों में प्राकृतिक जीवन बिता रहे हैं, जो नंगे या अध-नंगे रहते हैं, कच्चे-पक्के फल खा लेते हैं, खुले आसमान के नीचे सोते हैं, और जानवरों का शिकार करते हैं और जाड़े गर्मी से बचने के लिए मकान तो बनाते हैं, पर उन्हें आदमियों के घोंसले कहा जाये या आदमी के भिट का नाम दिया जाए, तो बेजा न होगा। पूरा-पूरा प्रकृति का जीवन नहीं बिताते। थोड़े प्रकृति से हट कर सभ्य भी हो गये हैं और सभ्यता के नाते इन के शिकार में से आत्म-रक्षा या आत्म-जनों की रक्षा का भाव इतना नहीं रह गया, जितना शिकार का आनन्द और खुराक की पूर्ति। हमारी राय में शुरू का आदमी आमिषभोजी नहीं होना चाहिए। आमिष भोजन की बात उसे बहुत बाद में सूझी और वह तब सूझी जब सभ्यता ने उस के दिल में यह सवाल उठाया कि हे आदमी, तू जानवरों को बेमतलब क्यों मारता है? इन को खाने के काम में क्यों नहीं लाता? हो सकता है सभ्यता के सवाल या हुक्म की फरमाबरदारी आदमी ने ऐसे वक्त की हो, जब आस पास या दूर तक किसी वजह से उसे फल या अनाज जुटाने के लिये कोई साधन न दीख पड़ते हों।

यह हम एक बहुत बड़ी बात कह गये और इस बात की सच्चाई हम किसी के लिखे इतिहास से नहीं कर सकते। फिर आज कल के विद्वान् हमारी इस बात को अपने गले क्यों उतारने लगे। हम भी यह बात कुछ यों ही नहीं कह बैठे हैं। जिन पांच बातों की धर्म में गिनती है, यानी सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और असंग्रह यह हम जितनी ज्यादा जंगलियों यानी अधनंगे आदमियों में पाते हैं, उतनी शहरियों और कपड़ों से लदों में नहीं पाते। जंगली आदमी बहुत कम झूठ बोलता है, बहुत कम हिंसा करता है, बहुत कम चोरी करता है, बहुत कम संग्रह करता है और बहुत ज्यादा ब्रह्मचारी रहता है। इस मामले में जो कमियां उस में पाई जाती हैं, वे सिर्फ इस वजह से हैं, कि उसे शहरियों से मिलने जुलने के नाते सभ्यता देवी से कभी-कभी दो-चार हो जाना पड़ता है और वह देवी इतनी देर में उसके प्राकृतिक जीवन में कुछ न कुछ अप्राकृतिकता शामिल कर ही देती है।

हमारा ख्याल और हमारी खोज का तो यह नतीजा है कि आदमी का हर बच्चा जन्म से अहिंसक भले ही न हो, पर सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य व्रत लिये होता है। अहिंसक न होने की बात हमने इस लिये कह दी है कि अपने बचाव के लिये हर प्राणी जन्म से हिंसक ही होता है। वैसा हिंसक होना इतना ज्यादा बुरा नहीं है, जितना सभ्यता देवी से नाता जोड़ कर हिंसक होना। यह किसको नहीं मालूम कि "पिताजी कहते हैं कि पिताजी घर पर नहीं हैं" कहलवा कहलवा कर बच्चे को झूठ का पाठ पढ़ाया जाता है। अगर जरूरत से ज्यादा संग्रह करना और जरूरत से ज्यादा खा जाना या किसी को दुःख पहुँचाने की नीयत से उसकी चीज़ को बिना पूछे ले लेना चोरी है, तो बच्चा कभी चोरी नहीं करता। असंग्रही तो वह इतना पक्का है कि प्यारी से प्यारी खाने की चीज को पेट भरने के बाद किसी को भी दे डालता है और अगर दिल की सफाई व ममत्व की कमी ब्रह्मचर्य है, तो बालक जैसा ब्रह्मचारी शायद ही कोई मिले। यह सुन कर किसी के मन में शंका पैदा हो सकती है और वह पूछ सकता है कि उस ने कई बच्चों को झूट बोलते, चोरी करते, संग्रह करते और मन के खोटे पाया है। उस के जवाब में हम यही कहेंगे कि यह सब उसने सोहबत से पाया है और सभ्यता देवी के दासों या मालिकों की सोहबत से पाया है।

अहिंसा के सम्बन्ध में इस शंका को भी निवारण कर दिया जाय कि हिंसा में नकारात्मक 'अ' लगा कर अहिंसा शब्द क्यों तय्यार किया गया? क्या अहिंसा की जगह प्रेम या प्यार शब्द से काम नहीं चल सकता था या प्रेम प्यार जैसा कोई और शब्द नहीं लगाया जा सकता था? यह शंका बेशक ठीक है। पर अव्वल तो अहिंसा शब्द का प्रचार और चाहे तो आप यह भी कह सकते हैं कि अहिंसा शब्द का जन्म उस वक्त हुआ, जिस वक्त आदमी काफी सभ्य या संस्कृत हो चुका था और ज्ञान के आकाश में ऊंची-ऊंची उड़ान लगाने लगा था। ऐसे समय सोचे हुए शब्द के पीछे अगर कोई दूरअन्देशी छिपी हुई मिले, तो न अचरज की बात है, और न शक करने की जगह है।

प्रेम, राग और अहिंसा

प्रेम और राग दोनों मिलते-जुलते शब्द हैं। पर प्रेम द्वेष साथ-साथ बोले जाने का रिवाज नहीं है, रिवाज है राग द्वेष के साथ-साथ बोले जाने का। प्रेम सचमुच द्वेष रहित राग का दूसरा नाम है। पर, वैसा प्रेम किसी प्राणी में नहीं पाया जाता और आदमी में तो उस का मिलना सम्भव ही नहीं। प्रेम आत्मा परमात्मा या आत्म-परमात्म गुणों से ही हो सकता है। इस लिये आज कल के रिवाज के प्रेम शब्द ने सोलहों आना राग के अर्थों की जगह ले ली है। यह ध्यान में रख कर ही ऋषियों या समझदारों ने प्रेम को न अपना कर अहिंसा को ही अपनाया अहिंसा की जगह अगर वह प्रेम बढ़ाने की बात कह जाते, तो राग बढ़ता और राग और द्वेष एक ही विचारधारा के दो किनारे हैं। धारा के दोनों किनारे हमेशा बराबर के हुआ करते हैं। इसे चाहें, तो आप यूँ भी कह सकते हैं कि राग और द्वेष एक ही विचार-सिक्के के दो पहलू हैं। राग जितना ही बढ़ेगा उतना ही द्वेष बढ़ेगा। द्वेष जितना घटेगा, उतना ही राग घटेगा। द्वेष का फल हिंसा है और राग का फल जड़ वस्तुओं का त्याग। जड़ वस्तु यानी तन-धन। इस खुलासे का यह नतीजा निकला कि अगर ऋषियों ने प्रेम यानी राग बढ़ाने की बात कही होती, तो द्वेष बढ़ता और उसी हिसाब से हिंसा बढ़ती। इसी को साफ-साफ यों समझ लीजिये कि जितना ज्यादा आप को अपने बेटे से राग होगा, उतना ही ज्यादा दूसरे के बेटे से द्वेष होगा। अमरीकी अमरीका के राग के धुन में रूस देश से द्वेष अनजाने बढ़ाते चले जा रहे हैं। इसी तरह हर आदमी अपने घर और घरवालों से राग बढ़ा कर दूसरों के घर और घरवालों से द्वेष अनजाने बढ़ाता चला जाता है। इस बात को ध्यान में रख कर ही ऋषियों ने यह नकारात्मक हुक्म देना ही ठीक समझा कि हिंसा मत करो। जैसे-जैसे हिंसा कम होती जायगी, द्वेष कम होता जायगा, और द्वेष के कम होने से राग का कम होना जरूरी है। बस, इसलिये अहिंसा शब्द के 'अ' पर शंका नहीं करनी चाहिये।

हिंसा बनाम अहिंसा

दुनियादारों का ही नहीं बड़े बड़े समझदारों और संतों का भी यह कहना बताया जाता है कि आदमी हिंसा से परहेज करता, तो आज उसका वंश नाश हो गया होता। इस बात में कुछ सच्चाई है। इसे हमें कोई जबरदस्ती ही मनवा सकता है, क्योंकि वह यह कहकर यही तो कहना चाहता है कि अगर आदमी ने भेड़ियों, चीतों, शेरों, अजगरों और इसी तरह के और खूनखार जानवरों को न मारा होता, तो आज दुनियां के पर्दे पर आदमी नाम का प्राणी देखने को नहीं मिलता। पर जो यह कहते हैं, वे अपनी आंखों यह क्यों नहीं देखते कि छोटे से छोटे बन्दर प्राणी से ले कर बड़े-बड़े हाथी प्राणी तक उन जंगलों में पाये जाते हैं, जहां शेर चीते काफी तादाद में रहते हैं। यहां कोई यह सवाल खड़ा कर सकता है कि आदमी ने इनको मारने का काम न किया होता, तो बन्दर हाथी भी खतम हो चुके होते। इस के जवाब में हम इतना ही कहेंगे कि अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में आज के दिन तक ऐसे जंगल मौजूद हैं, जहां आदमी तो क्या आदमी की परछाई भी नहीं पहुँच पाई है। वहां शेरों चीतों के रहते दूसरे जानवर भी मौजूद हैं। यह कह कर हम यह कहना चाहते हैं कि आज मानव वंश अगर जीवित है और दुनियां के पर्दे पर फलता जाता है, तो इस जीते रहने और फैलाव में हिंसा कारण नहीं, किन्तु मानव का मानव के लिये राग और प्रेम कारण है। मानव अपने वंश को बचाये रखने के लिये शेर चीते का मुकाबला करते वक्त अपने कुटुम्ब, अपने गाँव, यहाँ तक कि अपने देश और धर्म को भूल जाता है। उस वक्त उस के दिमाग के सामने एक मानव जाति होती है। मानव जाति का यह चित्र उस की सभ्यता देवी का बनाया हुआ नहीं होता। उसे तो वह अपने साथ जन्म से लाया होता है। कुछ अंशों में इसी तरह का चित्र उन प्राणियों के भी सामने रहता है, जो जन्म से आमिषभोजी नहीं है जैसे हाथी, घोड़ा, नीलगाय, सुअर वगरह। ये प्राणी न तो आदमी जितने समझदार हैं और न विचारों को जाहिर करने और न बनाये रखने की कला जानते हैं। पर, जिन लोगों ने इन जानवरों को गौर से देखा है और उनकी

आदतों को पढ़ने की कोशिश की है, उनका भी कहना है कि ये प्राणी भी जब किसी खूंख्वार जानवर का मुकाबला करते हैं, तो उनके सामने उस खूंख्वार जानवरों को मार डालने की इतनी बात नहीं रहती, जितनी अपनी या अपनों के बचाव की। हमने देखा तो नहीं पर सुना-पढ़ा जरूर है कि किस तरह गायों का झुंड एक गोल दायरा बनाकर उस वक्त अपने ग्वाले को बीच में ले लेता है, जब कोई शेर जंगल में आ धमके। उनके बचाव की परेड किसी हिंसक को ऐसी दिखाई दे सकती है, मानों वे गायें शेर का शिकार करना चाहती हैं। उनका फूला हुआ बदन, उठी हुई पूंछें और शेर की तरफ लिए हुए सींग और उनके चेहरे की आकृति भले ही किसी जल्दी नतीजा निकालने वाले के दिल में कुछ की कुछ बन बैठे, पर असल में उन गायों की नीयत अपने मालिक ग्वाले को बचाने के सिवाय और कुछ नहीं होती। अब अगर शेर आ ही टूटे और वह जानपर खेलकर अपने नुकीले सींगों से शेर की छाती फाड़ दें और शेर मर जाय, तो यह समझना कि गायों ने शेर की हिंसा की निरी भूल से भरी बात होगी। असल में यह कहना निरी भाषा की भूल है कि गायों ने शेर का सीना फाड़ डाला। कहना यह चाहिये कि शेर का सीना उनके सींगों से फट गया। उनके सींग तो ग्वालों के बचाव के लिए ही शेर की तरफ उठे हुए थे। यही वजह है कि हाथी, घोड़ा, गाय, सुअर, वगैरह जानवर हिंसा करते हुए भी अहिंसक गिने जाते हैं।

हिंसक और अहिंसक प्राणियों पर अगर गहरी नजर डाली जाय, तो हिंसक और अहिंसक का भेद समझने में बड़ी मदद मिलेगी। शेर, चीता, भेड़िया, न भी सही, तो हममें से हर एक ने कुत्ते को जरूर देखा होगा कि वह किस तरह अपने बच्चे को शिकार करना सिखाता है। कुत्ता जब किसी चूहे, मुर्गी, या खरगोश को पकड़ना चाहता है, वह अपने पांव झुका लेता है और अगले पिछले पांव मामूल से ज्यादा लम्बाई कर देता है, बदन को सिकोड़ लेता है, पूंछ को उठा लेता है और इतना चुपचाप हो जाता है कि वह कुत्ते का खिलौना बन जाता है और फिर जब शिकार उसकी पहुँच के अन्दर आ जाता है, तो वह एकदम उस पर टूट पड़ता है। यह टूट पड़ने का मुहावरा शिकारी जानवरों के लिये ही है। यह दूसरी बात है कि इस मुहावरे का उपयोग और जगह भी होने लगा है। चूहा और कबूतर पकड़ते हुए किसने बिल्ली को नहीं देखा, वह भी शिकार करने से पहले बिलकुल शांत हो जाती है। धीरे धीरे पूंछ हिलाती रहती है। अहिंसक प्राणी न शिकार करते हैं, न आमिषभोजी हैं। इसलिए उनको न शिकार के आसन में बैठना आता है और न वैसी जरूरत है। इसमें शक नहीं कि अहिंसक प्राणी अपने बचाव की खातिर बड़ा भयानक रूप धारण कर लेते हैं; पर उस भयानक रूप में भी इतनी हिंसा की भावना नहीं दिखाई देती, जितनी बचाव की।

प्राणियों को हिंसकों और अहिंसकों में बांट कर हम यह कहना चाहते हैं कि अहिंसक प्राणी हिंसकों से कई बात में ऊंचे हैं। समझदारी के लिहाज से हाथी-घोड़े का शेर से कोई मुकाबिला ही नहीं। हाँ, कुत्ता एक अनोखा जानवर है। उसकी समझदारी की कथाएं ऐसी जरूर मिलती हैं, जिनको पढ़कर यह मालूम होता है कि समझदारी में कुत्ते ने हाथी-घोड़ों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। इसकी वजह यह है कि कुत्ता बरसों से नहीं, युगों से आदमी का साथी रहा है और सभ्य आदमी की शिकार में मदद करता रहा है। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि आदमी ने शिकार करना सभ्य हो कर सीखा। जंगली हालत में आदमी न शिकारी था, न कपड़े पहनता था। इसके सबूत में हम इतना ही कहेंगे कि घोड़े आदमी के साथ फौज में रह कर आमिषभोजी बन जाते हैं और हाथी आदमी की सौबत से शिकार करना सीख जाता है।

जीव की खुराक जीव है। इससे किसी को इन्कार नहीं। पर जीव जीव में अन्तर है। जो आमिषभोजी हैं वे सब्जी और लट-गिराड़ जैसे छोटे कीड़ों में अन्तर करते हैं। सब्जी के सड़े हुए हिस्से को अलग काट कर फेंक देते हैं। कीड़े पड़े हुए दही को नहीं खाते। इस न खाने की वजह और भी हो सकती है। पर हम यहां इतना ही कहना चाहते

हैं कि शाक-सब्जी और चलने वाले छोटे से छोटे कीड़े को वह एक ही नजर से नहीं देखते। चींटियों को शक्कर डालते हुए आमिषभोजियों को किसने नहीं देखा । पूरे-पूरे आमिषभोजी भी छोटे-छोटे कीड़ों और सब्जी के साथ एकसा बर्ताव नहीं करते। सब्जी को तोड़ते और उखाड़ते वह इतनी तकलीफ नहीं मानते, जितनी एक चींटी और मक्खी को मारते। दुश्मन की हैसियत से या छोटे प्राणियों को दुःखदाई समझ कर उनका बहुत बड़ी तादाद में संहार कर डालना यह बिलकुल दूसरी बात है। उस संहार में और शेर और भेड़ियों के संहार में अन्तर तो होता है; पर सिर्फ अंशों की। यही वजह है कि आमिषभोजी भी शाक भोजन को मांसाहार नहीं कहते और क्रूर भावना के लिहाज़ से एक दूसरे में बहुत बड़ा अन्तर मानते हैं।

आदमी स्वभाव से उस अहिंसा की पूर्णता की तरफ़ बढ़ रहा है, जिसे लेकर वह जन्मा है। गांधी जी के साथ एक मर्तबा उनके आश्रम में रहने वाले पौलैंड के इंजिनियर ने उनसे यह कहा कि आदमी जब पूरा सभ्य बन जायगा, तो वह फल ही तोड़ कर खाया करेगा। गांधीजी ने तुरन्त जवाब दिया कि नहीं, नहीं; वह फल बीनकर खाया करेगा। इस बात का ज़िक्र हम यहां इसलिए कर रहे हैं कि आदमी स्वभाव से अहिंसा की ओर बढ़ रहा है। अगर आदमी अहिंसा की ओर नहीं बढ़ेगा, तो और करेगा ही क्या? आज भी बड़े बड़े मुल्क, जिन्होंने संहार के बड़े-बड़े यन्त्र बना रखे हैं, इस बात के प्यासे हैं कि दुनियां में शान्ति की स्थापना हो जाय। शांति अहिंसा के फूल के सिवाय और क्या हो सकती है। क्या आज का शांति का आन्दोलन इस बात का सबूत नहीं है कि आदमी स्वभाव से अहिंसक है? इस बात के कहने में हमारा क्या तर्क है; इसको ज़रा साफ कर देना चाहते हैं। वह यह कि हमारी राय में ही नहीं, बड़े-बड़े ऋषियों का यह कहना है कि आदमी की तरक्की का इसके सिवाय और कुछ मतलब ही नहीं हो सकता कि वह अपने स्वभाव तक पहुँच जाय। आदमी अन्दर से बेहद अच्छा है, तभी तो कभी-कभी बुरे से बुरे आदमी में किसी वक्त ऊंची से ऊंची भलाई जाग उठती है और वह ज़रा सी देर में समाज में नीचे से नीचे स्थान से ऊंचे से ऊंचे स्थान पर जा जमता है। ऐसी मिसालों से किताबें तो भरी पड़ी हैं, पर हाल में हिन्दु-मुस्लिम लड़ाई के मौके पर ऐसी मिसालें सैंकड़ों नहीं, तो दसियों-बीसियों तो ज़रूर देखने को मिलेंगी। क्या यह इस बात का सबूत नहीं है कि आदमी अन्दर से एक-दम अहिंसाप्रिय है? मनुष्य समाज के बचपन का इतिहास साफ बता रहा है कि वह अहिंसा की तरफ़ दौड़ा जा रहा है। आज के ज़ुल्मों और संहार के बड़े-बड़े यन्त्रों से उसका अन्दाज़ा नहीं लगाना चाहिये। उसका अन्दाज़ा इस बात से लगाना चाहिए कि वह यह सब संहार करने के दूसरे क्षण ही दुःखी होता है और पछताता है, जब कि पहले ऐसा नहीं होता था।

मनुष्य प्रेम यानी अहिंसा का पुतला है। क्षमा, सरलता, साफ़दिली और उदारता से भरा हुआ है, फिर भी वह द्वेषी यानि हिंसक और क्रोधी यानी मायाचारी और लोभी दीख पड़ता है। यह क्या बात है। इसकी वजह है कि समाज की ज़रूरतें और समाज की बेढंगी व्यवस्था में फंसे हुए मां-बाप और गुरुओं से वह बचपन से ही ऐसे पाठ पढ़ता है, जो उसके प्रेम को हिंसा में बदल देते हैं और उसकी क्षमा को क्रोध में, सरलता को मान में, साफ़-दिली को मायाचारी में और उदारता को लोभ में बदल देते हैं। जिस तरह पानी स्वभाव से ठंडा होते हुए भी आग की सोबत पाकर गरम ही नहीं हो जाता, इतना गरम हो जाता है कि आग की तरह फफोला डाल देता है। जिस तरह कि पानी को हम अपने ऊपर छोड़ दें, तो वह कुछ ही देर में इतना ठंडा हो जायगा, जितना उसके आस-पास का वातावरण। ठीक इसी तरह से हिंसक आदमी को कुछ दिनों के लिए अपने ऊपर छोड़ दिया जाय, तो वह इतना प्रेमी तो बन ही जायगा, जितना उसके आस-पास का वातावरण। इसमें शक नहीं कि धर्म ने और समय-समय के पैदा होने वाले सन्तों-महन्तों ने इसकी आंख तो खोली है, पर स्वभाव की ओर बढ़ाने में हमारी राय में मदद करने की जगह अड़चन ही डाली है। जिस तरह जबरदस्ती का लादा हुआ व्रत आदमी को छिपाकर व्रत तोड़ने को

मजबूर कर देता है, उसी तरह जबरदस्ती से लादी हुई कोई शिश्त यानि डिसीपलीन आदमी में उस शिश्त के खिलाफ विद्रोह करने की भावना पैदा कर देती है। हिंसा के जो नाटक सभ्य समाज में देखने को मिले; उसका सौंवा हिस्सा भी उन जातियों में देखने को नहीं मिलेगा, जो जंगली कहकर पुकारी जाती हैं।

आदमी को यह ख्याल तो दुरुस्त कर ही लेना चाहिये कि यह उसकी हिंसा नहीं है, जो उसे संभाले हुए है, बल्कि यह उसका प्रेम और अहिंसा ही है, जो उसे ऐसी जगह ले आई है, जहां से स्वभाव तक पहुँचने की असली मंजिल बहुत निकट रह गई है।

आदमी का स्वभाव प्रेम है। राग, द्वेष यानि हिंसा प्रेम का विभाव है। अहिंसा से स्वभाव तक पहुँचने का साधन है। स्वभाव तक पहुँचना ही मानव जीवन का उद्देश्य है। इसलिए अहिंसा से भागिये नहीं, उस तरफ दौड़िये। मजबूर होकर दौड़े, तो क्या हुआ?

श्री सिद्धक्षेत्र सम्मेद शिखरजी
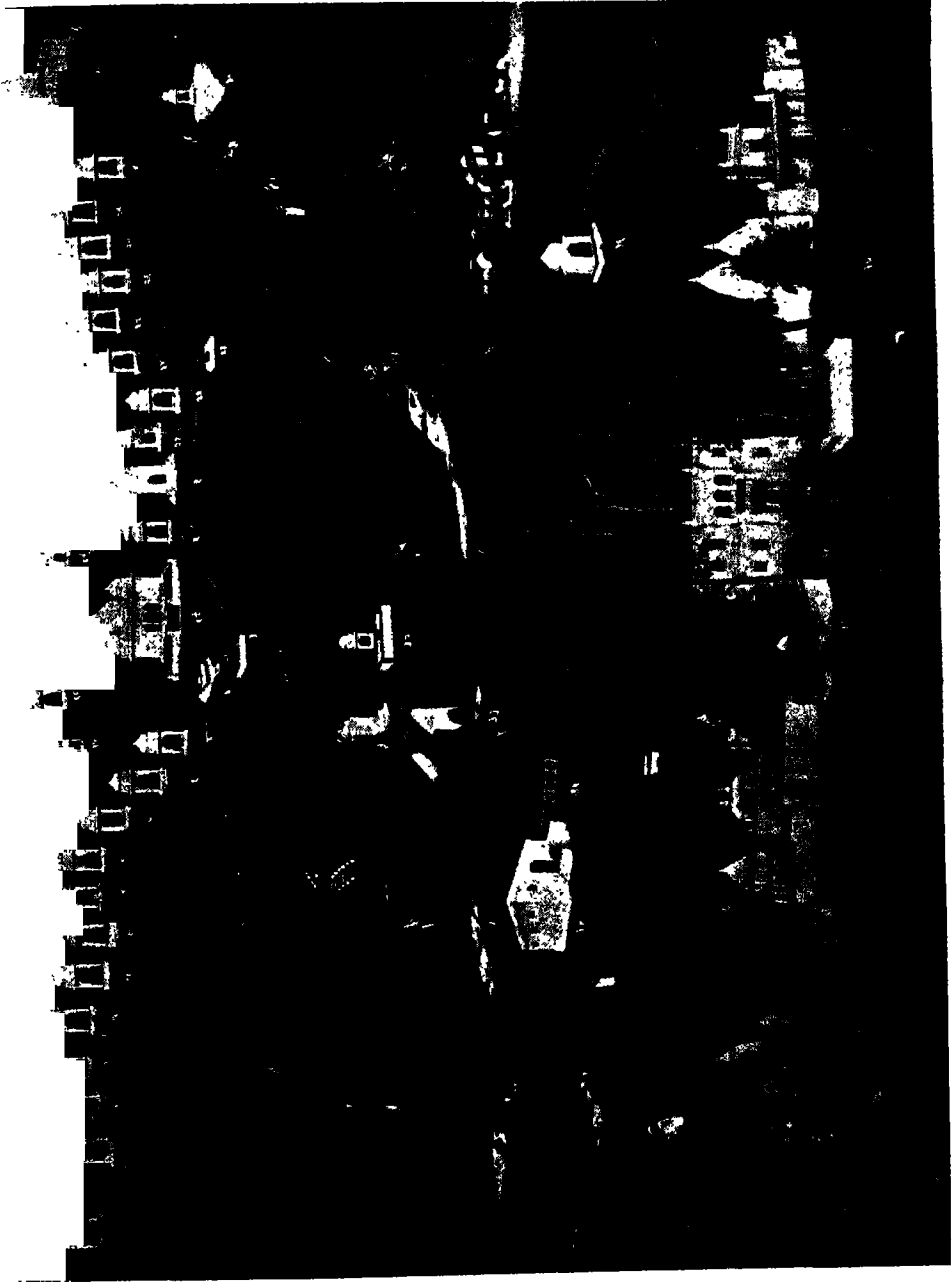
श्री उदयगिरिजी

श्री खंडगिरि जी

श्री सिद्धक्षेत्र चंपापुर
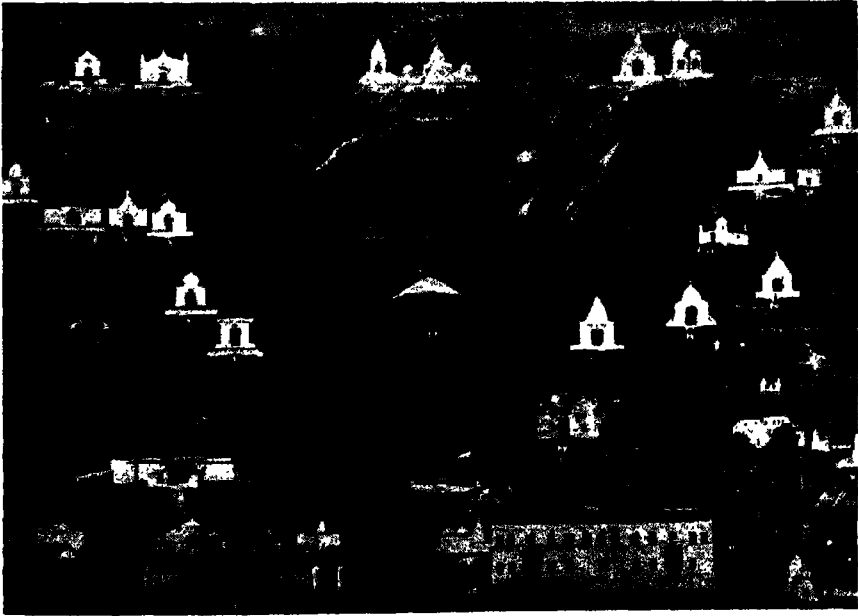
श्री राजगृही तीर्थ
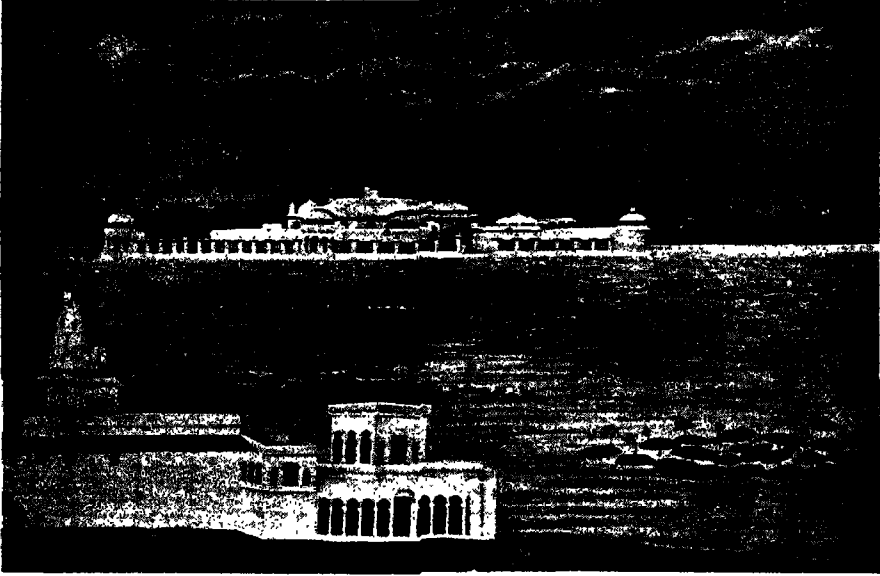
श्री सिद्धक्षेत्र पावापुर जी

सिद्धक्षेत्र श्री मंदारगिरि

श्री सिद्धक्षेत्र गिरनारजी।
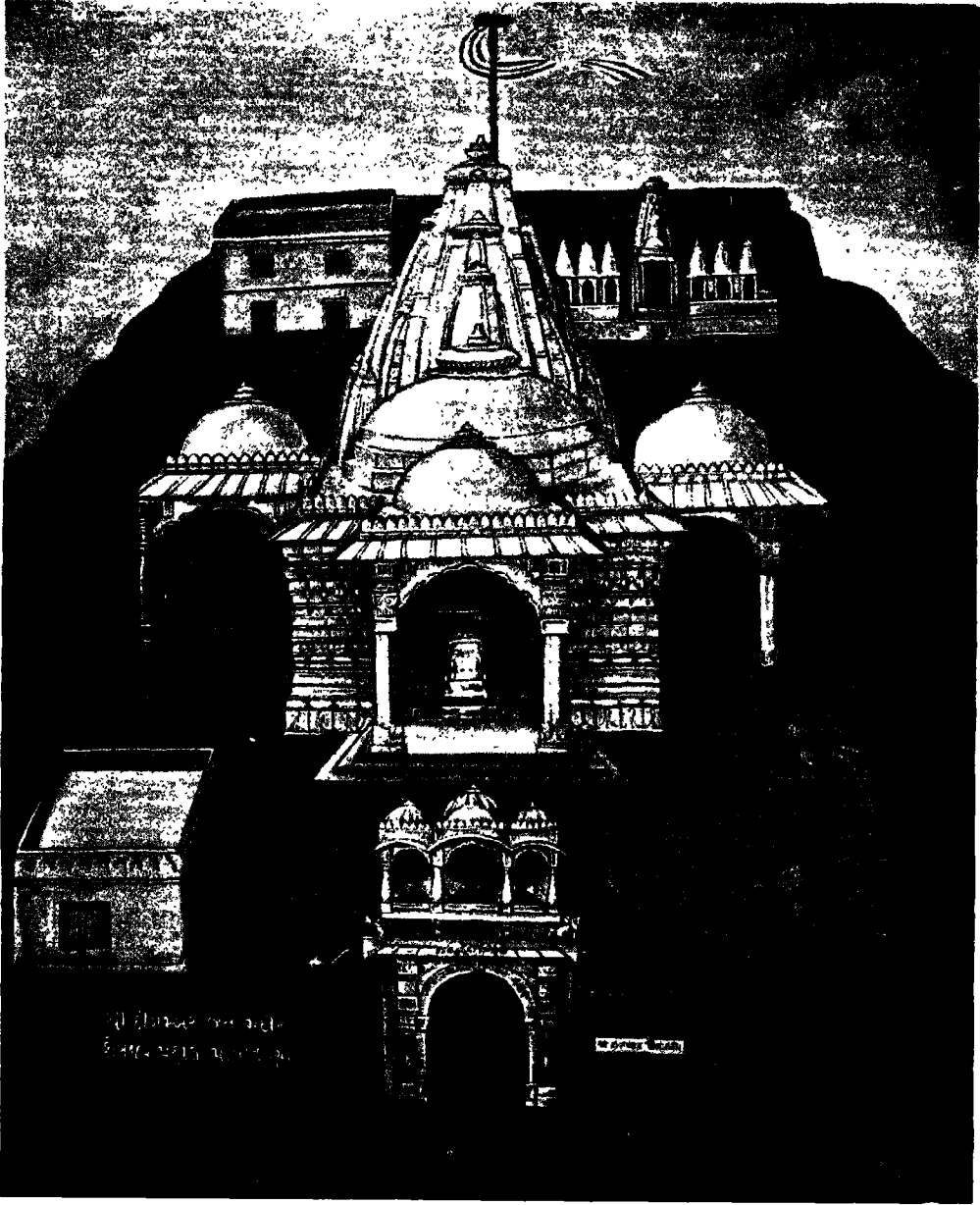
श्री दिगंबर जैन सिद्ध क्षेत्र शत्रुंजय जी।
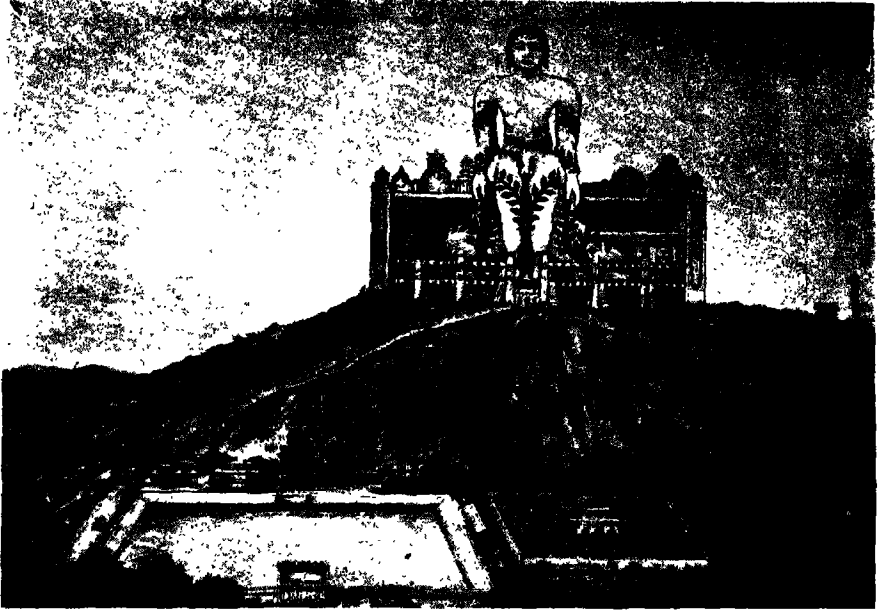
श्री १००८ बाहुबलि स्वामी

श्री सिद्धक्षेत्र पावागिरि

श्री सिद्धक्षेत्र पावागढ़।

श्री सिद्धक्षेत्र तारंगाजी। श्री सिद्धक्षेत्र तारंगा जी।
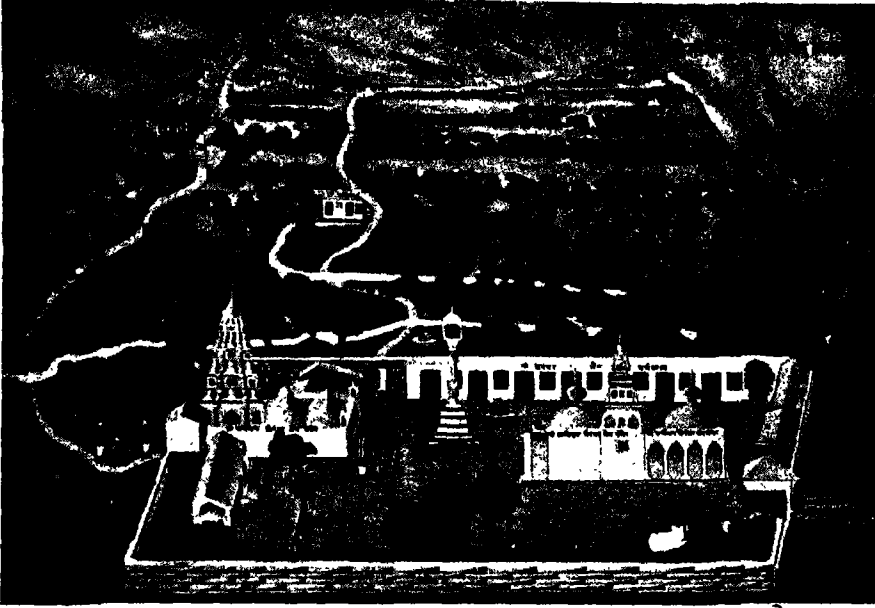
श्री सिद्धक्षेत्र मांगीतुंगीजी
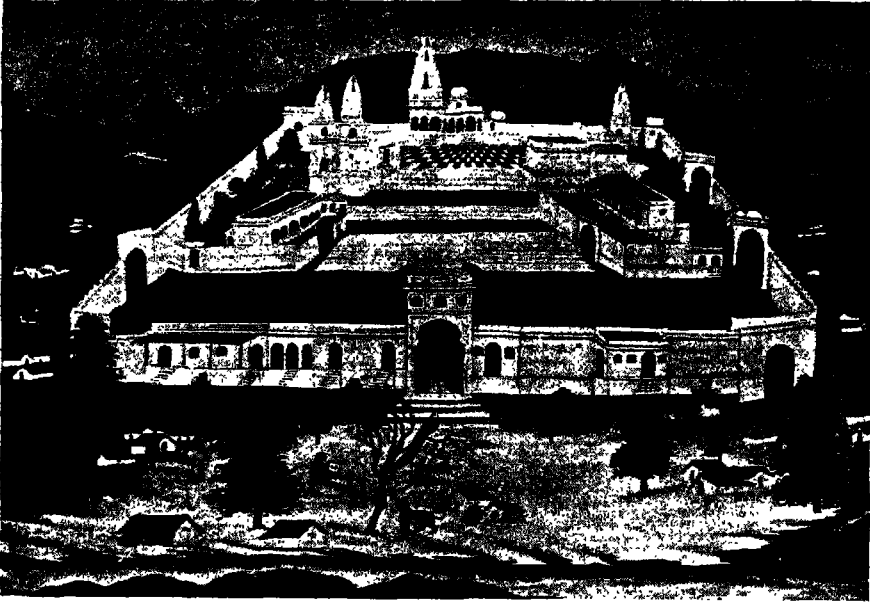
श्री सिद्धक्षेत्र गजपंथाजी

श्री सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूटजी
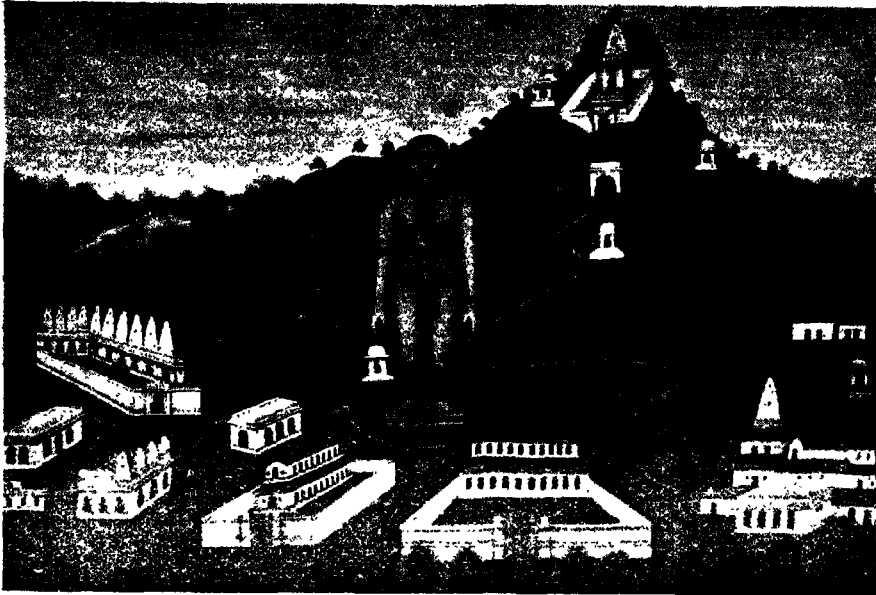
श्री सिद्धक्षेत्र बड़वानीजी

श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिर जी
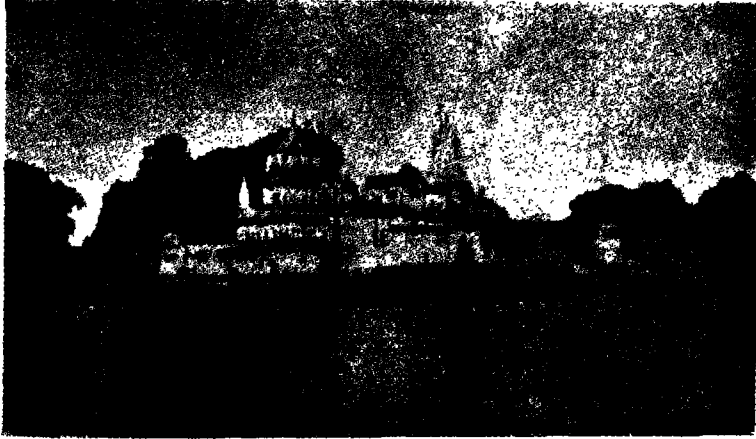
अतिशय क्षेत्र श्री मक्सी पार्श्वनाथजी

श्री अतिशय क्षेत्र मरसलगंज
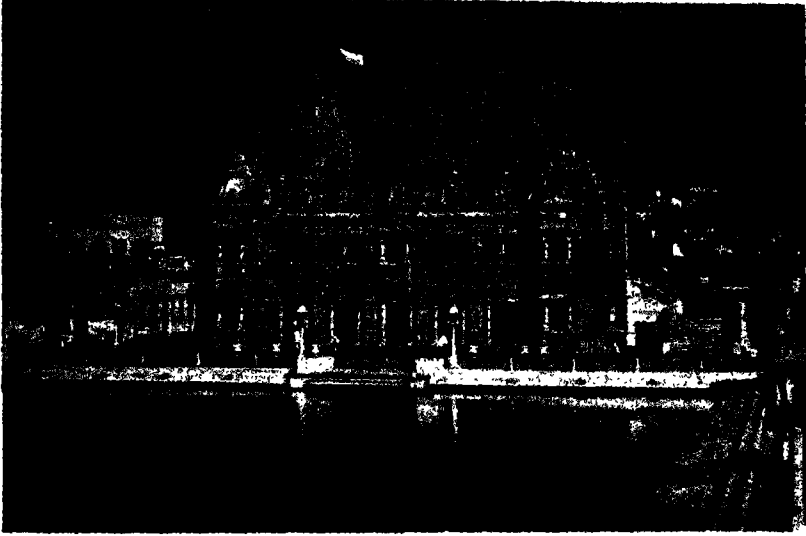
बेलगछिया कलकत्ता का सुप्रसिद्ध दिगंबर जैन मंदिर

श्री चंद्रपुरी [काशी] का सुप्रसिद्ध दिगम्बर जैनमंदिर
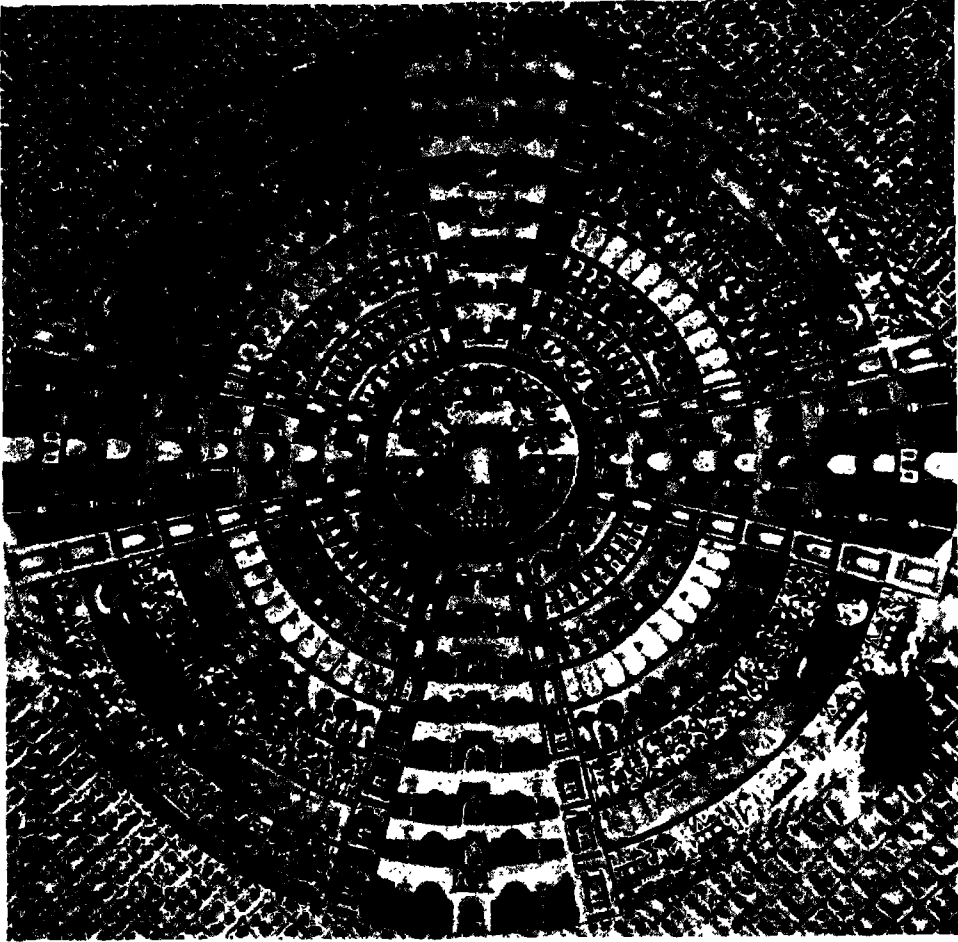
इन्दौर में कांच के मन्दिर में समवशरण का चित्र ।
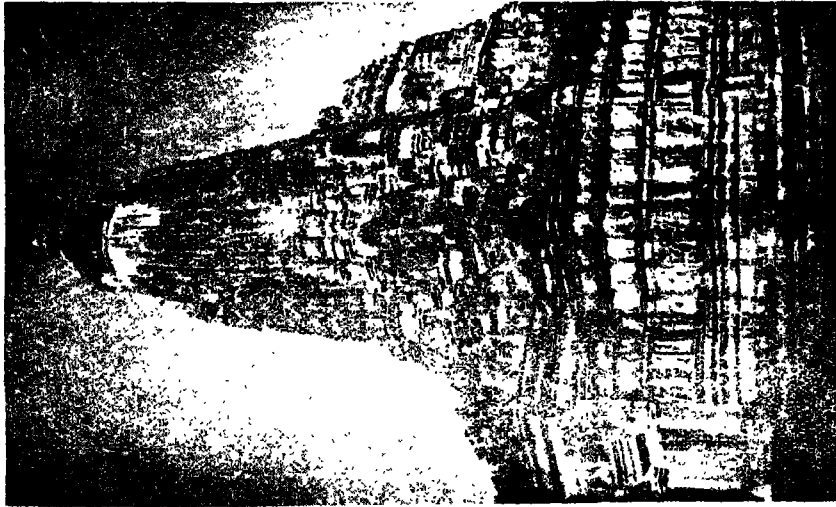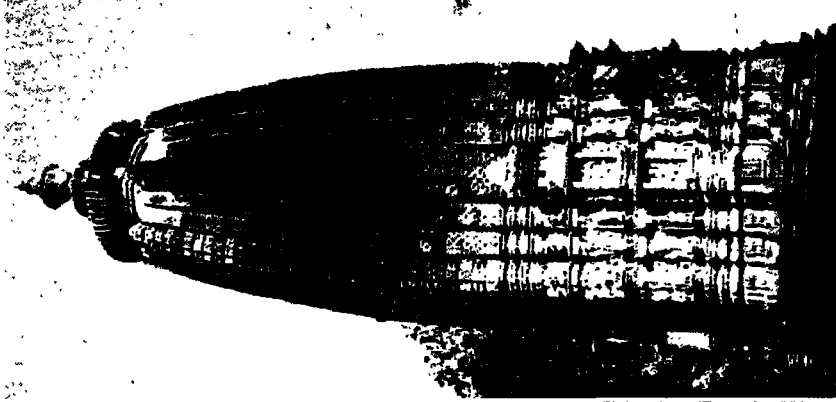
खजराहा [बुन्देल खंड] के ११ वीं शताब्दि के सुप्रसिद्ध प्राचीन कलापूर्ण दिगम्बर जैन मंदिर। [१] श्री पार्श्वनाथ मंदिर [२] श्री आदिनाथ मंदिर [३] श्री घंटाई मंदिर।

आमेर का प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर, जो अब जैनों के कब्जे में नहीं है।

एलोरा की सुप्रसिद्ध जैन गुफा इन्द्रसभा या छोटा कैलाश का एक दृश्य।

स्याद्वादः

लेखकः—श्री माणिक्यचन्द्रः कौण्डेयो न्यायाचार्यः फिरोजाबादवास्तव्यः

निर्बाधसम्विदितसूक्तिसुधाः स्रवन्ती ।
संशीतिविभ्रमविमोहतमांसि हन्त्री ॥
जीवादितत्त्वकुमुदानि विबोधयन्ती ।
स्याद्वादगीः शशिविभा धिनुतात् त्रिलोकीम् ॥ १ ॥

ऊर्ध्वमध्याधस्तात् त्रिजगदुद्धरणाप्रतिहताप्रतिमनिःप्रतिद्वन्द्वसामर्थ्यजुष्टाः, भक्तिभारविनतसंख्यातीतसुत्रामप्रमुखानेकलेखमुकुटमाणिक्यमणिमयूखमालारुणीकृतपादपद्माः, प्रणतषट्खण्डस्थामरनृतिर्यग्जीवाद्युपरिशासनाधिकारिचक्रभृन्मण्डलेश्वरामरगणरत्नमरीचिजालबालातपप्रजरीपिञ्जरितपदकमलनखमरीचिपुञ्जरञ्जिताः, नारकिणामपि सम्यग्दर्शनसहोत्थसद्बोधसमयनिष्ठध्यातव्यविषयतामापन्नाः, अष्टाधिकसहस्रशोभमानभगवन्तः सम्यग्ज्ञानमेव चरमफलनिःश्रेयसप्रापकाव्यभिचारिकारणतावच्छेदकावलीढधर्मावच्छिन्नं, त्रिकालत्रिलोकाबाधितपथप्रस्थाप्यपारपारावारसंसारसमुत्तरणपोतायमानमुपदिदिशुः ।

तथापि विश्वज्ञानप्रपितामहोपमानं श्रुतज्ञानं मुख्यव्यर्थहितात्मभूतान्वयव्यतिरेकशालिताशक्तिसमन्वितं त्रिविष्टपटङ्काटङ्कितं उट्टङ्कितनिःकिट्टकालिकाकान्तिशातकुम्भमिवाहार्यप्रामाण्याज्ञानानास्कन्दितविमर्शमन्थराचलमञ्चालनपरिक्षुब्धविद्यावारिधिमन्थनोद्युक्तविबुधमनस्सु नितरामुद्योततं चमत्कृतिजनकतावच्छेदकाक्रमभितामोदामृतप्रदम् ।

अनादिकालीनपावनवाच्यवाचकसम्बन्धमात्मसात्कुर्वतोः श्रुतज्ञानस्याद्वादयोर्व्यङ्ग्यनियामकाविनाभावसम्बन्धभूद्विषमा व्याप्तिः प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धापन्नप्रतियोग्यनधिकरणीभूतहेत्वधिकरणवृत्त्यभावप्रतियोगितासामान्यनिष्ठस्वतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वसाध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्वोभयाभावस्वप्रयुक्तसम्बन्धधर्मावच्छिन्नहेतुना सहानयथानुपपत्तिस्वरूपोच्चैस्तटमकण्टकमटाट्यते ।

परावबोधनोत्कृष्टपरोपकारतपोनिष्ठमहर्षिप्रशस्तं मानवमनोगतदुरवधानदुर्भिक्षोत्थपरिश्रमपरमार्थसदुपदेशपयोधराधाराधरायमाणमागमप्रामाण्यं स्वतः समुद्भूतसमुत्साहसन्दोहमदोत्तायमानमथ्वस्वे भास्वद् भास्करप्रभेव प्रकाशते प्रमातृप्रमितिप्रमेयरूपम् ।

शाब्दप्रमाणमन्तरा मूकवाग्मिराटभटनेषु भेदं न पारयन्ति स्थूलबुद्धयोऽपि वावदूकाः किमुत तीक्ष्णप्रज्ञा मनीषिणः ।

सार्वसर्वज्ञातीन्द्रियज्ञानविकले कलाचयमेव ते पितेति निर्णये मातृवाक्यादन्यत्प्रमाणं नास्ति प्रत्यक्षलौकिकार्थापत्त्यैतिह्योपमानादि ।

परस्परविरुद्धनानाप्रवादिप्रवादप्रकटनप्रतिविधानप्रगुणपटुः स्याद्वादरवि रहर्निशं प्रतिवादिप्रति सिद्धान्तध्वान्तपलायनकलाकलितं विसंवादिखद्योतद्युतिविघटनं चकास्तितराम् ।

आलापपद्धावलिस्रोतोनुप्रविष्टविवादापन्नस्याद्वादसम्वादपरीवादप्रवादानुवादापवादेष्वेकतमः स्याद्वाद एव सरणाधादरं जगन्मूर्ध्नि चूडामणीयते निःशेषविष्टपनिविष्टद्विष्टैकान्तकण्ठकोत्पाटनपटु विघ्नविदारणमंगलविधानाभ्याम् ।

प्रत्यक्षपरिकलितमप्यर्थमनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिकाः इति न्यायनियमविद्भ्यः प्रतिस्वभावमापत्तिप्रतिव्यूढप्रतिपत्तिजनकमद्धेतुमालामुद्घोषयन् स्याद्वादो नितराम् रोचते, बुभुक्षितभोजनभट्टेभ्यः क्षीरान्नपिच्छिलदधिपरिकरितसाज्यरसभरितमोदकपूर इव मिथ्याभिनिवेशतीव्रबुभुक्षानिरसनभटः क्षुत्क्षामकुक्षिपूरकः ।

प्रतिवस्तुपर्यायमस्तिनास्त्येकानेकभेदाभेदनित्यत्वानित्यत्वप्रभृतिसप्तभङ्गीभागीरथीमवतारयन्नणोरपि निरंशत्वे मेरुसर्षपसाम्यप्रसङ्ग विभीषिकां सांशत्वे ऽनवस्थाव्याघ्रीसाध्वसञ्चापसारयन् स्याद्वादेश्वरस्त्रिलोक्यां विभ्राजते ।

हृद्यानवद्यविद्याविद्या कथञ्चिद्वादविद्विद्वानेकान्तधर्मग्रहाग्रहग्रहणमूलरागादिदोषानपहरन् कर्माष्टककाष्ठनिर्दहनजुष्टोऽष्टगुणाधारमुक्तधराधिष्ठितो निरारेकभवेदित्यनन्तानन्ताविभागिप्रतिच्छेदधारिमहत्प्रमोदावसरः ।

गवेतरासमवेतत्वे सति सकलगोसमवेतगोत्वसामानाधिकरण्येन गोत्वावच्छेदकावच्छेदेनेति गविगोत्व मुतागवि गोत्वं गवि गोत्वं चेदनर्थकं नृष्वस्मासु गोत्वविरोधादगवि चेद्गोत्वं भवत्स्वपि गोत्वमास्तामिति व्याघातनिग्रहस्थानाद्याक्षेपानेकविक्षेपात्मककटाक्षप्रक्षेपणेनान्वर्थनामा श्रुताब्धिपारगः श्रुतसागरमुनिरखण्डामोघनययोजनिकाजय्यप्रणाल्या स्याद्वादानभिज्ञान् साटोपं तरुणब्रह्मविद्दर्पमिति ब्रुवाणान् वलिप्रभृतिसचिवान् सभ्यसभापतिवादिप्रतिवादिचतुरङ्गसंघट्टनाप्रचुरे शास्त्रार्थे मंक्षु तिरश्चकार ।

क्षणिकक्षेमकरदारकटाक्षाक्षतावश्वेप्यक्षोभमोक्षक्षेत्रस्थाक्षरमुक्तिलक्ष्मीसाक्षाद्वीक्षणाकांक्षा विक्षेपसप्रेक्षा, दोषोरगध्वांक्षक्षेपकाः क्षान्तिदक्षकाष्ठाम्बरभिक्षवो मंक्ष्वीक्षन्ते स्याद्वादताक्ष्र्यपक्षच्छायाश्रिदिणरताम् ।

स्याद्वादपद्वाच्यानेकान्तस्वरूपधर्मस्वभावगुणपर्यायाणाम् प्रतिपादकविचक्षणविशदृष्टिकोणगतानां नयोपनयनीयमान मिथःसापेक्षाणां विरोधसंशयव्यतिकरानवस्थावैयधिकरण्यप्रभृतिविविधदोषानालीढानां सार्वभौमप्रियता न केनापि निवारयितुं शक्यते ॥

गङ्गायां घोषोऽत्र वाच्यार्थलक्ष्यार्थव्यङ्ग्यार्थवाच्याभिधानवृत्तिभिर्भगीरथरथखातावच्छिन्नागंगावतराचलसमुद्रावधिजलप्रवाहसुरदीर्घिकातीरशीतत्वपावनातिशयार्थाभिधाने स्याद्वाद एव शरणं स्वशिरस्ताडं पूत्कुर्वतो प्याप्तं ।

विरोधाभासापन्नानां गौण मुख्ययोर्मुख्ये सम्प्रत्ययः कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे सम्प्रत्ययः देशभाषायामपि "ओस चाटने से प्यास नहीं बुझती, डूबते को तिनके का सहारा अच्छा, बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न भीख, बिना रोये माता भी दूध नहीं पिलाती" इत्याद्यपरिमितार्थभूतपरिभाषावाक्यानां फलार्थिपुरुषप्रवृत्तिनिवृत्तिमूलसम्प्रतिपत्तिः स्याद्वादपथेनैव प्रतीतिर्शिखरिशिखरारूढा भवतीति निरारेकं सुनिश्चितं सामोदं नश्चेतः ।

दार्शनिकेषु नितान्तवावदूकवैतण्डिकजाह्पिकरूपानेकनाटककलाकलितव सञ्चयमानमनैयायिक-

काणादाः नव्यन्यायनिवृत्तिनिपुणा निरर्थकापार्थकावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगितानुयोगिताधारता-ऽधेयताविषयितानिरूपिता प्रभृत्यबहुसारकटुकाठिन्यसम्पादकवाचकप्रयोगोच्चारणचणा एततोऽन्ये पूर्वोत्तर-मीमांसासांख्यपातञ्जलबार्हस्पत्यशौद्धोदनिसरणिशरणा अपि प्रकाण्डप्रतिवादिनो नाद्याप्यवगाहन्तेऽनन्त-प्रमेयमाणिक्यादिमणिभृत स्याद्वादाम्बुध्यल्पीय उपतटमपि।

बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्मावच्छिन्नस्थूलमतिकुतीर्थ्यहृदयमस्तकोन्माथिनीं सूक्ष्मार्थं गवेषकामन्दधिषणविपश्चिदाह्लादवर्धिनीं चरमपरमोपादेयमोक्षपुरुषार्थान्वयव्यतिरेकशालिकारणत्ववाहिनीं स्याद्वादवैजयन्तीं प्रसारयन्त आर्हता उच्चमस्तकं प्रद्योतन्ते योगक्षेमपारायणपरायणाः परिचितात्मपरमात्मतत्त्वाः।

नहि सन्तप्ताततायिभिः सर्वथाभेदवादिभिरिव द्रव्यद्रव्ययोः संयोग.संयोगद्रव्याःसमवायः संयोगसमवाययोर्विशेष्यविशेषणभावः समवायविशेष्यविशेषणयोः स्वरूपसम्बन्धो रूपरसयोरेकार्थ समवाय इति लांगूलिकलगूलवल्लम्ब्यमानकल्पितसम्बन्धपरम्परानवस्थाचमूरीचंक्रमणाक्रांतिप्यते स्याद्वादिभिः कथञ्चित्तादात्म्यात्मक सम्बन्धपीयूषवाराशिनिमग्नवपुर्भिर्जिनहिमाचलोद्भवस्याद्वादवागगङ्गा प्रवाहावगाहनपवित्रान्तःकरणैः।

श्री वर्द्धमानमनुपरिपूर्णाधिकारं न्यायशास्त्रकृतो भावितीर्थङ्करविभूतिभृतः श्रीसमन्तभद्रसूरयोऽन्ययोगव्यवच्छेदकायोगव्यवच्छेदकात्यन्तायोगव्यवच्छेदकैवकारं प्रयुक्तमप्रयुक्तं वा स्याद्वादसहचारिणं नितांतावश्यकमामनन्त्यन्यथानुक्तसमत्वापत्त्यापादनेनावधीरयन्ति प्रतिवादिपण्डितान्।

पार्थ एव धनुर्धरो धनुर्धरः पार्थ एव पार्थो धनुर्धरो भवत्येवव्ज्जरायुजाण्डजपोतानां गर्भो गर्भ एव जरायुजाण्डजपोतानामेतेषां गर्भजन्मभवत्येवेत्यत्रोद्देश्यतावच्छेदकसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वादि लक्षितैवकारोपयोजना प्रमितिजनकतावच्छेदकापन्नप्रमाणभृत्प्रमातृविद्वत्सम्विद्विषयतामियर्त्ति।

समघनचतुरस्राकारानन्तानन्तरज्जुविस्तारायामावगाहधार्याकाशवद्वंहीयसि स्याद्वादगम्भीरोदारोदरे आसत्तियोग्यताकांक्षातात्पर्यव्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्यपदार्थबोधादिशाब्दबोधजनकसामग्री अभिनिविष्टास्तीति नास्माकमत्रातितरामादरः खण्डनमण्डनविधौ।

लक्ष्यलक्षणप्रकरणेऽप्युपयोगो लक्षणमित्थं लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणत्वे सति लक्ष्यता-वच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसामानाधिकरण्यमतिव्याप्तिलक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियो-गित्वाव्याप्त्यादिलक्ष्मदोषरिक्तं पूर्वमनुस्याद्वादैवकारपदप्रतिष्ठितं लक्षणं त्रिलोकाबाधितं कक्षी-कुर्वन्ति लक्ष्यलक्षणभावविदो धैर्यधारिधीधना विचक्षणविपश्चितः संगरितविपक्षपक्षयक्षाः स्वकीय-सच्चरित्रपवित्रकीर्तिकौमुदीसमासादितप्रियमिष्टशिष्टाक्लिष्टवचनप्रयोगप्रीतिप्रसराः।

काश्चित्कपुरस्य देशभाविशारदी वृष्टिरिव, कादाचित्कसिद्धचक्रपूजनप्रवृत्तिरिव अनेकभिषग्वर्यान्यतम साध्यपारदीसिद्धिरिव माकन्दमंजरीमकरन्दविन्दुस्यन्दिस्याद्वादानुस्यूतवचनप्रणाली सुदुर्लभा।

धर्मान्तरादानोपेक्षाहानिलक्षणत्वात्प्रमाणनयदुर्णयानामिति निष्कलंकाकलंकोक्त्या सम्यङ्मिथ्यैकान्ता-नेकान्तवत् स्याद्वादयोजनप्रक्रियापि पुद्गलोरूपवान, मुक्ताः केवलज्ञानिनो, देवदत्तो विद्वान् , जिनदत्तो धनाढ्य इत्यादिवाक्येषु द्वैविध्यमश्नुते।

अनल्पानन्तानन्तानेकान्तेषु संख्यातशब्दनिष्ठवाचकतानिरूपितवाच्यतावन्तः स्याद्वादाभिहिता धर्माः परिगणिताः सन्ति परमल्पीयःसंख्याकैरभिधायकैः सातिशयश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमशालिनां प्रमातृणामनन्त-प्रमेयप्रतिपत्तिर्भवतीति महच्चित्रम्। लघुपरिमाणावच्छिन्नवटबीजमिव लघीयान् स्याद्वादः महापरिमाणात्कल्पद्रु-

श्रुतज्ञानं जनयत्प्रपितामहायते कैवल्यस्यापि, प्रथमोपशमरूपवरदृष्टिर्यथाभि:श्रेयसोत्पत्तौ मातामहीयते येस्याशोधनप्रातःक्रमणप्रत्याख्यानप्रत्याहारधारणासनसमाधिध्यानाधिष्ठैर्धार्मिकैरनारतं ध्येयः।

परमार्थग्राहिनिश्चयव्यवहारनयप्रमाणकृतानुचिन्तनः गुणैर्निमित्तोपादानकारणकमविस्वुत्पत्तिव्यवस्थापादकैरर्थ्यं नयोगसंकान्त्याक्रान्तधर्मध्यानरतैरनुसृतां परिशीलयतां स्याद्वादः आत्मनीननानावस्तुस्वभाववाचनप्रवणः सर्वथैकान्तत्यागचणः सप्तभङ्गनयापेक्षो मोक्षोपयोगिप्रलम्बकर्मनिर्जरकनिश्चयनयोत्पादकान्तर्जल्पमयो हेयादेयविवेचकः साक्षात्प्रपरत्वे केवलज्ञानमिव [साक्षात्सर्वतत्त्वप्रकाशक:।

स्याद्वादाम्बुध्येकशीकरग्राहिणानाप्रवादिनो हरिद्राग्रन्थिग्राहिमूषकवणिगिव स्वमताभिनिवेशमदमत्ता अद्याप्युपासते तमेव व्यापकवपुषं सापेक्षानेकधर्मवकुशं ऋद्धिसिद्धिवृद्धिप्रसिद्धिज्ञापकम्।

सुरेन्द्राख्यबंगाल्येवं ब्रूयाद्विश्वे वंगवासिनोऽलीकाभिधायिनः सन्ति, शाब्दबोधप्रणाल्या वाच्यो स्यात्तात्पर्यमेतावन्मात्रं वितथभाषणदोषारोपणपरं प्रतिभाति परं च सुरेन्द्रोपि वंगदेशवासी सोपि स्वकीयप्रतिज्ञावशवर्त्तितयानृतवचनशील: तथा च तदध्यारोपितं वंगीयत्वसत्यत्वादित्वमप्यसत्यं, ततोन्यथानुपपत्तिरूपार्थापत्त्या वंगप्रांतीयमनुजाः सत्यवादिनः इति सम्प्राप्ताः सत्यलाञ्छनस्याद्वादसंस्कृत्योपयुक्तवाक्यस्योभयार्थप्रतीतिरखिलापामरजनप्रसिद्धाटीकामन्तरोट्टङ्कयते झटिति।

हिताहितसम्यग्गवेषणा संवेदनाविरहितो गर्दभ एव निजयां न भुनक्तीत्यत्र रासभोपि विजयां नात्तीति एवकार स्थानेऽपि पदपरिवर्त्तनेन स्याद्वादमुद्रांकितपरत्वेन मादकपदार्थत्यागनियमिनियमव्यवस्थास्थीयते।

कृतकारितानुमतसंरम्भारम्भसमारम्भत्रियोगाभ्यासोद्भूतसाम्परायिकास्रवनिरोधहेतु चित्चैतन्यचमत्कारसंचेतनात्मसंवरपरिणामै रुदितोदीयमानोदेष्यमाणकर्मनिर्जरणसमर्थसहजास्कारप्रभाभासुरशुद्धज्ञानघनोन्तरात्मा नानासप्तभङ्गनिवनघननीयमानस्फुरज्ज्योतिः स्फूर्जति अतिगहनतरात्मतत्त्वार्थरत्नपुंज परिपूर्णतर्कमंजूषोद्घाटनकर्मठकुंचिकाभूतः।

शब्दस्फोटपदस्फोटवाक्यस्फोटवादिवैयाकरणाभिप्रेतव्युत्पन्नाव्युत्पन्नशब्दपक्षकक्षीकरणेन क्षणिककालान्तरस्थायिपदार्थद्वयोररीकुर्वाणसौगतमतप्रतिपत्त्याथवा द्वैताद्वैतप्रथादिसौत्रान्तिकवैभाषिकविवेकपद्धत्या ज्ञानशब्दात्माद्वैतानुविद्धपरिपाट्या च विशालस्याद्वादप्लक्षवृक्षस्वच्छच्छायामाश्रयन्ति पतदञ्जलिपतञ्जलिप्रभृतयस्तीरादर्शिपोतकाकन्यायमनुकुर्वाणा अनेकविधश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणव्याकरणन्यायतर्कमीमांसासाहित्यनानाविधशास्त्राध्ययनाध्यापनपर्यालोचनाः।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत", "न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः" इति कर्तृवादाकर्तृवादविपश्चिद्घोषा घोषणां कुर्वती भगवत्स्वोपज्ञगीताभारती यथा स्याद्वादं प्रतिपाद्य प्रतिपत्तिं विदधाति वैष्णवसम्प्रदायाश्रितानां प्रत्यवायविरोधिनित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठायिनामणोरणीयान्महतो महीयानित्यध्येतृणां बाधप्रतिबन्धतावच्छेदकीभूतस्वनिष्ठविषयिताघटितधर्मावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपितासाध्यवत्तानिश्चयस्वव्यापकप्रतिबन्धकानिरूपितप्रतिबध्यतावच्छेदकावच्छिन्नशाब्दज्ञानरूपसंशयनिराकरणपरा।

पितृत्वपुत्रत्वमातुलत्वभागिनेयत्वप्रभृतिसापेक्षवादसम्बन्धिध्वनिव पौराणिकाभीष्टगजाननरसिंहोदाहरणेषु कापिलाभिप्रेतसत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतितत्वे मेचकरसापन्नपानके विचित्रचित्रपटे च स्यात्पदानुयोजनिकानिवार्यमाणा केवलान्वयिनो छायेवानुगच्छति प्रतिपदं। समाधिसाधनसाधकसाधव इव प्राज्ञाः समयसारैकान्तरसिका स्वात्मानं श्रेण्यारोहणम्मन्यमानाः अनुदयं परिशुद्धज्ञानमात्रैकभावनाभावितान्तः

करणाः स्वेच्छोच्छलत्पुष्कलोत्थानल्पविकल्पमालामात्मकर्मद्रुमावच्छिन्नप्रयोगकुशलकुलिशोपमस्याद्वादाञ्चित-भेदज्ञानबलेन तीक्ष्णपरशुनेव भवपाशाशावल्लरीं छिन्दन्तोऽनन्यात्मना आत्मनः आत्मभिरात्मभ्यः आत्मन आत्मस्वेवं षट्कारकाध्यात्मैकमानाः ।

पश्चिमाशादर्शस्ताचलोऽप्युदयाद्रिरमिमिर्षति सर्वेषां वर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थित इत्यखण्डज्योति-ष्कसिद्धान्तप्रक्रियया भारतवर्षीयजनतोक्तसामकालीनरव्यस्तकाल पश्चिमविदेहस्थमानवानां प्रातःकालीन सूर्योदयवेलोद्घोष्यते वैश्वानरदग्धनरमनलसेको लाभप्रदः जललेपश्च कष्टप्रदः विषस्य विषमौषधमित्य लौ-किकलौकिकनिदर्शनप्रदर्शनेन स्याद्वादवल्ली वेष्टयति त्रिविष्टपं, किं बहुना संशयसुभृशखिलवचनप्रणाली सूत्रानुस्यूत निर्मलवृत्तमौक्तिकस्रगिव स्याद्वादांकितगीरखिलस्थावरजंगमजगदभिव्याप्य विद्वज्जनमानसविहारिमराल-हृदयेषु नितरां नितांतमुद्भासते इति ।

श्रेष्ठित्व, पण्डितत्व, दातृत्व, पात्रत्व, गृहपतित्वोदासीनत्व, जिनभक्तिनिपुणत्व, आत्मचिन्तन-चेतयितृत्व, अन्तर्जागृतत्व, बहिःसुप्तत्व, शुद्धद्रव्याभ्यासित्व, अशुद्धद्रव्यकथनानिरतत्व, विद्वद्गोष्ठीचर्चित्व विजनतायां स्वात्मपरिशालनरत्व, अन्तःप्रमाणापपन्नाकलंकाचार्यप्रणीतप्रमेयप्रेमित्वेऽपि बहिःकनजी स्वाम्युक्तनिश्चयनयग्राह्यार्थनिबध्यासनोन्मुखत्वप्रभृति स्वच्छसमुच्छलदच्छलधर्माभ्यासप्रणाल्या स्याद्वाद-गुम्फितया नानागुणनिष्ठाधेयतानिरूपिताधिकरणतामधिवुर्वाणः सर श्रेष्ठिवर्यै हुकुमचन्द्रमहोदय अतिशेरते गङ्गाजीवनं नन्दनलसच्छुभगुणाढ्य धार्मिकनृन् ।

इलवाजदञ्जमदिवर्त्तनकसनविध्वंसनपटु जिनधर्मप्रभावना, चैतन्यचिच्छिन्तनानन्दस्वादप्रवर्त्तना सद्विद्यहृद्यनिरवद्यगद्यपद्यमय जिनशासनवेदिविद्वद्वृन्दसद्गोष्ठीचैतेषाम् प्रवर्द्धन्ताम् धर्मशास्त्राभ्यासानु-मननशीलता च ॥

स्याद्वादोन्नतवर्द्धमानहिमवत्पद्मांगतो निसृता ।
स्वान्यज्ञप्तिधृताजटाक्तजिनभद्द्वीपांगविद्रौतमात ॥
सन्ततात्महिताप्यवुण्डवद्रुमा स्वाम्याननाद्वाहिता ।
नास्त्यस्त्यादिकणान् विकीर्य जिनवाग्गङ्गा पुनात्वाशु नः ॥१॥

— — —

दिगम्बर जैन-साधु-चर्या

लेखक—श्री इन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालंकार, संपादक जैन गजट

साधु-जीवन गृहस्थ-जीवन से सर्वथा भिन्न होना चाहिये। यदि जो काम गृहस्थ करे, वही साधु भी करे, तो साधु और गृहस्थ में कोई अन्तर नहीं रह जाता। इसीलिए साधु को विषयाशाओं से सर्वथा रहित और आरंभ तथा परिग्रह से भी सर्वथा रहित ही होना चाहिये। विषयाशा, आरम्भ और परिग्रह ये सब गृहस्थ जीवन के कार्य हैं। यदि साधु होकर विषयाशाओं के आधीन और आरम्भ-परिग्रहयुक्त हो, तो उसे किसी भी दशा में साधु नहीं कहा जा सकता। जब विषयाशा, आरम्भ और परिग्रह से मानव सर्वथा रहित हो जाता है, तो उस के विधेय कार्य ज्ञानाभ्यास, धर्मध्यान और तपश्चरण आदि हो जाते हैं।

सबसे बड़ा पाप और अपराध परिग्रह है। मानसिक और शारीरिक परिग्रह ही संसार में पापों की पारम्परिक संतति को बढ़ाता रहता है। परिग्रह ही क्रोध, हिंसा, कठोर वचन, अनृतवाणी आदि का उत्पादक और ममत्वकारक है। भयादि का प्रदाता और चित्त का भ्रामक है। इसीलिए सच्ची साधुता के उपासक अपने शरीर और मनपर रत्ती भर भी परिग्रह तथा लालसा नहीं रखते और ऐसा रूप धारण करते हैं जिससे क्रोधादि की प्रवृत्ति का हेतु ही न उपजे। वैसा रूप यदि संसार में है, तो दिगंबर रूप ही है। अन्तरंग और बहिरंग दिगंबररूप ही समस्त अपराधों और पापों से मुक्त हो सकता है।

नग्न दिगंबर रूप ही जातरूप है। तत्कालोत्पन्न बालक की जातरूपता और साधु की जातरूपता में अन्तर विवेक मात्र का है। जिस प्रकार तत्कालोत्पन्न अथवा कुछ बड़ा भी बालक निर्विकार होता है, उसी प्रकार दिगम्बर नग्न साधु भी सर्वथा निर्विकार होता है। ऐसे जातरूपधारी नग्न दिगंबर वीतरागी साधु पांच महाव्रतों का यथाविधि पालन करते हैं:—

१—ऐसे महासाधु न राग, द्वेष, काम, क्रोध, मानादि से अपनी हिंसा करते और न किसी जीव का घात ही करते। वे छोटे से छोटे जीव की रक्षा का भी इतना कठोर प्रयत्न करते हैं कि सर्वथा कोमल मयूरपिच्छिका से स्थान आसन आदि से प्राणियों को बचा देते हैं। अपने शरीर को भी उस पिच्छिका से इसीलिए स्पर्श करते रहते हैं कि शरीर पर बैठा हुआ कोई प्राणी संकटग्रस्त न हो जाय। इतनी कोमल मयूरपिच्छिका के पास में निरंतर रखने का प्रयोजन केवल प्राणिरक्षा है। 'जीयो और जीने दो' इस भावना और प्रवृत्ति के वे पूर्ण और आदर्श अवतार होते हैं।

२—अपने प्राणों पर संकट आने पर भी वे कभी अयथार्थ और अतथ्य वचन नहीं बोलते। कठोर, कर्कश आदि वचन भी, जो कि परिणाम में भी वैसे ही हों, कभी भी नहीं बोलते।

३—वे बिना दी हुई कोई वस्तु एवं जो उस पद के उचित न हो वह दी हुई भी नहीं लेते। दी हुई का भी लेकर उनको कुछ करना नहीं। दिये हुये भी केवल ज्ञानोपकरण पुस्तकादि, शुद्ध आहार, पिच्छिका, कमण्डल आदि ही ग्रहण करते हैं।

४—ब्रह्मचर्य महाव्रत का पूर्ण रूप से पालन करते हैं।

५—अन्तरग और बहिरंग किसी भी प्रकार का परिग्रह अपने पास नहीं रखते। पिच्छिका और कमण्डल परिग्रह के रूप में नहीं, वे केवल शौच और संयम के उपकरण हैं। उनमें भी उनकी ममत्वबुद्धि अथवा मूर्छा नहीं होती। उनके न होने पर पाप के भय से वे अपनी शारीरिक प्रवृत्ति बंद कर देते हैं।

वे साधु पंच समितियों का यथाविधि पालन करते हैं:—

१—सूर्य के प्रकाश में ही भूमि को अच्छी तरह देख भाल कर चलते हैं। वे अपने चलने फिरने में यथासम्भव किसी भी जीव को मारना तो क्या, पीड़ा भी नहीं पहुंचाते। जीवरक्षा का बड़ा भारी ख्याल रखते हैं। इसीलिए अनावश्यक यातायात नहीं करते। आवश्यकता होने पर भी बड़े भारी संयम से यातायात करते हैं, जिससे कि किसी प्राणी को बाधा भी न पहुंच सके।

२—सदैव हित, मित और मधुर वचन ही बोलते हैं।

३—श्रद्धा और विनय युक्त शुद्ध श्रावक के घर पर जाकर दिन में एक बार भोजन करते हैं। भोजन ४६ दोष टाल कर ही करते हैं। जल भी भोजन के साथ दिनमें एक बार ही लेते हैं। भोजन प्रायः अनेक रस छोड़ कर करते हैं। पानी भी प्रायः गरम पीते हैं। भोजनदाता के अमीर-गरीब होने का कोई खयाल नहीं करते। केवल उसकी और भोजन की शुद्धि का ध्यान रखते हैं।

४—किसी भी वस्तु को रखते, उठाते तथा स्पर्श करते समय इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं कि उस प्रवृत्ति से किसी जीव को पीड़ा तो न पहुंच जायगी।

५—मलमूत्र भी ऐसे सर्वथा निर्जन्तु स्थान पर करते हैं जिससे किसी प्राणी को रंचमात्र भी पीड़ा न पहुंच सके।

पांचों इन्द्रियों पर विजय रखते हैं। इन्द्रियों के वश न होकर उन्हें अपने वश में रखते हैं। इन्द्रियों के विषयों तथा ज्ञेय पदार्थों में वे सर्वथा रागद्वेष नहीं करते।

विशेष आत्मचिंतनार्थ प्रतिदिन त्रिकाल सामायिक करते हैं। तीर्थङ्कर भगवान् की स्तुति करते हैं और उन्हें त्रिविध शुद्धि से नमस्कार करते हैं। इतनी सावधानी रखने पर भी यदि प्रमाद से कोई दोष लग जाय, तो उन दोषों का आलोचनादि द्वारा संशोधन करते हुए भविष्य के लिये पूर्ण सावधानी रखते हैं तथा उन दोषों से बचने के लिये अयोग्य व्यापार का मन वचन-काय की विशुद्धिपूर्वक परिहार करते हैं। तपश्चरण की अभिवृद्धि एवं दोषशांत्यर्थ वे महासाधु शरीर में ममत्व भाव का त्याग कर प्रतिदिन अनेक बार कायोत्सर्ग करते रहते हैं। कायोत्सर्ग का अर्थ शरीर त्याग न होकर शरीर में ममत्व का त्याग है, जिसके लिए वे महासाधु खड़े होकर दोनों भुजाओं को नीचे लटकाते हुए पांव के पञ्जों को एक पंक्ति में रखकर आत्मध्यान में पूर्ण निश्चलता के साथ लीन हो जाते हैं, जिससे तपोवृद्धि, संचितकर्मनिर्जरा और आत्मानुभव की पराकाष्ठा को वे प्राप्त होते हैं।

वे महासाधु आजन्म स्नान नहीं करते। जिस समय आहार के लिये श्रावक के घर पर जाते हैं, उस समय भोजनानंतर वह श्रावक ही यथावश्यक उनका शरीर पौंछ देता है।

जैन-धर्म क्या है ?

इस संबंध में शाब्दिक व्युत्पत्ति द्वारा "जैन-धर्म" शब्द का अर्थ क्या होगा, यह भी विचारणीय है। "*जयतीति जिन:*" *जो जीतता है; वह "जिन" है। जीतना किसी शत्रु पर होता है।* इस आत्मा के भीतर जो काम क्रोध क्षोभ मान मोह आदि दुर्गुण हैं, वे ही इसके शत्रु हैं और उन पर विजय पा लेना सबसे बड़ी विजय है।

आत्मशोध संशोधक ज्ञानी, जिन्हें "जिन" संज्ञा प्राप्त हुई है, उन्हें अपना आराध्य देव मानने वाले लोग "जैन" संज्ञा को प्राप्त होते हैं तथा उन जैनों का जो धर्म है वह जैन धर्म है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि "संसार के जन्ममरणादि महान् दु:खों के मूलकारणभूत अपनी आत्मा की असत् प्रवृत्तियों को दूर करने के कर्त्तव्य को पूरा करने वाले, सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ जो मोक्ष पुरुषार्थ है, उसके द्वारा सम्पूर्ण आत्म वैभव का स्वतंत्रता से उपभोग करने वाले सर्वाधिक "कृतकर्त्तव्य" व्यक्ति ही "जिन" हैं और उन्हें आदर्श मानकर अपनी मोह निद्रा को भंग कर अपने में जागरूक रहकर जो उनके पथ पर चलकर स्वयं को "जिन" बनाने का प्रयत्न करते हैं वे 'जैन' हैं और उनके सम्पूर्ण कर्त्तव्य विषयक सिद्धांत ही "जैनधर्म" है। इसे थोड़े शब्दों में कहा जाय तो जैनधर्म कर्त्तव्यशील व्यक्तियों का धर्म है। अत: वह "आचार-प्रधान" धर्म है।

मोक्ष मार्ग आचार प्रधान है

यद्यपि सूत्रकार ने सम्यग्दर्शन आदि तीन उपाय दु:ख निवृत्ति के बताये हैं, तथापि उनका स्वरूप विचार करने पर एकमात्र "आचार" धर्म में लीन हो जाता है। जैन धर्म का यह सर्वोपरि सिद्धांत है कि प्रत्येक संसारी आत्मा स्वोपार्जित पुण्य पाप का फल भोगता है। कोई ईश्वर आदि दैवीशक्ति व्यक्ति पर शासन नहीं करती। अत: न कोई उसको कुछ दे सकता है और न हर सकता है। न कोई रक्षक है और न कोई मारने वाला है। अपना किया हुआ 'सदाचार' ही एक हद तक पुण्य है और 'कदाचार' ही पाप है। अतएव उसी दुराचार या सदाचार के फलस्वरूप (जो कि उसे प्राकृतिक रीति से स्वयं प्राप्त होता है) दुख सुख को यह भोगता है।

आचारमूलक आत्म-स्वतंत्रता

यह लोक छह द्रव्यों का समूह है। इसमें प्रत्येक द्रव्य की सत्ता स्वतंत्र है। कोई किसी की सत्ता का अपहरण नहीं कर सकता और न किसी की सत्ता को बना सकता है। जैसे प्रत्येक द्रव्य के लिए यह अनिवार्य सिद्धांत है, वैसे ही आत्मतत्त्व पर भी वह लागू है। ऐसा होने पर भी यह आत्मा अपने भ्रमवश ऐसा मान बैठा है कि मैं पराधीन हूं। इसे अपनी आत्म-स्वतंत्रता पर न तो विश्वास है और न उसका ज्ञान ही है। जब किसी आगमवचन से या सद्गुरु के निमित्त से इसका यह भ्रम दूर हो जाता है और वह अपनी आत्म-स्वतन्त्रता पर विश्वास कर लेता है तथा उसका ज्ञान उसे हो जाता है, तब वही विश्वास 'सम्यग्दर्शन" और वही ज्ञान "सम्यग्ज्ञान" कहलाता है। उक्त प्रकार आत्म-स्वतंत्रता को प्राप्त कर लेने का उसका जो प्रयत्न है, वही "सदाचार या सम्यक्चारित्र" का नाम पाता है।

इस प्राणी को अपनी ही भूल से अपने को परतंत्र मानने के कारण दु:ख होता है और अपनी भूल समझ में आजाने और परावलम्बन का त्याग कर देने मात्र से ही यह सुखी हो जाता है। अत: मिथ्या विश्वास, मिथ्या ज्ञान और विपरीताचरण ही दु:ख के हेतु और सम्यक् तत्त्व की श्रद्धा तथा उसका ज्ञान एवं

तदनुकूल अपना सदाचार वर्तन ही दुःख निवृत्ति के उपाय हैं। यही अर्थ सूत्रकार के सूत्र का है।

आचारमूलक चतुःसंघ व्यवस्था

जैनाचार्यों ने जैन धर्मानुयायियों को चार भागों में विभक्त किया है। मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका। इस विभाजन का भी मूलाधार 'सदाचार' है। जो परिपूर्ण अहिंसा, पूर्णसत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और सम्पूर्ण परावलम्ब के त्याग स्वरूप अपरिग्रह इन पांचों ही महाव्रतों को अपने जीवन में ढाल लेते हैं, वे साधु या 'मुनि' के नाम से कहे जाते हैं। मुनि की तरह ही जो सम्पूर्ण व्रतों के परिपालन में कटिबद्ध हैं, पर स्त्री पर्याय गत सहज कमजोरी या कमी के कारण वस्त्र परिग्रह एक मात्र धोती का त्याग नहीं कर पाते, वे 'आर्यिका' संज्ञा को प्राप्त होते हैं।

पांच व्रतों का गृहाश्रम में संभावनीय अंश का त्याग करने वाले गृहस्थ 'श्रावक' और इसी प्रकार का आचार पालने वाली गृहिणी "श्राविका" कही जाती है। इस प्रकार यह चतुः संघ व्यवस्था सदाचार को आधार मानकर ही की गई है।

सदाचार के मापदण्ड

सदाचार के मापदण्ड जैन संस्कृति में तीन हैं। अहिंसा—वीतरागता-समता। जिस व्यक्ति में इन तीन गुणों की जितनी अधिकता पाई जाती है, वह व्यक्ति उतना ही आदरणीय और पूज्य माना जाता है। इन गुणों की विशेषता से ही साधु 'साधु' संज्ञा पा सकता है, अन्यथा नहीं। इन गुणों के अस्तित्व का प्रमाण यह है कि उस व्यक्ति का साधारण रहन सहन, खान पान, उठना-बैठना, वार्तालाप-व्यवहार और आसन-शयन इत्यादि सम्पूर्ण कार्यकलाप इस प्रकार के हो जाते हैं कि उनसे किसी भी प्राणी को कष्ट न हो। प्रत्येक कार्य वह इस रीति पर देख शोध कर करता है, जो किसी मनुष्य की बात तो दूर रही, पशु पक्षी कीट पतंग, यहां तक कि साधारण वृक्ष गुल्मलता घास-पात आदि एकेन्द्रिय प्राणी का भी घात न हो जाय। अपनी इस अहिंसात्मक प्रवृत्ति के लिए वह यह आवश्यक समझता है कि ऐन्द्रियिक सुख की लालसा का परित्याग करे। मानव शरीर के लिए कुछ तो ऐसी अनिवार्य चीजें हैं, जिनका त्याग शक्य नहीं है। जैसे उठना, बैठना, सोना, चलना, भोजन करना, मलत्याग करना, बातचीत करना, अपने पास जिन वस्तुओं की नितान्त आवश्यकता दैनिक कार्यों के लिए है,उनका उठाना रखना इत्यादि। इन कार्यों को तो साधु बहुत देख शोध कर प्राणिपीड़ा परिहार करते हुए करता है। कुछ कार्य मनुष्य के ऐसे हैं जो औपाधिक हैं, जो अनिवार्य शरीर धर्म के होते हुए भी अपनी लालसा के कारण उसने अपने साथ लगा लिये हैं। वे कार्य हैं स्वादिष्ट भोजन, बढ़िया कपड़े, बहुमूल्य आभूषण, चन्दन इत्र सुगंधित पुष्प आदि, गीत नृत्य वादित्र आदि, नाटक सिनेमा कामभोग आदि अनेक भोग विलास संबंधी कार्य इस प्रकार के हैं। इन उपाधियों को लगा लेने पर इनके साधक समस्त वैभव के साथ अनुराग होना स्वाभाविक है। इस दुनिया में इन उपाधियों से बचे हुए मानव 'न' के बराबर हैं। इन उपाधियों के शिकार प्रायः सब हैं। सब को ही तत्साधक वैभव चाहिए है। उसकी प्राप्ति में ही उनका अहर्निश प्रयत्न है। पारस्परिक छीना-झपटी, संघर्ष, युद्ध, कलह, विसंवाद, मारपीट, मुकद्दमेबाजी आदि सम्पूर्ण दुःख परम्परा उसके ही प्रतिफल हैं। इन सब दुखों से बचने के लिए व्यक्ति को इन औपाधिक व्याधियों से अपने को बचाना चाहिये। जैन साधु अनेक हिंसा के साधन भूत इन उपाधियों से बचने के लिए "वीतरागता" को स्वीकार करता है। वह इन्द्रिय सुखों से विरक्त रहता है। उनकी लालसा नहीं करता। इन्द्रियों का दमन करता है। इन्द्रिय सुख

की लालसा आत्मा का एक विकारी भाव है। उस विकारी भाव के कारण ही प्राणी "आत्म-स्वतंत्रता" के सिद्धान्त को भूला हुआ है। अपने सत्प्रयत्नों द्वारा जिनमें "वीतरागता" अर्थात् सांसारिक वैभवों में राग द्वेष का अभाव ही मुख्य प्रयत्न है। जब अपने विकारी भावों पर आत्मा विजय प्राप्त करता है, तब वह आत्म-साधना का साधक 'साधु' कहलाता है। उसके सारे ही प्रयत्न इसके लिए हैं कि वह अनादि की भूल से जो अबतक परावलम्बी था, वह परावलम्ब उसका छूट जाय और वह अपने को अपने में ही सीमित कर आत्मस्वतंत्रता का पूर्ण उपभोक्ता बन सके। जब तक वह आत्मभोग का भोगी, आत्मराज्य का शासक, मुक्तात्मा नहीं बन जाता, तब तक उसके वे सम्पूर्ण प्रयत्न "सदाचार" या "सम्यक्चारित्र" कहलाते हैं। यह सदाचारी व्यक्ति सम्पूर्ण "अहिंसा" के पालन के लिए आवश्यक "वीतरागता" का अवलम्बन करता है और 'वीतरागता' की पूर्णता के लिए 'समता' का आश्रय लेता है। सुख-दुःख में, संपत्ति-विपत्ति में, बैरी और बन्धु में, संयोग और वियोग में तथा जीवन और मरण में भी समभाव को प्राप्त हो जाता है। वैषम्य उसके जीवन में नहीं रह जाता। प्रत्येक अवस्था में अपने को सुखी ही अनुभव करता है। जब वह ऐसे साम्यभाव को प्राप्त होता है, तभी जीवन की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझा पाता है। इसी समता के अवलम्बन से 'वीतरागता' की पूर्ति होती है। समदृष्टि वीतराग ही पूर्ण अहिंसक हो सकता है। इस प्रकार समता, वीतरागता और अहिंसा सदाचारी साधु पुरुष के सदाचार के मापदण्ड हैं। जैन संघ में सर्वोत्कृष्ट पद "साधुपद" है और साधपद का अधिकारी व्यक्ति वही है जो तत्पद विहित 'सदाचार' का पूर्ण अनुयायी हो।

गृहाश्रम की व्यवस्था

जैनधर्म में गृहस्थ के ग्यारह दर्जे (प्रतिमा) बतलाये गए हैं। (१) अष्ठ मूल व्रतों को पालने वाला "जिन" का सच्चा विशुद्ध श्रद्धानी, (२) पञ्चाणुव्रत तथा शेषसप्तगुणधारी, (३) सामायिक व्रतधारी, (४) प्रोषधोपवासव्रत का आचारी, (५) भोगोपभोगों का विशेष संयमन की इच्छा से सचित्र वस्तु का त्यागी, (६) दिवस ब्रह्मचारी, (७) रात्रिंदिवा पूर्ण ब्रह्मचर्य का अनुयायी, (८) आरम्भ जनित पापों से अपने को बचाने वाला आरंभत्यागी, (९) परिग्रह-धन, धान्य, वस्त्र, आभूषण, सुवर्ण, रजत, रत्न, जमीन-गृह आदि का त्याग कर नाममात्र चार-छः आवश्यक वस्त्र मात्र रखने वाला, (१०) गृहारम्भ के साधारण से साधारण कार्यों में भी अनुमति प्रदान न करने वाला, (११) अनिश्चित गृहस्थों के यहां भिक्षा भोजन मात्र ग्रहण कर, ध्यान और परोपकार में जीवन व्यतीत करने वाले एक या दो वस्त्र मात्र के धारण करने वाला। ऐसे ग्यारह प्रकार के गृहस्थ माने गए हैं। प्रत्येक प्रतिमा में कुछ न कुछ सदाचार की मात्रा बढ़ती आई है और प्रतिमारोहण की एक मात्र शर्त सदाचार की वृद्धि ही है। अष्टमूल व्रत से प्रारम्भ कर अन्त तक गृहस्थ के बारह व्रतों को पूर्ण कर गृहस्थ को यह ग्यारह प्रतिमाएं इस दर्जे तक पहुँचा देती हैं कि वह खड़े हो कर एक बार गृहस्थ के घर भिक्षा से प्राप्त अन्न को अपने हाथ रूपी बर्तन में ही भोजन करता है, मुख-से मांगता नहीं। केवल लंगोटी मात्र वस्त्र रखता है। एक कानी कौड़ी भी सम्पत्ति के नाम पर नहीं रखता। साधु संघ में ही निवास करता है। अपने इस उत्तम सदाचार से वह अपने को इस योग्य बना लेता है कि लंगोटीमात्र का त्याग कर देने पर उस में व साधु में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

सच्चा जैन कौन है?

यह बात पहिले ही बता दी गई है कि सदाचार के उपासकों तथा उसके बल पर "आत्मपद" की

सर्वोत्तम कोटि को प्राप्त कर लेने वाले 'जिन' तथा उनकी 'वाणी' पर जिसकी अगाध श्रद्धा हो, वह जैन है। उसकी यह अवस्था "अविरत" अवस्था मानी गई है। अतः वह अभी प्रतिमाओं की दृष्टि से किसी भी प्रतिमा पर अभी प्रतिष्ठित नहीं है। उस मार्ग में प्रतिष्ठित होने के लिये यह आवश्यक है कि जिस प्रकार उस की जिन जैनधर्म और जैन गुरु पर अटल श्रद्धा है, वैसे ही उसकी श्रद्धा उसके विश्वास के अनुसार असारता और दु:ख संतप्तता के कारण संसार से अशुचि विनश्वर रोग का घर होने से शारीरिक मोह से, तथा ऐन्द्रिय काम भोग से उसे वैराग्य पैदा करा देती है, तो वह प्रथम प्रतिमा का अनुयायी गृहस्थ हो जाता है।

सारांश यह है कि संसार, देह और भोग की विरक्ति जिन्हें नहीं हुई, बल्कि जिन्हें अभी संसार के ऐहलौकिक सुख और पारलौकिक सुख स्वर्गादि विभूति को अभिलाषा है, जिन्हें अभी देह की काल्पनिक सुंदरता को देखकर अनुचित रूप से भी कामवासना जागृत हो जाती है, जो अभी इन्द्रिय सुख के लालच में अनैतिक आचरण भी करने की हिम्मत कर लेता है, वह जैन गृहस्थ की पहिली सीढ़ी पर भी पैर रखने का पात्र नहीं है। आगे बढ़ने की बात तो बहुत दूर की है।

आचार्य समन्तभद्र ने स्पष्ट लिख दिया है कि:—

"सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरुचरणशरणो दार्शनिकः तत्त्वपथगृह्यः॥"

यह प्रथम दर्जे के श्रावक (प्रथम प्रतिमा) का स्वरूप है। अनीति का वर्तन करने वाला, निरपराध दूसरों को सताने वाला, मायाचार, विश्वासघात तथा असत्य भाषण से पर को हानि पहुंचाकर अपना स्वार्थ-साधन करने वाला, दूसरों के अधिकार छीनने वाला, व्यभिचार करने वाला, विषय लंपटी व्यक्ति जैनगृहस्थ के धर्म की प्रथम सीढ़ी पर भी आरोहण करने योग्य नहीं है। वह सदा नीति से बर्तता है और नैतिक आचरण का समर्थन करता है। "तत्त्वपथगृह्यः" इस पद से आचार्य समंतभद्र ने यह बात दर्पण की तरह स्पष्ट कर दी है।

"वत्थुसहावो धम्मो"

धर्म के स्वरूप का प्रतिपादक यह वाक्य भी उक्त अर्थ को ही पुष्ट करता है। आत्मा का स्वभाव ही आत्मा का धर्म है। स्वभाव की प्राप्ति के लिये एक मात्र "सदाचार" जिसकी पृष्ठभूमि सदाचार तदाराधक और तन्निष्ठों की श्रद्धा से परिपूर्ण हो, आवश्यक है।

आचारमूलक व्यवहार

यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न हो सकता है कि क्या जैन समाज को केवल धर्म ही इष्ट है? सांसारिक व्यवहार से क्या उन का जीवन शून्य है? उत्तर है कि नहीं। जैन सम्पूर्ण लोक प्रवृत्तियों में भाग लेता है। जीवन का आनन्द उठाता है। वह संसार में केवल विवरण और मनहूस रहता है या रहना चाहिये, ऐसी बात नहीं है। तथापि वह सदा इस बात का ध्यान रखते हुए कि अमुक व्यवहार के पालन करने में मेरी श्रद्धा और सदाचार को धक्का तो नहीं लगता, लोकव्यवहार का पालन करता है। श्रीमदाशाधर जी ने इस सम्बंध में स्पष्ट आज्ञा दी है कि:—

"स्वाचाराप्रतिलोम्येन लोकाचारं प्रमाणयेत्।"

अर्थात् "अपने सदाचार की रक्षा का ध्यान रखकर ही लोकाचार का वर्तन करें।"

"सदाचार" शब्द में अहिंसा, सत्यवचन, सरलता, निष्कपट व्यवहार, उचितता, नैतिकता, इन्द्रियसंयमन, निर्लोभ, हार्दिक पवित्रता, क्षमा, परोपकार, फलनिरपेक्ष कर्त्तव्य करने की भावना इत्यादि मानव जीवन के लिये उपयोगी सहस्रों गुणों का समावेश होता है।

जैनागम के अनुसार जो अपने को प्रथम दर्जे का अर्थात् सब से छोटे दर्जे का भी "जैन" बना ले, वह 'विश्व' के लिये सब से अच्छा व्यक्ति सिद्ध होगा। क्योंकि सदाचार ही जैन धर्म का मूलाधार है। इसी में जीवन की सफलता है और इसके बिना मानवजीवन पशुजीवन बन जाता है। यही विश्व की अशांति का मूल हेतु है।

मंत्र और प्रतिष्ठायें

लेखक—श्री नाथूलाल जैन साहित्यरत्न, संहितासूरि, न्यायतीर्थ, शास्त्री

वर्तमान में जिस विषय के सम्बन्ध में अश्रद्धा और उपेक्षा बढ़ती हुई दृष्टिगोचर होरही है, उसी विषय की चर्चा में यहां उठा रहा हूं। मंत्र और प्रतिष्ठा का परस्पर सम्बन्ध होने से दोनों पर यहां विवेचन करना आवश्यक है।

"मन्त्र्यन्ते गुप्तं भाष्यन्ते इति मन्त्राः" जो गुप्त रूप से बोले जाते हैं, उन्हें मन्त्र कहते हैं। व्यवहार में मंत्रणा और मंत्री आदि प्रयोग इसी अर्थ को प्रकट करते हैं। मंत्रणायें एकांत में या प्रच्छन्न रूप में ही की जाती हैं। एकांत और शांत वातावरण में मन की एकाग्रतापूर्वक ही कोई कर्त्तव्य का भान हो सकता है। इसी प्रकार नियमानुसार शब्दों की योजना से बने हुए मन्त्रों से विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न होने में कोई आश्चर्य नहीं। सुन्दर और आकर्षक शब्दों की योजना सभी को मुग्ध कर लेती है।

सामान्य रूप से मंत्र तीन प्रकार के होते हैं :—१. बीज मंत्र—जो एक अक्षर से नव अक्षर तक के होते हैं। २. मंत्र—दश अक्षर से बीस अक्षर तक के। ३. माला—जो बीस अक्षर से अधिक के होते हैं।

अकार से लेकर हकार तक के सभी अक्षरों का मंत्रशास्त्र में माहात्म्य बताया गया है। स्वरों में भी सभी के वर्ण, देवता, उपयोग आदि का वर्णन मिलता है, जिनका कथन यहां करने में बहुत विस्तार हो जायगा। इन स्वरों और व्यंजनों में कोई शुभ रूप हैं, कोई अशुभ रूप हैं। किन वर्णों का किन वर्णों के साथ संबंध करने से क्या फल होता है, यह भी मंत्र के अतिरिक्त व्यवहार में हम बोलचाल से अनुभव कर सकते हैं।

मंत्रों का जाप तीन प्रकार से किया जाता है—१. मानस (मन में शब्दार्थ का चिंतन), २. वाचिक (शब्दोच्चारण) और ३. उपांशु (मंद ओष्ठ स्पंदन करते हुए) और उच्चारण शांति, पुष्टि, वश्य, आकर्षण, स्तंभन, मारण, विद्वेषण और उच्चाटन के लिए हाथ, अंगुली, आसन, माला, समय, हवनकुंड, समिधा आदि का पृथक् २ कथन है। मुद्रा, स्वाहा, स्वधा आदि पल्लवों का भी यथायोग्य प्रयोग होता है। महाकवि धनंजय ने मणि, मंत्र, रसायन आदि को जिनेन्द्र का ही पर्यायवाची कह कर उन्हें सर्वसिद्धिदायक सिद्ध किया है। परन्तु यह सब अन्तरंग भावों की प्रधानता पर निर्भर है। कोई भी भावशून्य मंत्रजाप या क्रियाकांड फलदाता नहीं होता। बताया गया है कि एक करोड़ द्रव्य चढ़ाने के बराबर एक स्तोत्रपाठ फल देता है, एक करोड़ स्तोत्र के समान एक बार किया हुआ जप फलदायक है और एक करोड़ जप एक बार ध्वनि के बराबर है, किन्तु वह एक करोड़ बार का ध्यान भी एक बार आत्मा के समारूप परिणति के बराबर है। इसका अभिप्राय यही है कि

आत्मा की ओर जितनी सन्मुखता-एकाग्रता बढ़ती जायगी, उतनी ही अन्य शक्ति भी संस्थित होती जायगी। बाहरी प्रभाव भी सब उसी आत्मशक्ति के आधीन है। इसलिए आत्मा में जब अनादिकालीन कर्मों को नष्ट कर मुक्ति प्राप्ति की सामर्थ्य है फिर वह अपनी एकाग्रता, मंत्रों की सिद्धि और उनके प्रभाव को प्रकट क्यों नहीं कर सकता है? यही कारण है कि अंजनचोर आदि ने श्रद्धा और दृढ़ता से आकाशगामिनी विद्या आदि की सिद्धि कर ली थी। पर श्रद्धा कोई साधारण बात नहीं है। इस प्रकार मुक्ति के समान मंत्रसिद्धि में भी सम्यक् श्रद्धा, तत्संबंधी सम्यक् ज्ञान और यथाविधि सम्यक् चारित्र आवश्यक है। इनमें किसी की भी कमी होने पर पूरा फल नहीं होता। आहारादि का पाचन भी परिणामों के अनुसार ही होता है और रोगादि का भी चित्तवृत्ति के अनुसार हो असर होता देखा गया है। तत्वानुशासन में लिखा है कि जब कोई मंत्र अपने वाला पार्श्वनाथ (या जिसका) ध्यान करता है, उस समय उसकी आत्मा वैसी हो जाती है और वह आत्मीय शक्ति द्वारा ही अपना अभीष्ट फल पाता है, विघ्नसमूह नष्ट करता है। निश्चय और व्यवहार की अनेकांत दृष्टि से विचार करने पर जैसे बाह्य परिग्रह अंतरंग ममत्व का भी कारण माना गया है, उसी प्रकार बाह्य विषादि के भोजन का और शाब्दिक मंत्रों का भी मन पर असर मानना पड़ता है। ऐसा न मानें तो अमूर्तिक आत्मा के कर्मादि का बंधन और मद्यादि से होने वाला विकार कैसे सिद्ध होगा?

मन्त्र संबंधी चर्चा के पश्चात् यहां प्रतिष्ठा की चर्चा भी करना आवश्यक है।

यद्यपि समस्त धार्मिक क्रियाकांड का यहां उल्लेख करना चाहिए था, पर प्रतिष्ठा शब्द से मेरा अभिप्राय प्रतिमा (बिंब) प्रतिष्ठा आदि पर, जिनमें प्रतिष्ठा शब्द व्यवहृत होता है, प्रकाश डालने का है। पंच कल्याण सम्बन्धी मन्त्रों द्वारा किसी सार्वधातु, पाषाण आदि की शास्त्रोक्त निर्मापित प्रतिमा में पंचपरमेष्ठी के सर्वज्ञत्व आदि गुणों का स्थापन करना प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा के स्थापना, प्रतिक्रिया आदि नाम हैं, जिनका भाव यह है कि उन्हीं के समान अपनी बुद्धि हो जाय। इससे 'यह वे ही हैं' यह भाव झलकता है। इसकी पूजन, स्तवन आदि के लिये आवश्यकता है क्योंकि साक्षात् ऋषभदेव महावीर आदि जिनेन्द्र तो सिद्ध लोक में विराजमान हैं अत: उनके आदर्श गुणों का स्मरण और उनके सदृश बनने के लिये उनका मूर्तिमान् तदाकार रूप स्थापित करना पड़ता है। इस के बिना भाव स्थिर नहीं हो सकते। इन परमपद में स्थित शुद्धात्माओं की प्रतिमा के सिवा उनकी प्रतिमा के स्थान मन्दिर, शास्त्र आदि की भी उक्त आदर्श के उद्देश्य से प्रतिष्ठा की जाती हैं जो मंदिरप्रतिष्ठा, वेदीप्रतिष्ठा, शास्त्रप्रतिष्ठा और कलशध्वजाप्रतिष्ठा आदि के नाम से कही जाती है।

यह सब बाह्य जल, सरसों, सुपारी, अक्षत आदि आदि द्रव्यों और अन्य मांगलिक वस्तुओं से मन्त्रों और यन्त्रों द्वारा की जाती है। शब्दों और अचेतन पदार्थों में कुछ ऐसी स्वाभाविक शक्ति है कि उन्हें ठीक मिलाने और प्रयोग करने पर उनका प्रभाव अवश्य होता है। 'मणिमाला' ग्रन्थ में किस रत्न को कब कहां धारण करने में क्या लाभ व हानि होती है, यह बताया गया है। हवन में जिन वस्तुओं का क्षेपण होता है उन से शरीर के व बाहर के बड़े २ रोग व कीटाणु दूर हो जाते हैं। दशांगधूप और घी आदि में क्षय आदि रोगों को दूर करने की शक्ति है। प्रतिष्ठेय प्रतिमा, वेदी, ध्वजा और कलश के निर्माण और प्रमाण की विधि अलग २ है। प्रतिमा पाषाण आदि की ग्राह्य मानी गई है, काष्ठ की प्रतिमा नहीं। वह भी सांगोपांग, शांत और ध्यानारूढ़ होनी चाहिए। तिरछी, ऊंची, नीची और गड़ी हुई दृष्टि तथा रौद्ररूप, छोटा बड़ा पेट, ऊंचा नीचा आसन, ये प्रतिमा संबन्धी दोष क्रमशः धन के, पुत्र के, स्त्री के नाश, संताप, प्रतिष्ठापक मृत्यु, रोग

इत्यादि के कारण हो जाते हैं। अतः अपने नगर के और राज्य के कल्याण का इच्छुक कभी वास्तुशास्त्र का उल्लंघन न करे। कहते हैं कि आजकल प्रतिष्ठापकों व प्रतिष्ठाचार्यों को लाभ के स्थान में प्रतिष्ठा से प्रायः हानि ही उठाते हुए देखा जाता है। इसमें शास्त्रोक्त विधि विधान की न्यूनता तो सम्भव है ही, पर प्रतिष्ठापक और प्रतिष्ठाचार्य की श्रद्धा और आचरण का अभाव भी एक खास कारण है। आचरण में केवल शुद्ध खानपान ही शामिल नहीं है वरन् ब्रह्मचर्य और नैतिकता उसमें मुख्य है। दोनों के लक्षणों का प्रतिष्ठापाठों में उल्लेख है। न्यायोपार्जित धन से आज कल प्रतिष्ठा कहां हो पाती है ?

इन प्रतिष्ठाओं और संस्कार विधियों में जो क्रियाकांड है उस में कुछ भाग दूसरों का भी हो सकता है क्योंकि परस्पर जैन व इतर संस्कृति में आदान-प्रदान होता रहा है। इसी क्रियाकांड की विभिन्नता के आधार पर जैनों में कई आम्नाय या पंथभेद हो गए हैं।

जो प्रतिष्ठाएं पहले अधिक समय में सम्पन्न होती थीं और जिनमें अर्थ व्यय भी बहुत होता था अब उनमें सुधार होता जा रहा है। प्रतिष्ठाचार्यों को इन में बहुत लाभ हुआ करता था जिसके कारण यह वर्ग बदनाम है। पंचकल्याणक में भूला, भगवान के वस्त्राभूषण, गठजोड़ा, कलश आदि में होने वाली आमदनी अब तो मंदिर की आमदनी में रख ली जाती है। मैं तो पंचकल्याणक समान सब से बड़ी प्रतिष्ठा को कई बार आठ दिन में सम्पन्न करा चुका हूं। जो लोग बिंब प्रतिष्ठा में पंचकल्याणक विधि को नाटक बनाकर उपहास करते हैं वे संस्कारों और मन्त्रविधियों के महत्व को नहीं जानते। बिंब प्रतिष्ठा में यागमंडल, अंकन्यास और सूरीमन्त्र प्रभृति मुख्य हैं। मेरा अनुभव है कि ये तीनों ही प्रतिष्ठाओं में विधिपूर्वक नहीं हो पाते। विशिष्ट मन्त्रकृत प्राणप्रतिष्ठा से ही प्रतिमा का चमत्कार और पूज्यता प्रकट होती है। यह प्रतिमा प्रतिष्ठित है या नहीं इसका ज्ञान प्रतिमा के दर्शन से ज्ञानी जन जान लेते हैं। अन्तरंग मन्त्र संस्कार के बिना बाह्य क्रियाकांड निष्फल है। जिन सेन स्वामी ने कहा है कि "मन्त्रविहीन क्रिया से प्रयोक्ताओं को सिद्धि नहीं होती। जैसे अस्त्र व नायक बिना केवल पोशाक से सजी सेना से विजय नहीं मिलती।" जबतक सामने की वस्तु में वैशिष्ट्य नहीं होगा तब तक हृदय में पूज्य बुद्धि और आकर्षण पैदा नहीं हो सकता। प्रतिमा की सातिशयता उसकी विधिवत् प्रतिष्ठा पर निर्भर है।

इन्हीं प्रतिष्ठाओं और मन्त्रसंस्कारों से हृदय पर प्रभाव तो होता ही है पर इन से व्यक्ति और देश का शुभाशुभ भी होना व न होना जाना जाता है। प्रतिष्ठापाठमें बताया है कि "जिनप्रतिष्ठा का प्रथम हेतु राज्य की सम्पत्ति, सुभिक्ष, मिथ्यात्व का नाश है।" मैंने यह देखा है कि प्रतिष्ठा के बाद प्रतिष्ठापकों की पूर्व दशा में सुधार होकर संपन्न दशा और गांव में भी सुखकी वृद्धि हो गई और इसके विपरीत भी देखा है। इसका कारण प्रतिष्ठा विधि के ठीक होने न होने से उत्पन्न पुण्य और अपुण्य कहा जा सकता है।

आज आवश्यकता और समय को देख कर ही प्रतिष्ठा आदि कार्य किए जाने चाहियें; बिना आवश्यकता के मंदिरों और प्रतिमाओं की संख्या बढ़ाने से उनकी रक्षा और पूजा का प्रबन्ध नहीं हो पाता है। प्रतिष्ठा पाठ में नवीन प्रतिष्ठा के बजाय जीर्णोद्धार में विशेष पुण्य माना है। श्रावकों के पूजा और दान ये दो मुख्य

कर्त्तव्य माने गये हैं उनमें जहां जिसकी आवश्यकता हो करना चाहिये। दान में भी सामयिक आवश्यकताओं का ख्याल रखना चाहिए।

इस लेख में वीतरागविज्ञानता के आदर्श को प्राप्त करने के लिये और जिनपूजा के लिये प्रतिष्ठा और मन्त्र पर संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है। मन्त्रपूर्वक ही प्रतिष्ठा होती है। अतएव दोनों में कार्य-कारण संबंध है।

अनिश्चिततावाद और स्याद्वाद

लेखकः—श्री न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल जैन कोठिया, दिल्ली

भगवान् महावीर के समय में अनेक मत प्रवर्त्तक थे। उनमें निम्न छः मत प्रवर्त्तक बहुत प्रसिद्ध थे और उनका लोगों पर बहुत प्रभाव था—

१ अजित केश कम्बल, २ मक्खलि गोशाल, ३ पूरण काश्यप, ४ प्रकुध कात्यायन, ५ संजय वेलट्ठिपुत्त, और ६ गौतम बुद्ध।

इनमें अजितकेश कम्बल और मक्खलि गोशाल भौतिकवादी, पूरण काश्यप और प्रकुध कात्यायन नित्यतावादी, संजय वेलट्ठिपुत्त अनिश्चिततावादी और गौतम बुद्ध क्षणिकवादी थे।

प्रस्तुत में हमें संजय के मत को जानना है। अत: उन के मत को नीचे दिया जाता है। 'दीघ निकाय' में उनका सिद्धान्त इस प्रकार दिया है:—

"यदि आप पूछें,—'क्या परलोक है' तो यदि मैं समझता होऊँ कि परलोक है तो आपको बतलाऊं कि 'परलोक है'। मैं ऐसा भी नहीं कहता, वैसा भी नहीं कहता, दूसरी तरह से भी नहीं कहता। मैं यह भी नहीं कहता कि 'वह नहीं है।' मैं यह भी नहीं कहता कि वह नहीं नहीं है। 'परलोक नहीं है, परलोक नहीं नहीं है'। देवता (=औपपादिक प्राणी) हैं......। देवता नहीं हैं, हैं भी और नहीं भी, न हैं, और न नहीं हैं।......अच्छे-बुरे कर्म के फल हैं, नहीं हैं, हैं भी, और नहीं हैं, न हैं और न नहीं हैं। तथागत (=मुक्त पुरुष) मरने के बाद होते हैं, नहीं होते हैं....?—यदि मुझसे ऐसा पूछें, तो मैं यदि मैं ऐसा समझता होऊं...तो ऐसा आपको कहूं। मैं ऐसा भी नहीं कहता, वैसा भी नहीं कहता....।"

इसी से कुछ मिलता-जुलता आचार्य विद्यानन्द ने भी अष्टसहस्री में संजय का मत बतलाया है और उसकी आलोचना की है।

"तथाऽस्तीति न भणामि, नास्तीति च न भणामि, यदपि च भणामि तदपि न भणामि,इति दर्शन मस्त्विति कश्चित्, सोऽपि पापीयान्। तथा हि सद्भावेतराभ्यामनभिलापे वस्तुनः, केवलं मूकत्वं जगतः स्यात्, विधिप्रतिषेधव्यवहारायोगात्। न हि सर्वात्मनानभिलाप्य स्वभावं बुद्धिरध्यवस्यति। नचानध्यवसेयं प्रमितं नाम, गृहीतस्यापि तादृशस्याग्रहीतकल्पत्वात्। मूर्च्छाचैतन्यवदिति।"—अष्ट स० पृ० १२१।

संजय का जो मत उल्लिखित किया गया है उसमें पाठक देखेंगे कि संजय परलोक, देवता, कर्म-फल और मुक्त पुरुष इन अतीन्द्रिय पदार्थों के जानने में असमर्थ था और इसलिये उनके बारे में वह कोई

निश्चय नहीं कर सका था। जब भी कोई इन पदार्थों के बारे में उससे प्रश्न करता था तो वह चतुष्कोटि विकल्प द्वारा यही कहता था कि 'मैं जानता होऊं तो बतलाऊं और इसलिये निश्चय से कुछ भी नहीं कह सकता।' अतः यह तो स्पष्ट है कि संजय अनिश्चिततावादी अथवा संशयवादी था और उसका मत अनिश्चितता-वाद या संशय वाद था।

जैनदर्शन का स्याद्वाद

परन्तु जैनदर्शन का स्याद्वाद संजय के उक्त अनिश्चिततावाद अथवा संशयवाद से एकदम भिन्न और निश्चयात्मक है। दोनों में पूर्व-पश्चिम अथवा ३६ के अंकों जैसा अन्तर है। जहां संजय का उक्त वाद अनिश्चयात्मक है वहां जैन दर्शन का स्याद्वाद निर्णय कोटि को लिये हुए है। वह मानव को सहज बुद्धि को भ्रम में नहीं डालता। बल्कि उसमें आभासित अथवा उपस्थित विरोधों व सन्देहों को दूर कर वस्तुतत्व का निर्णय कराने में सक्षम होता है। प्रकट है कि समस्त पदार्थ अनेकधर्मात्मक हैं—उनमें प्रत्येक में नाना धर्म पाये जाते हैं और इसलिये उन्हें अनेकान्तस्वरूप माना गया है। पदार्थों की यह अनेकान्तस्वरूपता स्वाभाविक है, काल्पनिक नहीं। यही वस्तु में अनेक धर्मों का स्वीकार व प्रतिपादन जैनों का अनेकान्तवाद है। संजय के वाद को जो विद्वान् अनेकान्तवाद बतलाते हैं वह युक्त नहीं है, क्योंकि संजय के वाद में तो एक भी धर्म अथवा सिद्धान्त का स्वीकार या स्थापना नहीं है, किन्तु अनेकान्तवाद में अस्तित्वादि सभी धर्मों की स्थापना और निश्चय है। जिस जिस अपेक्षा से वे धर्म उसमें व्यवस्थित एवं निश्चित हैं उन सबका व्यवस्थापक स्याद्वाद है। स्याद्वाद और अनेकान्तवाद में यही भेद है कि अनेकान्तवाद तो वस्तुपरक होने से व्यवस्थाप्य है और स्याद्वाद उसका व्यवस्थापक है। दूसरे शब्दों में अनेकान्तवाद वाच्य-प्रमेय रूप है और स्याद्वाद निर्णायक-वाचक रूप है। वास्तव में अनेकान्तस्वरूप वस्तु को ठीक ठीक समझने-समझाने, प्रतिपादन करने-कराने के लिये ही स्याद्वाद का आविष्कार किया गया है, जिसके प्ररूपक जैनों के सभी (२४) तीर्थङ्कर हैं। अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर को उसका प्ररूपण उत्तराधिकार के रूप में २३ वें तीर्थङ्कर भगवान पार्श्वनाथ से, तथा पार्श्वनाथ को कृष्ण के समकालीन २२ वें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि से मिला था। और इस तरह पूर्व तीर्थङ्कर से अग्रिम तीर्थंकर को स्याद्वाद का प्ररूपण प्राप्त हुआ था। इस युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हैं जो आद्य स्याद्वादप्ररूपक हैं। महान् जैन तार्किक स्वामी समन्तभद्र [1] और अकलङ्क देव [2] जैसे प्रख्यात जैनाचार्यों ने सभी तीर्थंकरों को स्याद्वादी—स्याद्वादप्रतिपादक बतलाया है और उस रूप से उनका गुणकीर्तन किया है। प्रत्येक तीर्थङ्कर का उपदेश 'स्याद्वादामृतगर्भ' होता है और वे स्याद्वादपुण्योदधि होते हैं। अतः जो विद्वान् यह समझते हैं कि भगवान् महावीर स्याद्वादके प्रतिष्ठाता हैं वह उनका भ्रम है, क्योंकि स्याद्वाद जैनदर्शन का मौलिक सिद्धान्त है और वह भगवान् महावीर के पूर्ववर्ती ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक काल से समागत है।

---

१. 'बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता' ॥
स्वयम्भूस्तोत्र श्लोक १४।

२. 'धर्मतीर्थङ्करेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमो नमः।
वृषभादिमहावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये' ॥ १ ॥ लघीयस्त्रय।

स्याद्वाद का अर्थ और प्रयोग

'स्याद्वाद' पद 'स्यात्' और 'वाद' इन दो शब्दों से बना है। 'स्यात्' अव्यय निपात शब्द है, धातु अथवा अन्य शब्द नहीं है। उसका अर्थ है कथंचित्, किंचित्, किसी अपेक्षा, कोई एक दृष्टि, कोई एक धर्म की विवक्षा व कोई एक ओर। और 'वाद' शब्द का अर्थ है मान्यता अथवा कथन। जो स्यात् (कथंचित्) का कथन करने वाला अथवा 'स्यात्' को लेकर प्रतिपादन करने वाला है वह स्याद्वाद है। अर्थात् जो सर्वथा एकान्त का त्याग कर अपेक्षा से वस्तुस्वरूपका विधान करता है वह स्याद्वाद है। कथंचित्वाद, अपेक्षावाद आदि इसी के दूसरे नाम हैं—इन नामों से भी उसी का बोध होता है। जैनतार्किकशिरोमणि स्वामी समन्तभद्र (२-३ री शती) ने आप्तमीमांसा और स्वयम्भूस्तोत्र में यही कहा है:—

स्याद्वाद: सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधि: ।
सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषक: ॥ १०४ ॥ आप्तमीमांसा ।

सदेक नित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नया: ।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीहिते ॥
सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षक: ।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥ स्वयम्भूस्तोत्र ।

अत: 'स्यात्' शब्द न तो संशय का पर्यायवाची है, न भ्रमार्थक है और न अनिश्चयात्मक। वह तो अविवक्षित धर्मों की गौणता और विवक्षित धर्म की प्रधानता को सूचित करता हुआ विवक्षित हो रहे धर्मका विधान एवं निश्चय कराने वाला है। संजय के अनिश्चिततावाद की तरह वह अनिर्णीत अथवा वस्तुतत्व की सर्वथा अवाच्यता की घोषणा नहीं करता। उसके द्वारा जैसा प्रतिपादन होता है वह समन्तभद्र के शब्दों में निम्न प्रकार है :—

कथञ्चित्ते सदेवेष्टं कथञ्चिदसदेव तत् ।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥१४॥
सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात् ।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥१५॥
क्रमार्पितद्वयाद् द्वैतं सहावाच्यमशक्तित: ।
अवक्तव्योत्तरा: शेषास्त्रयो भङ्गा: स्वहेतुत: ॥१६॥ आप्तमीमांसा ।

अर्थात् जैनदर्शन में समग्र वस्तुतत्त्व कथञ्चित् सत् ही है, कथञ्चित् असत् ही है, तथा कथञ्चित् उभय ही है और कथञ्चित् अवाच्य ही है. यह सब नयविवक्षा से है, सर्वथा नहीं।

स्वरूपादि (स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव इन) चार से उसे कौन सत् ही नहीं मानेगा और पररूपादि (परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल परभाव इन) चार से कौन उसे असत् ही नहीं मानेगा ? यदि इस तरह उसे स्वीकार न किया जाय तो उसकी व्यवस्था नहीं हो सकती।

क्रम से अर्पित दोनों (सत् और असत्) की अपेक्षा से वह कथंचित् उभय ही है, एक साथ दोनों (सत् और असत्) की अपेक्षा से वस्तु को कह न सकने से अवाच्य ही है। इसी प्रकार अवक्तव्य के बाद के अन्य तीन भङ्ग (सदवाच्य, असदवाच्य, और सदसदवाच्य भी) अपनी विवक्षाओं से समझ लेना चाहिए।

यही जैन दर्शन का सप्तभंगी न्याय है, जो विरोधी अविरोधी धर्म युगल को लेकर प्रयुक्त किया जाता है और तत्तत् अपेक्षाओं से वस्तुधर्मों का निरूपण करता है। स्याद्वाद एक विजयी योद्धा है और

सप्तभंगी न्याय उसका अस्त्र-शस्त्रादिरूप विजय साधन है । सप्तभंगीन्याय के द्वारा ही स्याद्वाद वस्तु के धर्मों का कथन करता है ।

सप्तभंगी न्याय

जैन दर्शन के इस सप्तभंगी न्याय का यहां कुछ स्पष्टीकरण कर देना अनुचित न होगा ।

सात भंगों के समूह का नाम सप्तभंगी है । सप्तभंगी में वे सात भंग (उत्तर वाक्य) इस प्रकार हैं:—

(१) वस्तु है ?—कथंचित् (अपनी द्रव्यादि चार अपेक्षाओं से) वस्तु है ही—स्यादस्त्येव घटादि वस्तु ।

(२) वस्तु नहीं है ?—कथंचित् (परद्रव्यादि चार अपेक्षाओं से) वस्तु नहीं ही है—स्यान्नास्त्येव घटादि वस्तु ।

(३) वस्तु है, नहीं (उभय) है ?—कथंचित् (क्रम से विवक्षित दोनों स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि चार अपेक्षाओं से) वस्तु है, नहीं (उभय) ही है—स्यादस्ति नास्त्येव घटादि वस्तु ।

(४) वस्तु अवक्तव्य है ?—कथंचित् (एक साथ विवक्षित स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि दोनों अपेक्षाओं से कही न जा सकने से) वस्तु अवक्तव्य ही है—स्यादवक्तव्यमेव घटादि वस्तु ।

(५) वस्तु 'है—अवक्तव्य' है ? कथञ्चित् (स्वद्रव्यादि से और और एकसाथ विवक्षित दोनों स्वपर-द्रव्यादि की अपेक्षाओं से कही न जासकने से वस्तु 'है—अवक्तव्य ही है'—स्यादस्त्यवक्तव्यमेव घटादि वस्तु ।

(६) वस्तु 'नहीं—अवक्तव्य' है?—कथंचित् (परद्रव्यादि से और एक साथ विवक्षित दोनों स्व-पर-द्रव्यादि की अपेक्षा से कही न जा सकने से) 'वस्तु नहीं—अवक्तव्य ही है'—स्यान्नास्त्यवक्तव्यमेव घटादि वस्तु ।

(७) वस्तु 'है' नहीं- अवक्तव्य' (है ?—कथंचित् (क्रम से अर्पित स्वपरद्रव्यादि से और एक साथ अर्पित स्वपरद्रव्यादि की अपेक्षा से कही न जा सकने से) वस्तु 'है-नहीं और अवक्तव्य ही है'—स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यमेव घटादि वस्तु ।

इन सात भंगी में पहला, दूसरा और चौथा ये तीन भंग तो मौलिक हैं और तीसरा पाचवां और छठा द्विसंयोगी तथा सातवां त्रिसंयोगी भङ्ग हैं और इस तरह अन्य चार भङ्ग मूलभूत तीन भङ्गों के संयोगज भङ्ग हैं । जैसे नमक, मिर्च और खटाई इन तीन के संयोगज स्वाद चार ही बन सकते हैं—नमक-मिर्च, नमक-खटाई, मिर्च खटाई और नमक-मिर्च-खटाई । इन से ज्यादा या कम नहीं । इन संयोगी चार स्वादों में मूल तीन स्वादों—नमक, मिर्च और खटाई, को और मिला देने से कुल स्वाद सात ही बनते हैं । यही सात भंगों की बात है । वस्तु में यों तो अनन्त धर्म हैं, परन्तु प्रत्येक धर्म को लेकर विधि-प्रतिषेध की अपेक्षा से सात ही धर्म व्यवस्थित हैं—सत्व, असत्व, सत्वासत्व, अवक्तव्यत्व, सत्वावक्तव्यत्व, असत्वावक्तव्यत्व और सत्वासत्वावक्तव्यत्व । इन सात से न कम हैं और न ज्यादा । अतएव शङ्काकारोंको सात ही प्रकार के सन्देह, सात ही प्रकार की जिज्ञासाएं और तन्दुत्पन्न सात ही प्रकार के प्रश्न होते हैं और इस लिये उनके उत्तर वाक्य सात ही होते हैं जिन्हें सप्तभंग या सप्तभङ्गी के नाम से कहा जाता है । इसी तरह एक-अनेक, नित्य-अनित्य आदि विरोधी युगलों को लेकर भी सात भंग होते हैं और इस तरह अनन्त सप्तभङ्गियां जैन दर्शन में कही गई हैं ।

अतः 'स्याद्वाद' के 'स्यात्' शब्द का अर्थ 'हो सकता है' ऐसा सन्देह अथवा भ्रमरूप नहीं है । उस का तो कथंचित् (किसी एक अपेक्षा से) अर्थ है, जो निर्णय रूप है । उदाहरणार्थ एक देवदत्त व्यक्ति को

कीजिये। वह पिता-पुत्रादि अनेक सम्बन्धों से पितृत्व-पुत्रत्वादि अनेक धर्मरूप है। यदि जैनदर्शन से यह प्रश्न किया जाय कि क्या देवदत्त पिता है? तो इसका जैनदर्शन स्याद्वाद द्वारा निम्न प्रकार उत्तर देगा—

१. देवदत्त पिता है— अपने पुत्र की अपेक्षा से—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति।'

२. देवदत्त पिता नहीं है—अपने पिता, मामा आदि की अपेक्षा से क्योंकि उनकी अपेक्षा से तो वह पुत्र, भानजा आदि है—'स्यात् देवदत्तः पिता नास्ति।'

३. देवदत्त पिता है और नहीं है—अपने पुत्र की अपेक्षा और पिता, मामा आदि की अपेक्षा से—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति नास्ति च।'

४. देवदत्त अवक्तव्य है—एक साथ पिता पुत्रादि दोनों अपेक्षाओं से कहा न जा सकने से—'स्यात् देवदत्तः अवक्तव्यः।'

५. देवदत्त पिता है—अवक्तव्य है'—अपने पुत्र की अपेक्षा तथा एक साथ पिता, पुत्रादि दोनों अपेक्षाओं से कहा न जा सकने से—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्त्यवक्तव्यः।'

६. देवदत्त पिता नहीं है—अवक्तव्य है—अपने पिता, मामा आदि की अपेक्षा और एक साथ पिता-पुत्रादि दोनों अपेक्षाओं से कहा न जाने से— स्यात् देवदत्तः पिता नास्त्यवक्तव्यः।

७. देवदत्त पिता है और नहीं है तथा अवक्तव्य—क्रम से विवक्षित पिता पुत्रादि दोनों अपेक्षाओं से और एक साथ विवक्षित पिता पुत्रादि दोनों अपेक्षाओं से कहा न जा सकने से—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च।'

जैन दर्शन में प्रत्येक वाक्य में उस के द्वारा प्रतिपाद्य धर्म का निश्चय कराने के लिये एवं' कार का विधान अभिहित है जिसका प्रयोग नय विशारदों के लिये यथेच्छ है—वे करें चाहे न करें। न करने पर भी उसका अध्यवसाय वे कर लेते हैं।

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि संजय वेलट्ठिपुत्त के अनिश्चिततावाद से जैन दर्शन का स्याद्वाद एक भिन्न और निर्णयात्मक सिद्धांत है और वह यथाप्रतीतिवस्तुतत्त्व का व्यवस्थापक है—वस्तु में अनेक धर्म हैं पर कौन धर्म किस अपेक्षा से व्यवस्थित है, इसी बात की स्याद्वाद व्यवस्था करता है। इसके बिना हम एक कदम भी आगे नहीं चल सकते और न अपने तमाम व्यवहार कर सकते हैं।

हमें आशा है कि स्याद्वाद के सम्बन्ध में जैनेतर विद्वान् ठीक तरह से ही समझने और उसक उल्लेख करने का प्रयत्न करेंगे।

जैन धर्म की सार्वभौमिकता

लेखक—श्रीयुत सुमेरचन्द जी दिवाकर न्यायतीर्थ, शास्त्री, धर्मदिवाकर बी० ए०, एल० एल० बी०, सिवनी

मुझसे यह आग्रह किया गया कि मैं जैन धर्म की सार्वभौमिकता पर प्रकाश डालूँ। स्थूल विचार ने तो यह बताया कि जैनधर्म को बिना सोचे समझे सार्वभौम बताना विवेक की परिधि के परे की बात है। आचार्य शिरोमणि समंतभद्र ने लिखा है "न धर्मो धार्मिकैर्विना" अतः जैन धर्म को सार्वभौम (Universal) कहने के पूर्व यह देखना आवश्यक है कि क्या आज की तीन अरब से अधिक कही जाने वाली मानव जाति जैन धर्म को मानती है। जनगणना के आंकड़ों के आधार पर जब जैनों की संख्या कोटि प्रमाण भी नहीं, तब जैन धर्म की विश्वव्यापकता की बात सोचना सत्य से असंबंधित धार्मिक ममता का आवेश ही मानना होगा। बहुसंख्या द्वारा मान्य धर्मों के समक्ष अल्पसंख्या द्वारा आराधित धर्म को असार्वभौम मानना होगा। किंतु सूक्ष्म और गंभीर चिंतन से यह यथार्थ बात ध्यान में आई कि कुछ दूसरे आधार भी तो हैं, जिनके कारण जैन धर्म को सार्वभौम कहना सत्य और समीचीन है।

हमारा आद्य कर्तव्य यह है कि हम सर्व प्रथम यह जान लें कि यथार्थ में जैन धर्म क्या है? कर्म शत्रुओं को जीतने वाले जिन भगवान द्वारा बताया गया धर्म जैनधर्म है। आत्मा की स्वाभाविक अवस्था को ही जिन भगवान ने आत्मा का धर्म कहा है। अतः अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि सद्वृत्तियों को आत्मा का धर्म मानना चाहिये। विकृति या विभाव को अधर्म मानना चाहिए। क्रोध, मान, माया, लोभ, या द्वेष, मोह आदि जघन्य वृत्तियों के विकास से आत्मा की स्वाभाविक निर्मलता और पवित्रता का विनाश होता है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि की अभिवृद्धि तथा अभिव्यक्ति से आत्मा अपनी स्वाभाविकता की ओर प्रगति करता हुआ स्वयं धर्ममय बन जाता है। जैनधर्म वस्तु स्वभाव को धर्म मानता है, स्वभाव स्वभाववान् से पृथक् नहीं पाया जाता, जैसे उष्ण स्वभाव उष्ण स्वभाव वाले अग्नि से विरहित नहीं देखा जाता। अतएव प्रत्येक जीव के साथ पाए जाने वाले स्वभाव को धर्म मानने वाला जैन धर्म क्यों न सार्वभौमिक कहा जायगा? इस धर्म की सीमा में मानव समाज मात्र सीमित नहीं, बल्कि प्राणीमात्र को अपनाने वाला यह आत्मधर्म है।

इस धर्म का द्वार सर्व जीवों के लिए खुला है और इसकी अहिंसामयी छाया में छोटे-बड़े सभी जीव बैठकर अपना संताप दूर कर सकते हैं। यह स्वार्थ या पक्षपात की तुला पर स्वधर्मी मानव समुदाय का विशेष रूप से वर्गीकरण नहीं करता है। जब यह प्रत्येक जीवधारी को अपना अभिन्न अङ्ग अनुभव कर उसके रक्षण को सतत उद्यत रहता है, प्रेरणा देता है, और उनके जीवन में अपना जीवन और उनके संहार में अपनी मृत्यु मानता है, अनुभव करता है, तब यह उन सभी जीवों का धर्म साधिकार कहा जा सकता है। दूसरे

स्वर्गीय रायबहादुर सेठ मूलचन्द जी साहब सोनी ने नसियाँजी का निर्माण कराकर जेठ सुदी २ संवत् १९२२ में प्रतिष्ठा कराई थी। चतुर्थ पीढ़ी में भी अब तक निरंतर ८६ वर्षों से उसके निर्माण का काम स्वर्गीय सेठ साहब की भावनानुसार बराबर चालू है। अजमेर के दर्शनीय ऐतिहासिक स्थानों में प्रमुख स्थान है। अजमेर में यात्री बड़ी श्रद्धा और उत्सुकता से इसके भी दर्शन करते हैं ।

बम्बई में तीर्थक्षेत्र कमेटी के सदस्यों के बीच सेठ साहब। वर्षों से आप ही इसके प्रधान हैं।

मध्यभारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन पर सेठ साहब कार्यकर्ताओं के साथ।

हिज ऐक्सी लेंसी लार्ड रीडिंग और लेडी रीडिंग इन्दौर पधारे थे। सेठ साहब के कांच के मन्दिर के दर्शनार्थ आने पर उनका स्वागत किया था।
इसमेंसेठ हुकमचन्दजी, सेठ कल्याणमलजी, एजेन्ट टू दी गवर्नर जनरल और इन्दौररेजी डेंसी का स्टाफ है।

सन् १६३३ में स्वदेशी प्रदर्शनी के अवसर पर महाराज देवास श्री विक्रमसिंहजी का स्वागत करते हुए सेठ साहब वैद्य ख्यालीराम जी डा० सरजूप्रसाद तथा अन्य कार्यकर्त्ता

सन् १६४८ में सीकर में बिम्ब प्रतिष्ठा के बाद सीकर के रावराजा की ओर से सर सेठ हुकमचन्द जी और सर सेठ भागचंद जी साहब को दिये गये प्रीतिभोज के अवसर पर।
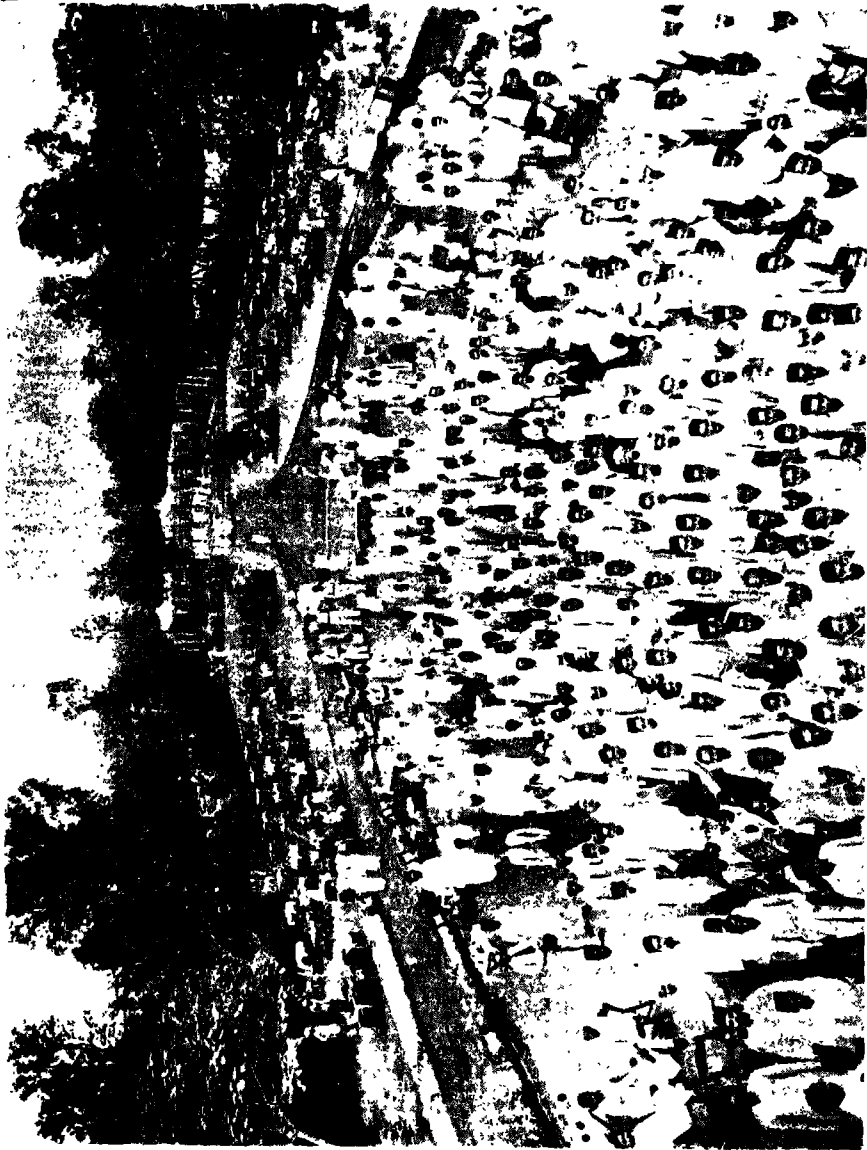
देहली में १९३९ में महासभा की प्रबन्ध कारिणी में सर सेठ साहब के पधारने पर जैन समाज द्वारा शाही स्वागत का जलूस।

देहली में १९३९ में महासभा की प्रबन्धकारिणी में पधारने पर जैन समाज द्वारा सर सेठ साहब को दी गई पार्टी।
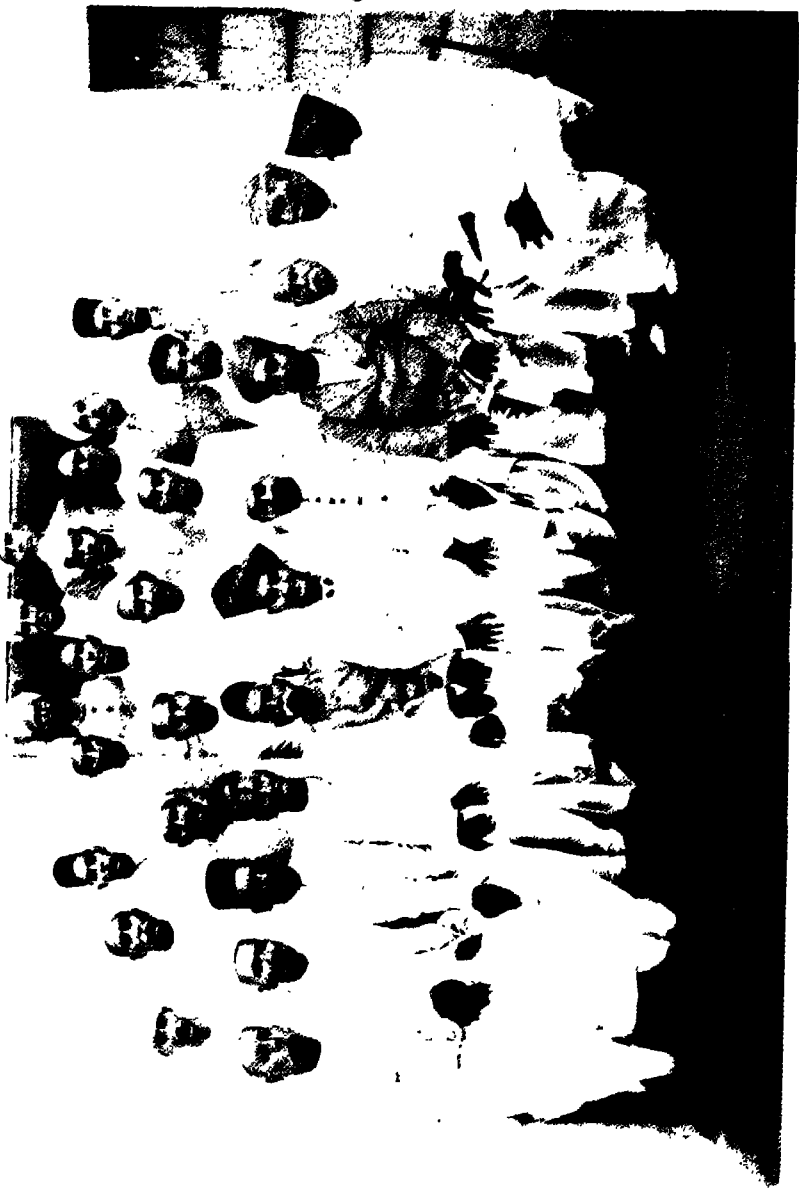
सन् १६४० में महासभा की आगरा में हुई प्रबन्धकारिणी की बैठक।
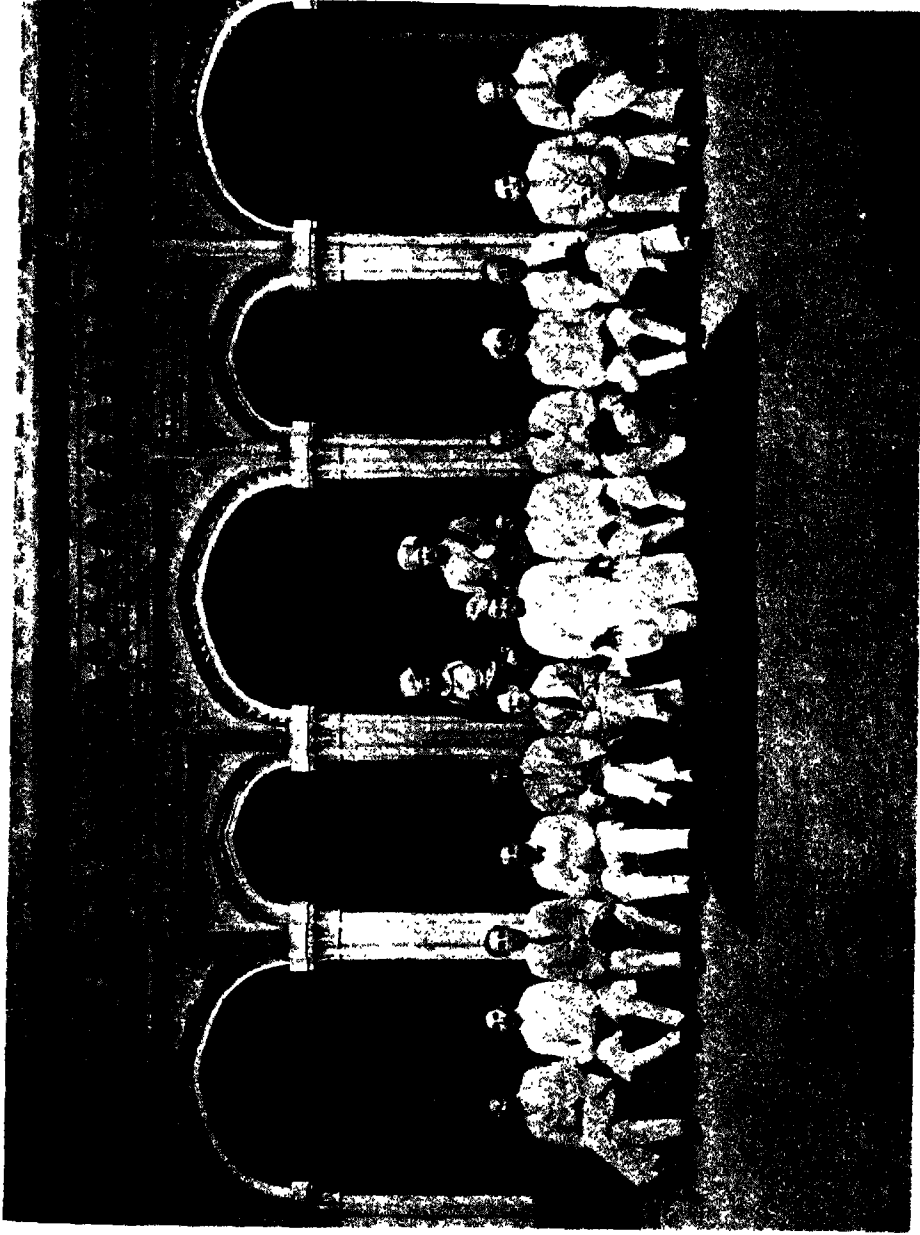
मथुरादास पदमचंद आइज हास्पिटल आगरा के उद्घाटन के समय सर सेठ साहब भी पधारे थे उस समय जिले के प्रमुख आफीसरों के साथ लिया गया फोटो।
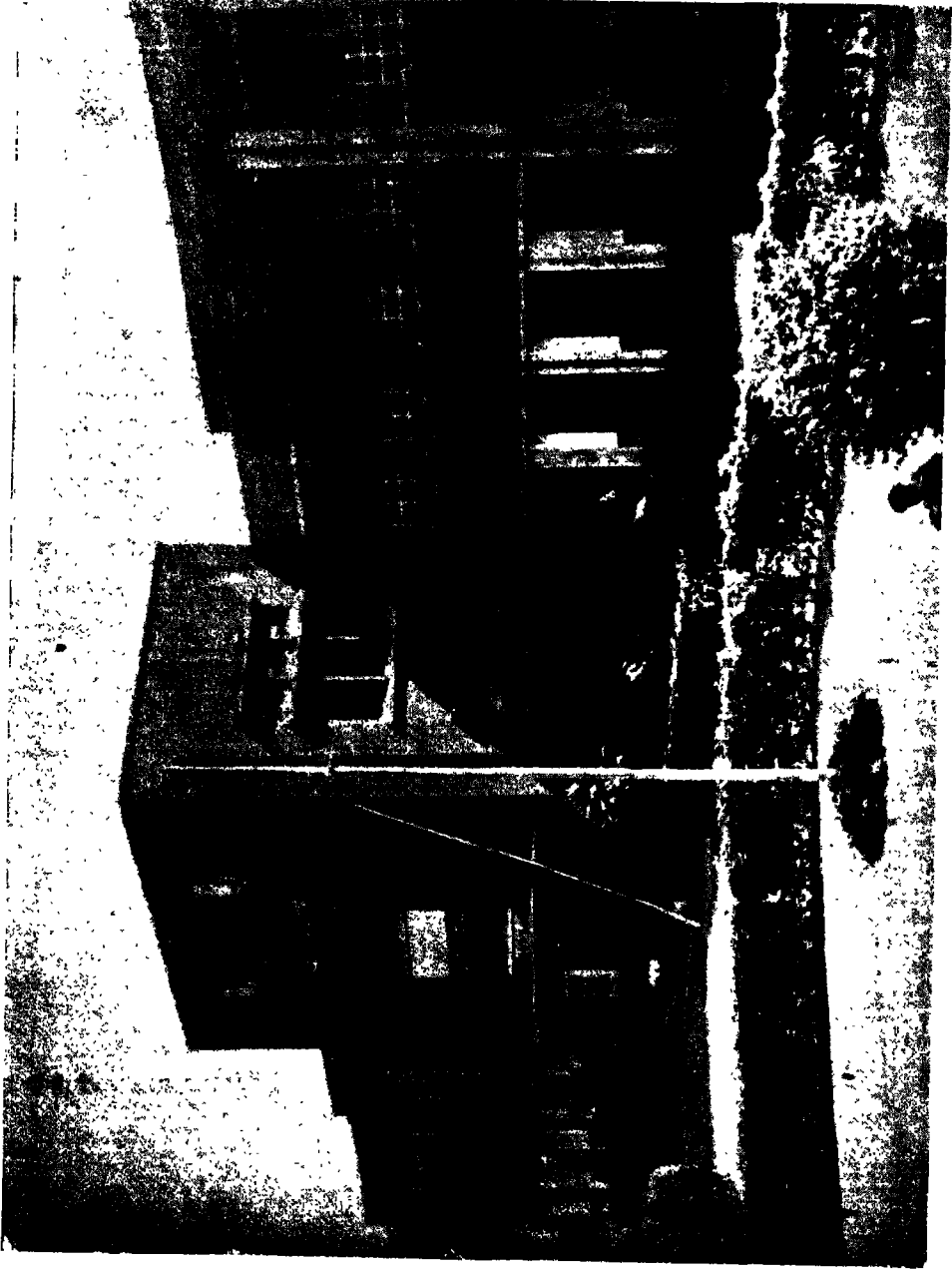
मथुरादास पदमचंद आइज हॉस्पिटल आगरा का भव्य भवन ।

जीवों का संहारक उनका धर्म माना जाय, और उनका रक्षक उनसे असंबंधित सोचा जाय, यह विचार असंगत सा दीखता है ।

जैन पुराण में एक कथा है । एक बालक के प्रति दो स्त्रियों में मातृत्व सम्बन्धी विवाद हुआ। झगड़ा तय करने का समस्त प्रयत्न जब बेकार हुआ, तब चतुर निर्णायक ने कहा, इस बालक के दो विभाग करके प्रत्येक माता बनने वाली स्त्री को एक २ भाग दे दिया जाय। यह वाणी सुनते ही वास्तविक माता बोल उठी, इस बच्चे को मारो मत, मेरी दूसरी बहिन को ही दे दो। जहाँ यह पीड़ित अन्तःकरण से कहती थी, वहां दूसरी स्त्री चुपचाप थी। इस चतुर प्रक्रिया से निर्णायक ने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि यथार्थ माता वही है, जिसके हृदय में बालक के प्रति ममता है। जो उसकी पीड़ा से व्यथित होती है। इस कथा के प्रकाश में यह कहना संगत होगा कि प्राणीमात्र का धर्म वही कहा जायगा, जो प्रत्येक जीवधारी की व्यथा से व्यथित हो। उसके निवारण के लिए यथार्थ में अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहे। इस प्रकार विश्व के रक्षण की ओर सर्वत्र अभय के अखण्ड साम्राज्य की स्थापना करने की जैन तीर्थङ्कर की ही शिक्षा रही है। जिस संस्कृति के उन्नायक तीर्थङ्कर नेमिनाथ की आत्मा विवाहोत्सव के प्रसंग पर पशुओं के करुण क्रन्दन से व्यथित हो उठी और उसने राजकन्या राजीमती के पाणिग्रहण का विचार छोड़ दिया। सर्वत्र करुणा की पुण्य धारा प्रवाहित करने का निश्चय कर राजवैभव को छोड़ा और आत्म-सामर्थ्य संवर्धन निमित्त विख्यात गिरनार पर्वत पर तपश्चर्या की; जिस धर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर ने गृहस्थाश्रम में बिना प्रवेश किए तारुण्य काल में ही भोग-वैभव का त्याग कर आत्म-साधना की ओर पश्चात् अहिंसा का समर्थ प्रचार किया, जिससे आज सारा संसार सुपरिचित है, उस धर्म को ही सबका धर्म कहा जा सकता है। अहिंसा धर्म के सभी प्राणी आत्मा हैं, तब उसको अपना प्राण बनाने वाला जैनधर्म क्यों न सार्वभौम कहा जायगा? यहां शीर्षगणना करने की शैली के स्थान में हृदयों की गणना करने की शैली स्वीकार करना संगत होगा। गांधी जी के द्वारा पूज्य माने गए जैन महात्मा श्री राजचन्द्र कहते हैं, "राग, द्वेष और अज्ञान का नष्ट होना ही जैनमार्ग है।" कवि बनारसी दासजी के शब्दों में वे कहते थे कि

घट घट अंतर जिन बसै, घट घट अंतर जैन।
मत-मदिरा के पान सौं, मतवारा समुझै न ॥

अर्थात् घट-घट में जिन बसते हैं और घटघट में जैन बसते हैं। परन्तु मतरूपी मदिरा के पान से मत्त हुआ जीव यह बात नहीं समझता।" (श्रीमद्राजचन्द्र पृ० ०१)

जैन ग्रन्थों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि मानव समाज के सिवाय अन्य योनियों के जीव-धारियों ने भी इसकी समाराधना की है। भगवान पार्श्वनाथ ने कुछ भवपूर्व गजराज की पर्याय में अहिंसात्मक धर्म को धारण किया था। इसी प्रकार तीर्थंकर महावीर ने भी पूर्वभव में सिंह की पर्याय में करुणा वृत्ति का व्रत स्वीकार कर निर्दोष रूप से पालन किया था। ऐसी करुणा की साधना के कारण क्रमिक विकास करती हुई आत्मा तीर्थंकर बन दया की मंदाकिनी द्वारा विश्व को पुनीत किया करती है। तत्त्वज्ञान की ज्योति नर, पशु, सुर एवं नारकी जीवों में उत्पन्न हो सकती है, अतः जैन विचार की सार्वभौमिकता स्वीकार करना सम्यक् है।

तार्किक अकलंक का यह कथन बड़ा मार्मिक है कि जगत् में पाए जाने वाले विविध उपासकों के उपास्य देव अनेक हैं और उनकी वेष-भूषा पृथक् पृथक् प्रकार है। एक दिगम्बर मुद्रा का ही समस्त जगत् में

प्रसार पाया जाता है। जब जिनेन्द्र के शासन की मुद्रा जड़-चेतन समस्त विश्व में सर्वत्र सर्वदा नयनगोचर होती है, तब उस धर्म की विश्व व्यापकता के विरुद्ध कौन तर्क की तर्जनी उठाने का परिहास एवं परिताप-प्रद प्रयत्न करेगा। अकलंक स्तोत्र का यह पद्य कितना सुन्दर तथा सत्य विचार समन्वित है:—

नो ब्रह्मांकितभूतलं न च हरेः शम्भोर्न मुद्रांकितम्,
नो चंद्रार्ककरांकितं सुरपतेर्वज्रांकितं नैव च।
षड्वक्त्राब्जुज- बौद्धदेव- हुतभुक् यक्षोरगैर्नांकित,
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्रांकितम् ॥ अकलंकस्तोत्र ११.

जिस प्रकार जैनत्व की प्रतीक दिगम्बर मुद्रा की सार्वभौमिकता प्रत्येक के अनुभव गोचर है, उसी प्रकार जैन धर्म के प्राण स्याद्वाद की मुद्रा भी विश्वव्यापिनी है ? छोटे से दीपक से लेकर आकाश सदृश विशाल वस्तु भी नित्यता के साथ कथंचित् अनित्यता रूप अनेकान्त भाव से भूषित है। ऐसा कोई भी पदार्थ अनुभव में नहीं आता है, जो सर्वथा क्षणिक हो अथवा सर्वथा नित्य ही हो। यदि एकान्त क्षणिक विचारवाद का साम्राज्य होता तो प्रत्यभिज्ञान, स्मरण आदि का असद्भाव पाया जाता और यदि एकान्त नित्यता की मुद्रा समस्त विश्व पर होती, तो परिवर्तन के पुंज विश्व की विविधता का लोप हो जाता। इसी तत्त्व को सुन्दरतापूर्वक आचार्य हेमचन्द्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

आदीपमाव्योम समस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु।
तन्नित्यमेवैक मनित्य मन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः ॥ अन्ययोगव्यवच्छेदिका

स्याद्वाद विद्या के प्रकाश में जैनदृष्टि पक्षान्धता से पूर्णतया उन्मुक्त है। वह अविनाशी उस सत्य तत्त्व को प्रकाशित करती है, जो विश्व-वंदनीय है। तत्त्वदृष्टि होने के कारण जैन धर्म में सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशिता गुण समन्वित को परमात्मा या भगवान् माना है, उसे बुद्ध, शंकर, विधाता, पुरुषोत्तम आदि नामों से गुणों की दृष्टि से पूजते हैं, "आँखों के अंधे नाम नयनसुख" सदृश बात यहां सन्मान नहीं पाती है। आचार्य श्री मानतुंग ने अपने भक्तामरस्तोत्र में कहा है :—

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्,
त्वं शंकरोसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
धातासि धीर शिव मार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोसि ॥

सार्वभौम, सर्वमान्य, सर्वकल्याणकारी धर्म वही होगा, जो गुणों का आदर करे, नाम का पक्ष या मोह त्यागे, सर्व जीवों का रक्षक हो और जो अपवित्रता और विकृति को दूर करके स्वभाव की ओर ले जावे। ये सब बातें जैन धर्म में विद्यमान हैं। जहां यह कहा जाता है, 'कमजोर को जीने का अधिकार नहीं, 'Survival of the fittest' की बात का समर्थन किया जाता है, वहां विश्व में सामंजस्य कैसे उत्पन्न होगा ? समर्थ का कर्तव्य असमर्थ को कुचलना नहीं, उसकी सहायता कर उसे आगे बढ़ा कर उसे समर्थ बनाना है। जैन दृष्टि कहती है तुम स्वयं जीवित रहो तथा अन्य असमर्थों के प्राण रक्षण निमित्त अपनी सेवा-सहयोग दो। ऐसे सद्विचारों के आधार पर ही विश्व मैत्री और विश्वशान्ति का महान प्रासाद खड़ा किया जा सकता है। अतएव अहिंसा, स्याद्वाद आदि सिद्धान्तों की व्यापकता को देखते हुए जैनधर्म ही सार्वभौमिक धर्म है। तत्त्वज्ञान के प्रकाश में जब एकान्त विचार की कोई भूमि ही नहीं, कोई आधार ही नहीं, तब वह सार्वभौम

कैसे होगा ? संस्कृत अंग्रेजी कोष में सार्वभौम शब्द का अर्थ किया गया है Relating to the whole earth, universal. 'समस्त पृथ्वी सम्बन्धी'—जैन धर्म समस्त जीवों से अहिंसा के द्वारा सम्बन्धित है। यह ऐसे स्वार्थपूर्ण संकीर्ण पथ को नहीं अपनाता है; जैसे कोई-कोई गाय को खाने की दृष्टि से कहते हैं कि गाय में आत्मा ही नहीं है-A cow has no soul। अपने पक्षविशेष के ममत्ववश दूसरों का धन-वैभव नष्ट करना, उनको कष्ट पहुंचाना आज की स्वार्थप्रचुर राजनीति का खास अङ्ग बन गया है। ऐसी ही बातें रागी, द्वेषी, मोही अथवा अज्ञों द्वारा प्रचारित किए गए पंथों में पाई जाती हैं, जो अपने पक्षपाती धर्म द्वारा दूसरों का अस्तित्व ही नहीं मानते हैं और यदि मानते हैं तो उनको भी अपने स्वार्थ का शिकार बनाते हैं। ऐसी ही दृष्टि मद्य, मांस, शिकार आदि पापों की ओर प्रेरित करती है। जैन दृष्टि व्यापक रूप से समस्त विश्व का विचार करती हुई सब के कल्याण का कार्य करती है और विपत्ति का निवारण करती है। कभी २ जैन धर्म की उज्ज्वल शिक्षा मोह ज्वर वाले जीव को अप्रिय लगती है, किन्तु उसका पर्यवसान जीव के शाश्वतिक कल्याण में होता है। अतएव शांति और अमर जीवन की कामना करने वाले मुमुक्षुओं को सार्वभौम जैन तत्त्वज्ञान का परिशीलन एवं परिपालन कर अपने दुर्लभ मनुष्यजन्म को कृतार्थ करना चाहिए।

अहिंसक परम्परा

लेखक—श्री विश्वम्भरनाथ पांडे, सम्पादक 'विश्ववाणी' इलाहाबाद

छान्दोग्य उपनिषद् में इस बात का उल्लेख मिलता है कि देवकीनन्दन कृष्ण को घोर आंगिरस ऋषि ने आत्म-यज्ञ की शिक्षा दी। उस यज्ञ की दक्षिणा तपश्चर्या, दान, ऋजुभाव, अहिंसा तथा सत्य-वचन थी।

जैन ग्रन्थकारों का कहना है कि कृष्ण के गुरु तीर्थङ्कर नेमिनाथ थे। प्रश्न उठता है कि क्या यह नेमिनाथ तथा घोर आंगिरस दोनों एक ही व्यक्ति के नाम थे? कुछ भी हो इससे एक बात निर्विवाद है कि भारत के मध्य-भाग पर वेदों का प्रभाव पड़ने से पूर्व एक प्रकार का अहिंसा धर्म प्रचलित था।

स्थानाङ्ग सूत्र में यह बात आती है कि भरत तथा एरवत प्रदेशों में प्रथम और अन्तिम को छोड़कर शेष २२ तीर्थङ्कर चातुर्याम धर्म का उपदेश इस प्रकार करते थे—"*समस्त प्राणघातों का त्याग, सब असत्य का त्याग, सब अदत्तादान का त्याग, सब बहिर्धा आदानों का त्याग।*" इस धर्म रीति में हमें उस काल में अहिंसा की स्पष्ट छाप दिखाई देती है।

मज्झिम निकाय में चार प्रकार के तपों का आचरण करने का वर्णन मिलता है—तपस्विता, रूक्षता जुगुप्सा और प्रविविक्तता। नंगे रहना, अंजलि में ही भिक्षान्न मांग कर खाना, बाल तोड़ कर निकालना, कांटों की शय्या पर लेटना इत्यादि देह-दण्ड के प्रकारों को तपस्विता कहते थे। कई वर्ष की धूल वैसी ही शरीर पर पड़ी रहे, इसे रूक्षता कहते थे। पानी की बूंद तक पर दया करना, इसको जुगुप्सा कहते थे। जुगुप्सा अर्थात् हिंसा का तिरस्कार। जङ्गल में अकेले रहने को प्रविविक्तता कहते थे।

तपश्चरण की उपरोक्त विधि से स्पष्ट है कि लोग अहिंसा तथा दया को तपस्या का केन्द्र-बिन्दु मानते थे।

अधिकतर पाश्चात्य पण्डितों का यह मत है कि जैनों के तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्व ऐतिहासिक व्यक्ति थे। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि चौबीसवें तीर्थङ्कर वर्धमान के १७८ वर्ष पूर्व पार्श्व तीर्थङ्कर का परिनिर्वाण हुआ।

यह बात भी इतिहास-सिद्ध है कि वर्धमान तीर्थङ्कर और गौतम बुद्ध समकालीन थे। बुद्ध का जन्म वर्धमान के जन्म से कम से कम १५ वर्ष बाद हुआ होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि बुद्ध के जन्म तथा पार्श्व के परिनिर्वाण में १९३ वर्ष का अन्तर था। निर्वाण के पूर्व लगभग ५० वर्ष तो पार्श्व तीर्थङ्कर उपदेश देते रहे होंगे। इस प्रकार बुद्ध के जन्म के लगभग २४३ वर्ष पूर्व पार्श्व मुनि ने उपदेश देने का कार्य प्रारम्भ किया होगा। निग्रन्थ श्रमणों का संघ भी उन्हीं ने स्थापित किया होगा।

परीक्षित राजा के राज्यकाल से कुरु देश में वैदिक संस्कृति का आगमन हुआ। उसके बाद जनमेजय

गद्दी पर आया। उसने कुरुदेश में महायज्ञ करके वैदिक धर्म का झण्डा फहराया। इसी समय काशी देश में पार्श्व तीर्थङ्कर एक नई संस्कृति की नींव डाल रहे थे। पार्श्व का जन्म वाराणसी नगर में अश्वसेन नामक राजा की वामा नामक रानी से हुआ। पार्श्व का धर्म अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह इन चार यम का था। इतने प्राचीन काल में अहिंसा को इतना सुसम्बद्ध रूप देने का यह पहिला ही उदाहरण है।

पार्श्व मुनि ने एक बात और भी की। उन्होंने अहिंसा को सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन तीन नियम के साथ जकड़ दिया। इस कारण पहले जो अहिंसा ऋषि-मुनियों के व्यक्तिगत आचरण तक ही सीमित थी और जनता के व्यवहार में जिसका कोई स्थान न था, वह अब इन नियमों के कारण सामाजिक एवं व्यावहारिक हो गई।

पार्श्व तीर्थङ्कर ने तीसरी बात यह की कि अपने नवीन धर्म के प्रचार के लिये संघ बनाया। बौद्ध साहित्य से हमें इस बात का पता लगता है कि बुद्ध के समय जो संघ विद्यमान थे, उन सबों में जैन साधु और साध्वियों का संघ सबसे बड़ा था। उपर्युक्त वर्णन से मालूम होगा कि ऋषि-मुनियों की तपश्चर्या रूपी अहिंसा से पार्श्व मुनि की लोकोपकारी अहिंसा का उद्गम हुआ।

लोकोपकारी अहिंसा का सब से प्रमुख प्रभाव हमें सर्वभूत दया के रूप में दिखाई देता है। यों तो सिद्धांततः सर्वभूत दया को सभी मानते हैं किन्तु प्राणिरक्षा के ऊपर जितना बल जैन परम्परा ने दिया, जितनी लगन से उसने इस विषय में काम किया उसका परिणाम समस्त ऐतिहासिक युग में यह रहा है कि जहां-जहां और जब-जब जैनों का प्रभाव रहा वहां सर्वत्र आम जनता पर प्राणिरक्षा का प्रबल संस्कार पड़ा है। यहां तक कि भारत के अनेक भागों में अपने को अजैन कहने वाले तथा जैन विरोधी समझने वाले साधारण लोग भी जीवमात्र की हिंसा से नफरत करने लगे हैं। अहिंसा के इस सामान्य संस्कार के ही कारण अनेक वैष्णव आदि जैनेतर परम्पराओं के आचार-विचार पुरातन वैदिक परम्परा से सर्वथा भिन्न हो गए हैं। तपस्या के बारे में भी ऐसा ही हुआ है। त्यागी हो या गृहस्थ सभी जैन तपस्या के ऊपर अधिकाधिक झुकते रहे हैं। सामान्यरूप से साधारण जनता जैनों की तपस्या की ओर आदरशील रही है। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा था कि गुजरात आदि प्रांतों में जो प्राणि-रक्षा और निर्मांस भोजन का आग्रह है, वह जैन-परम्परा का ही प्रभाव है।

जैनधर्म का आदि और पवित्र स्थान मगध और पश्चिम बङ्गाल है। सम्भव है कि बङ्गाल में एक समय बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन धर्म का विशेष प्रचार था। परन्तु क्रमशः जैन धर्म के लुप्त होजाने पर बौद्धधर्म ने उसका स्थान ग्रहण किया। बङ्गाल के पश्चिमी हिस्से में स्थित 'सराक' जाति 'श्रावकों' की पूर्व स्मृति कराती है। अब भी बहुत से जैन मन्दिरों के ध्वसावशेष, जैन मूर्तियां, शिलालेख आदि जैन स्मृति-चिह्न बङ्गाल के भिन्न-भिन्न भागों में पाये जाते हैं।

प्रोफेसर सिल्वन लेवी लिखते हैं कि 'बौद्ध धर्म जिस तरह अकुण्ठित भाव से भारत के बाहर और अन्दर प्रसारित हो सका, उस तरह जैन धर्म नहीं। दोनों धर्मों का उत्पत्ति स्थान एक होते हुए भी यह परिणाम निकला कि बौद्ध धर्म प्रतिष्ठित हुआ पूर्व भारत में और जैन धर्म पश्चिम तथा दक्षिण भारत में। बौद्ध धर्म भारत के अतिरिक्त पूर्व दिशा में बरमा, श्याम, चीन आदि देशों में फैला और उसने इन सब दिशाओं से भारत को सम्भावित राजनैतिक विपत्तियों से उन्मुक्त किया। यदि जैन धर्म भी इसी तरह भारत से बाहर पश्चिमी देशों की ओर

फैला होता तो शायद भारत अनेक राजनैतिक दुर्गतियों से बच गया होता।"

इस समय जो ऐतिहासिक उल्लेख उपलब्ध हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि ईसवी सन् की पहली शताब्दी में और उसके बाद के १००० वर्षों तक जैन धर्म मध्य-पूर्व के देशों में किसी न किसी रूप में यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इसलाम को प्रभावित करता रहा है। प्रसिद्ध जर्मन इतिहास लेखक वान क्रेमर के अनुसार मध्य-पूर्व में प्रचलित 'समानिया' सम्प्रदाय 'श्रमण' शब्द का अपभ्रंश है। इतिहास लेखक जी० एफ० मूर लिखता है कि "हजरत ईसा की जन्म की शताब्दी से पूर्व इराक, शाम और फिलिस्तीन में जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु सैकड़ों की संख्या में चारों ओर फैले हुए थे। पश्चिमी एशिया, मिस्र, यूनान और इथियोपिया के पहाड़ों और जङ्गलों में उन दिनों अगणित भारतीय साधु रहते थे जो अपने त्याग और अपनी विद्या के लिये मशहूर थे। ये साधु वस्त्रों तक का परित्याग किये हुए थे।"

इन साधुओं के त्याग का प्रभाव यहूदी धर्मावलम्बियों पर विशेष रूप से पड़ा। इन आदर्शों का पालन करने वालों की, यहूदियों में, एक खास जमात बन गई जो 'ऐस्सिनी' कहलाती थी। इन लोगों ने यहूदी धर्म के कर्मकाण्डों का पालन त्याग दिया। ये बस्ती से दूर जङ्गलों में या पहाड़ों पर कुटी बनाकर रहते थे। जैन मुनियों की तरह अहिंसा को अपना खास धर्म मानते थे। मांस खाने से उन्हें बेहद परहेज था। वे कठोर और संयमी जीवन व्यतीत करते थे। पैसा या धन को छूने तक से इनकार करते थे। रोगियों और दुर्बलों की सहायता को दिनचर्या का आवश्यक अङ्ग मानते थे। प्रेम और सेवा को पूजा-पाठ से बढ़कर मानते थे। पशु-बलि का तीव्र विरोध करते थे। शारीरिक परिश्रम से ही जीवन-यापन करते थे। अपरिग्रह के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे। समस्त सम्पत्ति को समाज की सम्पत्ति समझते थे। मिस्र में इन्हीं तपस्वियों को 'थेरापूते' कहा जाता था। थेरापूते का अर्थ है 'मौनी अपरिग्रही'।

'सियाहत नामए नासिर' का लेखक लिखता है कि इसलाम धर्म के कलन्दरी तबके पर जैन धर्म का काफी प्रभाव पड़ा था। कलन्दरों की जमात परिव्राजकों की जमात थी। कोई कलन्दर दो रात से अधिक एक घर में न रहता था। कलन्दर चार नियमों का पालन करते थे—साधुता, शुद्धता, सत्यता और दरिद्रता। वे अहिंसा पर अखण्ड विश्वास रखते थे।

एक बार का किस्सा है कि दो कलन्दर मुनि बगदाद में आकर ठहरे। उनके सामने एक शुतुरमुर्ग गृह-स्वामिनी का हीरों का एक बहुमूल्य हार निगल गया। सिवाय कलन्दरों के किसी ने यह बात देखी नहीं। हार की खोज शुरू हुई। शहर कोतवाल को सूचना दी गई। उन्हें कलन्दर मुनियों पर सन्देह हुआ। मुनियों ने उस मूक पक्षी के साथ विश्वासघात करना उचित न समझा। क्योंकि हार के लिये उस पक्षी को मारकर उसका पेट फाड़ा जाता। सन्देह में मुनियों को बेरहमी के साथ पीटा गया। वे लहूलोहान हो गए किन्तु उन्होंने शुतुरमुर्ग के प्राणों की रक्षा की।

सालेह बिन अब्दुल कुद्दूस भी एक अहिंसावादी अपरिग्रही परिव्राजक मुनि था जिसे उसके क्रान्तिकारी विचारों के कारण सन् ७८३ ईसवी में सूली पर चढ़ा दिया गया। अबुल अताहिया, जरीर इब्न हज्म, हम्माद अजरद, यूनान बिन हारून, अली बिन खलील और बश्शार अपने समय के प्रसिद्ध अहिंसावादी निग्रन्थी फकीर थे।

नवमी और दशमी शताब्दियों में अब्बासी खलीफाओं के दरबार में भारतीय पंडितों और साधुओं

को आदर के साथ निमन्त्रित किया जाता था। इनमें बौद्ध और जैन साधु भी रहते थे। इब्न-अल नदीम लिखता है कि—"अरबों के शासन काल में यहिया इब्न खालिद बरमकी ने खलीफ़ा के दरबार और भारत के साथ अत्यन्त गहरा सम्बन्ध स्थापित किया। उसने बड़े अध्यवसाय और आदर के साथ भारत से हिन्दू, बौद्ध और जैन विद्वानों को निमन्त्रित किया।"

सन् ६६८ ईसवी के लगभग भारत के बीस साधु-सन्यासियों ने मिलकर पश्चिमी एशिया के देशों की यात्रा की। इस दल के साथ चिकित्सक के रूप में एक जैन संन्यासी भी गए थे। एक बार स्वदेश लौटकर यह दल फिर पर्यटन के लिये चला गया। ६६ वर्ष के बाद जब सन् १०२४ ईसवी में ये लोग अन्तिम बार स्वदेश लौटे तब उस समुदाय के साथ सीरिया के सुविख्यात अन्ध कवि अबुल अला अल मआरी का परिचय हुआ। अबुल अला का जन्म सन् ९७३ ईसवी में हुआ था और मृत्यु सन् १०५८ ईसवी में। जर्मन विद्वान् वान क्रेमर ने लिखा है कि अबुल अला सभी देशों और सभी युगों के सर्वश्रेष्ठ सदाचार शास्त्रियों में से एक था।

अबुल अला जब केवल चार वर्ष के थे तभी चेचक के भयंकर प्रकोप से अन्धे हो गए थे। किन्तु उनकी ज्ञानतृष्णा इतनी अदम्य थी कि वे स्पेन से मिस्र और मिस्र से ईरान तक अनेकों स्थानों में गुरु की तलाश में ज्ञानार्थी बनकर घूमते रहे। अन्त में बगदाद में जैन दार्शनिकों के साथ उनका परिपूर्ण ज्ञान-समागम हुआ। साधना द्वारा उन्होंने परम योगी पद को प्राप्त किया। उनकी ईश्वर की कल्पना इसलाम की कल्पना से नितान्त भिन्न थी। बहिश्त के लिये उनको जरा भी ख्वाहिश नहीं थी। वे दुःखमय सत्ता को ही समस्त दुःखों का मूल मानते थे। बगदाद से सीरिया लौट कर एक पर्वत की कन्दरा में रहकर उन्होंने अति कृच्छ्र तपश्चर्या किया। उसके बाद उनका जीवन ही बदल गया। मद्, मत्स्य, मांस, अण्डे एवं दूध तक का उन्होंने परित्याग कर दिया। उनका जीवन अहिंसामय एवं मैत्रीपूर्ण बन गया।

अबुल अला का इस बात में विश्वास नहीं था कि मुर्दे किसी दिन कब्रों में से निकल कर खड़े हो जायेंगे। बच्चा पैदा करने के कार्य को वह पाप मानता था। अपने पृथक् अस्तित्व को मिटा देने को वह मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष्य मानता था। वह आजीवन मनसा, वाचा, कर्मणा ब्रह्मचारी रहा। उसने अपने एक भजन में लिखा है—

"हनीफ ठोकरें खा रहे हैं, ईसाई सब भटके हुए हैं, यहूदी चक्कर में हैं, मागी कुराह पर बढ़े जा रहे हैं। हम नाशमान मनुष्यों में दो ही खास तरह के व्यक्त हैं—एक बुद्धिमान शठ और दूसरे धार्मिक मूढ़।"

अबुल अला का एक दूसरा भजन है—

"कोई वस्तु अनित्य नहीं है। प्रत्येक वस्तु नाशमान है। इसलाम भी नष्ट होने वाला है। हजरत मूसा आए, उन्होंने अपने धर्म का उपदेश दिया और चल बसे। उनके बाद हजरत ईसा आए। फिर हजरत मोहम्मद आए और उन्होंने अपनी पांच वक्त की नमाज चलाई। कुछ दिनों बाद कोई दूसरा मजहब आकर इसकी जगह ले लेगा। इस तरह मानव जाति वर्तमान और भविष्य के बीच में मौत की तरह हंकाई जा रही है। यह धरती नाशमान है। जिस तरह इसका आरम्भ हुआ था उसी तरह इसका अन्त होगा। जन्म और मृत्यु हर चीज के साथ लगी हुई हैं। काल का प्रवाह नदी की धार के सदृश बहता चला आ

रहा है। यह प्रवाह हर समय किसी न किसी नई वस्तु को सामने लाता रहता है।"

सभी जीव-जन्तुओं यहां तक कि कीड़े-मकोड़ों के प्रति भी वे अपरिसीम कल्याणपरायण थे। इस सम्बन्ध का उनका एक भजन है—

"वृथा पशु हिंसा में क्यों जीवन कलंकित करते हो। बेचारे वनवासी पशुओं का क्यों निष्ठुर भाव से संहार करते हो। हिंसा सबसे बड़ा कुकर्म है। बलि के पशुओं का आहार न बनाओ। अण्डे और मछलियां भी न खाओ। इन सब कुकर्मों से मैंने अपने हाथ धो डाले हैं। वास्तव में आगे जाकर न वधिक रहेगा और न वध्य। काश कि बाल पकने से पहले मैंने इन बातों को समझ लिया होता।"

इसी प्रकार जैन दर्शन ने जलालुद्दीन रूमी एवं अन्य अनेक ईरानी सूफियों के विचारों को प्रभावित किया। अहिंसा का सिद्धान्त मानव जीवन का सर्वोच्च सिद्धान्त है। प्रत्येक प्रगतिशील आत्मा उससे आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकती। अनेक कारणों से, जिनके विस्तार में जाने की यहां आवश्यकता नहीं है, जैन जीवन-धारा व्यापक रूप से मानव समाज को अधिक समय तक परिप्लावित नहीं कर सकी। उसके अनुगामी स्वयं अनाचार और मिथ्याचार में फंस गए। आज हमें फिर अहिंसा की उस परम्परा में नई प्राण शक्ति का सञ्चार करना होगा। गान्धी जी ने अपने जीवन का अर्घ्य देकर एक बार उसे देदीप्यमान कर दिया। किन्तु हमें निरन्तर साधनामय जीवन से उस अग्नि को प्रज्वलित कर अपनी प्राणशक्ति का प्रमाण देना होगा। सत्य और अहिंसा के आदर्श को व्यवहार में प्रतिष्ठित करने के सहज मार्ग को न स्वीकार कर यदि केवल वाक्य, तर्क और प्रमाण-चातुर्य का मार्ग ग्रहण किया जायगा, तो विश्व धर्म के महाकाल के विधान में जैन धर्म के लिये कोई आशा नहीं।

यदि जिन-मानित धर्म अनेक मिथ्या आडम्बरों, अर्थहीन आचारों आदि को त्याग कर दया, मैत्री, उदारता, शुद्ध जीवन, आन्तरिक और बाह्य प्रकाश और प्रेम की उदार तपस्या द्वारा अपने में अन्तर्निहित मृत्युहीन जीवन का परिचय दे सके, तो सब अभियोग और आरोप स्वयं शान्त हो जायंगे और इससे जैन स्वयं धन्य होंगे तथा समस्त मानव सभ्यता को भी वे धन्य करेंगे।"

दक्षिण में जैनधर्म

विद्याभूषण पं० के० भुजबली शास्त्री, सं० 'जैन सिद्धान्त-भास्कर'

हम दक्षिण को बम्बई, मद्रास और मैसूर इस प्रकार मुख्यतया तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। इन तीन भागों में से सबसे पहले बम्बई को लीजिये। जैन धर्म का सम्बन्ध इस प्रान्त से अत्यन्त प्राचीन काल से है। बिहार प्रान्त को छोड़ कर अन्य और किसी प्रान्त में बम्बई के बराबर जैनों के निर्वाण क्षेत्र नहीं हैं। जैन पुराणों से सिद्ध होता है कि पूर्व काल में यह प्रान्त असंख्यात जैन मुनियों का विहारस्थल रहा। बाईसवें तीर्थङ्कर श्री नेमिनाथ के पाँचों कल्याणक इसी प्रान्त में हुए हैं। गजपन्था माँगीतुंगी और कुन्थलगिरि आदि क्षेत्रों को अगणित मुनियों ने अपनी पवित्र तपस्या और केवल ज्ञान के द्वारा विशेष पवित्र किया है।

यद्यपि इस प्रकार इतिहासातीत काल से इस प्रान्त से जैनधर्म का सम्बन्ध चला आ रहा है फिर भी इतिहासकाल में भारत के प्राचीन इतिहास में मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त का काल बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस देश का वैज्ञानिक इतिहास उन्हीं के समय से प्रारम्भ होता है। चन्द्रगुप्त के राज्य काल में हम जैनाचार्य भद्रबाहु को एक विशाल मुनिसंघ के साथ उत्तर से दक्षिण की ओर यात्रा करते हुए पाते हैं। उन्होंने मालवा प्रान्त से मैसूर प्रान्त की यात्रा की एवं श्रवण बेल्गुल को अपना केन्द्र बनाया। यहाँ पर उनके शिष्य-प्रशिष्य चारों ओर धर्म प्रचार करने लगे। थोड़ी ही शताब्दियों में उन्होंने दक्षिण में जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया। बम्बई प्रान्त के प्रायः सभी भागों में श्री भद्रबाहु के शिष्यों ने विहार किया और जैनधर्म की ज्योति उद्योतित की। ईसा की पाँचवीं-छठीं शताब्दी में भी यहाँ पर अनेक प्रसिद्ध जैन मन्दिर बने थे। ऐहोले का प्रसिद्ध मेघुती मंदिर इनमें से एक है। इस मन्दिर में जो लेख मिला है वह शक सं० ५५६ का है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह लेख महत्त्वपूर्ण है।

इसमें सन्देह नहीं है कि दशवीं शताब्दी तक बम्बई प्रान्त में जैनधर्म ही प्रधान धर्म रहा। इस प्रान्त में मुख्यतया कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूट राजाओं का शासन था। यद्यपि प्रारम्भ के कदम्ब शासक ब्राह्मण धर्मानुयायी थे, परन्तु पिछले शासक जैनधर्म से प्रभावित हो इसके श्रद्धालु हो गये थे। मृगेश से हरिवर्मा तक के कदम्ब राजाओं ने जैनधर्म को अच्छा आश्रय दिया था। मृगेश वर्मा काफी उदार था। उसके दो रानियाँ थीं। उनमें प्रधान रानी जैनधर्मानुयायी रही। स्वयं मृगेश भी जैनधर्मावलम्बी था। मृगेशवर्मा का पुत्र हरिवर्मा भी अपने पूज्य पिता के समान जैनधर्म का भक्त था। इसने भी पिता के समान जैन मन्दिरों के लिए अच्छा दान दिया था। हल्सी में प्राप्त इसके दानपत्र से जैनधर्म में इसका दृढ़ श्रद्धान व्यक्त होता है। रविवर्मा का भाई भानुवर्मा भी जैनधर्म का परम भक्त रहा। इसने भी जैनेन्द्र के अभिषेक के लिए भूमिदान किया था, जिससे प्रत्येक पूर्णिमा को अभिषेक हुआ करता था।

इस प्रकार कदम्बों के शासन काल में जैनधर्म अभ्युदय को प्राप्त था। बल्कि प्रो० बी० एस० राव

का कहना है कि कदम्बों के आस्थान कवि जैन थे, उनके अमात्य जैन थे; उनके दानपत्रों के लेखक जैन थे और उनके व्यक्तिगत नाम भी जैन थे। इतना ही नहीं, कदम्बों के साहित्य की रूप-रेखा भी जैन काव्यशैली की थी। कदम्बों की राजधानी पलासिका (बेलगाँव) में जैनों के भिन्न-भिन्न संप्रदायों अर्थात् यापनीय, निर्ग्रन्थ, कूर्चक, अहराष्टि और श्वेतपट संघों के आचार्य शांतिपूर्वक रह कर धर्मप्रचार करते रहे। कदम्बों के शैव धर्म स्वीकार करने के उपरान्त भी कृष्णवर्मा द्वितीय के पुत्र युवराज देववर्मा ने त्रिपर्वत के ऊपर का कुछ क्षेत्र अर्हन्त भगवान के चैत्यालय की मरम्मत, पूजा और प्रभावना के लिये यापनीय संघ को दान दिया था। बल्कि कदम्बों की पूर्व राजधानी बनवास अर्थात् भनवासि में भी निष्कण्टक जैनाचार्य शांतिपूर्वक साहित्यसेवा आदि करते रहे। यही कारण है कि दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के सर्व-प्राचीन पवित्र ग्रन्थ षट्खण्डागम की रचना वहीं पर हुई थी।

बम्बई प्रान्त में शासन करने वाले राजवंशों में अब चालुक्यों का नाम आता है। चालुक्यों ने पाँचवीं शताब्दी से आठवीं तक, फिर दसवीं के अन्त से लेकर बारहवीं तक राज्यशासन किया है। लगभग समूचा *बम्बई प्रान्त, हैदराबाद और मैसूर का वायव्य प्रान्त इनके शासन में शामिल था। श्रीमान् बी० ए० सालेतोर* की राय से चालुक्य कर्नाटक के ही मूल निवासी थे। यद्यपि चालुक्य वंश के राजाओं में अधिकाँश राजा वैदिक धर्मानुयायी थे फिर भी इन में कई राजाओं ने जैनधर्म को आश्रय दिया था। दिगम्बर संप्रदाय के ख्याति-प्राप्त तार्किक विद्वान्, अनेक अमर कृतियों के रचयिता, उच्चकोटि के एक सरस कवि, महान् वादी तथा विजेता श्री वादिराजसूरि का चालुक्य नरेश जयसिंह प्रथम की राजसभा में बड़ा आदर था। यह वहाँ के प्रख्यात वादी गिने जाते थे। चालुक्य नरेश जयसिंह को जैनधर्म पर प्रगाढ़ अनुराग था।

जयसिंह का पौत्र पुलकेशी, इसका उत्तराधिकारी कीर्तिवर्मा, कीर्तिवर्मा का पुत्र द्वितीय पुलकेशी जिनके अध्यात्म-गुरु आचार्य पूज्यपाद का शिष्य श्रावक उदयदेव था, इन सबों को भी जैनधर्म पर अनुराग था। पुलकेशी, कीर्तिवर्मा आदि शासकों ने भिन्न-भिन्न समय पर जैन देवालय तथा जैन गुरुओं को दान दिया है। बल्कि ऐहोले में एक सुन्दर जिन मन्दिर निर्माण कराने वाले पण्डित रविकीर्ति, द्वितीय पुलकेशी के विशेष कृपा-पात्र थे। यह बात उसी मन्दिर के रविकीर्ति के ही द्वारा लिखे गये प्रख्यात ऐहोळे के लेख से स्पष्ट विदित होती है। श्रेष्ठी बाहुबली के प्रार्थनानुसार चालुक्य-नरेश विजयादित्य के पुत्र विक्रमादित्य ने भी पुलिगेरे के दो जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करा के दान दिया था। चालुक्य राजा अरिकेसरी (द्वितीय) ने महाकवि पंप को अपना मन्त्री तथा सेनापति बना लिया था। चालुक्य वंश की इस पूर्वीय शाखा में विमलादित्य, विष्णुवर्धन और अम्म द्वितीय आदि शासकों ने भी मन्दिरों को दान दिया है।

पश्चिम चालुक्य-वंश के महाराजा तैलपदेव (द्वितीय) की महारानी जक-कब्बे ने महाकवि रन्न को कविचक्रवर्ती की उपाधि से अलंकृत किया था। तैलप का उत्तराधिकारी सत्याश्रम आचार्य विमलचन्द्र का भक्त था और उसने एक जैनगुरु की निषधिका बनवाई थी।

विक्रमादित्य त्रिभुवनमल्ल का छोटा भाई जगदेकमल्ल जयसिंह ने भी आचार्य वादिराज, वादिसिंह आदि जैन विद्वानों का बड़ा आदर किया था। सोमेश्वर आहवमल्ल, इसका अन्यतम पुत्र राजकुमार कीर्तिवर्मा और उसकी माँ केतलदेवी भी जिनभक्ता रही। केतलदेवी के गुरु मुनि देवचन्द्र थे। इसने अनेक जिनमन्दिर निर्माण कराये थे और प्रभावना के और भी कई कार्य किये थे। भुवनैकमल्ल सोमेश्वर द्वितीय को भी जैनधर्म पर अनुराग था। सोमेश्वर का मंझला भाई छठा विक्रमादित्य भुवनैकमल्ल तो जैनधर्म का विशिष्ट भक्त ही था। जैनधर्म से इसका सम्बन्ध शुरू से स्थापित था। बी० ए० सालेतोर के मत से इसने बेल्वोल प्रान्त में कई जिन-मन्दिर बनवाये थे। चालुक्य राज में कई प्रान्तीय शासक एवं उच्च राजकर्मचारी भी जैन धर्मानुयायी रहे।

जैसे सोमेश्वर द्वितीय का समकालीन बनवासि का शासक लक्ष्म, उसका सेनापति शान्तिनाथ, तैलप का सेनानायक मल्लप, उसकी पुत्री दानवीरा अतिमब्बे, जगदेकमल्ल के सेनानी दासियरस, उसका श्वसुर सेनापति काडियरस, त्रिभुवनमल्ल का सामन्त गंगपेरमाडि, उसका सांधिविग्रहिक मंत्री दामराज आदि।

अब राष्ट्रकूट शासकों को लीजिये। राष्ट्रकूट में सम्राट् दंतिदुर्ग, कंब और गोविन्द तृतीय को जैनधर्म पर अनुराग था। इनमें से कंब और गोविन्द ने भिन्न-भिन्न अवसर पर जैनों को दान भी दिया है। दंतिदुर्ग के राजदरबार में आचार्य अकलंक देव ने जैनधर्म का महत्व प्रकट किया था। अमोघवर्ष प्रथम तो जैनधर्म का भक्त ही रहा। वह आचार्य वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र और महावीर आदि दिगम्बर विद्वानों के संपर्क में बराबर रहा। इसी का परिणाम है कि उसने अपने अन्तिम जीवन में राज्य का भार अपने पुत्र कृष्ण (द्वितीय) पर छोड़ कर आत्मकल्याण के लिये एकान्तवास किया था। बल्कि कृष्णराज द्वितीय भी अपने पिता के समय से ही जैनधर्म के संसर्ग में आ गया था। उसने मुलगुन्द के जैन मन्दिर के लिए दान भी दिया था। इन्द्र तृतीय और कृष्ण तृतीय को भी जैनधर्म पर श्रद्धा थी। इन्द्र चतुर्थ तो जैनधर्म का उपासक ही रहा। उसने अपने जीवन के अन्त में श्रवणबेलगोल आ कर भक्तिपूर्वक सल्लेखना-व्रत धारण किया था। इस प्रकार राष्ट्रकूट वंश के कई राजा जैनधर्म के श्रद्धालु और उपासक रहे। यों दशवीं शताब्दी तक बम्बई प्रान्त में जैनधर्म ही मुख्य धर्म रहा। पर उसके बाद जैनधर्म का ह्रास प्रारम्भ हो गया और शैव, वैष्णव धर्मों का प्रचार बढ़ा। खासकर कलचुरि राजा बिज्जल से जैनधर्म को बड़ी क्षति पहुँची। शैवधर्म स्वीकार कर उसने जैनों पर बड़ा अत्याचार किया था।

अब देखना है कि ऐतिहासिक दृष्टि से मद्रास प्रान्त में जैनधर्म का प्रचार कब से हुआ। प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ देवचन्द्र कृत 'राजावलि कथा' में लिखा है कि भद्रबाहु के शिष्य विशाखाचार्य ने चोल और पांड्य प्रदेशों में पर्यटन करते हुए वहाँ के जिनालयों की वन्दना की और जैन श्रावकों को उपदेश दिया। इससे स्पष्ट विदित होता है कि देवचन्द्र के मतानुसार भद्रबाहु के आगमन के पूर्व भी मद्रास प्रान्त में जैनधर्म का प्रचार रहा। बल्कि इस सम्बन्ध में प्रो० ए० चक्रवर्ती का अनुमान है कि अगर भद्रबाहु से पूर्व दक्षिण में जैनधर्म का प्रचार न होता तो भद्रबाहु को बारह हज़ार शिष्यों को लेकर दक्षिण में आने का साहस कदापि नहीं होता। उन्हें अपने धर्मानुयायियों द्वारा स्वागत करने का पूरा विश्वास था, इसीसे वे सहसा ऐसा साहस कर सके।

इस विषय में एक और सुदृढ़ प्रमाण उपलब्ध हुआ है। सिंहलद्वीप के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाला धंतुसेन विरचित 'महावंश' नाम का एक पाली भाषा का बौद्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ अनुमानतः ईसा की पाँचवीं शताब्दी में रचा गया है। इस ग्रन्थ में ई० पूर्व ५४३ से लगाकर ई० सन् ३०१ तक का वर्णन है। इसमें वर्णित घटनाएँ सिंहलद्वीप के नरेश पनुयाभय के वर्णन में लिखा गया है कि उन्होंने लगभग ४३७ ई० पूर्व अपनी राजधानी अनुराधपुर में स्थापित की और वहाँ पर निर्ग्रन्थ मुनि कुम्बन्ध के लिए एक गिरि नामक स्थान तथा एक मन्दिर भी निर्माण कराया जो उक्त मुनि के ही नाम से विख्यात हुआ। इससे सिद्ध होता है कि ई० सन् से पूर्व पाँचवीं शताब्दी में अर्थात् भद्रबाहु की दक्षिणयात्रा के काल से भी करीब दो सौ वर्ष पूर्व सिंहलद्वीप में जैनधर्म का प्रचार हो चुका था। ऐसी परिस्थिति में मद्रास प्रान्त के चोल और पाँड्य प्रदेशों में उस समय जैनधर्म का प्रचलित होना संभव प्रतीत होता है।

इस सम्बन्ध में एक और प्रमाण लीजिये। तामिल साहित्य बहुत प्राचीन है। इस साहित्य में संगमकाल के बने हुए ग्रन्थ प्राचीनतम कहे जाते हैं। इस काल में समस्त कवियों ने मिलकर अपना एक संघ बना लिया था और प्रत्येक कवि अपने ग्रन्थ का प्रचार करने से पूर्व उस ग्रन्थ को इस संघ द्वारा स्वीकार

करा लेता था। इस व्यवस्था से उस काल में सिर्फ उत्कृष्ट साहित्य ही जनता के सन्मुख उपस्थित किया जा सकता था। संगम का काल अभी तक निर्विवाद रूप से निर्णीत नहीं हो सका है। फिर भी अधिकांश विद्वानों की राय है कि लगभग ई० सन् के प्रारम्भ में ही संगम का प्राबल्य रहा होगा। इस काल का कुरल नामक एक उत्कृष्ट काव्य है जो तिरुवल्लुवर नामक साधु का बनाया हुआ कहा जाता है। यह ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक धर्म वाले इसे अपना धर्मग्रन्थ सिद्ध करने में गौरव मानते हैं। अनेक साहित्यिक प्रमाण इस बात के मिले हैं कि यह ग्रन्थ एलाचार्य नाम के जैनाचार्य का बनाया हुआ है। उन्होंने अपने शिष्य तिरुवल्लुवर के द्वारा इसे संगम की स्वीकृति के लिए भेजा था। नीलकेशी की टीका में इसे स्पष्ट रूप से जैनशास्त्र कहा गया है। पूर्वोक्त एलाचार्य और कोई नहीं, दिगम्बर संप्रदाय के स्तंभस्वरूप कुंदकुंदाचार्य ही हैं। कुरल ग्रन्थ के अस्तित्व से सिद्ध होता है कि ई० सन् के प्रारम्भ में ही जैनधर्म के उदार सिद्धान्तों का तामिल देश में अच्छा आदर होता था। बल्कि फ्रेजर साहब की यह उक्ति बिल्कुल ठीक है कि जैनों के ही प्रयत्न का फल था कि दक्षिण में नया आदर्श, नया साहित्य, नवीन आचारविचार और नूतन भाषाशैली प्रकट हुई। प्रो० ए० चक्रवर्ती के मत से 'प्राभृतत्रय' कांची के नरेश, पल्लव शिवस्कन्द वर्मा के सम्बोधनार्थ ही कुंदकुंदाचार्य के द्वारा रचे गये थे।

तामिल भाषा के प्रसिद्ध पौराणिक काव्य 'सिलप्पदिकारम्' और 'मणिमेकलै' में जैनधर्म के अनेक उल्लेख मिलते हैं। इन उल्लेखों से सिद्ध होता है कि उस देश में उस समय जैनधर्म ही सर्वत्र और सर्वमान्य था। इतना ही नहीं, इनसे यह भी सिद्ध होता है कि जैनधर्म को चोल और पांड्य नरेशों का अच्छा आश्रय मिला था और राजवंश के अनेक पुरुष एवं महिलाओं ने जैनधर्म को स्वीकार किया था। संपूर्ण तामिल प्रान्त जैन मुनियों और अर्जिकाओं के आश्रमों से भरा हुआ था। यह अवस्था लगभग दूसरी शताब्दी की है। आगे की शताब्दियों में भी जैनधर्म की उन्नति जारी रही। बल्कि पांचवीं शताब्दी में साहित्योन्नति के लिए जैनों ने द्राविड़ नामक अपना एक स्वतन्त्र संघ ही स्थापित किया जिसका केन्द्र मदुरा ही रक्खा गया। इस संघ के स्थापक आचार्य वज्रनंदी थे।

जैनियों की यह असाधारण उन्नति समीपवर्ती जैनेतर धर्मियों को सह्य नहीं हुई। खासकर शैव और वैष्णवों ने जैनों के विरुद्ध अनेक जाल रचना प्रारम्भ किया। शुरू में कलभ्रों की सहायता से जैन अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त करने में सफल हुए, क्योंकि कलभ्रवंशियों को जैनधर्म पर बड़ा अनुराग था। श्री रामस्वामि अय्यंगर के मत से उस समय जैनधर्म के पालन में कुछ ऐसी कमजोरियाँ आ गई थीं जिनके कारण शैव आदि विपक्षी धर्मों को बढ़ने का अच्छा अवसर मिला। मुख्यतया पांड्यदेश में जैनों को असीम क्षति पहुँचाने वालों में ज्ञानसम्बन्दर नामक शैव साधु और पल्लव देश में जैनों को हानि पहुंचाने वालों में दूसरा एक अप्पर नामक शैव साधु प्रमुख हैं। ज्ञानसम्बन्दर ने सुन्दर पांड्य को और अप्पर ने महेन्द्र वर्मा को शैव बनाकर हजारों जैन मुनि एवं श्रावकों का वध करा डाला। इसी समय वैष्णव अल्वरों ने अपना धर्म-प्रचार प्रारम्भ किया और जैनधर्म को हानि पहुँचाई। मदुरा के मीनाक्षी मंदिर के मंडप की दीवाल की चित्रकारी में जैनों पर शैवों और वैष्णवों द्वारा किये गये अत्याचारों की कथा अंकित है। 'पेरिय पुराणम्' नामक शैव पुराण में भी रोमांचकारी यह वर्णन पाया जाता है। बस, पांड्य और पल्लव देशों में राजाश्रय से वंचित जैनों को मैसूर में आकर गंग नरेशों का आश्रय लेना पड़ा।

गंगराज्य जैनाचार्य सिंहनन्दी के द्वारा स्थापित हुआ था और इसके आदिम ऐतिहासिक व्यक्ति माधव और दड़िग के बोध-गुरु भी यही आचार्य थे। प्रारम्भ के गंग शासक सभी जैनधर्मानुयायी रहे।

हाँ, रविवर्मा के पुत्र विष्णुगोप के समय में वे वैष्णव हुए। श्रीमान् एम० वी० कृष्ण के शब्दों में दक्षिण के राजवंशों में गंग प्रमुख जैनधर्मानुयायी राजवंश था। शासन लेखों से प्रकट है कि गंग राजा अविनीत के गुरु जैन विद्वान् विजयकीर्ति थे और उसकी शिक्षा एक जैन की भाँति ही हुई थी। अविनीत ने अपने राज्य के प्रारम्भ और अन्त में जैनों को खूब दान दिया था। इसका पुत्र दुर्विनीत यद्यपि वैष्णव कहा गया है पर इसका हृदय बड़ा उदार था। एक लेख के आधार से राइस सा० कहते हैं कि 'शब्दावतार' के सफल रचयिता प्रसिद्ध जैन वैयाकरण आचार्य पूज्यपाद दुर्विनीत के शिक्षागुरु थे। इससे यह अनुमान किया जाता है कि राजा दुर्विनीत को साहित्य में अभिरुचि पैदा करने वाले यही आचार्य थे। बाद दुर्विनीत का ज्येष्ठ पुत्र मुष्कर गंग राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। यह भी जैन धर्म का प्रेमी था। इसने बेल्लारि के निकट एक जैन मन्दिर निर्माण कराया था। बल्कि एम० वी० कृष्ण तथा राइस सा० की राय से मुष्कर के समय में जैन धर्म को फिर गंग राजा का राजधर्म होने का गौरव प्राप्त हुआ था। श्रीपुरुष तथा इसका ज्येष्ठ पुत्र शिवमार भी जैन धर्म के श्रद्धालु थे। इन दोनों ने प्रत्येक-प्रत्येक जैन मन्दिर बनवाये हैं। बल्कि शिवमार ने श्रवणबेलगोल के चन्द्रगिरि पर्वत पर भी एक जैन मन्दिर निर्माण कराया था। शिवमार एक सुयोग्य शिक्षित शासक ही नहीं था, किन्तु अनेक शास्त्रों का ज्ञाता प्रतिभाशाली और अध्ययनशील कवि भी था।

मारसिंह का उत्तराधिकारी इसका भाई डिंडिग या पृथिवीपति हुआ था। यह जैनधर्म का महान् संरक्षक रहा। इसने अपनी रानी कंपिला के साथ श्रवणबेलगोल के कटवप्र पर्वत पर जैनाचार्य अरिष्टनेमि का निर्वाण [?] देखा था। गंग राजा नीतिमार्ग भी जैनधर्मानुयायी था और यह प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेन का समकालीन था। नीतिमार्ग महान् शासक, राज्यप्रबन्धक, दानशील तथा साहित्योद्धारक था। यह ई० सन् ८७० में सल्लेखनाव्रत धारणपूर्वक स्वर्गवासी हुआ था। इस से जैनधर्म में इसका अचल प्रेम स्वयं व्यक्त होता है। गंग राजा राजमल्ल एवं नीतिमार्ग द्वितीय ने भी जैन देवालयों को दान दिया था। बूतुग भी जैन धर्म का परम भक्त था। यह बड़ा धर्मात्मा तथा विचारशील शासक था। कुडलूर के दानपत्र से प्रकट है कि एक बौद्धवादी से वाद करके इसने उसके एकान्त मत का खण्डन किया था। तीस वर्ष की दीर्घ तपस्या के उपरान्त ई० सन् ९७१ में जब इसकी विदुषी बहन पंबब्बे का समाधिमरणपूर्वक स्वर्गारोहण हुआ था तब बूतुग के मन को इस असह्य वियोग से गहरी चोट पहुंची थी। इसने गंगराज्य का विस्तार और गौरव विशेष रूप से बढ़ाया था।

अब मारसिंह द्वितीय को लीजिए। यह महान् व्यक्ति था। कुडलूर के दानपत्रों में इसके बारे में बहुत कुछ लिखा गया है। दानपत्रों का मुख्य सार यही है कि मारसिंह भगवान् का परम भक्त था। प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव के अभिषेक के जल से अपने पापमल को धो डालता था और निरन्तर गुरुओं की विनय किया करता था। शंखबस्ति लक्ष्मेश्वर (धारवाड़) के लेख में मारसिंह की उपमा एक रत्नकलश से दी गई है जिससे सदैव जिनेंद्र भगवान् का अभिषेक किया जाता है। इन उल्लेखों से गंगचूडामणि मारसिंह का जैनधर्म में अचल श्रद्धान स्पष्ट व्यक्त होता है। मारसिंह के राजमल्ल तथा रक्कसगंग दो पुत्र थे। ये दोनों क्रमशः राजगद्दी पर बैठे। इन दोनों ने भी जैनधर्म को विशेष रूप से उद्योतित किया।

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चोल नरेशों द्वारा गंग वंश की इतिश्री होने पर मैसूर प्रान्त में होयसल वंश का प्राबल्य बढ़ा। होयसल राज्य की नींव एक जैन मुनि के द्वारा ही डाली गई थी। इस वंश के राज्यकाल में जैनों की खूब उन्नति हुई। विनयादित्य द्वितीय जैनाचार्य शांतिदेव का शिष्य था। एक लेख में कहा गया है कि उसने राज्यलक्ष्मी इन्हीं आचार्य की कृपा से प्राप्त की थी। विनयादित्य ने जैनधर्म की बड़ी

सेवा की थी। बिट्टिगदेव इसी का पौत्र था। वह प्रारम्भ में जैनधर्मानुयायी रहा। पर पीछे रामानुजाचार्य के प्रयत्न से वैष्णव बन गया। धर्म-परिवर्तन के प्रारम्भ में उसने जैनों पर बड़ा अत्याचार किया था। हाँ, बाद में उसका विचार बदला और जैनधर्म की ओर उसकी सहानुभूति बनी रही। बिट्टिगदेव की रानी शांतल देवी आजन्म पक्की जैन श्राविका रही। उसका मन्त्री गंगराज तो उस समय जैनधर्म का एक सुदृढ़ स्तंभ ही था। उसने अपनी सारी सम्पत्ति जैनधर्म की उन्नति में व्यय की थी। नरसिंह प्रथम के मन्त्री हुल्लप ने भी जैनधर्म की बड़ी प्रभावना की है। मैसूर प्रान्त में चामुंडराय, गंगराज और हुल्लप ये तीनों जैन धर्म के चमकते हुए रत्न कहे जाते हैं। बस, आगे इस लेख को नहीं बढ़ाना है। अन्यथा रट्ट, कलचुरि, सांतर आदि अन्य जैन-धर्मानुयायी राजवंशों का परिचय भी दिया जाता।

मानव तेरा यह जीवन है

प्रो० श्रीचन्द जैन, एम० ए०, रीवां

मानव तेरा यह जीवन है।

कितनी धूमिल घोर निराशा,
फिर भी नित नव-नव अभिलाषा।
आकुल अन्तर निर्मम क्रन्दन,
कलुषित भौतिक कटुतम बंधन।
परवशता का बस चिन्तन है।
मानव तेरा यह जीवन है॥

चाहों से तू परिपोषित है,
आहों से केवल शोषित है।
तरल तरंगों सा चंचल है,
अश्रुसिक्त गीला अंचल है।
पदमर्दित मिट्टी का कण है।
मानव तेरा यह जीवन है॥

हार-जीत का तू विलास है,
विह्वलता का अट्टहास है।
गिरते पल्लव का विनाश है,
बुझते दीपक का प्रकाश है।
तू पीड़ा का उत्पीड़न है।
मानव तेरा यह जीवन है॥

जैन-पूजा की सार्थकता

पं० हीरालालजी कौशल, साहित्यरत्न, शास्त्री, न्यायतीर्थ

जैनधर्म अपनी लोकोत्तर विशेषताओं के कारण आज भी अपना मस्तक ऊँचा किये हुए है। भारत की संस्कृति पर उसका पर्याप्त प्रभाव है परन्तु विरोधी प्रचार का प्रभाव अब तक यत्र-तत्र किसी न किसी रूप में दृष्टि-गोचर हो ही जाता है।

श्री हेमचन्द्राचार्य ने अपने सिद्ध 'हेमशब्दानुशासन' नामक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ में भी लिखा है कि *जैनधर्म नरक स्वर्गादि गतियां (७ नरक, १६ स्वर्ग) तथा पाप पुण्यरूप कर्मानुसार उनमें उत्पत्ति मानता है*, यह सर्वविदित है। अतः व्याकरण के अनुसार जैनधर्म एक आस्तिक धर्म है।

कोष (Dictionary) से शब्दों का अर्थ ज्ञात होता है। 'शब्दस्तोममहानिधि' (प्र० १८४ पृष्ठ ६३४) तथा अभिधानचिन्तामणि (काण्ड ३ श्लोक ४२६) आदि सब सुप्रसिद्ध कोष उपर्युक्त अर्थ को ही बताते हैं।

किसी भी दार्शनिक विद्वान् ने जैनधर्म को नास्तिक नहीं बताया है। नास्तिक के सिद्धान्त भी जैनधर्म को मान्य नहीं। जैन शास्त्रकारों ने 'प्रमेय कमल मार्तण्ड' 'अष्ट सहस्री' आदि ग्रन्थों में नास्तिक मत का सयुक्तिक और ज़ोरदार खण्डन किया है।

कुछ लोग कहते हैं कि जैनधर्म परमात्मा को सृष्टिकर्ता नहीं मानता, इसलिये वह नास्तिक है। पर जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, व्याकरण कोष आदि के द्वारा, परलोक को न माननेवाला नास्तिक कहलाता है, *ईश्वर को सृष्टिकर्ता न मानने वाला नहीं*। नास्तिक शब्द रूढ़ि व यौगिक शक्ति से भी उसका वाचक नहीं है।

इतिहास पर दृष्टि डालने से भी यही विदित होता है कि किसी भी निष्पक्ष इतिहासकार ने जैनधर्म को नास्तिक नहीं लिखा, बल्कि *राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द* आदि अनेक विद्वानों ने इसका खण्डन किया है।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि व्याकरण, कोष, दर्शन, इतिहास किसी भी दृष्टि से विचार करने पर जैनधर्म नास्तिक सिद्ध न होकर परम आस्तिक सिद्ध होता है। उसके सिद्धान्त अत्यन्त व्यवस्थित और अपने हैं। उसकी मान्यता है कि जीव अपने ही भावों से शुभाशुभ कर्म बांधता है तथा स्वयं उसका फल भोगता है।

जैनधर्म और ईश्वर

जैनधर्म ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हुए भी उसे किसी व्यक्ति विशेष में केन्द्रित नहीं मानता, बल्कि प्रत्येक आत्मा में ईश्वरत्व शक्ति स्वीकार करता है। वह किसी एक अनादि सिद्ध परमात्मा को तो नहीं मानता परन्तु अब तक कर्मरूपी मैल को अलग करके जितने आत्मा मुक्त (परम आत्मा) हो चुके हैं और आगे भी होते रहेंगे, जैन सिद्धान्त के अनुसार वे सभी मुक्तात्मा, सिद्धात्मा, परमात्मा, भगवान या ईश्वर हैं। वे राग

द्वेषादि १८ दोषों से छूट जाते हैं तथा उनके अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्यादि आत्मिक गुण प्रकट हो जाते हैं। वे लोक के अग्रभाग में स्थित सिद्धालय नामक स्थान में आ विराजते हैं। संसार के किसी भी कार्य से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता तथा जिस प्रकार धान से छिलका अलग हो जाने पर चावलों में उगने की शक्ति नहीं रहती, उसी प्रकार संसार में उत्पन्न होने का कारण कर्मरूपी बीज नष्ट हो जाने पर सिद्धात्माओं को फिर कभी जन्म नहीं लेना पड़ता और वे सदा अपने निराकुल आत्मिक सुख में लीन रहते हैं। कर्म शत्रुओं को जीतने के कारण उनको जिन या जिनेन्द्र भी कहते हैं।

उनमें से कुछ मुक्तात्माओं को जिन्होंने मुक्त होने से पूर्व प्राणियों को संसार के दुःखों से छूटने तथा मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग बतलाया था, जैनधर्म में तीर्थंकर माना गया है। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में ऐसे तीर्थंकरों की संख्या २४ होती है।

उन्हीं की अरहन्त (मोक्ष जाने से पूर्व) अवस्था की मूर्तियां जैनमन्दिरों में विशेषरूप से विराजमान होती हैं।

वृषभदेव इस युग के प्रथम तथा महावीर अन्तिम तीर्थंकर हुए हैं।

जैन-पूजा

जब जैनधर्म किसी अनादि ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता, सृष्टि की उत्पत्ति से ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता और माने हुए ईश्वर—सिद्धात्मा—रागद्वेषादि रहित होने के कारण किसी को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते तो उनकी स्तुति या पूजादि करने से लाभ ही क्या है, ये प्रश्न अनायास ही प्रत्येक पाठक के हृदय में उठने लगते हैं और इनके समाधान को मन व्यग्र हो उठता है।

संसारी प्राणी प्रत्येक क्षण अपनी मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के अनुसार शुभ या अशुभ कर्मों का बन्ध करते रहते हैं। ऐसी दशा में जितनी देर पूजा करते हैं, संसार के अन्य कार्यों के त्याग तथा मन, वचन, काय की पवित्रता के कारण शुभ कर्म का बन्ध होता है जिसका फल सुख के रूप में प्राप्त होता है।

पूजन के समय भगवान् के गुण-स्मरण और गुणगान से सांसारिक अहंकारभाव क्षीण होकर विनय-गुण का संचार होता है तथा यह भाव जाग्रत होता है कि :—

तुममें हममें भेद यह, और भेद कछु नाहिं।
तुम तन तज परब्रह्म भये, हम दुखिया जग मांहिं॥

इस भांति भगवान् यद्यपि साक्षात् कुछ भी नहीं देते परन्तु पूजन के द्वारा पुण्य कर्म की प्राप्ति होने से सांसारिक सुख प्राप्त हो जाता है, आत्मा में पवित्रता आती है तथा आत्मा के वास्तविक स्वरूप का भान होकर संसार से छूटने तथा शुद्धावस्था को प्राप्त करने का भाव जागृत हो जाता है। इस प्रकार हमारा वास्तविक उद्देश्य सब पूर्ण हो जाता है, और उसमें निमित्त कारण परमात्मा या ईश्वर है। वैसे परमात्मा ने स्वयं कुछ भी नहीं दिया है। परमात्म-दशा की प्राप्ति संसारी जीव का प्रधान लक्ष्य है और वह अपने पुरुषार्थ से स्वयं प्राप्त की जाती है पर भगवान की पूजा उसमें एक व्यावहारिक निमित्त अवश्य है।

इस बात को भली भांति समझकर तथा उक्त उद्देश्य रखकर ही पूजा करनी चाहिये। सांसारिक सुख तो साधारण वस्तु हैं और पुण्य कर्म से अनायास ही उनकी प्राप्ति भी हो जाती है। अतः मात्र उनकी प्राप्ति की भावना रखकर वीतराग भगवान् की पूजा करना अपने धर्म व संस्कृति की अनभिज्ञता का द्योतक है।

●

इन्दौर—प्राचीन और अर्वाचीन

लेखक—श्री हुकुमचन्दजी पाटणी बी० ए०, ऐल०-ऐल० बी०

मध्यभारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी इन्दौर विलीनीकरण के पूर्व के होल्कर राज्य की राजधानी है। मालवा की उर्वराभूमि में, विक्रम की उज्जैनी और भोज की धारानगरी के मध्य में, स्थित इन्दौर अपना एक ऐतिहासिक एवं व्यावसायिक महत्व रखती है। मराठों के आदर्श नायक शिवाजी के स्वप्न को पूरा करने का भार द्वितीय पेशवा बाजीराव बालाजीराव पर आया था। हिन्दु-पद-पादशाही के स्थापक बाजीराव ने जब उत्तर भारत की ओर अभियान किया तो उनके विश्वासपात्र सरदार मल्हारराव होल्कर भी सिन्धिया और पवार के साथ थे। चौथ और सरदेशमुखी एकत्रित करने का कार्य लौटते समय बाजीराव अपने इन विश्वस्त सेनानायकों पर सौंप गये थे। दूसरी बार जब पेशवा उत्तर में आया तो मालवा विजय करने के बाद उसने यह प्रदेश अपने सरदारों को व्यवस्था एवं सैनिक खर्च (सरंजामी प्रथा) के लिए सौंप दिया।

मल्हारराव ने राजपूतों, जाटों आदि से युद्ध कर अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ा लिया था। पानीपत के तृतीय युद्ध में भी यह सरदार उपस्थित था। जब पेशवा की शक्ति कम होने लगी तो ये सभी सरदार स्वतन्त्र शासक हो गये। वैसे पेशवा को ये काफी समय तक अपना नेता मानते रहे। दुर्भाग्यवश सिंधिया और होल्कर के आपसी वैमनस्य ने मराठा शक्ति को काफी नुकसान पहुँचाया और इसीके कारण खंडेराव जाटों से युद्ध करते हुए मारे गये।

मल्हारराव के बाद उनकी पुत्रवधु अहिल्याबाई होल्कर (१७६७-९५) गद्दी पर बैठी। देश ने एक बार फिर रामराज्य को साकार होते हुए देखा। जनता ने सुख, शान्ति एवं समृद्धि के वातावरण में सांस ली। अहिल्याबाई ने अपने उदार शासन एवं धार्मिक वातावरण से इन्दौर राज्य का नाम देश के कोने-कोने में पहुँचा दिया। हिन्दुओं के किसी भी तीर्थ स्थान पर यात्री आज भी उनके बनवाये मन्दिरों, घाटों एवं धर्मशालाओं की सराहना किये बिना नहीं रहेगा।

इस राज्य वंश का दूसरा प्रतापी राजा जसवन्तराव होल्कर था (१७९८-१८११)। उसने राज्य की सीमाओं को बढ़ाया, पर साथ ही मराठों की आपसी फूट ने उसे अपने साथियों से ही लड़ने पर विवश कर दिया। जहाँ पेशवा और सिंधिया की सम्मिलित शक्ति को हरा कर उसने अपनी एवं होल्कर राज्य की शक्ति का परिचय दिया वहां साथ ही मराठा संघ की प्रतिष्ठा को समाप्त कर दिया। शीघ्र ही पेशवा, सिंधिया और होल्कर स्वयं अंग्रेज़ों से सन्धि करने पर विवश हो गये। मराठों की आपसी फूट एवं अदूरदर्शिता ने उन्हें पश्चिमी शक्ति के आधीन कर दिया। फिर भी होल्कर द्वारा की गई सन्धि सब से अधिक सम्मानपूर्ण थी।

मल्हारराव द्वितीय (१८११-३३) अपने राज्यकाल में होल्कर राज्य की राजधानी को महेश्वर (माहिष्मती) से इन्दौर ले आये। राज्य की प्रतिष्ठा के अनुकूल राजधानी बनाने के प्रयत्न लगातार जारी रहे और आज इन्दौर मध्य भारत का सर्वश्रेष्ठ स्थान है और भारतवर्ष में उसका अपना एक विशेष स्थान है।

तुकोजीराव द्वितीय (१८४४-८६) के समय में इस राज्य ने अपनी उदारता का परिचय दिया और पहिला समाचारपत्र मालवा में 'मालवा अखबार' के नाम से इन्दौर में निकाला गया। उस समय की स्थिति को देखते हुए यह काफी प्रगतिशील कार्य था। राज्य में और भी जनहित के कई कार्य इस समय किये गये।

महाराजा शिवाजीराव ने सन् १८८६ में राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली और गद्दी पर बैठते ही राहदारी महसूल, जो जगह-जगह वसूल किया जाता था और जिससे व्यापार की उन्नति में बाधा पड़ती थी, उठा दिया और इससे व्यापार की उन्नति होने लगी। राज्य में मोघिया नामक जाति के लोग चोर-चकारी तथा डाकेजनी से जनता को पीड़ित करते थे। सन् १८८८ में इन लोगों को बसने और खेती करने के लिए जमीन तथा तकावी एवं अन्य प्रकार की सुविधाएं देकर उन्हें राज्य का सफल नागरिक बनाया। तातिया भील नामक मशहूर डाकू को भी पकड़वाया तथा उसे उचित दण्ड दिया गया।

सामाजिक सुधारों के अतिरिक्त आपका ध्यान शैक्षणिक सुधारों की तरफ भी आकर्षित हुआ तथा उसके फलस्वरूप आपने सन् १८९१ में मध्य भारत में पहिला महाविद्यालय (होल्कर कॉलिज) खोला जिसमें बी० ए० तक की शिक्षा दी जाती थी।

गरीब जनता की सहायता करना आपके जीवन का एक मुख्य अंग था। जहां कहीं भी इन्हें सेवा करने का अवसर मिला आपने अपना खजाना जनता के लिए खोल दिया। १९०१ में जनता की चिकित्सा के लिए महाराजा तुकोजीराव हास्पिटल नाम का एक अस्पताल शहर के मध्य भाग में खोला।

सवाई श्री तुकोजीराव तृतीय (१९११-१९२६) तो वर्तमान युग के योग्य एवं न्यायप्रिय शासक रहे हैं। इन्होंने अपने उदार गुणों से प्रजा के हृदयमन्दिर में प्रतिष्ठा पाई थी। अपनी समस्त जनता के हृदय को शिक्षा के आलोक से आलोकित करने के लिये प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क कर दी। हिन्दु विश्व-विद्यालय को पांच लाख रुपये की सहायता देकर आपने अपने शिक्षाप्रेम का उत्कृष्ट परिचय दिया।

महाराजा यशवंतराव अत्यन्त प्रगतिशील नरेश रहे हैं। प्रारम्भ से ही जनता के विचारों से इनकी सहानुभूति रही है। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के एक उदार समर्थक के रूप में आप देश विदेश में प्रख्यात हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जिस निस्पृह भावना के साथ आपने उदारतापूर्वक सम्पूर्ण सत्ता प्रजा को सौंप दी थी, वह एक ऐतिहासिक त्याग है। गंदी राजनीति से दूर आज यह उदार व्यक्ति विदेश में अपना स्वास्थ्य सुधार रहा है।

राजाओं की उदारता एवं प्रगतिशीलता से ही इतिहास बनता और बिगड़ता नहीं है। इन्दौर की जनता ने सदा प्रगतिशीलता का साथ दिया है। मुगलों के शासन के विरुद्ध रावनन्दलाल मंडलोई और उनके साथियों ने बाजीराव का पक्ष ग्रहण किया था। भारतीय स्वाधीनता के सशस्त्र संग्राम के समय चाहे तत्का-लीन राजाओं ने अंग्रेज़ों का साथ दिया हो, जनता और सेना ने स्वतन्त्रता के सैनिकों का साथ दिया और इस स्वतन्त्रताप्रेम का यथासम्भव मूल्य चुकाया। राष्ट्रीय कांग्रेस के आन्दोलनों में भी इस रियासत की जनता ब्रिटिश प्रांतों की जनता के कन्धों से कन्धा भड़ा कर जबती रही। राजा महाराजा किसी की गुटबाजी में पड़े हों, जनता ने सदा उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया। मध्यभारत में विलीनीकरण इन्दौर की जनता तथा नरेश के त्याग और नेताओं की अदूरदर्शिता की एक कहानी है।

इन्दौर रियासतों में अपना एक विशेष स्थान रखती है। उद्योग, व्यवसाय, शिक्षा एवं शैक्षणिक संस्थाएं, जनहितकारी कार्य एवं प्रथम श्रेणी की शासनव्यवस्था की प्रशंसा करना तो व्यर्थ सा ही होगा।

आज मध्यभारत के निर्माण के बाद इस विषय की अधिक चर्चा करना विशेष शोभा नहीं देता, किन्तु यहाँ हमारा अभिप्राय व्यर्थ टीका करना या आपसी कटुता को बढ़ाने का नहीं, किन्तु वस्तुस्थिति को ठीक तरह से देखने मात्र का है। जब कई स्तर की चीजें आपस में मिलती हैं तो एक नया स्तर तैयार होता है, पर प्रयत्न यह होना चाहिए कि यदि अन्य स्तर ऊपर न उठ सके तो उठे हुए शासकीय स्तर नीचे न गिरें।

इन्दौर नगर का अपना व्यावसायिक महत्व है। कपास उत्पन्न करने वाली, काली मिट्टी वाली भूमि के होने के कारण यहाँ वस्त्रनिर्माण का कार्य अधिक स्थानीय हो गया है। टेक्सटाइल (वस्त्र-निर्माण) उद्योग के क्षेत्र में इन्दौर का भारत में अपना विशेष स्थान है। श्रम और पूंजी के इस संघर्षात्मक युग में इन्दौर की पूंजी ने अपने आपको काफी उदार सिद्ध किया है। यहाँ के श्रम-संगठन भी भारत में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। कोई भी मज़दूरों में काम करने वाला राजनैतिक दल इन्दौर की एवं यहाँ के संगठन-प्रिय लड़ाकू मज़दूरों की उपेक्षा नहीं कर सका है। साथ ही अन्य व्यवसाय भी नगर में काफी पनपे हैं। समस्त भारत में बम्बई के बाद इसी स्थान पर चहल-पहल एवं जीवन रहता है।

शिक्षा के क्षेत्र में दो प्रथम श्रेणी के महाविद्यालय, कई टेकनीकल शिक्षा-केन्द्र, विद्यालय, प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाएं हैं। यदि राजनैतिक उलझने नहीं होतीं, तो इस स्थान में विश्वविद्यालय का निर्माण काफी समय पूर्व ही हो चुका होता। यह देश का दुर्भाग्य है कि ऐसे जन-कल्याण के प्रश्न भी राजनैतिक नेताओं की प्रतिस्पर्धा के चक्कर में पड़कर अपना महत्व खो सा बैठते हैं।

इन्दौर की नगरसेविका का इतिहास बड़ा पुराना किन्तु गौरवपूर्ण है। जनसंख्या के अचानक बढ़ने आदि के बाद भी व्यवस्था की सराहना करनी ही पड़ती है।

इन्दौर का दुर्भाग्य है कि उसे किसी अच्छी नदी का किनारा प्राप्त न हो सका, फिर भी इन्दौर प्राकृतिक एवं अन्य दर्शनीय स्थानों से रहित नहीं रहा है। पीपल्या पाला, पातालपानी, काला कुंड, ओंकारेश्वर, धरमटेकरी, यशवंत सागर, लाल बाग, माणिक बाग तथा इन्द्र भवन दर्शनीय स्थान हैं।

इन्दौर अपनी परम्परा को संभाले हुए प्रगति करता जा रहा है। जलवायु एवं प्रान्त में स्थान इसे विरोधी वातावरण में भी ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाये हुए हैं। जब निष्पक्ष जाँच समिति निरीक्षण करेगी, तो इस स्थान का मध्यभारत की राजधानी बनना अवश्यम्भावी है। पर राजधानी का प्रश्न इस नगर के महत्व को नष्ट नहीं कर सकता। वह चाहे जहाँ रहे, इन्दौर की आवश्यकताएं यदि पूरी हो गईं और एक विश्व-विद्यालय, एक उच्च न्यायालय एवं एक कारपोरेशन बन गए तो यह नगर लगातार उन्नति करता रहेगा।

तुम धरा के पुण्य थे साकार !

श्री हुकुमचन्द जी बुखारिया "तन्मय"

सिन्धु-सा व्यक्तित्व ले गम्भीर अपने साथ,
जब कि तुम जग पर उठाते थे वरद निज हाथ,
लोग कहते हैं, झुकाता था क्षितिज तब माथ,
मुक्त होते थे सभी को मुक्ति के सौ द्वार।
तुम धरा के पुण्य थे साकार ॥

मार्ग में चलते बनाते शूल को तुम फूल,
चन्द्रमा सिर पर चढ़ा लेता चरण की धूल,
मेनका-सी पाँव पर आ लोट जाती भूल,
भार उसको भी समझते किन्तु तुम, सुकुमार।
तुम धरा के पुण्य थे साकार ॥

काँपते थे पाप, माया, मोह मद के धाम,
अश्रु भर लाता पलक में दूर कंचन-काम,
तुम विनाशों की निशा में प्रात—पूर्ण विराम,
मिल गया था अधर मानव को सबल आधार।
तुम धरा के पुण्य थे साकार ॥

पर अपना अधिकार न भूलो

प्रो० श्रीचन्द जैन एम० ए०, रीवा

तन न भी भूलो, मन भी भूलो, पर अपना अधिकार न भूलो ॥
सागर का सन्तप्त हृदय है।
सम्मुख आज विराट् प्रलय है।
पर भावुक नाविक तुम अपनी नौका का पतवार न भूलो ॥
वैभव के महलों के वासी।
जीवन-संचित-सुख अभिलाषी।
पर मानव हो, मानवता का कलुषित हाहाकार न भूलो ॥
जन-गण के हे भाग्य विधाता !
शक्ति प्राप्त नर के निर्माता !
विश्व-व्याप्त उस व्यग्र काल का तुम भी कठिन कुठार न भूलो ॥

ADVENT OF JAINISM TO KARNATAKA

Syt. M. Gorind Pai Manjeshwar

In the Brihat-Katha-Kosa of Harishena composed in 931 A. C., which with the exception of the Kannada prose-work Vaddaradhane, is the earliest available work dealing with the advent of Jainism into Southern India, that story is given as follows :—(Epigraphia Carnatica (E. C.) II : Sravanabelgola Transcriptions; Introductions, p. 37.)

Sometime after the Nirvana of the final Tirthanakara, Sri Mahavira, Govardhanacharya, the fourth Siruta-Kevali ordained Bhadrabahu of Kotipura in Paundra-Vardhana country (*i.e.*, Northern Bengal) as his disciple, and he became the fifth Sruta-kavali after the decease of his preceptor. He then led the community of Jaina monks from place to place till at last they came to Ujjayini where Chandragupta, a Jaina layman was ruling as king, and they settled for a while. Bhadrabahu, who could read omens foresaw that a severe famine of 12 years was impending over the land, and seeing that his own end was fast approaching, he told them that he would remain where he was, and directed the community to proceed to the South of India, where the famine had not penetrated. Then Chandragupta king of Ujjayini laid aside his crown and sceptre, took monastic orders from Bhadrabahu and assuming the name of Visakhacharya led the community at the bidding of Bharabahu as far South as Prennata in the Karnataka region. Subsequently Bhaddrabahu fasted unto death as religious observance, and absorbed in meditation he laid down his life in that part of Ujjayini known as Bhadrapada. When the famine in that part was over, Visakhacharya, *i.e.*, the former king Chandragupta, returned from the south and settled with the community in Madhya-desa, *i.e.*, middle country. Thus narrating the story of Bhadrabahu the story also of the advent of Jainism to Karnataka and South India has been related incidentally.

The versions of the same story as is recounted in three other much later works, *viz.*, (1) The Sanskrit poem Bhadrabahu Charita of Ratnanandi (17th Century). (2) the Kannada poem Munivanis' abhyudaya of Chidananda (17th Century) and (3) the Kannada prose work Rajavatika the 1838. No doubt, tally fairly well with the above version of Harishena, but there are some marked differences, of which, for our purpose however, these two are of vital importance; *viz.*, (1) in these versions Bhadrabahu dies in Karnataka or on the way to it, while in Harishena he dies in Ujjayini itself, and according to Harishena king Chandragupta and Visakhacharya are one and the same person whereas according to these versions they are entirely two different persons, of whom Visakhacharya parts from Bhadrabahu and in obedience to his behest leads to the community of monks from Karnataka farther South to Chola and Pandya countries, and returns thence when the famine was over, while Chandragupta, however, 'never parted from Bhadrabahu who foreseeing that his own death would occur soon, remained just where he was, and tending him sedutiously till his death, worshipped his foot-marks in stone thereafter until he himself passed away in the same place.

In inscription No. 31 of Sravanabelgola of about 650 A. C. Bhadrabahu and the great sage Chandragupta as well as Belgola have been mentioned, and in Nos. 147 and 148 of Seringapatam, both of about 900 A. C., Bhadrabahu and the 'Great Sage' Chandragupta are mentioned as well as the holy place Belgola by also its ancient name Kalbappu 'which became so conspicuous in the world (जगह्वामायिन) by imprinted by their feet (भद्रबाहुचन्द्रगुप्तमुनियति चरणमुद्रांकित)and (चरणलाञ्छलानाञ्चित). Thus from these three inscriptions, however, which are evidently anterior to Harishena's Brihat-Katha-Kosa, it appears that both Bhadrabahu and Chandragupta did actually visit Karnataka and resided at Kalbappu, which lateron came to be known as Belgola (which is a Kannada word meaning "white tank") and yet later as Sravanabelagola (meaning "white tank of Jaina ascetics").

- Several eminent scholars have so far identified the Chandragupta of the Bhadrabahu story who ruled at Ujjain, with his namesake the emperor Chandragupta, founder of the Maurya dynasty, who is known beyond doubt to have ruled at Patlipura. But the validity of this identification however cannot be admitted. For (1) while in the aforecited three inscriptions (which are anterior to Harishena). Bhadrabahu and Chandragupta are said to have come together to Sravanabelgola and stayed there, the latter has not been spoken of as a king before he became 'a great sage'. Besides in yet three other and later inscriptions in the same locality, which also make mention of Bhadrabahu and Chandragupta, *viz.* (a) No. 67 of 1129 A. C., (b) No. 64 of 1163 A. C. and (c) No. 25 of 1432 A. C. Nothing more is said of Chandragupta than simply that he was a discrple of Bhadrabahu. (2) Chandragupta, who overthrew the last of the Nandas and ascended throne as the first emperor of the Maurya dynasty, is never known to have ruled anywhere before then, and never at any rate in Ujjayini. (3) In the Mahayana Budhistic work entitled Arya-Maujusra Mulakalpa which is known to have been translated into the Tibetan language in about 1060 A. C. and therefore would seem to have been composed in about 800 A. C. are mentioned in its 53rd chapter successive empires that had their being from before the time of Buddha till about 750-A. C. In the same chapter the last moments of the Maurya emperor Chandragupta have been described so graphically as follows :—

नन्दोऽपि नृपतिः श्रीमां (न्) पूर्वंकर्मापराधतः ।
विरागयामास मन्त्रीणां (नरान्) नगरे पाटलाह्वये ॥ ४२४ ॥
तस्य राज्ञोऽपर स्यातः च (श्र) न्द्रगुप्तो भविष्यति ॥ ४३६ ॥
महायो (भो) गी सत्यसन्धश्च (न्धो) धर्मात्मा स महीपतिः ॥ ४४० ॥
श्रकल्याणमित्रमागम्य कृतं प्राणिवधं बहु ।
तेन कर्मविपाकेन विषस्फोटैः स मूर्छितः ॥ ४४१ ॥
अर्धरात्रे रुदित्वासौ पुत्रं स्थापयेद् (पुत्रमस्थापयद्) भुवि ।
बिन्दुसारसमाख्यातं बालं (च ?) दुष्ट मन्त्रिणम् ॥ ४४२ ॥
ततोऽसौ चन्द्रगुप्तस्य (श्र) च्युतः कालगतो भुवि ।
प्रेतलोकं तदा लेभे गतिं मानुषवर्जिताम् ॥ ४४२ ॥

From this it appears that Chandragupta became king of Patala-nagara, *i.e.*, Patalipura after Nanda. At the time of his death Chandragupta was afflicted with small pox carbuncle; small-pox and fainting on account of it (and losing all hopes of recovery), he placed his son Bindusara on the throne with tears at midnight. Con-

sequently this Chandragupta must have died in harness, so say, at Patlipura while he was yet a king there. And since he has been spoken of here as the immediate successor of king Nanda on the throne of Patalipura, and the father as well of Bindusara who succeeded him, he could be none other than the emperor Chandragupta, the founder of Maurya dynasty. It is thus quite evident that this Chandragupta who died at Patalipura when he was yet on its throne, is quite another individual than the Chandragupta, the king of Ujjayini, who was ordained by Bhadrabahu, whereafter at his instance he went to Karnataka with the community whence he returned to the Middle Country (according to Harishena's version of the Bhadrabahu story) or whereafter he travelled to Karnataka in his master's company where he died after his master (according to the aforesaid versions of the same story).

There is yet another work, a collection of 19 Jaina stories in Kannada prose, which was recently unearthed and has been published a couple of years ago by the Kannada Sahitya Parishat, Bangalore. It is called Vaddaradhane, which name on the face of it is the Prakrit form of Sanskrit, Brihadaradhana. For various reasons I have elsewhere (In the last of the three Kannada lectures which I delivered in Dharwar, (1940) : Three Lectures (Kannada pp. 111-115 ; Kannada Sahitya Parishat Patrike (Kannada), XXXVI, pp. 1-21 and 108-144) shown that this Kannada work is a translation of some yet older Prakrit work of the same name, and the Kannada translation cannot be of a later date than the 6th century A. C. The 6th of its 19 stories with the story of Bhadrabahu Bhattara which would thus seem to contain the earliest and therefore a more authentic version of that historical account than any of the aforesaid four narratives, and it is as follows :—

The fourth Sruta Kevali (one who possesses complete knowledge of the Jaina scriptures). Govardhanacharya ordained Bhadrabahu of Kanndininagara in the Purvavardhana country as his successor, and the latter became the fifth Srutkevali after the death of his preceptor. Now a Brahmana named Chanakya, whom king Nanda of Patalipura had openly insulted, overthrew him, and placed Chandragupta upon his throne. Chandragupta was succeeded by his son Bindusara, and the latter by his son Ashoka. After the death of Ashoka, when his grandson Samprati Chandragupta was ruling as king and living happily at Ujjayini, Bhadrabahu, who was going from place to place with large community of Jaina monks, arrived in Ujjayini. Samprati Chandragupta used to visit him and learn the right Dharam from him and performed acts of religious character under his guidance. Once he told the sage of the 16 evil dreams he had dreamt, when forthwith Bhadrabahu read them and warned the king that a severe famine of 12 years duration was imminent. Samprati Chandragupta at once abdicated his throne and placed his son upon it ; and getting himself ordained by Bhadrabahu, he became a Jaina ascetic as Chandragupta muni. Then Bhadrabahu advised his followers to leave the place at once when all of them in his company and that of Chandragupta muni took their way to Southern India. When in course of their journey they had reached a place called Kalbappu, which is now known as Sravanabelgola situated in Karnataka country. Bhadrabahu foresaw that he had almost reached the limit of his life and sent the community to the Tamil country in the custody of Visakhacharya, who was his seniormost disciple, and a Dasapurvadhari (one who knows the ten Purva of the twelfth Anga) as well. Though at the same time the master repeatedly urged Samprati Chandragupta too to go with them, he would not comply but chose to remain with his master and zealously tended him until he died soon thereafter, whereupon he devoutly worshipped the tomb in which his master lay. When Chandragupta *muni* was thus engaged in religious austerities, the famine passed away, and the community which had gone to the Tamil country in charge of Visakhacharya returned

to Kalbappu where they met Chandragupta *muni* and adoring the tomb of Bhadrabahu, they proceeded northwards to the Middle Country (Madhydesa). Chandragupta muni however engaged himself in severer and more severe forms of penance, and entered into samadhi, *i.e.*, extinction of life, by means of asceticism.

Thus from this version of the story of Bhadrabahu, undoubtedly the earliest of all its versions, it is once for all certain that the Chandragupta who accompanied Bhadrabahu to Karnataka and the Chandragupta who was the founder of the Maurya dynasty are entirely two different persons, of whom the former who was known by his full name as Samprati Chandragupta, king of Ujjain, was the grandson of Asoka, who was the grandgrandson of the first Maurya emperor Chandragupta, or in other words the former was the greatgrandson of his latter namesake. They are thus never one and the same, and the mistaken identity is due to the fact that both of them bore the same name Chandragupta, they both sprang from the same Maurya dynasty, and they lived in the same country within not many years of each other.

Now from the history of that period it is known that after the death of Asoka in 239-238 B. C. his empire was divided between his two grandsons, of whom Dasaratha who succeded him on his throne of Patlipura became king of the eastern half, while another grandson who is known to history as Samprati and seems perhaps to have been already ruling under his grandfather as his deputy or viceroy in Ujjayini, became king of the western half with its seat of government at Ujjayini itself. It is further known (Cambridge History of India, Vol. 1, P. 166 ; Early History of India, pp. 202-203 ; Oxford History of India, p. 117 ; Vincent Smith : Asoka p. 226) that Samprati was as zealous a propagator of Jainism as his grandfather Asoka was zealous in the propagation of Budhism. Needless therefore to say that this historical Samprati and the Samprati Chandragupta of the Bhadrabahu story in the Vaddardhane are quite identical. In conformity to the custom of naming one's children and grandsons after one's ancestors, Asoka in naming his grandson after his grandfather Chandragupta, the founder of the Maurya dynasty, would seem to have called him Samprati Chandragupta, meaning *present* Chandragupta (for the Sanskrit word सम्प्रति means present) and that compound name would naturally be shortended in common parlance into its first component. Samprati by which name he might well be believed to have been known to the people at large and therefore it is *in that form that history would hand his name down to posterity.*

It goes without saying that Sampati, or Sampati, Chandragupta to call him by *his full name, who is said to have been ruling at Ujjayini as the Viceroy of Asoka,* became independent king of Ujjayini at the death of his grandfather in 239-238 B C. It is thus some years after 238 B. C. that he met Bhadrabahu when he soon laid aside his crown and sceptre, and being initiated into the ascetic order by him he proceeded into the community in his master's company to Karnataka, which they would reach in about 2 or 3 years' time. This event therefore may well be assigned to about 230. B. C.. or yet a few years later, so that there cannot be any doubt that Jainism entered Karnataka as well as South India in the last quarter of the 3rd Century B. C.

•

[We regret that we do not share the views of Shri G. Pai that Samprati Chandra Gupta was the disciple of the great Jain Saint Srutkevalin Bhadrabahu. Of course, Emperor Chandra Gupta I must have been Bhadrabahu's direct disciple. According to Jain tradition, Bhadrabahu flourished near about 365 years before

महावीर दिगम्बर जैन इन्टर कॉलेज आगरा की ओर से चित्रित भावचित्र।

to Kalbappu where they met Chandragupta *muni* and adoring the tomb of Bhadrabahu, they proceeded northwards to the Middle Country (Madhydesa). Chandragupta muni however engaged himself in severer and more severe forms of penance, and entered into samadhi, *i.e.*, extinction of life, by means of asceticism.

Thus from this version of the story of Bhadrabahu, undoubtedly the earliest of all its versions, it is once for all certain that the Chandragupta who accompanied Bhadrabahu to Karnataka and the Chandragupta who was the founder of the Maurya dynasty are entirely two different persons, of whom the former who was known by his full name as Samprati Chandragupta, king of Ujjain, was the grandson of Asoka, who was the grandgrandson of the first Maurya emperor Chandragupta, or in other words the former was the greatgrandson of his latter namesake. They are thus never one and the same, and the mistaken identity is due to the fact that both of them bore the same name Chandragupta, they both sprang from the same Maurya dynasty, and they lived in the same country within not many years of each other.

Now from the history of that period it is known that after the death of Asoka in 239-238 B. C. his empire was divided between his two grandsons, of whom Dasaratha who succeded him on his throne of Patlipura became king of the eastern half, while another grandson who is known to history as Samprati and seems perhaps to have been already ruling under his grandfather as his deputy or viceroy in Ujjayini, became king of the western half with its seat of government at Ujjayini itself. It is further known (Cambridge History of India, Vol. 1, P. 166 ; Early History of India, pp. 202-203 ; Oxford History of India, p. 117 ; Vincent Smith : Asoka p. 226) that Samprati was as zealous a propagator of Jainism as his grandfather Asoka was zealous in the propagation of Budhism. Needless therefore to say that this historical Samprati and the Samprati Chandragupta of the Bhadrabahu story in the Vaddardhane are quite identical. In conformity to the custom of naming one's children and grandsons after one's ancestors, Asoka in naming his grandson after his grandfather Chandragupta, the founder of the Maurya dynasty, would seem to have called him Samprati Chandragupta, meaning *present* Chandragupta (for the Sanskrit word सम्प्रति means present) and that compound name would naturally be shortended in common parlance into its first component, Samprati by which name he might well be believed to have been known to the people at large and therefore it is in that form that history would hand his name down to posterity.

It goes without saying that Sampati, or Sampati, Chandragupta to call him by his full name, who is said to have been ruling at Ujjayini as the Viceroy of Asoka, became independent king of Ujjayini at the death of his grandfather in 239-238 B C. It is thus some years after 238 B. C. that he met Bhadrabahu when he soon laid aside his crown and sceptre, and being initiated into the ascetic order by him he proceeded into the community in his master's company to Karnataka, which they would reach in about 2 or 3 years' time. This event therefore may well be assigned to about 230. B. C., or yet a few years later, so that there cannot be any doubt that Jainism entered Karnataka as well as South India in the last quarter of the 3rd Century B. C.

[We regret that we do not share the views of Shri G. Pai that Samprati Chandra Gupta was the disciple of the great Jain Saint Srutkevalin Bhadrabahu. Of course, Emperor Chandra Gupta I must have been Bhadrabahu's direct disciple. According to Jain tradition, Bhadrabahu flourished near about 365 years before

महावीर दिगम्बर जैन इन्टर कॉलेज आगरा की ओर से चित्रित भावचित्र।

Christ, therefore first Emperor Chandra Gupta must have embraced asceticism before the demise of Bhadrabahu in 365 B. C. This Chandra Gupta was the last Emperor, who had adopted the life of a nude Jain Monk. This fact comes to light by the following verse of one the most ancient Jain Prakrit literary composition Tiloyapannatti by Yadivasaha :—

मउडधरेसु चरिमो जिण दिक्खं धरदि चंदगुत्तो य।
तत्तो मउडधरा दु पव्वज्जं ऐव गिण्हंति ॥ ४-१४८१

It appears that Chandra Gupta Maurya's great grand-son Samprati Chandra Gupta, who was the reputed propagator of Jainism must have brought into people's mind the remarkable memory of the great emperor Chandra Gupta, therefore he was dubbed as Samprati Chandra Gupta indicating thereby that he was as good and great devotee of Jainism as the late ancestor Chandra Gupta.

We are of opinion that the devotees of Jain faith must have existed in the South long before, hence on the eve of the impending terrible famine Bhadrabahu admonished the disciples of his Samgha to proceed towards South, where they will be hospitably received by their coreligionists in accordance with their sacred religious injunctions.

Naturally, therefore, Jainism must have been a living religion of the masses in the South at the time of the Jain Acharya Bhadrabahu. —Editor.]

MAHAVIRA AND AHIMSA

Prof. Tan Yun Shan, Director Vishva Bharati Cheena Bhavan

Ahimsa is the royal road to peace and Lord Mahavira was the first and foremost pioneer of this road in this world. I say 'Royal Road' because it is now the one and only road opened to man-kind for ensuring peace and contentment in the present world torn with growing hostility and uncontrollable violence.

Ahimsa is the message not of Jainism alone, but also of other great Indian and Chinese religions such as Buddhism, Hinduism, Taoism, and Confucianism. In other words, I should say: It is the element and essence of our Sino-Indian culture ; it is also the kernel and nucleous of our Sino-Indian life.

It is my firm conviction and also my humble mission, that we Chinese and Indians professing the most ancient cultures and the greatest civilizations should culturally unite and promote the common cause of world peace entirely based on Ahimsa. By promoting Ahimsa, we shall lead the world to real and permanent peace, love, harmony and happiness despite the encircling gloom of war clouds that surround our existence. I reiterate that Ahimsa is the Royal Road to Peace and let humanity march through it towards the ultimate goal of inter-national peace and brotherhood.

JAINISM AND MODERN THOUGHT

Prof. A. Chakravarty M.A. I.E.S. (Rtd.) Madras

The more one studies Jainism and Jaina Philosophy one is struck with extraordinarily modern ideas contemplated and preached thousands of years ago. The most striking aspect of Modern Thought is its scientific approach. No modern thinker will ever accept any statement on mere authority. Everything must be subjected to vigorous examination according to cannons of truth before being accepted as valid. It is this intellectual attitude that is the fundamental basis of Jaina Thought. Jaina thinkers from the very beginning insist on this aspect. The basis of Tatwa Jnana or knowledge of reality must be this. Any thing which cannot produce acceptable credentials must not be accepted as philosophically and religiously valid and binding It was this attitude that led them to reject even the authorities of Vedas which served as a paramount criterion of truth for the other Indian Systems of Thought. Accepting this fundamental rational principle the Jaina Rishis emphasise the importance of getting rid of popular superstitions which are accepted by ordinary people though they are not based upon rational foundation. These superstitions are generally of three kinds.—Loka Muda, Deva Muda, and Pashandi Muda. The first refers to the popular superstition that bathing in river, going round a tree or a hill will ultimately benefit the worshipper. The second Deva Muda refers to the practice of offering animal sacrifices to Gods and Goddesses who are supposed to be controlling epidemic diseases like cholera, small pox, etc. Instead of discovering the true cause of these epidemic diseases and eradicating them in the proper way, indulging in offering sacrifice to Goddesses is considered to be meaningless superstition which ought to be got rid off before true religious and spiritual development is ensured. The third Pashandi Muda refers to the practice of accepting the advice of false ascetics who pose as great religious teachers and deceive the ignorant and illiterate masses and trade on their credulity for their own benefit. It is not necessary to emphasise the importance of this freedom from superstition in order to adopt a correct religious and philosophical attitude. To have an accurate study of the nature of man the mind of the student must first be cleared of such superstitions idola as Backon points out as the necessary precondition of scientific approach.

Jainism and Human Personality : Another important factor which ought to be emphasised in connection with this is the sanctity of human personality. Jaina thinkers placed man in the highest pedestal among the several samsaric jivas. Even the Devas and Devendras are not considered to be on a par with man. To obtain spiritual liberation or Moksha even the Deva must be born as a man because as a Deva or Devendra he cannot enter into the sanctum sanctorum of spiritual perfection. This aspect deserves to be emphasised at present because the ideal of modern thought recognises the importance of human personaiity. It was Immanual Kant of Germany who proclaimed the undeniable truth that a man is an end in himself and should not be used as a means to some ulterior purposes. Though this principle is

not accepted by the Fascist, Dictators and the Communist thinkers in modern Europe, still it cannot be denied that it forms the core of Modern Thought which recognises the value of individual freedom and sanctity of human personality, an ideal which was recognised some thousands of years ago by the Jaina thinkers in our land. Any social reorganisation if it is to be satisfactory must be based upon this fundamental principle of individual freedom and sanctity and inviolability of human personality.

Jainism and Ahimsa : The principle of Ahimsa is made popular both in India and outside by the activities of Mahatma Gandhi. Jainism emphasises and in fact is based upon the principle of Ahimsa as the highest spiritual idea. All living creatures are considered to be one in this aspect. Universal Love must be the basis of spiritual life and development. No one can afford to witness the suffering of another being man or animal without trying to remove the cause of suffering. Hence any one on the path of spiritual development cannot think of injuring other living being. The very thought of inflicting suffering on the others is considered to be unworthy of human being. It is far better to suffer than to inflict suffering on others. It is this intrinsic principle of Ahimsa that is illustrated by many a Jaina Rishis who when molested by ignorant masses merely smiled at their ignorance and pitied them, instead of resenting their evil conduct. Any one who is acquainted with Jaina literature will come across instances like this. This attitude of Universal Love and mercy towards all being is best illustrated in the career of the Tirthankaras who through unbounded mercy and love towards all living beings even after obtaining spirilual perfection remained here as mendicants preaching to the masses this message of mercy and universal love to all beings. This ideal of Dharmaprabhavana is associated with the great Lord of Jainism who revealed the religious path, must be considered as an attempt to establish an earthly paradise where peace and harmony prevail among men and where suffering and misery will be eliminated. If properly understood and interpreted correctly this would emphasise the importance of social democracy as the best form of political machinery. In this respect it must be remembered that the last of the Tirthankaras Lord Mahavira though born of a royal family was associated with the republic of Vaisali. No wonder therefore that this democratic ideal as basis of social organisation has been emphasised by all later writers and Thinkers belonging to Jaina Thought. The ideal of otherworldliness with the necessary corrolary of running away from the concrete world is not recognised as a useful ideal of life. The Jaina ideal of true swarajya, the freedom of sovereignty of human personality must be won not by running away from the troubles of environment but ky conquering the environment and asserting the spiritual sovereignty.

Jainism and Economic Ideal : The world at present is divided into two hostile camps from the point of view of economic ideal—Capitalism and Communism one championed by America and the other championed by Russia. In spite of rivalry between the two groups a careful student will be able to recognise the underlying identity of economic ideal. Both the groups overemphasise the importance of economic ideal to such an extent that they lost all contact with spiritual values. The economic value is the only dominating ideal presented to the modern man in Western civilisation. Thus obscuring the eternal spiritual values by the overemphasis of economic ideals led to two disastrous world wars and is probably leading to a third world armageddon. Expecting such evil consequences by concentration of wealth, individual and national, Jainism prescribed an important remedy as a means of avoiding evil. One of the five Vratas prescribed to the householder and ascetic, refers to this principle, In the case of an ascetic it is enjoined that he should

not possess anything as his own because he is expected to disown his own body which is to be used only as a means of obtaining spiritual freedom. No wonder that the great religious leaders of Jainism who were of royal births set aside all their crown and sceptre and cast away all their robes and ornaments and went into the forests as mendicants to perform tapas because they fully recognise that slavery to the Mammon cannot co-exist with the ideal of freedom. But we are concerned with the householder which is the main stay of Society. Even in his case it is enjoined that he should limit his possession. This is the fifth of the five vratas—Parimita Parigraha. Every householder according to his status in society is expected to observe this vow and take as his share a fraction of what accrues to him from his profession either as an agriculturist or as a merchant. What accrues to him beyond this limit must be considered not as his own but as belonging to the society as a whole. The portion must be set aside for the welfare of the society. If this principle is strictly observed in a particular society that society will avoid the dangerous accumulation of wealth in a few hands leading to the undesirable spread of poverty, want and misery in another part of the society. There will be voluntary adjustment of wealth, in society as a whole guaranteeing the welfare and happiness of all. There will be no chance of conflict between one economic ideal and another economic ideal. To be an ideal society so organised to guarantee the welfare and happiness of all, where there will be no misery or poverty, where peace will reign by creating goodwill among all men, such social society is emphasised by the Jaina teachers who prescribed this vow as to limit the personal property of one's own as a means of avoiding the necessary conflict and misery in society. This ideal deserves to be spread all over the world because it appears to be the only means of liquidating the conflict between the two ideologies of Capitalism and Communism and promote universal peace among the nations of the World.

CAN INDIA ACHIEVE A WELFARE STATE ?

By Dr. Lanka Sundaram M.A., Ph. D. (London), Editor—Commerce & Industry, New Delhi.

Addressing the recent session of the Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry, the Prime Minister, Jawaharlal Nehru, spoke about the need for social objectives in economic and commercial policy. There is nothing exceptional or unexpected in this pronouncement from our Prime Minister, for it was a long time ago since the idea of a Welfare State has been canvassed as the target to be achieved through State policies in this land of recent Republican freedom.

What is a Welfare State ? It is a Government supported by economic action in which the following are supposed to occur :

(*i*) The removal of disparities of income and welfare as between groups of people, and as between individuals, inside the country. This presupposes the abolition of what has been know to economic science as the "unearned increment."

(*ii*) The provision of conditions under which there would be "full employment" to all the sections of the community, with the result that there is a maximisation of income for all.

(*iii*) The reduction of the gap between money and real incomes, that is to say, the creation of stable and just fiscal and economic conditions for the maintenance of proper purchasing power for the unit of money. In other words, no inflation, no deflation, but monetary equilibrium.

(*iv*) The laying down of social objectives, as so many targets to be achieved within a reasonable and ascertainable period of time.

The theory of the Welfare State can be elaborated from several other angles, but today in India we are not concerned with abstract theories but with concerte calities. The question to be posed and answered today is whether during the four years of Nehru's rule of the country, the Government of India and the twenty odd State Governments have made any beginning towards the inauguration of the Welfare State in our midst.

A few indices are available to indicate that the larger objectives have not only been enunciated, however vaguely, but some concrete steps are taken towards reaching them. First and foremost, the integration of the Indian States and the abolition of the autocracy of the 600 odd Indian Princes is perhaps the biggest step towards the realisation of the principle of the Welfare in a substantial portion of the country, which was known till recently as Princely India. The abolition of Feudalism and autocracy is a very important and breath-taking step, but it is obvious that many in this countr y do not consider that the retention of the Rajpramukhs and the

payment to them of crores of rupees each year as allowances is compatible with principles of social justice. Yet, we are in a transition period, and as such we must stomach this proposition, though it militates against all canons of the Welfare State.

The attempted abolition of *zamindari* all over the country is an equally impressive step towords the realisation of the Welfare State. The recent judgment of the Supreme Court declaring *ultra vires* of the Constitution the attempted abolition of *zamindari* in certain parts of the country does certainly create a constitutional crisis, which is now sought to be met by an amendment of the Constitution itself. Whatever the details of this controversy, it is clear that the abolition of middlemen between the State and the cultivating *kisan*, and the conferment of titledeeds to the *kisan* for the land he tills, eliminate the structure of economy which we are accustomed to for thousands of years, thus aboiishing the principle of the "unearned increment." In other words, hereditary rights to income not earned is being sought to be abolished in accordance with principles of social justice. Yet, there are numerous people in this country who would claim that the payment of compensation to the *zamindars* is reprehensible, and that outright expropriation is what is wanted.

Barring these two achievements, it is difficult to state whether the Government of the Indian Republic, either at the Centre or in the States, has done anything more towards the creation of the principle of the Welfare State. Prohibition is a mighty though futile experiment, seeking to create a social atmosphere in the land, at the cost of nearly Rs. 100 crores a year. But prohibition is not unaccompanied by increases of taxation, which cut into the real incomes of the people. To take an example. Madras State is in the forefront of this experiment of total Prohibition. Yet, what are the economic consequences of this experiment ? An excise revenue of Rs. 18 crores has been surrendered, and in order to make it up a sales tax, covering almost every conceivable type of transaction, has been imposed to bring in Rs. 22 crores into the coffers of the State concerned. Actually, the taxation of Madras State has been increased five-fold during the course of the past five years.

Thus, what has been given away to the people with one hand is being withdrawn with another. It is alright for the people to remember the high-sounding principles of the Preamble of the Constitution, but empty words cannot be expected to do the trick. Everywhere in the world there is an attempt to enlarge the sectors of Government intervention, in order that the Welfare State is ushered into existence. In our case, the position is specifically different. Thus, last year (1950-51), the Government gave relief to Industries and Commerce, through the reduction of taxation to the extent of Rs. 20 crores in a year. This year, in contrast, Government took from the commonalty of the people some Rs. 50 crores in a year (Rs. 30 crores from increase of railway fares and Rs. 20 crores in additional taxation). And yet, what is the position ? The "Crisis in confidence" which led to a strike of capital has not been resolved, the Government is unable to borrow from the public according to traditional means, and there is all-round a sense of economic unbalance, insecurity and lack of faith in the objectives laid down by the Government in the field of high policy. This is to be deplored, for our infant Republic must be nurse with care and justice.

According to my way of thinking, the following are the most urgent tasks to be taken in hand by the Government of India if we are to have a Welfare State in our midst :—

(i) The imposition of death duties. A Bill has been drafted, but it does not seem to come for disposal by Parliament. Death duties have been there in England, even before the present Labour Government has assumed office.

(*ii*) The imposition of a capital levy, including house properties and other fixed assets of the community. Without this it is impossible for the Government to hope to obtain the gigantic funds needed for reconstruction and development in terms of the principle of social justice.

(*iii*) The implementation of the principle of labour-capital co-partnership, without which the existing industrial and social unrest in the land cannot be tackled. I was impressed by hearing Shri Sri Ram of New Delhi pleading the other day, in the annual session of the Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry, for the recognition of this principle in a definite manner.

(*iv*) Without going into the theoretical justification of the principle "production for use and not for profit", it must forthwith be recognised that talking of a Welfare State becomes meaningless, in terms of the Government's principle of "mixed economy", under which there is tremendous confusion of the targets of nationalisation and of the private sector of our national economy.

Provisions of conditions of full employment, through the energetic use of the fiscal and tariff instruments by the Government. At the moment, there is not only chronic unemployment and under-employment among various sections of the community, but also of dangerous unbalance in our economic system, which, if not tackled without loss of time, would lead us to chaos.

(*v*) Like what is done in the Scandinavian countries, Government should publish what is called an annual "Social Audit", giving a clear-cut statement of national income and expenditure in the sphere of the common man.

The concept of the Welfare State still requires time and effort for getting popularised in our midst. A country which is notoriously victim to the theory of *Karma* and the caste system cannot develop, without official imposition, the principles of social justice and welfare. Indeed, the greatest enemy of the Welfare State in India is the social and economic system which has been in existence for thousands of years. Revolutions have brought about the Welfare State, but with enormous destruction and bloodshed like in the case of the U. S. S. R. There is also the possibility for the creation of a Welfare State through evoluiton, like in the case of England, where the biggest possible beginnings have been made and pursued steadily without any destruction and bloodshed at all. It is for India to choose her path from out of these two paths, and it does not require much analysis to show which particular path she will choose.

धर्म और संस्कृति

लेखकः—श्री जैनेन्द्रकुमार जी

इधर धर्म शब्द का महत्व कम हो रहा है और संस्कृति शब्द की लोकप्रियता बढ़ रही है। धर्म अनेक हैं और उनमें आपस में अनबन देखी जाती है। उनके पंडित आपस में विवाद करते हैं और उनके अनुयायी अपने अलग अलग पात्रों को लेकर आपस में उलझते और झगड़ते देखे जाते हैं। यह दृश्य उन लोगों के लिये रुचिकर नहीं है। हमारे पास साधनों की जो प्रचुरता होती जा रही है कि दूरी को टिकने के लिये अवकाश नहीं है और सब कोई आस पास आते जा रहे हैं, अपने को अलग अलग मानने की सुविधा नहीं रह गई। देश की, जाति की, भाषा की और इस तरह की अनेक भिन्नतायें भी जैसे अब सहारा नहीं देती और उनके बावजूद हम निकट से निकटतर बनते जा रहे हैं। विज्ञान ने ऐसे अचरज पैदा कर दिये हैं कि इस कोने में बैठे हम दुनिया के हर कोने से संबंध रख सकते हैं और एक छोर से दूसरे छोर के किसी भी लोगों से भी बात चीत कर सकते हैं। ऐसी हालत में वो शब्द जो कि अपने में सीमित होकर रह जाता है जैसे आज के काम के योग्य नहीं रहता। धर्म आज कुछ ऐसा ही शब्द बन गया है। धर्म सब मानेंगे। भीतर से बहुत अच्छी चीज है। लेकिन, जबकि वो अपने अनुयायियों को मिलाती है तब दूसरे धर्म के मानने वालों को परे रखने में वही वस्तु सहायक भी हो जाती है। धर्म अनेक हैं और उनकी अनेकता के कारण संघर्ष होते आये हैं। कभी तो ये संघर्ष बड़े अमानुषिक और वीभत्स तक होगये हैं। प्रत्येक धर्म की कोशिष रही है कि वो धर्मों की अनेकता को मिटादे और कि वो अपने को सार्वभौम एकच्छत्र बना डाले। इस एकता के स्वप्न को लेकर एक धर्म ने अन्य अनेक धर्मों पर प्रहार किया है और उन पर विजय साध लेनी चाही है। धर्म के साथ इसीलिये विचार और बाद की एक कट्टरता का बोध होता रहा है। निश्चय ही कट्टरता से कट्टरता ही उपजी है वो कटी नहीं है। इसी तरह अनेकता को नष्ट करने की स्पर्धा करके एक विशिष्ट रूपाकार की एकता को प्रतिष्ठित करने के आग्रह में से अनेकता बढ़ी ही है, घटी नहीं।

समय था, जब इस प्रकार का आग्रह उपयोगी समझा जा सकता था। लेकिन, इतिहास में से जीवन विकास पाता गया है और हिंसा से स्वयं अहिंसा की ओर बढ़ते आये हैं। पहले जो शौर्य था अब मजाक बना देखा जा सकता है। मत और बाद का लाठी के जोर से प्रचार अब कुछ उपहास्य बन गया है। अच्छी से अच्छी चीज को अब मानो ये सुभीता नहीं है कि वह हठात् अपना आरोपण करे। स्वतन्त्रता सबका अधिकार बन गया है। जिसका अर्थ है कि दूसरे पर हावी होने का किसी को अधिकार नहीं रह गया है। प्रहार की स्वतन्त्रता तो पशु की होती है, सेवा की स्वतन्त्रता मनुष्य

की विशेषता, यानि यह मनुष्य का ही हक है कि कोई उस पर प्रहार करे तो बदले में वो प्रहार न करे बल्कि प्रेम करे। स्वतन्त्रता का यह रूप मनुष्य को अब उत्तरोत्तर उपलब्ध होता जा रहा है।

हिंसा से अनिवार्यरूप से काल अहिंसा की ओर बढ़ता आया है—यह तथ्य कदाचित् सहसा लोगों को मान्य न होगा। एक से एक भीषण युद्ध की फसल हम बोते और काटते चले जा रहे हैं। युद्ध वे अधिकाधिक इतने विराट् और व्यापक होते जा रहे हैं कि पहले उनकी कल्पना ही न की जा सकती थी। आधुनिक शस्त्रास्त्र के मुकाबले प्राचीनता के पास क्या था? एटमबंब और हाइड्रोजिंग बंब की संहार शक्ति की तुलना भला किससे की जा सकती है। इस सब को देखते हुये यह दावा कि मानवता अहिंसा की ओर बढ़ी है झूठा लग सकता है, पर झूठ वो है नहीं। युद्ध को विराटता ज्ञान-विज्ञान में से मिली है। उसमें कारण यह नहीं है कि आदमी का हिंस्र भाव पहले से बढ़ गया है। हिंसा में गौरव और गर्व अनुभव करने का भाव निश्चय ही है। मनुष्य में पहले से क्षीण ही पन रहा है। हिंसा तो है, पर हिंसा का खुला समर्थन कहीं नहीं है। हिंसा को उत्तेजन है तो सीधे नहीं आड़े टेढ़े तरीके से—यानि सामने तो आदर्श के रूप में अहिंसा को ही रखा जाता है, फिर उसकी ओट में बुद्धि की प्रवंचना द्वारा हिंसा को ढक दिया जाता है। इस प्रकार विश्व युद्धों की परंपरा को सामने देखते हुये भी यह श्रद्धा कि मानवता हठात् और अनिवार्य अहिंसा की ओर बढ़ रही है असत्‌ नहीं ठहरेगी। बल्कि वही विज्ञान सिद्ध और तर्क संगत जान पड़ेगी।

हम आज ऐसी जगह पर आगये हैं जहां प्रहार का हक एकदम असिद्ध बनगया है। ठीक को भी गलत पर 'प्रहार' करने का हक नहीं है, वह ठीक ही नहीं है जो अमुक को गलत मानकर उसपर प्रहार करना अपना कर्तव्य बनाता है। ठीक और बे ठीक की धारणायें निरपेक्ष से सापेक्ष बनती जा रही हैं। किसी को अपने को इस रूप में ठीक मानने का हक नहीं रहता जा रहा है कि वो दूसरे को गलत कह कर उसपर हावी होने की सोच सके। प्रत्येक के लिये स्वगत ही नहीं, समाजगत और सर्वगत एक मान आवश्यक होता जा रहा है। इधर जो समाजवाद और साम्यवाद नाम की विचार धाराएँ चली हैं उन्होंने अवसर नहीं छोड़ा है कि एक अपने को अन्य अनेक से सर्वथा भिन्न और प्रथक् मानकर रह सकें। एक सबके साथ अपने में वह समाप्त नहीं हैं, शेष में ही उसको होना है।

धर्म आत्मकेन्द्रित इस अर्थ में वह आध्यात्मिक है। कोई आध्यात्मिकता निरी आत्मरत होकर जी नहीं सकती, पनप नहीं सकती। ऐसे वह आसामाजिक होती है। समाज के अभाव में व्यक्ति की स्थिति नहीं है। इसी तरह असामाजिक होकर धर्म की स्थिति नहीं रहती। किन्तु, अनेकवार ऐसा होता था कि धर्म को लेकर व्यक्ति अपने समूचे दायित्व को अपने ही प्रति इस तरहमान उठता था कि समाज के प्रति वह दायित्व हीन बन जाता था। ऐसे धर्म ग्रंथियों की सृष्टि करने में कारण बन जाता था और परिणाम में सामाजिक विषमता उत्पन्न होती थी।

इस विषमता को लेकर तो मानव चेतना का विकास सध नहीं सकता था। इसलिये देखा गया कि धर्म के नाम पर जब मानव चैतन्य की हानि होती है, दूसरे शब्दों में धर्म के नाम पर अधर्म की ही प्रतिष्ठा होती है, तब उस धर्म शब्द का महत्व घटने लगा। चहुंओर फैलती हुई मानव सहानुभूति ने धर्म शब्द का सहारा छोड़ा और उसके लिये दूसरे शब्द की आवश्यकता हुई। 'संस्कृति' वही शब्द है।

संस्कृति में स्पष्ट ही ध्वनि है कि किसी अवस्था में भी विग्रह के समर्थन के लिये वहां अवकाश नहीं है। बढ़ता जाता हुआ आपसी भाव-ऐक्य भाव उसका सार इष्ट है कहीं वृत्त वहां बंध नहीं होता। आत्मा आत्मा के लिये आत्मोपमता के भाव को बढ़ाते जाने का सदा ही अवकाश है। मैं आत्मा हूं जहां से आरंभ करके सब कुछ मुझे आत्मीय है इस सिद्धि तक साधना में व्यक्ति को बढ़ते ही जाना है। आत्ममें बंध होकर आत्म हत्या तो हो सकती है, आत्ममुक्ति नहीं हो सकती। मानों संस्कृति में यह चेतावनी है। संस्कृति का मुख किसी आभ्यंतरिक आत्मा की ओर नहीं है वह तो बाहर की ओर खुलकर फैली हुई निखिलता के प्रति है। संस्कृति यदि कुछ है तो सामाजिक है। किसी भी बहाने असामाजिक, समाज विरुद्ध या समाज विमुख होने की अनुमति उसमें नहीं है।

निश्चय ही संस्कृति की मांगसे किसी धर्म अथवा मतवाद को छुट्टी नहीं होसकती। अपना कह कर किसी धर्म में आदमी को यह छुट्टी नहीं हो सकती कि वह दायित्व हीन और उच्छृंखल व्यवहार करे। स्वधर्म पालन पर संस्कृति की मर्यादा आये बिना नहीं रुकसकती। मेरा धर्म मुझे दूसरों के प्रति नम्र न बना कर उद्धत बनाये तो वह सहा नहीं जा सकता। इस प्रकार मानव धर्म की ओर से मनमाना धर्म अधिक काल सहा नहीं जा सकता है। जब धर्म का संबंध चरित्र और व्यवहार से छूट कर मत मान्यता से अधिक हो जाता है तब स्पष्ट ही मानव धर्म को आकर उस मत माने धर्म का परिमाण करना होता है। हम देखेंगे कि यह संघर्ष सदा ही विद्यमान रहा है जो धर्म को मत मान्यता के द्वारा पकडते हैं और इस तरह से धर्म को जकडते और अपने को भी जकडते हैं और दूसरे वे जो स्वानुभूति में उसको स्वीकार और अंगीकार करते हैं ऐसे दो प्रकार के लोगों में संघर्ष रहता आया है। संतों महात्माओं को सदा पंडितम्मन्यों के हाथों यातनाएं भुगतनी पडी हैं। धर्म जिन के लिये संपत्ति के अर्थ में स्वत्व बनाया है, उनको युग धर्म के साथ चलने में कठिनाई हुई हैं। ऐसे संप्रदायधर्म और मानवधर्म के बीच में तनाव और विग्रह होता रहा है।

धर्म का ऐसा अपलाप देखने में आता है, इसलिये संस्कृति शब्द का सहारा यदि लिया जाय और अपनी अंतस्थ सहानुभुति का उत्तरोत्तर विस्तार साधा जाय तो यह युक्त ही है, फिर भी उस धर्म शब्द का बहिष्कार उचित न होगा। कारण नितांत सामाजिक होकर व्यक्ति समाज के प्रति अपना दायित्व पूर्ण नहीं कर पाता। समाज का अनुगत होकर चलने में समाज का हो सच्चा हित नहीं है। अनुगति में आत्मदान की पूर्णता नहीं है। जो समाज के हित में आत्म भावसे समर्पित है उसे समाज का बंदी होने की आवश्यकता नहीं है। वह समाज का सहयोगी है और आवश्यक होने पर उसका नेता भी हो सकता है। नेता का मतलब साथ होकर भी एक कदम आगे चलने वाला यह जो एक कदम आगे होकर चलने की बात है. वह केवल मात्र सामाजिक आदर्श से पूर्ण नहीं हो सकता। इसके लिये सामाजिक से कुछ उच्चत्तर आदर्श की आवश्यकता होगी।

आधुनिक दर्शन के लिये जैसे समाज परिधि बन गया है। जो दर्शन समाज से घिर जायगा वह समाज को फिर उठा कैसे पायेगा। इसलिये आदर्श को या लक्ष्य को समाज की सीमा में नहीं बाँधना होगा. उसे कुछ ऐसे व्यापक भाव में ग्रहण करना होगा जिसका सत्य समाज में समाप्त न होजाय वल्कि, वह उससे बाहर भी प्रतिष्ठित रहे। यानि एक सर्वव्यापी सत्ता।

संस्कृति शब्द इसी अपेक्षा में कुछ अपर्याप्त रह जाता है मानों, मानव संबंधों तक उसकी व्याप्ति है। मानवेत्तर सत्ता के प्रति जैसे उसकी पहुंच नहीं है। सूरज, चाँद और रात को चमक आने वाला नक्षत्र मंडल इस सब के प्रति मनुष्य का जो भविष्य में आल्हादकारी संबंध है उसका समावेश संस्कृति में नहीं होता। इस निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त उस परम सत्ता से संस्कृति की कुछ पहचान नहीं है, जो अलख निरंजन है, जिसके बिना दूसरा नहीं है, जो स्वयं है और शाश्वत है, जो शुद्ध अन्तिम परम और अखंड सत् है।

और यह स्पर्धा धर्म की ही है। जीवात्म धर्म द्वारा परमात्म होता है खंड अखंडता प्राप्त करता है और अंश संपूर्ण की ज्योति से ज्योतिष्क हो जाता है।

निःसंदेह धर्म आत्मीक ही हो सकता है। आत्मिक होने में खतरा है। आत्मीक सामाजिक नहीं भी है लेकिन यह खतरा ही उसकी कीमत है। आत्मीक निश्चय ही सामाजिक से सत्यतर है-पूर्णतर है। उस आदर्श में व्यक्ति सर्वथा निस्व और मुक्त हो सकता है। सामाजिकता में उसकी निजता सदा ही अनेकता में उस एक की गिनती बढ़ाने वाली रहती है। आत्मीकता ही है जिसमें अंततः उसकी गिनती भी नहीं रह जाती। वह सर्वथा शून्य बनता और इस तरह अनेकता को सच्ची एकता देता है। व्यक्ति की संपूर्ण मुक्ति जहां उसकी कृतार्थता किसी प्रकार भी उसकी ओर सिमटती नहीं है बल्कि चहुँ ओर खुलती और फैलती ही जाती है। यदि है तो उस धर्म में है जो आत्मीक है उस संस्कृति में नहीं, जो निरी सामाजिक है।

इसलिए प्रचलित धर्मों की अनेकता को स्वीकार करते हुये भी विग्रह आदि की संभावना को स्वीकार करते हुये भी उस शब्द की मूलभूत आवश्यकता से छुट्टी नहीं ली जा सकती। संस्कृति शब्द उसकी जगह नहीं रहता। संस्कृति में से हम मानवेतर जगत के साथ स्वरसाम्य नहीं प्राप्त करते। चराचर जगत् को जो एक नियम धारण कर रहा है उसके साथ तादात्म्य का बोध उस शब्द में नहीं समा पाता। जगत गति में एक लय-ताल है सब कहीं एक छंदबद्ध आनंद व्याप रहा है। धर्म मूल में जैसे उसी की खोज है उसी में तद्गत होने का प्रयास है, निजता को निखिलता से मिला देने की साधना है। संस्कृति इस परम पुरुषार्थ से विलग या विच्छिन्न होकर नहीं, आधार में उसको स्वीकार करके ही सार्थकता प्राप्त कर सकती है।

श्री राजाबहादुरसिंह जी इन्दौर

श्रीमान बाबू देवकुमार जी एम० ए० इन्दौर

महासभा के पुराने कार्यकर्त्ता

स्वर्गीय श्रेष्ठिवर्य राजालक्ष्मणदासजी साहब बहादुर सी० आई. ई. मथुरा

स्वर्गीय दानवीर जैन कुलभूषण सेठ माणिकचन्दजी जे० पी० बम्बई
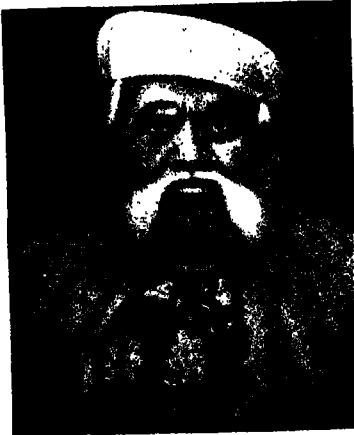
स्वर्गीय रायबहादुर सेठ मूलचन्दजी सोनी अजमेर।

अनेकोपाधि विभूषित रावराजा सर सेठ हुकमचन्द जी साहब इन्दौर।

सर सेठ हुकमचन्द जी साहब का मन्त्री मंडल

श्री आर० सी० जाल

श्री रमनलाल जी रावल

लाला हजारीलाल जी मित्तल
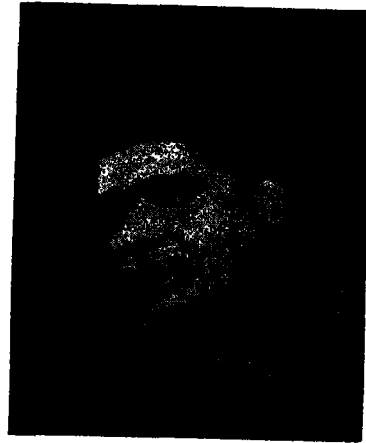
बाबू वसन्तलालजी कोरिया

अर्थसमिति के सदस्य

सर सेठ भागचन्दजी सोनी अजमेर

रायबहादुर राजकुमारसिंहजी इन्दौर

रा० ब० सेठ हीरालालजी इन्दौर
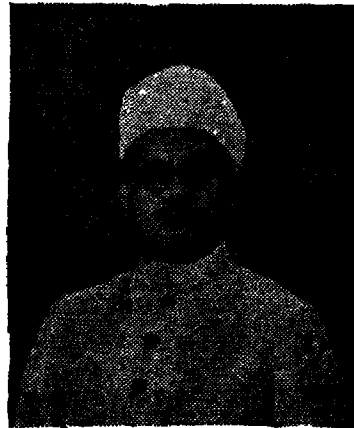
रा०ब० सेठ लालचन्दजी सेठी उज्जैन

सेठ गोपीचन्दजी जौहरी जयपुर

रायसाहब सेठ मोतीलालजी ब्यावर

सेठ हीरालालजी पाटनी किशनगढ़
(मगनलाल हीरालालजी)

सेठ कल्याणमलजी गोधा उज्जैन

श्री हुकमचन्द जी पाटनी इन्दौर

सेठ बैजनाथजी सरावगी कलकत्ता

सेठ गोविन्दराव दोषी रावलगांव

लाला हजारीलालजी मित्तल इन्दौर

सेठ गुलाबचन्दजी टोंग्या इन्दौर

सेठ गजराज जी गंगवाल कलकत्ता

साहू शान्तिप्रसाद जी कलकत्ता

लाला भगवानदास जी पाटनी
[परसादीलाल भगवानदास पाटनी]

सेठ रतनचंद हीराचंद जी बम्बई

सेठ भाईचंदजी रूपचंदजी दोषी बम्बई

लाला सिद्धोमल जी कागजी देहली

लाला कपूरचन्दजी गोधा जौहरी दिल्ली

रा०ब० सेठ हरकचन्दजी पांड्या रांची
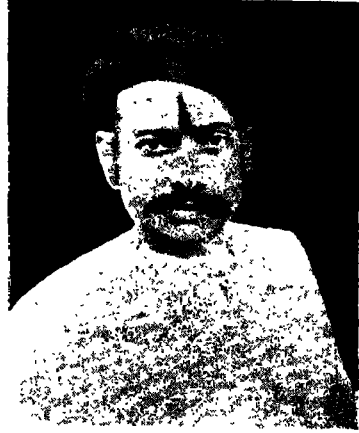
सेठ लखमीचन्द जी भेलसा
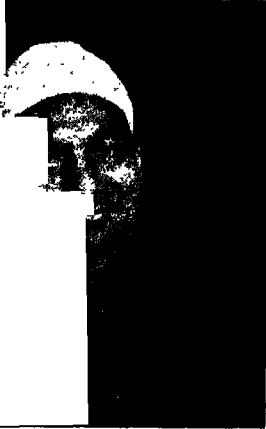
बू मानमलजी काशलीवाल इन्दौर

सेठ अमरचन्दजी पलासवाड़ो

सेठ हजारीलालजी मंदसौर

सहकारी आन्दोलन

लेखक—श्री ओमप्रकाश शर्मा, शास्त्री, साहित्याचार्य

देश स्वतन्त्र हुआ। परन्तु देश के अभ्युत्थान के जटिल प्रश्न आज भी शासन और जनता दोनों के सामने उपस्थित हैं। यहां लोगों की विशेषतः किसान मजदूरों की आर्थिक स्थिति काफी बिगड़ी हुई है। लोगों की आज यह भावना है कि देश के महाजन, व्यापारी, सेठ साहूकारान आदि अपनी कुटिल नीति से दिन-रात किसान मजदूरों का शोषण करते हैं। वे भाव, तोल, आढत, धर्मादा, कढ़दा, मनौती, अकडावन और कसर आदि कई रूप में इन्हें लूट कर अपना भजन बनाते हैं, जिससे किसान मजदूरों की न तो आर्थिक स्थिति ही अच्छी व सुदृढ़ बन पाती है और न उनका जीवन स्तर ही ऊंचा उठ सकता है। लोगों की इस धारणा को मिथ्या प्रमाणित करने के लिये यद्यपि मध्यभारत के सुप्रसिद्ध दानवीर सेठ सर हुकमचन्दजी ने अपने जीवन में एक सद्प्रयास किया है, तथापि अभी इस ओर बहुत कुछ किया जाना शेष है। सेठ साहब को किसान मजदूरों से बड़ा प्रेम है और उन्होंने इनकी भलाई तथा आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये निरन्तर काफी प्रयत्न किया है। १९२५ में सहकारी उत्सव पर अध्यक्ष पद से भाषण देते हुये सेठ साहब ने कहा था कि :—

"हमें किसान मजदूरों की दशा सुधारने के लिये सहकारी आन्दोलन को अपनाना चाहिये। इससे आर्थिक स्थिति लाभ के अतिरिक्त और भी अनेक लाभ हैं। मितव्ययिता, स्वावलम्बन, मिलकर कार्य करने की शक्ति, समय का मूल्य, उसका सदुपयोग, दूरदर्शिता और भ्रातृभाव सहकारिता द्वारा आसानी से मिल सकता है। अतः आज हम सबको सहकारी आन्दोलन को सफल बनाने के लिये भरसक प्रयास करना चाहिये।"

जन्मभूमि

सहकारी आन्दोलन की जन्मभूमि जर्मनी मानी जाती है। प्रशिया के सम्राट वीर फ्रेडरिक ने सहकारी आन्दोलन चालू करने के लिये सर्वप्रथम अपने यहां सहकारी समितियां स्थापित कीं। तत्पश्चात इंग्लैंड में १८११ में आटे की सहकारी चक्कियां चालू हुईं १८६४ में डैनमार्क, १८८९ में आयर्लैण्ड के समस्त क्षेत्रों में तथा १९०४ में भारत में सहकारी समितियों का श्रीगणेश हुआ। धीरे-धीरे इन सहकारी समितियों की व्यापकता बढ़ने से कुछ ही वर्षों में यानी सन १९०० तक योरुप में लगभग ३,००० सहकारी समितियां बन गईं और उनसे लोग काफी लाभ उठाने लगे। भारत में इसका आरम्भ यद्यपि १९०४ से हुआ, लेकिन, अनेक अड़चनों के कारण इनका पूरा विकास १९१६ तक न हो सका। इस बीच में देश में आर्थिक मन्दी, अनेक आन्दोलन, दूसरा महायुद्ध, देश विभाजन आदि कई अड़चनों के कारण इस आन्दोलन की आशातीत प्रगति होना संभव न था। इसके अतिरिक्त सहकारी आन्दोलन के प्रारम्भिक वर्षों में उन मनुष्यों का भी अभाव था, जो काफी योग्य और सहकारिता के सिद्धान्तों से अभिज्ञ हों। देश के अधिकांश लोग भी इसके महत्व को नहीं जानते थे और आर्थिक मंदी ने तो इस आन्दोलन को पनपने ही न दिया, जिससे हमारे देश में न तो सहकारिता का समुचित विकास ही हो सका और न यहां की सहकारी समितियों से लोगों को वह लाभ ही हुआ, जो दूसरे देशों को।

देश स्वतन्त्र होने के पश्चात केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों ने इस आन्दोलन के महत्व को समझते हुये देश में सहकारी आन्दोलन को अत्यधिक सफल बनाने के लिये एक विशेष प्रयास जारी किया। जिसके फल-स्वरूप गत दो तीन वर्षों में इसकी काफी प्रगति हुई, जैसा शासकीय आंकड़ों से स्पष्ट है।

सहकारी समितियों में यद्यपि उत्तर प्रदेश को नेतृत्व प्राप्त है परन्तु सदस्यता और चालू पूंजी के ख्याल से मद्रास नेतृत्व करता है और बम्बई का दूसरा स्थान है। सहकारी संस्थाओं की कुल संख्या १६३८७५ है, जो पूर्व के अंकों से ६ प्रतिशत अधिक हैं। सदस्यता १ करोड़ २७ लाख है यानी इसमें भी २५ प्रतिशत की वृद्धि हुई और पूंजी २८ प्रतिशत बढ़ कर २१८४८ करोड़ है। इन सहकारी समितियों में सबसे अधिक प्रगति गैर कृषि समितियों ने की है, जिनकी संख्या लगभग २२६२० से बढ़कर २७ हजार से भी अधिक हो गई है। इनकी सदस्यता में २० लाख की वृद्धि हुई और चालू पूंजी ६५ करोड़ से ८७ करोड़ है। इन संस्थाओं ने अपने सदस्यों को कार्य चलाने के लिये जो ऋण दिया है, वह लगभग ३० करोड़ से ३८ करोड़ तक बढ़ गया है। इसी प्रकार सहकारी समितियों के साथ-साथ सहयोगी बैंकों ने भी इन दिनों काफी प्रगति की है। उनकी चालू पूंजी में २४ करोड़ से ३१ करोड़ और इनकी संख्या में ४६६ से ४८४ की वृद्धि हुई है।

उत्तर प्रदेश, मद्रास तथा बम्बई प्रान्तों ने सहकारी आन्दोलन के विकास में जहां इतनी प्रगति की हैं। वहां इसकी सफलता के लिये मध्यभारत विशेषत: ग्वालियर तथा इन्दौर के राज्यों ने जो प्रयास किये हैं. वे भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

मध्यभारत के ग्वालियर राज्य में सहकारी आन्दोलन के जन्मदाता स्वर्गीय महाराज माधवराव सिंधिया थे। उन्होंने १९१६ में इस आन्दोलन के प्रसार के हेतु एक पृथक् विभाग स्थापित किया और उनके अथक परिश्रम तथा सत्प्रयास से १९२४ तक राज्य में लगभग ३,३५५ सहकारी समितियां बन गईं; जिनके सदस्यों की संख्या लगभग ५६३५८ थी। इससे अतिरिक्त राज्य के प्रत्येक जिले में एक एक सहकारी बैंक था जिससे सह-कारी समितियों को ऋण दिया जाता था। इन्दौर में भी यह कार्य १९१४ से शुरू हुआ, परन्तु इसकी प्रगति ग्वालियर की अपेक्षा धीमी थी। मध्यभारत के अन्य स्थानों में तो यह शुरू ही न हुआ था। इन्दौर में १५ अक्टूबर १९१५ को प्रथम सहकारी समिति बनी। तत्पश्चात २२ काश्तकारी सहकारी समितियां व इन्दौर कोओपरेटिव बैंक को स्थापना १९१६ में की गई। इस बोर्ड में ११ सदस्य थे जिनमें दानवीर सेठ सर हुकमचन्द जी मुख्य सदस्य थे। इस बैंक के हिस्से की पूंजी ५१७४७, हिस्सों की रकम१३२०, अमानतें रुपये ५१०० और कार्य चालू करने की पूंजी ५१८०६ रुपये थी। सम्मिलित सहकारी सभायें २२ व उनके सदस्यों की संख्या ४४६ थी।

सहकारी आन्दोलन को अत्यधिक सफल बनाने के हेतु सेठ साहब निरन्तर प्रयत्नशील रहे। २ नवम्बर १९३५ को इन्दौर में मनाये गये सहकारी दिवस पर सेठ साहब का जो भाषण हुआ, वह बड़ा ही महत्वपूर्ण तथा सहकारी कार्यकर्ताओं के लिये बड़े ही काम का था। एसोसियेशन के नियमानुसार उस दिन सेठ साहब को इन्दौर बैंक का आश्रयदाता चुना गया। शासकीय एवं सेठ साहब के सत्प्रयास से इन्दौर में सहकारी आन्दोलन का विकास दिनोंदिन बढ़ने लगा। राज्य में प्रीमियर कोपरेटिव्ह बैंक, चार मध्यवर्ती बैंक, युनियन्स, प्राथमिक किसानों की सभायें व कई नागरिक संस्थायें स्थापित हुई। इन संस्थाओं में एक विशेषता यह थी कि पुरुष समाज के साथ-साथ स्त्रियों ने भी एक बड़ा भाग लिया। स्त्रियों ने भी अपनी सहकारी संस्थायें स्थापित की थीं, जिनमें "आपकी सहकारी संस्था" विशेष उल्लेखनीय है। इस संस्था के कार्य से स्पष्ट है कि स्त्रियां भी सहकारी आन्दो-लन में एक बड़ा भाग ले सकती हैं।

संघ निर्माण के पश्चात मध्यभारत शासन ने ग्वालियर इन्दौर के समान सभी स्थानों में इस आन्दोलन के विकास के लिये राष्ट्रोत्थान की अन्य योजनाओं के साथ-साथ इस ओर भी काफी ध्यान दिया। इसके लिये एक पञ्चवर्षीय योजना विकास विभाग द्वारा बनाई गई, जिसके अनुसार गत दो तीन वर्षों में काफी कार्य पूरा हो गया है। मध्यभारत में इस समय लगभग ६,१३१ सहकारी समितियां हैं, जिनके सदस्यों की संख्या १,६२,०१४ है और पूंजी ३,४३,१३,१८६ रुपये है। प्रत्येक जिले में एक सहकारी बैंक है, जिसमें राजगढ़, बड़-वानी, रतलाम, धार व झाबुआ आदि स्थानों में नये बैंक स्थापित हुये हैं।

सहकारी आन्दोलन की सफलता के लिये यद्यपि शासन द्वारा यथासंभव प्रयास जारी है, परन्तु इसकी सफलता की बहुत सी जिम्मेदारी तो हम सब पर है। आन्दोलन शासन का नहीं, अपितु जनता का है। विदेशों के छोटे-छोटे भागों जैसे डेनमार्क हालेंड, बेलजियम, जापान आदि ने सहकारी आन्दोलन से जो सफलता प्राप्त की है, वह शासन के बल पर नहीं; बल्कि वहां की जनता के सत्प्रयास से है। प्रोफेसर बुल्क के शब्दों में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि यदि हम अपने देश का अभ्युत्थान चाहते हैं, यदि हम चाहते हैं कि हमारे देश के सभी लोग सुखी हों, उनके जीवन का स्तर अत्यधिक ऊंचा उठे, हमारे यहां के बड़े-बड़े सैकड़ों जंगली भूभाग हरे भरे खेत बनें और देश में छोटे-बड़े उद्योगधन्धों का विकास हो, तो हमें सहकारी आन्दोलन को सफल बनाने तथा इसके समुचित विकास के लिये भरसक प्रयत्न करना चाहिये। भारत जैसे देश के लिये अन्य कोई आन्दोलन इससे अधिक लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकता।
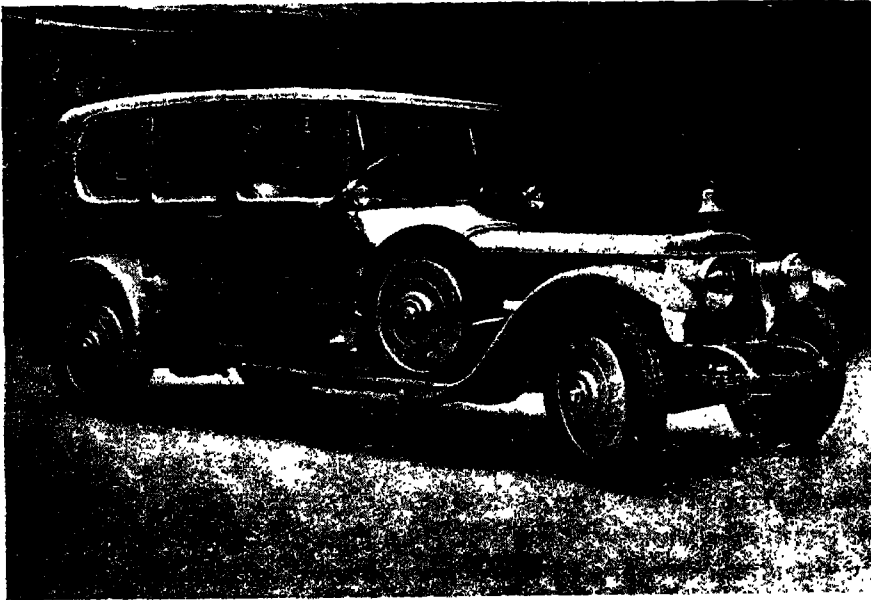
सुवर्णमयी वह मोटर, जो सेठ साहब की लम्बी यात्राओं में दर्शक के लिये बहुत बड़ा आकर्षण होती थी। सम्वत् १९८० में दिल्ली में भी उसकी धूम थी।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

(लेखक—पण्डित अजितकुमार जैन शास्त्री, देहली)

यह तो ठीक है कि न सदा अन्धकार रहता है और न सदा सूर्य का प्रकाश। प्रखर-प्रताप का पुञ्ज सूर्य जिस समय अस्ताचल पर जा पहुंचता है, तब फिर अन्धकार अपना अखण्ड शासन जमाना चाहता है; किन्तु प्रकाश का प्रेमी मानवप्राणी भी अपनी अनेक चेष्टाओं से सूर्य के बराबर न सही, उससे कम प्रकाश करके अपना काम निकाल ही लेता है। श्री १००८ भगवान महावीर के निर्वाण हो जाने पर केवलज्ञान-भानु अस्त हो गया, किन्तु उनके भक्त अनुयायियों ने उनके प्रकाश को अपने अदम्य उत्साह और अथक प्रयत्न से थोड़े बहुत रूपमें अब तक स्थिर रक्खा ही है।

मुसलमानी शासन भारतवर्ष में लगभग ८०० वर्ष तक बना रहा। उस विशाल समय में अज्ञान अन्धकार फैलता रहा। इस्लामी धार्मिक कट्टरताने भारतीय धार्मिक चेतना को निष्प्रभ बना दिया। उसकी स्वतंत्रताका अपहरण करके उसको सिर न उठाने दिया। सर्वत्र धर्मालयों को धराशायी बनाकर उनकी छाती पर मसजिदों की मीनारें खड़ी कर दीं। अत्याचार सदा खड़ा नहीं रह सकता। देखने वालों ने देखा कि किस बुरी तरह उस अत्याचारी मुसलमानी शासन का अन्त हुआ और उसकी कब्र पर अंग्रेजी शासन का अंकुर उगा।

राजनीतिपटु अंग्रेज ने भांप लिया कि भारतवासियों की नाड़ी में किस प्रकार से रक्त बहा करता है। उसने अपने शासन की नींव को दृढ़ बनाने के लिये साम्राज्ञी विक्टोरिया से यह घोषणा करवा दी कि "प्रत्येक सम्प्रदाय स्वतंत्रता से अपना धर्म-आचरण कर सकेगा। अंग्रेजी शासन उसमें कोई भी बाधा न डालेगा और न डालने देगा।"

इस घोषणा ने भारतीय जनता में नवीन उत्साह का संचार किया। उसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दूजाति की निद्राभंग करने के लिये लिखना और बोलना आरंभ किया। उन्होंने अपनी नुकीली वाणी व लेखनी से बेखबर सोती हुई हिन्दूजाति को जगा दिया। स्वामीजी ने अपने भाषणों से और सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ द्वारा तत्काल जैन समाज को भी अपना प्रचार करने का संकेत किया।

आज से ७४ वर्ष पहले वि० सं० १९७४ में स्वर्गीय पं० छेदालालजी तथा पं० प्यारेलालजी ने जैन संस्कृतिके रक्षणार्थ अलीगढ़ में एक छोटी सी पाठशाला खोली, जिसमें पढ़कर १०-११ विद्वान् तयार हुए। जैन समाज को समय की प्रगति के साथ चलाने के लिये यह एक प्रथम प्रशंसनीय प्रयास था। तत्कालीन जैन विद्वान पं० चुन्नीलालजी, पं० मुकन्दरामजी मुरादाबाद, पं० छेदालालजी, पं० प्यारेलालजी अलीगढ़, पं० धन्नालालजी काशलीवाल ने '*कलौ संघे शक्तिः*' नीति का अनुसरण करने के लिये अखिल भारतीय दिगम्बर जैनों को संगठित करने के लिये एक बड़ी संस्था स्थापित करने का विचार किया।

श्री अन्तिम केवली जम्बूस्वामी की निर्वाण भूमि चौरासी (मथुरा) पर कार्तिक मास में जो प्रतिवर्ष मेला हुआ करता था, १९४१ के उस मेले पर इन विद्वानों ने अपने विचार को कार्य रूप में परिणत किया और उस

मेलेमें अखिल भारतीय दिगम्बर जैन संस्था का उद्घाटन किया, जिसका नाम *श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा"* रक्खा गया । उसके अध्यक्ष श्रीमान राजा लक्ष्मणदास जी सी० आई० ई० मथुरा निर्वाचित हुए, उपसभापति लाला उग्रसेनजी रईस सहारनपुर और महामंत्री पं० छेदालालजी अलीगढ़ नियुक्त हुए ।

महासभा का स्थापित होना मूर्छित जैन समाज में नवचेतना का संचार करना था । महासभा की स्थापना ने जैन समाज के संगठन के लिये प्रकाशस्तम्भ का कार्य किया ।

महासभा का दूसरा अधिवेशन सन १६५० में अलीगढ़ में हुआ । दुर्भाग्य से तीसरे वर्ष (सं० १६५१) में महामंत्री पं० छेदालालजी का स्वर्गवास हो गया । पं० छेदालालजी कार्यकुशल, उत्साही, समाजहितैषी, प्रभावशाली विद्वान थे । महासभा के प्रमुख संचालक थे । उनके वियोग से शैशवकालीन महासभा को भारी धक्का लगा। उनके समान व्यक्ति का मिलना कठिन होगया । कुछ समय महामंत्री पदके उपयुक्त व्यक्तिके ढूंढने में लगा । अन्त में नहरगंगा के डिप्टी कलक्टर मुंशी चम्पतरायजी को इस पद के लिये चुना गया । मुंशीजी जहां प्रभावशाली उच्च सरकारी पदाधिकारी थे, वहां धर्मप्रेमी, लोकप्रिय व सरल व्यक्ति थे । आपने पांचवें वर्ष से बारहवें वर्ष तक महासभा की महामंत्री पद द्वारा सेवा की । मुंशी चम्पतरायजी के महामन्त्री बन जाने के पश्चात् महासभा की ओर से 'जैनगजट' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करने का निश्चय किया गया । उसके सम्पादक बा० सूरजभानजी वकील सहारनपुर नियत किये गये । पं० प्यारेलालजी अलीगढ़ को स्वाध्यायप्रचारविभाग का मंत्री बनाया गया तथा बा० उग्रसेनजी सरसावा को जैनजनगणना का मंत्री नियुक्त किया गया । इस मन्त्रिमण्डल की सत्ता में सन् १६५२ में महासभा का जो अधिवेशन हुआ, वह महासभा की प्रगति का सूत्रधार था । इस अधिवेशन के पश्चात् महासभा कर्मक्षेत्र में तेजी के साथ पग बढ़ाने लगी ।

वि० सं० १६५३ में जो महासभा का अधिवेशन हुआ, उसमें भा० दि० जैन महाविद्यालय का उद्घाटन हुआ । महासभा का यह कार्य भी विद्याप्रचार की दिशा में अनुपम था । महाविद्यालय के मन्त्री न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी तथा उपमन्त्री न्यायवाचस्पति, स्याद्वादवारिधि श्रीमान पं० गोपालदासजी वरैया नियत हुए । समस्त पाठशालाओं के दिगम्बर जैन विद्यार्थियों की संस्कृत तथा धर्मशास्त्र की परीक्षा लेने के लिये भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा परीक्षालय स्थापित हुआ, इसके मन्त्री उपमन्त्री भी उपयुक्त सज्जन ही नियत हुए ।

महाविद्यालय में श्री० १०५ क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णी, पं० माणिकचन्दजी न्यायाचार्य, पं० लालारामजी शास्त्री स्व० पं० मनोहरलालजी शास्त्री, पं० रामप्रसादजी शास्त्री, पं० मक्खनलालजी प्रचारक देहली, पं० अमोलकचन्द्रजी आदि ने प्रारम्भ में अध्ययन किया था और इसी परीक्षालय में परीक्षा भी दी थी ।

धर्माध्यापक स्व० पं० नरसिंहदासजी थे । जैन समाज में पहले पढ़ने के लिये उपयुक्त संस्कृत विद्यालय न होने के कारण पं० नरसिंहदासजी, पं० गौरीलालजी, न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी ब्राह्मणवेश में रहकर बनारस, नवद्वीप आदि आदि में संस्कृत पढ़ते रहे । महाविद्यालय की स्थापना से जैन विद्यार्थियों की यह अड़चन दूर हुई ।

कुछ दिनों पीछे महाविद्यालय को अंग्रेजी स्कूल के रूप में परिवर्तन करने का प्रयत्न कुछ व्यक्तियों ने किया, किन्तु उसमें सफलता न मिली । सं० १६६२ में महाविद्यालय का स्थान चौरासी मथुरा से हटाकर सहारनपुर कर दिया गया । उसके बाद इस विद्यालय को स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस में मिला दिया गया । कुछ दिन बाद महासभा के संचालकों ने फिर महाविद्यालय का सामान वापिस मंगाकर सन् १६१३ में महाविद्यालय को उसका जन्मभूमि चौरासी (मथुरा) पर चालू किया । चौरासी पर लगभग सात वर्ष तक महाविद्यालय चलता रहा।

इसके बाद स्व० ब्र० ज्ञानचन्दजी महाविद्यालय को ब्यावर ले गये। ब्यावर में रा० ब० सेठ चम्पालालजी रानीवालों ने महाविद्यालय को अच्छे ढंग से चलाया। उनके स्वर्गवास हो जाने पर महाविद्यालय बन्द हो गया, जो कि अभी तक बन्द है।

"जैनगजट"

महासभा का मुखपत्र "जैनगजट" यद्यपि अनेक संकटों में से होकर निकला है, अनेक विद्वान क्रमशः उसका सम्पादन कर चुके हैं, किन्तु वह बराबर प्रकाशित होता रहा तथा उसकी नीति प्रायः एकसी बनी रही। उसमें अन्तर नहीं आने पाया। पण्डित इन्द्रलालजी शास्त्री जयपुर इसका इस समय योग्यतापूर्वक सम्पादन कर रहे हैं।

परीक्षालय

परीक्षालय भी विभिन्न विद्यालयों के छात्रों की वार्षिक परीक्षा लेता हुआ अब तक अपने कार्यक्रम पर चल रहा है ? इस समय रा० ब० सेठ हीरालालजी काशलीवाल इन्दौर मन्त्री है।

उपदेशक विभाग

महासभा का उपदेशक विभाग भी अनेक परिस्थितियों को पार करता हुआ अब तक चला आ रहा है। स्वर्गीय रायसाहब हकीम कल्याणरायजी, पण्डित सुमतिचन्दजी शास्त्री, पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ आदि अनेक विद्वान उपदेशक विभाग में प्रचारक का कार्य कर चुके हैं। इस समय पं० सुन्दरलालजी प्राचीन न्यायतीर्थ काव्यतीर्थ उपदेशक हैं।

सरस्वती भण्डार

इस विभाग में अनेक सुयोग्य शास्त्र लेखक रक्खे जाते थे और जहाँ कहीं से किसी शास्त्र की मांग आती थी, उन लेखकों से वह शास्त्र लिखाकर वहां भेज दिया जाता था। आजकल छपे हुए ग्रंथों का प्रचार बढ़ जाने से इस विभाग का कार्य बन्द रहा है, किन्तु इस भण्डार में ११८ ग्रन्थ लिखे हुए विद्यमान हैं।

स्वाध्याय प्रचार

जैन सिद्धान्त का ज्ञान जैन जनता में बढ़ाने के लिये यह विभाग महासभा ने खोला था और महासभा के उपदेशकों द्वारा स्थान-स्थान पर स्वाध्याय करने के प्रतिज्ञा फार्म भरवाकर स्वाध्याय का प्रचार बढ़ाया जाता था। स्व० पं० प्यारेलालजी पाटनी अलीगढ़ ने इस विभाग का मंत्रित्व उल्लेखनीय किया है।

जैन ला

इस विभाग का कार्य श्रीमान पं० मक्खनलालजी देहली के मंत्रित्व में हुआ था। इस विभाग ने 'जैन ला' नामक एक पुस्तक तैयार की है, जिसमें यह बतलाया गया है कि जैन ग्रंथानुसार जैन ला (कानून) का क्या रूप है। वर्तमान में यह विभाग 'जैन स्वत्व संरक्षण' विभाग नाम से कार्य कर रहा है।

भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्रकमेटी

सं० १९५१ में दि० जैन तीर्थ क्षेत्रों की रक्षा तथा सुव्यवस्था के लिये 'भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी' अपने एक विभाग के रूप में स्थापित की थी, जो कि अभी तक कार्य कर रही है, किन्तु इस समय वह महासभा का विभाग रूप न होकर स्वतन्त्र रूप में है। इस कमेटी ने पावापुरी, सम्मेदशिखर, गिरनार ऋषभदेव, तारंगाजी आदि तीर्थक्षेत्रों के लिये अनेक उल्लेखनीय कार्य किये हैं। इसके प्रधान रावराजा सर सेठ हुकमचन्दजी साहब बहुत वर्षों से हैं और बा० रतनचन्दजी चुन्नीलालजी झवेरीवाले बम्बई इसके महामन्त्री हैं।

कुछ उल्लेखनीय अधिवेशन

महासभा का १२ वां अधिवेशन सन् १९०७ में कुण्डलपुर में हुआ था, उसके सभापति स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी आरा थे। इस अधिवेशन में रात भर इस विषय पर वाद-विवाद होता रहा कि जैन संस्थाओं में शिक्षण किस तरह का हो ? स्व० पण्डित गोपालदासजी बरैया तथा स्व० पं० धन्नालालजी काशलीवाल का पक्ष था कि— *'जैनधर्म और तद् अविरुद्ध लौकिक शिक्षा'* ही जैन विद्यालयों में पढ़ायी जानी चाहिये। स्वर्गीय ब्रा० शीतलप्रसादजी (पीछे ब्रह्मचर्य प्रतिमा ली थी) तथा स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजी ने 'तद् अविरुद्ध' शब्द का विरोध रूप पक्ष लिया था। अन्त में रात भर गहरा विचार हो जाने पर उपस्थित सदस्यों ने पण्डितजी का प्रस्ताव स्वीकार किया था। केवल ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी विरुद्ध रहे थे।

२६ वां अधिवेशन

२६ वां वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में सन् १९२२ में हुआ था। उसके अध्यक्ष स्वर्गीय बैरिस्टर चम्पतरायजी थे। आपने महासभा के ध्रौव्य फण्ड की रकम का उद्धार किया था। डिप्टी चम्पतरायजी ने जैसे स्व० राजा लक्ष्मणदासजी सी०आई० ई० की सम्पति कोर्ट आफ वार्ड्स होने पर महाविद्यालय के २५ हजार रुपये उसमें से निकलवाकर सुरक्षित किये थे, लगभग वैसा ही कार्य बैरिस्टर चम्पतरायजी ने किया था। इसका निर्देश ला० भगवानदासजी बड़नगर महामन्त्री महासभा ने किया था।

देहली अधिवेशन

सन् १९२३ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के समय देहली में महासभा का २७ वां अधिवेशन हुआ। स्व० सेठ रावजी सखाराम दोशी सोलापुर सभापति थे। इस अधिवेशन में जैन गजट की सम्पादकी के प्रश्न पर सुधारक तथा स्थितिपालक दल में बहुत तनाव उत्पन्न हो गया। अन्त में सुधारक दल ने इसी मेले में महासभा के मुकाबिले में 'भा० दि० जैन परिषद्' की स्थापना की, जो कि अभी तक अपना कार्य चला रही है।

शेडवाल अधिवेशन

महासभा का २८ वां अधिवेशन शेडवाल में ब्र० नमिसागरजी वर्णी की अध्यक्षता में हुआ, किन्तु आपसी विवाद बढ़ जाने के कारण अधिवेशन स्थगित करना पड़ा। सुधारकदल ने कहीं एकत्र होकर मीटिंग की और उसमें महासभा पर अधिकार करने के लिये एक अलग प्रबन्धकारिणी समिति का चुनाव किया, जिसमें महामन्त्री श्री रामचन्द्रजी कोठारी को चुना गया।

इसके बाद महासभा का समस्त कार्यभार हस्तगत करने के लिये श्री रामचन्द्र कोठारी आदि सुधारक नेताओं ने स्वर्गीय सेठ चैनसुखजी छाबड़ा सिवनी महामन्त्री महासभा पर कोर्ट में दावा दायर कर दिया।

ब्यावर अधिवेशन

महासभा का २९ वां अधिवेशन (नैमित्तिक) ब्यावर के मेले में सन् १९२५ को हुआ। इस अधिवेशन के अध्यक्ष स्वर्गीय लाला देवीसहायजी फीरोजपुर थे। इस अधिवेशन की उल्लेखनीय घटना यह रही कि महासभा को हस्तगत करने के लिये सुधारकदल की ओर से जो केस चलाया गया था, उसके विरुद्ध पैरवी करने के लिये एक फंड एकत्र किया गया।

यह अभियोग (मुकद्दमा) कुछ दिन चलते रहने के बाद खारिज हो गया और महासभा महामन्त्री स्व० सेठ चैनसुखजी छाबड़ा ही बने रहे।

गींय जातिनेता सेठ चैनसुखदासजी छाबड़ा ने १७ वर्ष तक महामन्त्री पद पर रहकर महती सेवा

चतुर्थ काल के मुनि

(लेखक—न्यायालंकार पं० मक्खनलालजी शास्त्री, आचार्य—मोरेना महाविद्यालय)

श्रीमन्तः कुन्दकुन्दाद्याः आचार्याः मुनिपुंगवाः
शान्तिसागरपर्यन्तः तान् वन्दे भावतोऽधुना ॥

वर्तमान आचार्य एवं मुनिराजों में सातिशय महत्त्व और चतुर्थ काल की समता पाई जाती है इसका अनुभव उनकी चर्या जानने वाले विद्वान भलीभांति जानते हैं। आज से तीस वर्ष पूर्व सांगली से श्री मुनिराज अनन्तकीर्ति मोरेना आये थे। अधिकशीत पड़ने से किसी भाई ने रात्रि में विना किसी को बताए चुपचाप उनकी गुफा के द्वार पर जलती हुई अंगीठी (सिगड़ी) रख दी थी। दैवयोग से महाराज का पैर उस पर पड़ गया। उन्होंने उस पैर का जलना उपसर्ग समझा और उसे नहीं उठाया, साथ ही अरहन्त शब्द का उच्चारण किया। समीप की कोठरी से क्षुल्लक जी ने आकर देखा। तुरन्त पैर हटाया। पैर घुटनों पर्यन्त जल चुका था। मांस निकल आया था। महाराज ने उसकी थोड़ी भी चिन्ता एवं दुःख की वेदना नहीं मानी और ५—६ दिन में पूरी समता एवं समाधिमरण पूर्वक देह त्याग कर दिया। उनकी इस निर्मम घोर तपश्चर्या, समता और शान्ति पूर्ण चित्तवृत्ति का भारी प्रभाव मोरेना, आगरा, लश्कर के जैन एवं अजैनों पर भी पड़ा।

आज से ५—६ वर्ष पूर्व आरा में कुछ मुनिराजों का विहार हुआ था। जब वे रात्रि में एक कोठरी में ध्यानावस्थित थे, तब न मालूम किसी अज्ञात कारण से उनके नीचे बिछी हुई घास में आग लग गई। मुनिराजों ने उसे उपसर्ग समझा और वे ध्यान में ही बैठे रहे। परिणाम स्वरूप दो मुनि और क्षुल्लक स्वर्गधाम में पहुंच गये। मुनिराज कुन्थुसागर का शरीर बहुत पुष्ट था। उन्हें ज्वर से सन्निपात होगया। फिर भी कोई औषधि और उपचार नहीं करने दिया। उन्होंने तीन दिन की बीमारी में शरीर त्याग बड़ी समता से किया। आचार्य सुधर्मसागर जी महाराज तो जब १०५ डिग्री बुखार चढ़ा रहता था और शीत ज्वर का तीव्र प्रकोप था तब उस रोग की तीव्रता में रात्रि को बैठकर १००-१०० श्लोकों की नई रचना यत्याचार ग्रन्थ की वे प्रतिदिन करते थे। जब खास २ पुरुषों ने उनसे कहा कि महाराज थोड़ा विश्राम करिये थोड़ीसी शरीर की साधना भी करना चाहिये। उत्तर में महाराज ने कहा कि मेरा शरीर तो अब बहुत दिनों नहीं चलेगा यह निश्चित है तब इससे मैं अपना परमार्थ लाभ जितना ले सकूं उतना ही अच्छा है। यह कितने महत्व और वीतराग पद के आदर्श की बात है।

दक्षिण के १०४ वर्ष के वयोवृद्ध मुनिराज आदिसागर जी की दृष्टि जब कम हो गई और उन्हें आहार विहार में बहुत कम दीखने लगा तब उन्होंने मुनि चर्या के पालने में बाधा समझ कर विना किसी रोग के समाधिमरण का नियम ले लिया। चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। उस समय उसकी वैयावृत्य करने के लिये चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज आचार्य महावीरकीर्ति जी, मुनिराज नेमीसागरजी अन्य साधु ऐलक क्षुल्लक और दो हजार श्रावक भी पहुंच गये थे समाधिस्थ मुनिराज आदिसागर महाराज ने विना अन्न जल ग्रहण किये बड़ी शान्ति और सावधानी से १४ दिन व्यतीत कर उदगांव की टेकरी पर शरीर त्याग किया। क्या यह आदर्श चतुर्थ काल के मुनियों से कम है।

वर्तमान मुनिराज नेमिसागर जी, मुनिराज नमिसागर जी, मुनिराज वीरसागर जी, मुनिराज आदिसागर जी आदि भी कितनी तपश्चर्या और परीषह सहन करते हैं यह बात उनके चरण सान्निध्य में रहने वाले ही जान सकते हैं।

वर्तमान तपस्वियों में सर्व प्रथम, सर्व प्रधान एवं सर्व शिरोमणि वीतराग तपोमूर्ति, चारित्र चक्रवर्ति योगीन्द्र चूडामणी श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर महाराज हैं।

आचार्य महाराज ने तीन ऐसे असाधारण कार्य किए हैं जो दूसरे से साध्य नहीं हो सकते थे। एक तो यह कि उन्होंने उत्तर हिन्दुस्तान में विहार कर धर्मदेशना, दूसरे धवलादि शास्त्रों का ताम्रपत्र पर खुदाकर सुरक्षित करना और तीसरे धर्म धर्मायतनों की रक्षा के लिए उपवासादि द्वारा जनता में जागृति उत्पन्न करना। उक्त तीनों ही असाधारण कार्य हैं जो सर्वविदित हैं।

शास्त्रकारों ने मुनियों के दो भेद बताए हैं। १—जिनकल्पी २—स्थविर कल्पी। जिनकल्प मुनि उन्हें कहा गया है जो उत्तम संहनन के धारक हों उसी भव से मोक्ष जाने की जिनकी पात्रता हो, और जो निराहार छहमास तक एक आसन से ध्यान लगाकर बैठे रह सकें ऐसे साधु नगर में न रहकरजंगल में उन सिंहादिक क्रूर जानवरों के मध्य में रहते हैं। उनके शरीर संहनन की सामर्थ्य बहुत प्रबल होती है। जितनी उनकी सामर्थ्य होती उतना ही उनका कठिन तपश्चरण और प्र होता है जिससे हिंसक जीव भी देखकर शान्तिलाभ करते हैं। परन्तु स्थविरकल्पी ऐसा करने में असमर्थ हैं उनका हीन संहनन होता है। अतः संहनन से २८ मूलगुण तो पालते हैं परंतु उनकी इतनी सामर्थ्य नहीं हो सकती है जो निर्जन बन में रह सकें और निर्विघ्न अपना आत्म साधन कर सकें। ऐसे मुनियों के लिए नगर में रहने का विधान है।

यह अनुभव और निश्चय शास्त्राधार से प्रत्येक जैन को करना चाहिये कि जबतक जगत में मुनियों का प्रादुर्भाव और अस्तित्व रहता है तभीतक जैन धर्म का अस्तित्व अथवा मोक्ष मार्ग का पूर्ण रूप—सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र रहता है। मोक्षमार्ग का एक देश तो चारों गतियों में रहता है परन्तु रत्नत्रयात्मक मोक्ष मार्ग मुनियों के प्रगट होने पर और उनके सद्भाव रहने तक ही रहता है। भोग भूमि समाप्त होने पर कर्म भूमि के प्रारंभ में मोक्ष मार्ग तभी प्रचिलित हुआ जब कि आदि तीर्थंकर आदिनाथ भगवान ने मुनिव्रत धारण किया। इसीप्रकार जैन धर्म और मोक्ष मार्ग का सद्भाव पंचम काल में तभी तक रहेगा जब तक कि मुनी आर्जिका का सद्भाव रहेगा, उनके समाधिमरण करने पर [illegible] लोप हो जायेगा। इसी प्रकार यह बात भी निश्चित है कि जब तक मुनियों का अस्तित्व है तभी [illegible] धर्मठहर सकता है उनके अभाव में श्रावक धर्म भी नहीं ठहर सकता है। आदिनाथ भगवान [illegible]ने पर ही श्रावक धर्म प्रारंभ हुआ और पंचम काल में अंत में मुनियों की समाप्ति में श्रावक धर्म भी समाप्त हो जाता है। श्रावकों का उद्धार एवं उनका सच्चा हित मुनिधर्म से ही हो सकता है। वही उनका परम आदर्श है। पुलाक वकुश आदि जो शास्त्रों में मुनियों के पाँच भेद बताए हैं वे चौथे काल में भी पाए जाते हैं। इन भेदों पर दृष्टि डालने से वर्तमान मुनियों का स्वरूप और उनकी चर्या चतुर्थ काल के पुलाकादि मुनियों से किसी प्रकार कम नहीं है किन्तु समता एवं विशेषता भी रखती है। अंत में यही निवेदन है कि योगीन्द्र चूडामणि चरित्र चक्रवर्ती परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज के दर्शन, स्तवन पूजन करने का सुअवसर एवं सौभाग्य प्रत्येक जैन बंधु को प्राप्त करना चाहिए।